नई तालीम

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

जुलाई १९६१ वर्ष १० : अंक १

सम्पादक

देवीप्रसाद

मनमोहन

वर्ष १० अंक १ ★ जुलाई १९६१

नई तालीम का सच्चा स्वरूप

धीरेन्द्र मजुमदार

केवल शोषक और शोषित में ही नहीं, केवल अमीर और गरीब के बीच ही नहीं, केवल मजदूर मालिक के साथ ही नहीं, बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक स्तर के लोगों के बीच भी वर्गविषमता है। खासकर वर्ण व्यवस्था के कारण हिन्दुस्तान में सांस्कृतिक स्तर की विषमता तथा तज्जनित वर्गभेद तो स्पष्ट ही है। एक मजदूर वर्ग आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर जमीन का मालिक बनने पर भी उसके जीवन का दर्जा अपने वर्ग से निम्न प्रकार का रह सकता है। आर्थिक हैसियत के कारण एक ब्राह्मण और क्षत्रिय भी उससे हीन वर्ग का है, ऐसा नहीं माना जाता है। अतएव केवल अन्याय के विरुद्ध थोड़े कुछ परिवर्तन से ही वर्गनिराकरण नहीं होगा, इसके लिए तो स्थायी रूप के सत्याग्रह की आवश्यकता है।

गांधीजी की नई तालीम इसी क्रान्ति का वाहन है। क्यों कि इस तालीम की प्रक्रिया से न केवल सामाजिक विषमता का ही निराकरण होगा, बल्कि सांस्कृतिक विभेद का भी तिरोधान होगा। जब तालीम जन्म से मृत्यु तक होगी, हरेक वर्ग के लिए समान होगी और उसकी

वर्ष १० अंक १ ★ जुलाई १९६१

नई तालीम का सच्चा स्वरूप

धीरेन्द्र मजूमदार

केवल शोषक और शोषित में ही नहीं, केवल अमीर और गरीब के बीच ही नहीं, केवल मजदूर मालिक के साथ ही नहीं, बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक स्तर के लोगों के बीच भी वर्गविषमता है। खासकर वर्ण व्यवस्था के कारण हिन्दुस्तान में सांस्कृतिक स्तर की विषमता तथा तज्जनित वर्गभेद तो स्पष्ट ही है। एक मजदूर वर्ग आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर जमीन का मालिक बनने पर भी उसके जीवन का दर्जा अपने वर्ग में निम्न प्रकार का रह सकता है। आर्थिक हैसियत के कारण एक ब्राह्मण और क्षत्रिय भी उससे हीन वर्ग का है, ऐसा नहीं माना जाता है। अतएव केवल अन्याय के विरुद्ध थोड़े कुछ परिवर्तन से ही वर्गनिराकरण नहीं होगा, इसके लिए तो स्थायी रूप के सत्याग्रह की आवश्यकता है।

गांधीजी की नई तालीम इसी क्रान्ति का वाहन है। क्योंकि इस तालीम की प्रक्रिया से न केवल सामाजिक विषमता का ही निराकरण होगा, बल्कि सांस्कृतिक विभेद का भी तिरोधान होगा। जब तालीम जन्म से मृत्यु तक होगी, हरेक वर्ग के लिए समान होगी और उसकी

प्रक्रिया सब वर्गों को एक साथ मिलाकर चलेगी तो सामाजिक विषमता और भिन्नता मिट जायगी। तालीम वर्ग-निराकरण का वाहन है, इसे समझने तथा इसकी व्यूह-रचना करने के लिए आज वर्गभेद का वास्तविक स्वरूप क्या है, इसको भी समझना जरूरी है।

नई तालीम का माध्यम उत्पादन की प्रक्रिया और सामाजिक वातावरण होने से प्रत्येक को शिक्षा का अवसर मिलेगा और इस शिक्षा की प्रक्रिया के द्वारा प्रत्येक को शरीश्रम से उत्पादन करने का अभ्यास होगा। साथ ही सामाजिक वातावरण के माध्यम से शिक्षा चलाने के कारण व्यवस्थाशक्ति हरेक को हासिल होगी, समाज में अलग से व्यवस्थापक वर्ग रखने की जरूरत नहीं होगी। परस्पर सहकार से ही समाज का सारा काम चलेगा।

अहिंसक क्रान्ति विचार परिवर्तन तथा हृदय परिवर्तन से सधती है। उसका साधन मनाना और समझाना ही है, वह न हिंसा की प्रक्रिया है और न वह कानून की प्रक्रिय है, वह शिक्षण की ही प्रक्रिया है। विचार परिवर्तन के साथ साथ संस्कृति को भी बदलने की जरूरत है, तभी क्रान्ति पूर्ण हो सकती है। इस परिवर्तन के लिए स्थायी कर्मसूची की जरूरत है तो वह निःसन्देह स्थायी शिक्षण प्रक्रिया ही हो सकती है। इसलिए जहां गांधीजी रचनात्मक काम को क्रान्ति की रीढ़ मानते थे तो वे यह भी मानते थे कि रचनात्मक कार्यरूपी सभी नदियों को आखिर में नयी तालीम के समुद्र में विलीन होना है, क्योंकि जब शिक्षा क्रान्ति के लिए सामाजिक शक्ति के रूप में अधिष्ठित होती है तो क्रान्ति के उद्देश्य से जो भी रचनात्मक काम किया जायगा वह सब अवश्य ही तालीम का माध्यम होगा।

रवीन्द्रनाथ के शिक्षणविचार या विश्वमानवता की साधना

मनमोहन चौधरी

रवीन्द्रनाथ अेक भगौडा लडका था, जो चार आठ दिनों के अनुभव लेने के बाद स्कूल से भाग निकला, फिर वहा गया ही नही। अुस समय की प्रचलित शिक्षण पद्धति में-जो आज भी प्रचलित है-बच्चो के चित्त को रुधने की जो अेक प्रक्रिया थी अुससे अुनका सवेदनाशील चित्त पीडित हुआ था। यह दुनिया का सौभाग्य है कि अुस शिशु का यह विद्रोह सफल हुआ, उसे जड शिक्षण के शिकजे में भरने की कोशिश छोड दी गयी। शहर की कृत्रिमता की आबोहवा तथा ईंटपत्थरो के कारावास को उनका चित्त बरदाश्त नही करता था, वह विश्वप्रकृति के स्पर्श के लिये छटपटाता था। अिस कृत्रिमता की दिवार की दरारो में से अुनकी आत्मा भाग निकलती थी और अपने ही अेक आनन्दलोक की सर्जना करके अुसमें विहरती थी। अपने निजे अनुभव से ही अुन्हें शिक्षण के दो मूल सिद्धातो की जानकारी मिली थी—वह यह कि ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया आनन्दमय है, शिक्षणव्यवस्था की रचना अिस आनन्दोपलब्धि को परिपुष्ट करनेवाली होनी चाहिये तथा मानवव्यक्तित्व के परिपूर्ण विकास के लिये अुसे निसर्ग का निविड स्पर्श आवश्यक है। अिस सबध में अपने विचार अुन्होंने अिस प्रकार व्यक्त किये है—

"मन जिस समय बढता है अुस समय अुसको चारो ओर बहुत अवकाश चाहिये। विश्व-प्रकृति में यह अवकाश विराट् रूप में, विचित्र रूप में विद्यमान है। किसी तरह से साढे नौ-दस बजे जल्दी अन्न निगल कर विद्या-शिक्षा के जेलखाने में हाजिर होने से कभी भी बालको के स्वभाव का स्वस्थ विकास हो नही सकता। शिक्षण को दीवारो से घेरकर, फाटक में बद कर, दरवान के पहरेदारी में रख-कर, दड से कटकित कर, घटे की आवाज से ताडित कर, मानव जीवन के प्रारभ में ही यह कैसे निरानद की सर्जना की गयी है? बच्चा जो अलजब्रा के गणित किये बिना, ईतिहास की तारीखें कठ किये बिना ही मातृगर्भ से पैदा हुआ, अिसलिये क्या वह गुनाहगार है? क्या अिसलिये ही उन अभागो से उनका आसमान, उनकी हवा, उनके आनद के अवसरो को छीनकर शिक्षण को उनके लिये हर प्रकार से दड का स्वरूप ही देना पडेगा? क्या बच्चा अिसलिये अशिक्षित होकर पैदा नही होता कि अज्ञान से धीरे धीरे ज्ञानलाभ करने का आनद अुसे मिले? पर हम अपनी अक्षमता तथा बर्बरता के कारण ज्ञानशिक्षा को आनदमय नही कर पाते तो फिर भी क्यो हम कोशिश करके, जानबूझकर, अत्यत निष्ठुरता-पूर्वक निरपराध

बालकों के विद्यागार को कारागार का स्वरूप देते है ?"

उन्होंने फिर कहा है—' मनुष्य की चारों ओर घिरी हुई जो जगत्प्रकृति है वह अत्यन्त अंतरंग रूपसे मानव के सारे चिंतन, सारे कर्मों के साथ ओतप्रोत है। मानव का लोकालय अगर एकांत रूप से मानवमय हो उठेगा, उसके अंदर अगर प्रकृति को किसी भी प्रकार का प्रवेशाधिकार न हो तो हमारे चिंतन तथा कर्म धीरे धीरे कलुषित, व्याधिजर्जर होकर अपने ही अतलस्पर्श आवर्जनाओं में डूबकर आत्मघात कर मरेंगे "।

प्रचलित शिक्षण पद्धति से उन्हें इसलिए चिढ थी कि उससे मनुष्य को अपने परिपूर्ण स्वरूप का भान नहीं होता। अपने से बिछुडकर एक सीमित रूप को ही वह अपना रूप मानने लगता है।

वे कहते हैं 'मनुष्य मनुष्य में सीख सकता है जैसे जल से ही जलाशय भरता है, बत्ती से ही बत्ती जलती है, प्राण से ही प्राण का संचार होता है। जब मनुष्य को हम खंडित करते हैं तब वह मनुष्य नहीं रहता, वह कचहरी, अदालत या कल-कारखाने का जरूरी सामान बन जाता है।'

परिपूर्ण मानव में चिंतनशक्ति तथा कल्पनाशक्ति के विकास को वे मुख्य स्थान देते थे और सृजनशीलता में ही उसका सच्चा प्रकाश मानते थे। उनका विचार था कि जो आसानी से मिल जाय इस प्रकार के थोडेसे साधनों से ही सृष्टि के आनंद को उद्भासित करने का मौका बचपन में मिलना चाहिए।

सब जानते ही हैं कि उनकी संस्था शांतिनिकेतन में साहित्य, चित्रकारी, भास्कर्य, संगीत, नाटच आदि सृजनात्मक कलाओं को विशेष प्रोत्साहन मिलता है। पर सृजनशीलता का मतलब वे सिर्फ इतना ही नहीं समझते थे। बागवानी, खेती, गोपालन, बुनाई आदि उत्पादक धंधों के जरिये इस सृजनशीलता की अभिव्यक्ति को वे आवश्यक समझते थे। वैज्ञानिक शोध तथा आविष्कारों का महत्व भी उनकी दृष्टि में बहुत बडा था। उनकी शिकायत थी कि "अंगरेजी डाक्टरी का भारतीय विद्यार्थी डरते डरते किताबें देख देख कर डाक्टरी करता है पर शारीरविद्या या चिकित्साशास्त्र में एक भी नया तथ्य या तत्व जोडनेमें समर्थ नहीं होता। इंजीनीयरिंग का विद्यार्थी सावधानी से पोथी के साथ मिलाकर काम करते हुये पेंसन ले लेता है, पर यंत्रविद्या या यंत्र-उद्भावना के क्षेत्र में याद रखने लायक कुछ कर नहीं पाता।"

इसलिये उन्होंने मातृभाषा के जरिये शिक्षण के लिये जोरदार आन्दोलन शुरू किया था और प्रचलित परीक्षा पद्धति की व्यर्थता के प्रति ध्यान खींचते वे कभी थकते नहीं थे। परीक्षा पद्धति का मजाक करते हुये उन्होंने लिखा है—"फलतः विद्या का यह बृहत् कारखाना नकल बनाने का यंत्र बन रहा है। आदमी यहां "नोट" रूपी कंकर बटोरकर डीग्री का बोरा भरता जा रहा है, पर वह तो जीवन का अंग है नहीं। उसका गौरव सिर्फ बोझा भारी करने का गौरव है, प्राण का नहीं।'

'किताब रटरट कर पास होना तो चोरी ही है। जो लडका परीक्षा भवन में किताब छिपाकर ले जाता है उसको निकाल दिया जाता है, पर जो लडका उससे भी अधिक गुप्त

रूपसे लेता है, याने चादर में न छिपाकर अपने दिमाग में ले जाता है उसने भी क्या कम चोरी की ?" कुछ अनुभवी शिक्षको का सराहना करते हुए उन्होंने लिखा है--'वैसे शिक्षक निस्सदेह हममें हैं पर रक्तपिपासु परीक्षादानव के पास शिशुओ के मन का बलिदान चढाने में उन्हे इतना व्यस्त रहना पडता है कि शिक्षण के ऊपरी मजिल तक उठने का अवसर उन्हे नही मिलता ।"

व्यक्ति के इस परिपूर्ण विकास के लिये सभी प्रकार के दड को वे नुकसानदेह मानते थे । वच्चो को अनुशासनवद्ध करने के बारे में जो पुरानी मान्यताए समाज में प्रचलित हैं और जिनमें से आज यह विचार पैदा हुआ है कि विद्यार्थियो में अनुशासन लाने के लिये उन्हे फौजी अफसरो के सुपुर्द कर देना चाहिये, उनके भी वे सख्त विरोधी थे । अपने विचार उन्होने ऐसे उद्‌गारो से व्यक्त किये हैं

"विद्यार्थी को तो जेलखाने का कैदी या फौजी सिपाही मान नही सकते । हम यह जानते हैं कि उन्हें मनुष्य का रूप देना है । मनुष्य की प्रकृति सूक्ष्म तथा सजीव ततुजाल से बडे विचित्र ढग से बनी हुई होती है ।

"डिसिप्लिन के यत्र को जितना बट देने से लडके सयत होते हैं उससे कही अधिक बट देने की कोशिश दीख रही है, इससे उनको सत्वहीन किया जायेगा । लडको में लडकपन की चचलता स्वाभाविक तथा स्वास्थ्यकर होती है । अग्रेज यह अपने देश के बारे में अच्छी तरह समझता है । वह जानता है कि इस चचलता को दबाने के बदले अगर उसका नियमन करके उसे पुष्ट किया जाय तो आगे चलकर यही चारित्र्य तथा बुद्धि की शक्ति के रूप में सचित होगी । इस चचलता को बिलकुल दलित करना कायरता पैदा करने का मुख्य तरीका है । ."

वे मानते थे कि किसी दोष का प्रतिकार दड से नही, बल्कि स्वेच्छा से किये गये प्रायश्चित्त से ही होना चाहिये । दूसरे के द्वारा दडित होने में मनुष्यता का ह्रास होता है ।

धर्म या नीति शिक्षा का सवाल भी उनके सामने आया था और उसका विवेचन भी उन्होंने अपने लाक्षणिक ढगसे किया है :

"नीति-उपदेश, यह वस्तु स्वविरोधी है । यह कभी भी मनोरम नही हो सकती । जिसको उपदेश दिया जाता है उसको मुजरिम की हैसियत से काठगडे में खडा किया जाता है । उपदेश या तो उसके सरपर से उस लाघ कर चला जाता है, या उसे चोट पहुचाता है । इससे सिर्फ यह प्रयत्न व्यर्थ नही होता, अकसर नुकसान भी करता है । सद्‌विषय को विरस तथा निष्फल कर डालना मनुष्यसमाज के लिये जितना नुकसानदेह है उतनी और कोई चीज नही है ।" इसलिये वाचिक उपदेश से नही, पर स्वस्थ, आनदपूर्ण तथा धर्ममय जीवनयात्रा के जरिये नीति के प्रत्यक्ष आचरण को ही वे सही शिक्षण मानते थे । बालको में नीतिमत्ता का सच्चा विकास करना हो तो उनके आसपास के समाज के वातावरण को शुद्ध करना चाहिये । आश्रम विद्यालय में विद्यार्थी तथा शिक्षको का सामूहिक जीवन नैतिक तथा पारमार्थिक साधना का एक सर्वोत्तम क्षेत्र है ऐसा उनका स्पष्ट विचार था । विद्याध्ययन के समय बालको को ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये । उन्होंने शान्तिनिकेतन का प्रारभ ब्रह्मचर्य विद्यालय के रूप

हो गिया था। हा, ब्रह्मचर्य का मतलब कुछ साधना है अैसा वे नही मानते थे। विद्यालय को वह सिर्फ ज्ञान वितरण के नही, बल्कि ज्ञान अुत्पादन के स्थान के रूप में देखते थे। अुनकी आखो के सामने यह चित्र था कि अैसे विद्यालय में जहां ज्ञानयज्ञ का सत्र चलेगा वहा विद्यार्थियो को सहज ही ज्ञानभोजन मिलेगा और अुनके चारित्र्य का निर्माण भी अुतने ही सहज भाव से होगा। शान्तिनिकेतन के अपने अनुभवो से अिस विचार पर पहुँचने का वर्णन उन्होने जिस प्रकार किया है :

"जबतक हम सोचते थे कि हम बालको को सिखायेंगे, हमी उनका उपकार करेगे तब तक हमने नितात ही अल्प काम किया। तबतक हम ने जितने यत्र बनाये उतने यत्रो को ही तोडना पडा। पर जबसे यह भावना हमारे मन में धीरे धीरे जग अुठी कि अपना ही शून्यता को भरना होगा, हम ही यहा पाने के लिये आये हैं, यहा बालको की साधना तथा हमारी साधना के आसन एक ही समतल पर है, यहा गुरु शिष्य दोनो अेक ही स्कूल में उस महागुरु के वर्ग में दाखिल हुअे हैं, तभी से फल अपने आप फलने लगा, काम अपने आप सुगुवल बनने लगा। अभी भी हमारी जो कुछ निष्फलता है वह यही है। जबतक हम मानते है हम देंग और दूसरे लेंगे, साधना सिर्फ विद्यार्थियो की है, हम तो अुनके चालक तथा नियामक हैं, वहीं हम किसी प्रकार भी सत्य वस्तु दे नहीं पाते, वही हम अपने अपराधो को दूसरो के कधे पर डालते हैं और प्राण का अभाव यत्र से करने की कोशिश करते है।"

अबतक हमने उनके विचारो का सिंहावलोकन व्यक्ति के पूर्ण विकास की दृष्टि से किया। अकसर व्यक्ति तथा समाज के हितों में विरोध बताया जाता है। पर रवीन्द्रनाथ इस प्रकार के व्यक्तिवादी नहीं थे। वे यही मानते थे कि व्यक्ति की पूर्ण विकसित प्रतिभा समाज की सेवा में समर्पित होनी चाहिए। उनको यह दर्शन मिला था कि सच्ची तेजस्वी शिक्षणव्यवस्था समाज जीवन से ओतप्रोत होगी। उसमें से वह प्रस्फुटित होगी। समाज की समस्याओ से विद्यार्थियो को अध्ययन की प्रेरणा मिलेगी तथा विद्यालय में प्राप्त नये ज्ञान से समाज समृद्ध होगा। वे अत्यत तीव्रभाव से यह अनुभव करते थे कि, "देश की जनता के सारे दु खद प्रश्नों, महत्वपूर्ण आवश्यकताओ तथा कठोर वेदनाओ से हमारे विश्वविद्यालय बिछुड गये हैं। यहा हम दूर की विद्या को जड वस्तु की तरह विश्लेषण के द्वारा प्राप्त करते है, समग्र उपलब्धि के जरिये नही।"

अपनी विद्या को जनता की सेवा में समर्पित करने का आवाहन विद्यार्थियो को वे बार बार देते थे। जनता में ज्ञान का प्रसार ही उनकी श्रेष्ठ सेवा है यह उनका विचार था। शिक्षण सिर्फ एक विशेष वर्ग का विशेषाधिकार बनकर रहे यह उनको सहन नही होता था। "पुराने जमाने में हमारे देश में शास्त्रीय शिक्षण की जो व्यवस्था थी, उसकी भूमिका सारे देश में व्याप्त थी। यात्रागान, लोकगीत, नाटक आदि के जरिये तत्वज्ञान के दुरूह विचार भी जनता के पास पहुँचाये जाते थे। इससे सारी जनता के चित्त में सस्कृतिरस का सचार होता था। आधुनिक युग में कई देशो में अनिवार्य व्यापक शिक्षण का प्रवर्तन हुआ है, पर हमारे देश में लोकशिक्षण की यह व्यापक व्यवस्था अनिवार्य

नही, परतु ऐच्छिक थी। हमारी सस्कृति आम जनता में ज्ञान की एक गहरी भूख पैदा करने में समर्थ हुई थी"। भारत की इस प्राचीन परपरा से प्रेरणा लेते हुऐ इसको आधुनिक युग के उपयोगी स्वरूप में पुन प्रथ्ठित करने का विचार वे देते थे। मातृभाषा के जरिये शिक्षण के लिये उन्होंने जो जोरदार आन्दोलन शुरू किया था उसके पीछे यह भी दृष्टि थी कि इससे ही शिक्षा की धारा जनता में प्रवाहित हो सकेगी। आधुनिक शिक्षितो के बारे में उनकी यह शिकायत थी कि जनता के शिक्षण का ख्याल उनको नही है। यह वर्ग खुद शिक्षण के भोज में भर पेट खा लेना चाहता है पर भूखी जनता को भोजन का बचाकुचा अवशेष भी मिलता है या नही इसका ख्याल तक उसको नही है।

> भारत माता हिमालय के दुर्गम शिखरपर बैठकर करुण स्वर से वीणा बजा रही है इसका ध्यान करना एक प्रकार की नशा खोरी है। भारतमाता तो हमारे ही गाव में कीचड से भरे तालाब के किनारे, मलेरिया-जीर्ण प्लीहारोगी को गोद में लेकर उसके पथ्य के लिए अपने शून्य भडार की ओर हताश दृष्टि से ताक रही है, यह देखना ही यथार्थ दर्शन है। जो भारत माता व्यास वसिष्ठ विश्वामित्र के तपोवन में शमीवृक्ष के नीचे आत्मबल से जलसेचन करती फिर रही है उनको हाथ जोडकर प्रणाम करना ही काफी होगा। पर हमारे पडोस में जो जीर्णचीर-धारिणी भारत माता अपने लडके को अगरेजी विद्यालय में पढाकर क्लार्क गिरी की विडबना में प्रतिष्ठित करने के लिए अनशन में रहकर दूसरो के रसोडो में रसोई करती फिर रही है उनको तो उस प्रकार सिर्फ प्रणाम करके टाला नहीं जा सकता।"
>
> रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यद्यपि स्वदेश की दु ख यातनाओ का दश उनको स्वस्थ बैठने नही देता था और असी स्वदेश की समस्याओ के सदर्भ में ही वे शिक्षण के बारे में सोचते थे, फिर भी उनकी दृष्टि स्वदेश के ही दायरे में सीमित नही थी। हम सब जानते है कि विश्वमानवता के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कर्ताओ में रवीन्द्रनाथ का स्थान कितना ऊचा है। इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि उनके आदर्श का परिपूर्ण मानव विश्व-मानव ही हो। इस वैश्व-दृष्टि को उन्होने अपने शिक्षण विचार के केन्द्र में रखा था। आज से चालीस पचास साल पहले का जमाना हमारे देश में सभ्यताओ के प्रचण्ड सघर्ष का जमाना था। परदेशी साम्राज्यवाद तथा नवीन गतिशील सभ्यता के आक्रमण से क्षतविक्षत देश की आत्मा अपनी प्राचीन सभ्यता, प्राचीन परपरा से प्रेरणा प्राप्त करती थी, आश्रय के लिये उसीसे लिपट जाती थी। पर रवीन्द्रनाथने इस वातावरण में भी अपनी उदार दृष्टि को स्तिमित होने नही दिया और विश्वभारती में उनकी साधना देश में उस समय प्रवाहित भावना के एक प्रकार से विरोध में जाते हुए भी अप्रतिहत रही। विश्वभारती के बारे में अपना दृष्टिकोण उन्होने इस प्रकार समझाया है, "पहले मैं यहा शातिनिकेतन में विद्यालय स्थापित करके बालको को इस उद्देश से लाया था कि विश्व-प्रकृति की उदार गोद में उन्हें मुक्ति दूगा। पर धीरे धीरे मुझे लगने लगा कि मानव मानव से आज जो भयानक व्यवधान है उसको अपसारित करके मनुष्य को सर्व मानव के विराट्

लोक में मुक्ति दिलवाना होगा। अपने घर में, अपने देश में जो मुक्ति मिलती है वह छोटी चीज होती है, उससे सत्य खडित होता है और इसी कारण दुनिया में अशाति फैलती है।"

सारे विश्व को ही ज्ञान की साधना तथा सेवा का क्षेत्र वे मानते थे। असीलिये प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों की जो भी विशेषताअें हैं अुनके मिलन से अेक पूर्ण तथा सुसमजस विश्व सस्कृति के अभ्युदय की आकाक्षा वे रखते थे। उन्हें असका दर्शन हुआ था कि आत्मज्ञान की साधना में भारत की विशेषता रही है और विज्ञान ही आधुनिक पश्चिम का विशिष्ट देन है। भारत की परपरागत ज्ञान तथा साधना के कायल होते हुअे भी उसकी दुर्बलताओं की ओर से अुन्होंने आखें फेर नहीं ली थी। जो जडता, जो विचारहीन आचार, जो भीरुता इसके अन्दर घुस गयी है, अुसपर अुन्होंने अपनी कविताओं, नवलकथाओ तथा लेखो के द्वारा बार-बार प्रहार किया है।

वे मानते थे कि आधुनिक विज्ञान के सयोग से ही भारत की जडता तथा भीरुता मिट सकती है। मानव जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने में विज्ञान को व्यावहारिक मदद का वे स्वागत करते थे। पर विज्ञान के व्यावहारिक पहलू से उसकी आध्यमिक पहलू का-जिसके प्रकाश से मानव के मन को भय और अध सस्कारो से मुक्ति मिल रही है-मूल्य उनके पास शायद अधिक था। इस सबध में उन्होंने लिखा है

"विश्वशक्ति त्रुटिहीन विश्वनियम का ही रूप है। . बुद्धि के नियम के साथ इस नियम का सामजस्य है, इसलिए इस नियम पर अधिकार हम में से हरक में निहित है। यह जानकर ही हम आत्म-शक्ति के सहारे पूरा खडा हो सके हैं। विश्व के कारोबार में जो मनुष्य आकस्मिकता को मानता हैं अपने ऊपर भरोसा रखने की हिम्मत उसमें नहीं होती। वह जब कभी, जिस किसी को मान बैठता है, शरणागति के लिये वह बिलकुल व्याकुल रहता है। जब मनुष्य सोचता है कि दुनिया के कारोबार में उसकी बुद्धि नहीं चलेगी तब वह खोज करना नहीं चाहता, प्रश्न पूछना नहीं चाहता, तब वह किसी बाह्य कर्ता को ढूढता फिरता है।

"पश्चिमी देशो में राजनैतिक स्वातन्त्र्य का यथार्थ विकास कब से शुरू हुआ? याने कब से किसी देश के सारे नागरिकोने यह समझा कि राष्ट्र के नियम किसी व्यक्ति या गिरोह की मनमानी चीज नहीं हैं, उसके साथ उनके हरेक की सम्मति का सबध है? जब से विज्ञान चर्चा से उनका मन भयमुक्त हुआ। "

इस प्रकार नवीन विश्वमानव निर्माण करने का साधनापीठ वे भारत में स्थापित करना चाहते थे। विश्वभारती इस स्वप्न का साकार रूप था।

आजसे तीस चालीस पचास साल पहले रवीन्द्रनाथ महसूस करते थे कि उनके विचार, उनके आदर्श, समाज के प्रवाह के अनुकूल नहीं हैं, इसलिये वे मानो समाज से दूर जाकर एक निभृत कोने में शिक्षा की साधना में तल्लीन हुए थे। पर क्या आज हर कोई विचारवान् मनुष्य यह महसूस नहीं करता कि उस समय उनके स्वतत्रता, सृजनशीलता, विश्व मानवता, आदि के जो विचार अव्यावहारिक आदर्शवाद माने जाते थे वही आज की दुनिया को ध्वस और मृत्यु के गह्वर से बचाने के लिये अेकमात्र व्यावहारिक मार्ग है?

नई तालीम और नवनिर्माण

धीरेन्द्र मजूमदार

जब हम नई तालीम की बात सोचते हैं तो सदियों के संस्कार के अनुसार बच्चों की पढ़ाई पर ही विचार करते हैं। कोई ज्यादा गहराई से विचार करनेवाला उनकी शिक्षा की बात सोचता है। इतने भर से नई तालीम नहीं होती है। अत नई तालीम के सेवकों को अपनी धारणा स्पष्ट बना लेने की आवश्यता है।

जो लोग १९३७ से ही गांधीजी की बताई तालीम से कुछ संबंध रखते हैं, वे जानते हैं कि शुरू में इसकी परिकल्पना बुनियादी शिक्षा के रूप में आई, अर्थात् ऊपर लिखित धारणा के अनुसार सात साल से चौदह साल तक के बच्चों की शिक्षा की बात आई। लेकिन गांधीजी ने १९३४ में जेल से लौटने के बाद दुनिया के सामने राष्ट्रीय शिक्षा को नई तालीम की संज्ञा देकर और उसकी परिधि गर्भ से मृत्यु तक बनाकर तालीम की परिकल्पना ही बदल दी। फिर तालीम समाज निर्माण का आधार बन गई। इस कल्पना का सहज मतलब ही नित्य नई तालीम होगा जैसा कि विनोबाजी कहते हैं।

इस प्रकार नई तालीम का वास्तविक अर्थ नई बुनियाद की तालीम हुई–अर्थात् तालीम हमेशा समाज की नई बुनियाद डालने का जरिया ही बनी रहेगी। अत हमें देखना है कि आज ग्राम निर्माण के लिए हमें करना क्या है? निर्माण का काम पुरानी और नई दोनों बुनियादों पर हो सकता है। जो लोग पुरानी मान्यता के अनुसार बुनियाद को बदलना नहीं चाहते उनके सामने भी प्रश्न यह है कि हमारे देश के देहातों में कोई ऐसी पुरानी बुनियाद है क्या, जिस पर से नव निर्माण हो सकता है।

आज की परिस्थिति के संदर्भ में ग्राम निर्माण का मतलब कुआ, तालाब, खेत या खेती का सुधार आदि का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि नई बुनियाद डालकर गाव का ग्राम समाज बनाने का प्रयास है। बांध, खेती आदि कार्यक्रम जरूर रहेगा, लेकिन वे कार्यक्रम ग्राम समाज की नई बुनियाद डालने का माध्यम होगा और स्वभावत यह काम नई बुनियाद की नई तालीम का काम होगा।

इसलिए मैंने ग्राम स्वराज्य के कार्यक्रम के साधारणत आठ कदम माने हैं, जिसे नई तालीम का पाठ्यक्रम कह सकते हैं।

१ ग्राम भावना २ ग्राम सहकार ३ ग्राम संगठन ४ ग्राम शक्ति ५ ग्रामदान ७. ग्राम मान्ती ८ ग्राम स्वराज्य

समग्र नई तालीम के उपरोक्त कदमों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि प्रौढ शिक्षा ही समग्र नई तालीम का प्रारभिक कार्यक्रम हो सकता है ।

देहात में नई तालीम के माध्यम के रूप में प्राथमिक उद्योग खेती ही हो सकती है । हम जो नया समाज बनाना चाहते हैं, उसका रूप भी कृपिमूलक ग्रामोद्योगप्रधान होगा, ऐसी कल्पना करते हैं । अतः हमें देहातो में कृपि सुधार के प्रसग को ही तलीम का माध्यम बनाना उचित होगा । यह केवल वाछनीय हो नही बल्कि स्वाभाविक भी है, क्योंकि नई तालीम वस्तुत जिज्ञासाजनित ही हो सकती है; ज्ञान का आरोपण नई तालीम नहो है, यह सभी जानते हैं । आज गाव की मूल समस्या अन्न की है और कृषि उनकी जीविका का एकमात्र साधन है । अतएव कृपि के प्रसग में ही उनमें स्वत स्फूर्त जिज्ञासा जागृत हो मक्ती है ।

गुरु का गुरुत्व इसी में है कि वह समझे कितनी देर बच्चों को अपने आप लकीर खीचने दे और कब कलम को अपने हाथ में पकड कर बच्चे के हाथ को दोयम स्थिति में रखकर पीछे से खुद लिखें । उसी तरह कार्यकर्ता को भी इस बात में माहिर होना पडेगा कि वे कब किस काम को कितनी देर जनाधार पर छोडकर बर्वाद तक होने दें और कब उसे अपने अभिक्रम में लेकर संभाल ले । इसका कोई फार्मूला नहीं हो सकता है । कार्यकर्ता का विवेक ही आखिरी गणित है । मैंने साधन–प्राप्ति के काम में पूर्ण रूप से गाव के लोगो पर छोडकर भूखे रहने की स्थिति तक चुप बैठने की नीति रखा । वह बिल्कुल सही था, मैं यह स्पष्ट रूप से मानता हू । लेकिन मालिक मजदूर के संबध में इतना अधिक अविश्वास के रहते सामूहिक खेती में व्यक्तिगत मालिको ने जब अपना खेत काटा तो अपने अभिक्रम से उन्हे रोककर खेत काटना और बटवारे की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर बर्वादी तक लोगो पर छोडना और फिर उसे पुन. प्रतिष्ठित करने का काम अपने हाथ में लेना सही था या नही, इस पर मुझको कभी कभी सदेह होता है ।

जिस देश का युवक पुरुषार्थहीन हो जाता है, वह देश उसी तरह से विफल हो जाता है जिस तरह किसी फौज के हथियारो में जग लग जाने से वह असफल होती है । क्योंकि किसी भी समाज की प्रगति के उपादान समाज के तरुण ही होते हैं । यहा आने पर शुरू से ही मेरे मन में युवको की पुरुषार्थहीनता खलती थी । मैं इस तत्व को युवको के तथा प्रौढो के सामने रखता भी था । पिछली गर्मी की छुट्टियों में इस गांव के जो लडके हाईस्कूल में पढते हैं, उन्होने एक दफे हमारे साथ खेतो में जाना भी शुरू किया था । लेकिन उनमें प्राण सचार का कोई लक्षण दिखाई नही दे रहा था । जब मैं गाव के बीच मे रहने लगा तो वे मेरी आख को टालने की भी कोशिश करते थे । लेकिन मैं उनको बुला बुला कर बात करता था और कुछ करने को कहता था । विवेकानद बगाल के नौजवानो को कहा करते थे कि वे अपने घरों के चबूतरे पर बैठ न रहे कुछ करे और कुछ न मिले, तो लाठी लेकर एक दूसरे का सिर फोडें, लेकिन बैठे न रहे । यह बात मैं उनसे कहा करता था और सोचता था कि कौनसा कार्यक्रम उठाया जाय कि जिससे इनमें दिलचस्पी पैदा हो ।

इस प्रसग में नई तालीम के सेवक को शिक्षा के सबध में देश की आम मान्यता को सामने रखना होगा। असल में देश में शिक्षा या ज्ञानार्जन की चाह नही है, यद्यपि स्कूलो की माग दिन ब दिन तेजी से बढ रही है। माग शिक्षा की नही है, बल्कि नौकरी के लिए सर्टिफिकेट प्राप्त करने की है। अत शिक्षा का मतलब नागरिक की सर्वांगीण तालीम से है, यह तो मानते है ही नहीं, बल्कि बच्चो को जीवन-शिक्षण आवश्यक है, यह भी नहीं मानते है। मानते यह है कि बिना पढे, यह सुनकर या दे दिला कर सर्टिफिकेट मिल जाय तो ज्यादा अच्छा है। उत्तर प्रदेश के हाईस्कूल के एक हेडमास्टर से एक बार चर्चा हो रही थी। उन्होंने मुझे एक दिलचस्प बात सुनाई थी। वह सक्षेप में इस प्रकार है...मैं जब प्रधानाध्यापक बना तो मन में सही शिक्षण की उमग थी। साल के अन्त में परीक्षा के बाद नतीजा निकलते समय अभिभावक लोग मुझे घेरे रहते थे, फेल किए बच्चो को ऊपर के दर्जे में बिठाने का आग्रह करते थे। लडको के बारे में जब मैं समझाता था कि बुनियाद कच्ची होने से आगे चलकर फेल हो जायगा तो कुछ पालक तो मान जाते थे, लेकिन लडकियो के बारे में वे तबतक आग्रह करते थे जबतक मैं उन्हें प्रमोशन न देता। मैं जब उनसे पूछता था तो वे कहते थे कि मैट्रिक में फेल कर जाय तो हमें कोई एतराज नही है, क्योंकि हमें लडकियो को नौकरी कराकर पैसा नही खाना है। मेरे पूछने पर कि फिर क्यो इनको ज्ञान न दिलाकर प्रमोशन का आग्रह करते है, तो कुछ लोग साफ कहा थे कि "हमें ज्ञान भी नही दिलाना है। लडकी कुछ पढे या न पढे, आप मैट्रिक तक प्रमोशन देते चले जाइए क्योकि आजकल शादी के बाजार में लडकी मैट्रिक फेल है, यह कहा जाय तो तिलक दहेज में सुविधा हो जाती है।" तो शिक्षा के बारे में दो मान्यताए है। शिक्षा का मतलब केवल बच्चो की पढाई और वह भी ज्ञान के लिये नही, नौकरी या शादी की पात्रता हासिल करने के लिये।

यही कारण है कि बावजूद इसके कि राष्ट्रपति से लेकर सभी नेताओ और जनता के मौजूदा शिक्षा प्रणाली से असतोष रखने पर भी यह प्रणाली चल रही है। और काग्रेस तथा सरकार की मान्यता तथा देश के अनेक निष्ठावान् सेवको द्वारा सातत्य के साथ नई तालीम की सेवा के बावजूद वह देश में यशस्वी नही हो रही है। क्योकि नई तालीम के सदर्भ मे सोचनवाले नेता और कार्यकर्ता के मानस में भी तालीम का अर्थ केवल बच्चों की ही शिक्षा है और बुनियादी शिक्षा से निकलकर अपने बच्चो को जब नौकरी नहीं मिलती है तो उनके मन में असतोष होता है। क्योकि आखिर हम लोग भी इसी समाज के सदस्य हैं। और बुद्धि से चाहे जो विचार करें, सस्कार तो वही है जो आम जनता का है।

अगर हमें इस परिस्थिति से नई तालीम की ओर जाना है तो वही से चलना शुरू करना होगा, जहा देश की जनता बैठी हुई है। यात्रा का प्रारभ कूदकर आगे के कदम से नहीं हो सकता। दिल्ली के निवासी को अगर कलकत्ता जाना होगा तो उसे अपने घर पर से ही चलना होगा और काफी दूर तक दिल्ली की सडको से ही गुजरना पडेगा। इसलिए यद्यपि हम जनाधार पर खेती या अन्य प्रसग से प्रौढ शिक्षा

का कार्यक्रम चलाते रहे, उसे हमने जाहिर में नई तालीम की सज्ञा नहीं दी, हालाकि अपने मानस में उसे भी नई तालीम की प्रक्रिया के रूप में व्यवस्थित करने की निरन्तर कोशिश करते रहे। क्योंकि हम जानते हैं कि यह भी शिक्षण की प्रक्रिया है। यह बात आज किसी के गले उतर नही सकती है। अत: जब कभी हम तालीम के बारे में समझाते थे गाव भर के सारे काम तालीम के माध्यम होने चाहिए, इसी बात को बार बार रखते थे। और समग्र नई तालीम के विचार का प्रचार हमेशा करते रहते हैं। ग्राम भारती की परिकल्पना को समझाते समय वह एक ग्राम विश्वविद्यालय का रूप है यही गाववालो से कहता रहता हू। सबसे पहले उन्हें यह बताता हू कि ग्राम विश्व-विद्यालय से यह मतलब नही है कि हम गाव के अदर कोई विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते है, बल्कि गाव को ही विश्वविद्यालय में परिणत करना चाहते हैं। फिर वर्तमान परिस्थिति के सदर्भ में इस विचार का विवेचन करता हू।

शिक्षा के प्रश्न पर वर्तमान परिस्थिति क्या है? पहली परिस्थिति यह है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति से नेता, शिक्षक, शिक्षार्थी तथा जनता सभी को असतोष है। फिर भी सभी असाहाय बनकर उसी को चला रहे हैं। नाना प्रकार के वे सुधार की कोशिश करते हैं लेकिन यह नहीं समझते है कि केवल सुधार से काम नहीं चलेगा, सदर्भ ही बदलना होगा, अर्थात् सुधार की खोज न कर विकल्प की खोज करनी होगी। दूसरी बात यह है कि आज समस्त जनता की अकाक्षा और जमाने की आवश्यकता दोनों की मांग यह है कि बच्चे, युवक, बूढे सबको ऊची शिक्षा मिले। पुराने जमाने में जब राजतंत्र था तो राजा का लडका ही सत्तारूढ हो सकता था, दूसरा नही। लेकिन आज जब बालिग मताधिकार की बुनियाद पर लोकतंत्र प्रतिष्ठित है तो हरेक अट्ठारह वर्ष के स्त्री-पुरुष के लिए यह सभावना निर्माण हो गई है कि वह भी सत्तारूढ हो सके। इस सभावना ने स्वभावतः हरेक स्त्री-पुरुष के अदर उच्च योग्यता हासिल करने की आकाक्षा पैदा कर दी है। अर्थात् हरेक आदमी को काफी योग्यता हो, यह वह चाहता है। कल्याणकारी राज्य-वाद ने अपने को जन जीवन के अग प्रत्यग में फैलाकर इतना अधिक व्यापक और प्रतिष्ठित कर लिया है कि हरेक मनुष्य उसी में नौकरी करने के लिए व्याकुल है। इससे भी हरेक के दिल में शिक्षा की आकाक्षा पैदा हुई है। लोकतत्र की आवश्यकता यह है कि प्रत्येक मतदाता उम्मीदवारो के घोषणा पत्रो का सम्यक् विश्ले-षण कर राय कायम कर सके। काफी ऊपर तक की शिक्षा द्वारा ही यह सभव हो सकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो कोई धन से मत खरीद कर, कोई लाठी से डराकर या कोई धोखा देकर मत सग्रह कर लोकतत्र को पूर्ण रूप से विफल कर सकता है।

इस प्रकार विश्लेषण कर मैं उन्हें कहता हू कि अगर आज की परिस्थिति की माग यह है कि हरेक आदमी को उच्च शिक्षा मिले तो यह सभव नही है कि वर्तमान स्कूल की प्रथा से जरूरत पूरी हो सके। न तो स्कूलो की इमारत इतनी बडी हो सकती है और न हरेक व्यक्ति सब काम से मुक्त होकर स्कूल के कमरो में जाकर बैठ सकता है। फिर किस तरह कृषि, गोपालन, ग्रामोद्योग तथा समाज के

सभी अन्य कार्यक्रमो से समवाय से शिक्षण का काम चल सकता है, यह बताता हू ।

किसी भी नई चीज के प्रारभ के लिए यह आवश्यक है कि पहले उस चीज का व्यापक जप होना चाहिए । यही कारण है कि विनोबा चरैवेति की बात कहते है । जनमानस रूढि ग्रस्त होता है, ऐसा कहना भी शायद गलत होगा, क्योकि इस देश म मैने देखा है कि जो लोग अपने को पढे लिखे कहते है उनके मानस में रूढि भी नही बल्कि बिल्कुल शून्य ही है । अत रूढिग्रस्त मानस है ऐसा न कहकर वैसा केवल रूढ आचरण है, ऐसा कहना गलत नही होगा । अतएव कोई नई क्रान्ति की बात स्वीकार करने से पहले उनकी कुछ समस्याए है, इसका ही बोध दिलाना और क्रान्ति का सदेश उस समस्या का हल है, ऐसा कहना ही पहला कार्यक्रम हो जाता है । जहा तहा कुछ रचना का प्रयास करना भी जरूरी होगा । लेकिन उस प्रयास का लक्ष्य भी रचना नहीं होगा, बल्कि विचार प्रचार का आनुषगिक कार्यक्रम होगा । इस तरह बच्चो को पढाने के लिए माडल और तस्वीर भी बनाना पडता है । उसमें माडल बनाना कार्यक्रम नहीं होता है बल्कि वह शिक्षा का उपादान होता है । उसी तरह रचनात्मक काम विचार प्रचार का उपादान मात्र है, ऐसा समझना चाहिए ।

वस्तुत सर्वोदय क्राति के विचारानुसार हम जितनी बाते करते है, जनता अपने लिये उसकी आवश्यकता महसूस नही करती है । बल्कि जिन चीजो को हम बदलना चाहते है, वे उनके लिये समस्या है, यह भी नही मानती है । उल्टा यह मानती है कि ये सारी चीजें उसके लिये कल्याणकारी है । हम शासनमुक्त समाज बनाना चाहते है, सैनिक शक्ति के बदले प्रत्यक्ष सहकारी जनशक्ति की स्थापना करना चाहते है, शिक्षित अशिक्षित सारी जनता उस सैनिक शक्ति को समाज के लिये वरदान मानती है । हम केन्द्रीय उद्योगवाद को बदलना चाहते है, उसे भी वह अपने लिये वरदान ही समझती है । वर्तमान काल की जितनी चीजें हम बदलना चाहते है, उनमें से शिक्षा पद्धति ही ऐसी है जिसके लिये आज असतोष है, और जिसको बदलने की बात लोग सुनने के लिये तैयार भी होते है । फिर भी नई तालीम के व्यापक तथा सघन प्रचार के बिना उसे स्वीकार करना तो दूर की बात, उसे समझ भी नही पाते हैं । इसलिये जब गाव के लोग हमारे गुजारे के लिए अन्नदान मागने के लिए निकल रहे थे तो मैने उनसे कहा कि यह सही है कि इस वक्त मेरे नाम से ही अन्नदान मिलेगा । लेकिन आप मांगिए ग्राम भारती के नाम से ।

साथ-साथ यह भी सही है कि यह तालीम सरकार की ओर से चले या कम से कम उसे सरकारी मान्यता प्राप्त हो, ऐसा लोग चाहते है, क्योकि सरकार आज जनमानस में केवल वरदान ही नहीं, बल्कि माई बाप भी है । जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि सर्वोदय विचार के अनुसार जितनी प्रवृत्तिया चल सकती है, उनमें से शिक्षा ही ऐसा प्रसग है जिस पर चालू पद्धति की बदल की माग है । और हमारे लिये भी नई तालीम ही ऐसा कार्यक्रम है जो क्राति के लिये सक्रिय रचनात्मक कदम हो सकता है ।

नीलगिरि पहाड़ों में एक नई तालीम परिवार

मार्जरी साइक्स

नीलगिरि पहाड़ों में कोटगिरि नामक स्थान पर पहला नई तालीम पारिवारिक शिबिर आन्ध्र के अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन के एकदम बाद शुरू हुआ और अप्रैल २३ ता. से मई २० ता. तक चार हफ्ते चला। दूसरा शिबिर २० मई को ही शुरू हुआ और १० जून को उसकी समाप्ति हुई। यह पहले से कुछ कम अर्से का रहा क्योंकि करीब करीब सभी सदस्यों को जून १२ और १५ के बीच अपने अपने विद्यालयों में वापस जाना था।

प्रत्येक शिबिर के लिये आठ विद्यार्थी चुने गये, लेकिन असल में दोनों में संख्या सात ही रही। इस छोटे समाज में जो घनिष्ठता होती है उसको हम सब ने बहुत मूल्यवान् पाया। विद्यार्थियों ने ऐसा महसूस किया कि एक दूसरे के इस निकट संपर्क से उन्हें उतना ही सीखने को मिला जितना कि योजना बद्ध चर्चा वर्गों से।

पहले दल में छ. भाई और दो बहनें थी, दूसरे में चार भाई और चार बहनें—(जिनमें मैं भी शामिल हूं)। पहले शिबिर में बंगला, हिन्दी, मलयालम् और तमिल भाषा भाषी लोग थे, आपसी व्यवहार के लिये अंग्रेजी और हिन्दी का करीब करीब बराबर ही इस्तेमाल होता था। दूसरे शिबिर में सब की सामान्य भाषा हिन्दी ही रही, कुछ तमिल भी। शिबिर के दैनिक जीवन का विवरण प्रत्येक सदस्य बारी बारी से लिखता था। यह हिन्दी, तमिल या अंग्रेजी में लिखा गया जो कि इस काम के लिए हमारी "अधिकृत" भाषाएं थी।

कुछ मित्रों ने यह आशंका प्रकट की थी कि दक्षिण में चलने वाला इस तरह का केन्द्र कहीं एकान्त रूप से दाक्षिणात्य न बने। मुझे यह कहने में बहुत ही खुशी है कि यह आशंका गलत साबित हुई। उल्टा, मेरी अपनी आशा यह थी और वह सफल भी हुई कि एक अखिल भारत दृष्टिकोण वाला केन्द्र, जिसकी भौगोलिक स्थिति दक्षिण में होगी, अपनी ही खास अहमियत रखेगा।

करीब एक हफ्ते तक के प्रयोगों के बाद हमने इस प्रकार के दैनिक कार्यक्रम को सब से उपयुक्त पाया—

५ बजे से ७·३० बजे तक—उठना, सन्ध्या-वन्दन और सवा या डेढ घण्टे का शरीरश्रम। इस समय परिवार के दो सदस्य सफाई, नाश्ता बनाना और दुपहर के भोजन की पूर्व तैयारी भी कर लेते हैं, बाकी लोग खेत में काम करते हैं। इसके बाद हम सब नाश्ता कर लेते हैं।

८-१५—१२-१५ इस समय का पहला घण्टा सारे प्रशिक्षार्थी एकसाथ किसी उत्पादक श्रम

में लगाते हैं। स्कूल में बच्चे और शिक्षक मिलकर इसी प्रकार कैसे काम कर सकते हैं, इसका प्रत्यक्ष पाठ लेना इस वर्ग का विशेष उद्देश्य रहा है। ११ बजे के बाद तात्विक चर्चा का एक वर्ग होता है। बीच के समय दो सदस्य दुपहर का भोजन तैयार करते हैं, बाकी लोग किसी न किसी उत्पादक श्रम में लग जाते हैं।

१–६–४५ इस समय का कार्यक्रम बहुत नियम बद्ध नही रखा था, वह आवश्यकतानुसार बदलता है, मौसिम के अनुसार भी। लेकिन डेढ दो घण्टे के वर्ग तो होते ही है, बाकी समय प्रशिक्षार्थी कताई, स्वाध्याय और बाकी जरूरी काम जैसे शाम का खाना बनाना, बाजार करना इत्यादि–में लगाते थे।

६.४५–९ १५ सन्ध्यावन्दन, शाम का भोजन, स्वाध्याय और सोना।

इस कार्यक्रम के अनुसार हर एक प्रशिक्षार्थी दिन में पाच घण्टे किसी न किसी प्रकार के शारीरिक श्रम म लगाते थे, तीन घण्टे सामूहिक अध्ययन में और दो घण्टे स्वाध्याय में। व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार विनियोग करने के लिये काफी समय खाली रखा गया था।

वर्गो में चर्चा के विषय प्रत्येक दल की अपनी आवश्यकताओ के अनुसार चुने जाते हैं। अशत ये इस तरह के छोटे समाजो में आपसी सबन्ध कायम करने के अनुभवो के आधार पर थे और कुछ वर्ग तो तात्कालिक प्रश्नो व विषयो के बारे में हुए–जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर शतवार्षिकी और एक तूफान (जिसने दो दिन तक हमारे दैनिक कार्यक्रम में बाधा दी)। नई तालीम के बुनियादी सिद्धान्तो व व्यवहार के बारे में विचारो का स्पष्टीकरण तथा स्कूल के प्रत्यक्ष काम के लिये उपयुक्त पद्धतियो को खुद तैयार करने और यथा सभव काम में लाने के लिये विद्यार्थियो को सहायता देना ही वर्गो का मुख्य उद्देश्य था।

कई क्वेकर मित्र, शान्तिवादी तथा अन्य अनुभावी सज्जन शिबिर में पधारे थे। श्री आर्यनायकम् जी ने भी कुछ समय हमारे साथ विताया।

शिविर में हमारा दैनिक खर्च ८४ न पैसे आया–याने महीने में २५ रु। मेरा विश्वास है कि कोशिश करने पर यह कुछ कम किया जा सकता है। भविष्य में शान्ति-सैनिको व सर्वोदय कर्मियो के शिबिरो में इस दिशा में प्रयोग करने की मैं आशा रखती हू।

नीलगिरि पहाडो में मैंने यह छोटा सा घर इस विनम्र आशा से बनाया कि अहिंसा के विषय के अध्ययन और प्रशिक्षण के लिये यह एक उपयुक्त स्थान बने। जो भी यहा आते हैं, वह विश्वशांति के साधना पथ में हमारे सहयात्री के रूप में आएगें। शान्तिसैनिकों और सर्वोदय विचार में रुचि रखनेवाले मित्रों से निवेदन है कि २६ जुलाई से २० अक्टूबर तक की अवधि में इन शिबिरो का उपयोग अपनी सुविधानुसार करें। प्रत्येक शिविर की अवधि सामान्यतः ४ सप्ताह होगी। कब आना चाहते हैं और कितने अर्से के लिये, इसकी सूचना जल्दी देने से सुविधा होगी।

पता–अमेति अहम्,
इल्कूले, कोटगिरि।

मेरठ में नई तालीम समिति की बैठक

हिन्दुस्तानी तालीमी सघ और सर्व सेवा सघ के सगम को करीब २ साल हुए। सगम के बाद नीचे लिखे उद्देश्यो को सामने रखकर विनोबाजी के मार्गदर्शन में नई तालीम का आग का कार्यक्रम बनाया जाय ऐसा तय हुआ था।

१. नई तालीम एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बने।

२. ग्रामदान और ग्राम-स्वाराज्य की भूमिका में नई तालीम का नया विकास हो।

३. केन्द्रीय और राज्य सरकारो द्वारा नई तालीम का जो काम हो रहा है, उसका समुचित मार्गदर्शन।

४. नई तालीम की शिक्षण-पद्धति और शिक्षण-शास्त्र का वैज्ञानिक विकास।

५. सर्वोदय काम करनेवाली सस्थाओ को सब प्रवृत्तियो को नई तालीम का रग हो।

६. देश को समग्र जनता को शाति की स्थापना के लिये और शान्ति कायम रखने के लिए तैयार करना।

७. जीवन में मूलभूत आध्यात्मिक श्रद्धा का विकास करना।

नई तालीम के काम के बारे में विचार करने तथा कार्यक्रम उठाने की जिम्मेदारी सर्व सेवा सघ और प्रबन्ध-समिति के ऊपर है। मार्च, १९६१ में गोलक गज में हुई प्रबन्ध-समिति की बैठक में यह तय हुआ कि इन सप्तविध उद्देश्यो के अनुसार नया कार्यक्रम बनाने तथा विचार विमर्श करने के लिये एक छोटी-सी समिति नियुक्त की जाय। इस समिति के सामने गत साल में सर्व सेवा सघ की तरफ से जितना काम हुआ उस का विवरण रखा गया। मुख्यत: कार्यकर्ताओ और सस्थाओ से सम्पर्क साधने का ही काम हुआ है। सवाल यह था कि नई तालीम का काम करनेवाली सस्थाओ का शैक्षणिक स्तर ऊँचा उठाने के लिये क्या करना चाहिये और हर प्रान्त में काम करनेवाले कार्यकर्ताओ तथा अिस विचार में दिलचस्पी रखनेवाले मित्रो का सगठन कैसे किया जाय, ताकि नई तालीम के कार्य को बल मिले और अनुकूल वातावरण का निर्माण हो। गत साल ६ प्रान्तो में ऐसे सगठन बनाने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा सस्थाओ को दिक्कतो को दूर करने के लिए और सरकार के द्वारा नई तालीम का जो कार्य हो रहा है, उसमें सहकार देने तथा उसे मजबूत बनाने की दृष्टि से नई तालीम सम्पर्क समिति को स्थापना हुई थी। उसकी बैठक बुलाई गई। उत्तर बुनियादी विद्यालय चलानेवाले साथियो के सामने पाठ्यक्रम तथा मान्यता आदि की समस्याए रही है। एक गोष्ठी का आयोजन कर उत्तर बुनियादी तालीम के कार्यक्रम के बाबत पुन. विचार किया गया और कुछ मसविदे तैयार किये गए। सर्व सेवा सघ की तरफ से उत्तर बुनियादी तालीम के लिए एक समिति भी गठित की गई

है जो इन सस्थाओ के काम की समीक्षा और शिक्षाक्रम के वारे में विचारविनिमय करेगी। ग्रामदानी गावो में समग्र नई तालीम की दृष्टि से कुछ काम करने का प्रयास अकाणी में हुआ है। श्री धीरेन्द्र भाई ने बलिया में उनके समग्र नई तालीम के जनाधारित प्रयोग की जानकारी दी।

समिति सिफारिश करती है कि सर्व सेवा सघ नई तालीम काम को नीचे लिखे मुद्दो के मुताबिक सगठित करे –

१ सर्व सेवा सघ की ओर से या उससे सलग्न जो नई तालीम शालाए चलती है, वे सरकार से आर्थिक दृष्टि से स्वतत्र हो। सघ की यह मान्यता है कि तालीम सरकार से मुक्त होकर जनता के हाथो में रहनी चाहिए। शालाए सरकार की मान्यता आज की परिस्थिति में अवश्य स्वीकार करे, बशर्ते कि वह मान्यता अपने पाठ्यक्रम और समीक्षा पद्धति के अनुसार मिलती हो। शालाएँ उत्तर बुनियादी तालीम का अपना ही प्रमाण पत्र दें।

सर्व सेवा सघ की प्रेरणा से समग्र नई तालीम का कुछ प्रयोग आरम्भ हुआ है, और भी होग। ये प्रयोग श्रमाधारित, जनाधारित या सम्मिश्राधारित हो, यही अपेक्षा रहेगी। सघ की ओर स जो नई तालीम के सामूहिक कार्यक्रम बनेगे–जैसे शिबिर, गोष्ठी आदि–उन्हे भी जनाधारित बनाने का प्रयास किया जाय।

२ केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारो द्वारा नई तालीम का जो काम हो रहा है उसमें योग्य सलाह देने तथा स्वतत्र सस्थाए जो काम करती है उनकी कठिनाइयो के निरसन के लिए सर्व सेवा सघ ने नई तालीम सम्पर्क समिति नियुक्त की है। इस समिति को आवश्यक हो तो और समृद्ध बनाया जावे। इसकी साल में २-३ वार बैठके हो तथा सरकार से सम्बन्धित विषयो के बारे में यह समिति पूरा पूरा काम करे। सरकार के प्रयोगो में जहा तक सम्भव हो हमारा पूरा-पूरा सहयोग दिया जाय।

३ आज सर्व सेवा सघ या सर्वोदय कार्यकर्ताओ की देखरेख मे जो नई तालीम शालाए चलती है उनका सम्पर्क बनाये रखने का कार्यक्रम यथाशक्ति चलाया जाय। उत्तर बुनियादी शिक्षा समिति तो बनी ही है, उसके जरिये पाठयक्रम में मार्गदर्शन बराबर मिलता रहे और हर सस्था का काम और समृद्ध बनाने की दृष्टि से आपसी सहकार की योजनाएँ बनाई जावे।

सर्व सेवा सघ की ओर से नई तालीम विचार व पद्धति के अनुसार नया साहित्य निर्माण करने का विशेष प्रयत्न हो। बच्चो तथा शिक्षको के लिये उपयोगी साहित्य आज जो उपलब्ध है उसमें से चुनकर बच्चो की उम्र के मुताबिक तथा शिक्षको के मार्गदर्शन के लिये योग्य पुस्तको की सिफारिश की जाय। ऐसा साहित्य एक स्थान पर एकत्रित किया जाय तथा उसमें दिलचस्पी लेनेवाले दो तीन भाई इसकी छानबीन और अध्ययन करे।

४ हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के दिल्ली प्रस्ताव के अनुसार समग्र नई तालीम के प्रयोग की कोशिश की जानी चाहिए। ऐसे प्रयोग ग्रामदानी या अन्य गावो में हो सकेगे। विशेष करके सघन ग्रामदानी क्षेत्रो–जैसे, कोरापुट, उत्तर लखीमपुर, अकाणी तथा तिरुमगलम् आदि–में जो कार्यकर्त्ता है उनसे सम्बन्ध स्थापित करके चुने हुए क्षेत्र में व्यापक नई तालीम के प्रयोग का प्रयत्न किया जाय।

५. सर्वोदय काम करनेवाली संस्थाओं की सब प्रवृत्तियां नई तालीम के ढग से चलें। इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारे सब कार्यकर्ताओ में नई तालीम की दृष्टि आवे। कार्यकर्ता प्रशिक्षण का एक व्यापक कार्यक्रम हर प्रान्त में हाथ में लिया जाय। यह प्रशिक्षण विद्यालय में होना सम्भव नही है। काम करते-करते छोटे-छोटे शिविर, अध्ययन गोष्ठिया आदि की जाय। इनमें सर्वोदय की वैचारिक भूमिका कार्यकर्ताओ को समझाने का प्रयत्न किया जाय और रचनात्मक कार्यक्रम आज किस दिशा में जा रहा है इसकी जानकारी भी उन्हे मिले। कार्यकर्ताओं को लोक-सम्पर्क और जन-अभिक्रम की कला सीखनी चाहिए ताकि रूढिगत पद्धतियो से हम काम न ले। जो कार्यकर्ता आज कार्यरत हैं—चाहे वे खेती काम में हो, या ग्रेमोद्योगो में हो—वे अपने काम में अधिक निपुणता प्राप्त करे, उनकी कार्यक्षमता बढे तथा वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हो, इसकी कोशिश की जाय।

६ ऐसे आज काफी लोग मिलेगे जो अपना अपना काम करते हुए भी थोड़ा-बहुत समय सर्वोदय काम के लिए दे सकते हैं। ऐसे आंशिक समय देनेवालो का पूरा उपयोग करे। इससे दोहरा लाभ होगा-हमारे काम में नई शक्ति आवेगी तथा नये कार्यकर्ताओ को हमारे कार्यक्रम की जानकारी भी होगी। ऐसे लोगों से सम्पर्क करना, उनका उपयुक्त संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओ से सपर्क कराना तथा उनको प्रत्यक्ष काम करने का मौका दिलाना चाहिए। इन लोगो की गोष्ठी और सम्मेलन आदि भी किये जावे।

७. प्रान्तो में नई तालीम काम करनेवाले कार्यकर्ता और उसमें दिलचस्पी लेनेवाले मित्रों की प्रान्तीय, क्षेत्रीय और अखिल भारतीय गोष्ठियो का आयोजन किया जाय।

समिति प्रबन्ध-समिति से प्रार्थना करती है कि इन कार्यक्रमो के बारे में विचार करके इन्हे कार्यान्वित करने के लिए योग्य कदम उठावे।

संयोजक
राधाकृष्ण

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

कीडो के लगने का समय कौनसा है, उनके प्रतिरोध के लिए कौन दवाई सर्वोत्तम है, उस समय के पहले ही यदि हम उस दवाई का उपयोग करते रहेगे तो बीमारियों को रोक सकेंगे, कीडो का प्रतिरोध कर सकेंगे और फसल का काफी नुकसान बचा सकेंगे। यह सब तभी होगा जब हम खेती का ब्योरेवार हिसाब रखेंगे और उसका अच्छा अभ्यास करेंगे। यह अभ्यास हमारी कृषिमूलक तालीम का एक-मात्र और सही रास्ता बन सकेगा। इसी में से कृषि आधारित नई तालीम निकलेगी ऐसा मुझे लगता है। उसमें से हिसाब रखने की पद्धति सुधरेगी, हम खेती की समस्याओ का सही अवलोकन कर सकेंगे और देश की खेती को आगे ले जाने में मदद कर सकेंगे।

प्रेम भाई

खेती उद्योग का हिसाब

नई तालीम की संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम के तौर पर मुख्यतः कताई, बुनाई और खेती के उद्योगों को प्रयोग में लाया गया है। कताई व बुनाई उद्योगों में वैज्ञानिक ढंग से हिसाब रखने तथा उत्पादन व काम का स्तर जांचने की पद्धतियों का विकास करने का काफी काम हुआ है। इसी प्रकार इन संस्थाओं में रसोई जैसे सामाजिक कार्य के सबन्धित कामों का विवरण व आंकडे रखने की पद्धतियों का भी विकास करने का प्रयत्न हुआ है। इस तरह के वैज्ञानिक ढंग के रेकार्ड रखना और मूल्यांकन अनुसंधान व शोध के काम के लिये अनुपेक्षणीय होने के अलावा वे विद्यार्थियों में निरीक्षण, अध्ययन तथा अपने काम को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से जांच कर सुधार करने की ठीक ठीक आदतें निर्माण करने में भी सहायक होते हैं। कोई भी वैज्ञानिक काम करने के लिये इस तरह का अनुशासन अपरिहार्य है।

हिसाब ठीक-ठीक रखने की आवश्यकता

परन्तु खेती के काम में ठीक विवरण व आंकडे रखने की पद्धतियों का विकास करने की ओर हम बहुत आगे नही बढे हैं। हमारी बुनियादी और उत्तर बुनियादी शालाओ में तथा शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों में मूल उद्योग के तौर पर खेती का अधिकाधिक महत्व रहेगा। इसलिए इस विषय के द्वारा अगर हमें लडके लडकियों को उचित शिक्षा देनी है तो खेती काम का अलग अलग दर्जों के लिये उपयुक्त रूप से विवरण व आंकडे रखने के वैज्ञानिक तरीके निकालने होंगे। इस के अलावा एक-एक प्लाट का फसल वार और फसल का प्रक्रिया वार हिसाब देखने का निरन्तर अभ्यास हो हमें कृषि की उन्नति की कुंजी दे सकेगा। इस ढग से रेकार्ड रखने से समवायपाठ के लिये सही सही मौके हम पा सकते हैं।

निरन्तर अभ्यास द्वारा जापान के किसान ऐसा तय कर पाये हैं कि कौनसी जमीन में क्या बोना चाहिये। बीज कौनसा ? कितना ? पौधो का फासला कितना ? खाद कौनसी, कितनी, कब कैसे दी जाये ? सिंचाई कब-कब और कितनी ? निंदाई कब कैसे ? गुडाई कब कितनी बार, सिंचाई कब कितनी ? इन प्रश्नों का जवाब प्रत्येक इलाके की प्रत्येक जमीन के लिये उनके पास है। कृषि के कुछ नियम बन गये हैं। और वे प्रत्येक फसल की औसत पैदावार को बहुत आगे ले गये हैं। क्या हिन्दुस्तान में कृषिशास्त्र के विद्यार्थी को भी यह शिक्षा आवश्यक नही ?

आज देश के सामने सवाल है, यदि खेत में कुछ खर्च नही करें तो फसल कम पैदा होती हैं, देश इस प्रकार अन्न में स्वावलंबी नही बन सकता। यदि खूब खर्च करते हैं तो भी कभी-कभी फसल घाटे में जाती है और सवाल होता है कि आखिर यह घाटा पूरा कैसे करें ? इन प्रश्नों का जवाब बहुत आसान नही है। इन का जवाब

सिर्फ सोचने से भी नही दिया जा सकता। इसके लिये अेक ही रास्ता है कि खेती का वर्षो तक बिगतवार हिसाब रखें। वर्षो तक यदि खेती का हरेक फसल का हिसाब ब्योरेवार रखेंगे तब हम यह सोच सकेंगे कि किस मद में खर्चा घटाया जा सकता है। किन मदो में खर्च करने से फसल का उत्पादन बढाया जा सकता है? फसल के उत्पादन म और फसल पर होनेवाले खर्च में सतुलन किस प्रकार रखा जा सकता है?

सेवाग्राम में इस साल यूनिट को पद्धति से जब हम लोगो ने खेती शुरू की तो इसी प्रकार के विचार मन में उठ रहे थे। हिसाब किस प्रकार रखा जाय? आपस में काफी विचार विमर्श हुआ और हम लोगों ने धीरे-धीरे हिसाब रखने की पद्धति के लिये कुछ खास मुद्दे तय किये। वे इस प्रकार हैं। हिसाब दो दृष्टियों से रखना तय पाया। १ आडिट की दृष्टि से। हम जितना पैसा आफिस से खेती खर्च के लिए उठायें उसका ब्यारेवार हिसाब आफिस को मिलना चाहिए। हरएक मजदूरी बिल चुकाने का वाउचर, हरएक खरीदी का वाउचर ठीक ढग से मिलना चाहिए। आफिस से जो कुछ उठाया और जो आफिस म जमा किया उसका मेल बैठना चाहिय। इस सब के लिए हमने एक कैशबुक, कैशबुक की खतौनी, एक वाउचर फाईल एक रसीद बही और एक आमद पुस्तिका रखने का तय किया। कैशबुक में जो कुछ हमने किसी अन्य विभाग से प्राप्त किया उसको आफिस के नाम जमा करके फिर उसको किन मदो में खर्च किया उसका खातेपर हिसाब लिखा और उसको खातेवार खतौनी में चढाया। हरेक खर्च का ब्यारा वाउचर फाईल में रखा गया। हरएक बिक्री की रसीद बही में से काटी गयी। इस प्रकार आफिस की दृष्टि से हिसाब पूरा हो गया। आडिटर की दृष्टि से भी यह सन्तोषजनक बन गया।

लेकिन खेत की दृष्टि से, फसलो का हिसाब रखने की दृष्टि से इसमें कुछ नही हुआ। तो दूसरी बात हमलोगो ने तय किया कि हिसाब फसलवार और प्लाटवार भी रखा जाय। प्रत्येक फसल का प्रक्रियावार हिसाब रखें। और हमने इसी प्रकार प्रक्रियावार डायरी भी रखन का तय किया, जिससे आखिर में फसलवार खतौनी करके किस फसल पर किस मद में कितना खर्च हुआ, फसल की आमद कितनी हुई, यह निकल सका। इन सब आकडो ने हमको सोचने के लिए काफी मसाला दिया। डायरी और फसल खतौनी के नमून सलग्न हैं।

फार्म नं. १

फसल या खाता	खतौनी पेज न	कार्य का विवरण	स्थाई कार्यकर्त्ता	रोजदार	बाई	बैल जोडी	अन्य खर्च	कुल खर्च	आमद	विशेष
			घण्टे मजदूरी	घण्टे मजदूरी	घण्टे मजदूरी	घण्टे मजदूरी	विवरण वजन कीमत		विवरण कीमत	

फसलवार हिसाब

फार्म न. १ खेत की फसलदार डायरी है। इसमें प्रत्येक फसल पर एक दिन का काम एक पन्ने में आ गया है। न. २ का फार्म एक ही फसल का पूरे वर्ष का आमद खर्च का विवरण पत्र है, इसमें फसल पर किस प्रक्रिया में कितनी मजदूरी खर्च हुई, मजदूरों के अलावा अन्य खर्च कितना हुआ, यह मिल जाता है। खाद पर कितना खर्च हुआ, सिंचाई के लिये बिजली पर कितनी रकम खर्च हुई, औषधि कितनी इस्तेमाल की, उस पर कितना खर्च हुआ, आदि के साथ में आमद तालिका भी है। फसल की आमद कितनी हुई, इसका विवरण उसमें प्राप्त हो जाता है। फसल पर घाटा मुनाफा कितना हुआ, यह उसमें से निकाला जा सकता है। इस प्रकार का हिसाब विभिन्न यूनिटों का अलग-अलग हर अेक फसल का प्राप्त होगा।

हिसाब से काम में प्रगति

इससे हम यह मालूम कर सकेंगे कि कुल खर्च का कितना प्रतिशत हम जुताई पर खर्च कर रहे है, खेत की अन्य तैयारी में खर्च कर रहे हैं, खाद और खाद मजदूरी में खर्च कर रहे है, बीज और बोआई में कर रहे हैं, सिंचाई बिजली में खर्च कर रहे है, गोडाई सिराई में कर रहे है, औषधि में कर रहे है, कटाई और बिक्री में कर रहे हैं। जब इस प्रकार का विवरण पांच सात यूनिटों का पांच सात वर्ष तक लगातार प्राप्त होगा तो हम यह सोच सकेंगे कि किन मदों में हम खर्च घटा सकते है। मान लीजिये एक आदमी खेत तैयारी में गेहूं के लिये प्रति एकड ५० प्रतिशत खर्च करता है। दूसरा खाद में प्रति एकड ३० प्रतिशत ही औसत खर्च करके उससे अच्छी फसल उत्पन्न करता है तो हम को सोचना पडेगा कि जोताई खर्च घटाया जा सकता है। किस तरह से घटाया जा सकता है, यह सोचना होगा। इसमें से खेती के कुछ साधारण नियम भी बना सकेंगे। एक दिन में अेक बैलजोडी से कितने एकड बखरन होना चाहिए, अेक बैलजोडी को कितना लकडी का हल चलाना चाहिए, अेक बैलजोडी को कितना लोहे का नागर चला सकना चाहिये। इस प्रकार के नियम बनाने पर हम खेती को ऊपरी देख-रेख का खर्च घटा सकेंगे। एक बैलजोडी खेत में गयी तो हांकने वाले की जिम्मेवारी होगी कि अमुक क्षेत्रफल का नागरन या बखरन होना ही चाहिए। इस प्रकार हम विभिन्न मदों में एक फसल पर मजदूरी खर्च कितना होना चाहिए यह निश्चित कर सकेंगे। दूसरी तरफ खाद की बात को ले। खाद किस प्रकार दिया, कितनी बार दिया, किस मात्रा में दिया, कौनसा दिया, कितना खर्च हुआ, इन आकडों का यूनिटवार प्रति वर्ष हर प्रकार की जमीन के लिए अभ्यास करने पर हम यह तय कर सकेंगे कि जिस फसल के लिए अमुक प्रकार की जमीन में अमुक प्रकार का खाद अमुक डोजों में देने से, खाद पर अमुक खर्च करने से इतनी फसल प्राप्त होनी ही चाहिए। इसी प्रकार बीज कौनसा उपयोग करे, कौन जाति का बीज किस जमीन के लिए सर्वोत्तम है, बीज का प्रति एकड इस्तेमाल कितना होना चाहिए यह हम तय कर सकेंगे। इसी प्रकार फसल की बीमारियों की बात है। किस फसल को अक्सर कौन कौन सी बीमारियां लगती हैं, कौन से कीडे लगते हैं, उन बीमारियों का और

(शेषांश पृष्ठ १८ पर)

स्वदेशी समाज

शैलेश कुमार बन्दोपाध्याय

स्वदेशी समाज–याने विकेंद्रित तथा स्वावलंबी इकाइयो के सहकार से गठित, एक जगत् के बोध से प्रेरित राज्यव्यवस्था—इस युग में सभव है या नही, आज के जमाने में इस प्रकार के ध्येय की बात करना प्रवाह के प्रतिकूल जाने की चेष्टा जैसी है या नही, -यह कोई कोरी कवि कल्पना ही है या नही, इत्यादि सभी प्रश्नों को छोडकर अब हम एक दूसरा ही प्रश्न रखना चाहते हैं। वह यह है–आज इस प्रकार के स्वय पूर्ण, स्वय शासित इकाइयों पर आधारित समाज व्यवस्था की जरूरत है या नही ? इस सवाल का जवाब देने के लिये आज के सामाजिक सगठन के स्वरूप की थोडी बहुत विस्तृत चर्चा करने की जरूरत है।

वर्त्तमान सामाजिक स्थिति

कई एक तथ्य देकर इस चर्चा की शुरुआत करे। शुरू में ही यह सूचित करना चाहता हू कि इस विवेचन के तथ्यों के सकलन में अेरिख फ्राम का 'द सेन सोसाइटी" नाम के ग्रथ से मेने काफी सामग्री ली है। पूर्वी देशो में आज भी समाज विज्ञान से सबधित सिलसिलेवार आकडे सकलित करने की परपरा चालू नही हुई। इसलिये पश्चिमी देशो के आकडो का ही इस्तेमाल करना पड रहा है। मॉरिस हल्बूवाचस् अपनी "ल कांसस द सूईसाइड" पुस्तक में कहते है, "१८३६ से १८९० ईसवी तक पसिया में आत्महत्या की सख्या में १४० प्रतिशत तथा फ्रान्स में ३५५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १८३६ से १८४५ तक इगलेंड में प्रति दस लाख अधिवासियो में से ६२ व्यक्ति आत्महत्या करते थे, पर १९०६ से १९१० तक यह संख्या ११० तक पहुच गई। इसी प्रकार से स्वीडन का आकडा ६६ की जगह पर १५० हो गया।" अेरिख फ्राम अपने उपरोक्त ग्रंथ में पश्चिम के देशो की आत्महत्या, नरहत्या तथा शराबखोरी इत्यादि जीवनविमुख वृत्तियों के विस्तृत आकडे पेश करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुचे है, "तो हम यह देख रहे हैं कि यूरोप के सबसे अच्छे लोकशाही, शातिप्रिय तथा समृद्ध देशों में तथा दुनिया के सर्व श्रेष्ठ धनी देश अमेरिका में ही सबसे अधिक मानसिक उथलपुथल का निदर्शन मिलता है।" यह तो हुई साधारण स्थिति। साधारण स्थिति याने जब कि शराब और साकी के अलावा भी सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, बाक्सिंग, फ्री स्टाइल कुश्ती तथा समाचार पत्र व "हरार कमिक्स" के मार्फत पर्याप्त परिमाण में सनसनी उत्पन्न होती है और पलायनवादी मनोवृत्ति के लिये आदर्श विहारभूमि मौजूद है। किसी कारणवश अगर दो चार दिनो के लिये भी यह सभी आधुनिक "मनोरजन व्यवस्था" बद रखी जाय तो क्या होगा ? उस स्थिति में निस्सदेह आत्महत्या तथा नरहत्या की सख्या में और भी वृद्धि होगी और उसके साथ-ही-साथ स्नायु-रोगो का प्रकोप भी बहुत बढ जायगा।

अेरिख फ्राम ने एक बार स्वयं इस दिशा में प्रक प्रयोग किया था। कॉलेजो के हर स्तर के कुछ विद्यार्थियो पर यह प्रयोग चला। उनको कहा गया कि यदि वे तीन दिन के लिये अकेले अेक ऐसे कमरे में रहे, जहा रेडियो या अन्य पलायनवादी साहित्य न हो तो उनकी मानसिक स्थिति क्या होगी? उनको यह यकीन दिलाया गया था कि उनको "सत्" साहित्य, अच्छा भोजन तथा अन्य शारीरिक सुविधायें मिलती रहेगी। तो अेरिक फ्राम का इस प्रकार अनुभव हुआ। "हर टोली क प्राय ९० प्रतिशत विद्यार्थियो के मन में प्रचड आतक से लेकर एक बडे कठिन अनुभव से गुजर रहे हैं, ऐसा बोध हुआ। इस मानसिक विपर्यय को टालने के लिये वे अधिक देर तक सोयेंगे, अधिक-से-अधिक छोटा-मोटा घरेलू काम करते रहेंगे और साथ-ही-साथ इस अवधि की समाप्ति के लिये साग्रह इन्तजार करेंगे। एक आधा ही ऐसा मिला जिसने कहा कि इस प्रकार से अकेले रहने में वह आराम महसूस करेगा तथा समय का सदुपयोग होगा।"

अपनी स्वाभाविक स्थिति का सामना करने में यह जो डर है यह केवल पश्चिम के देशों की ही विशेषता है, ऐसी बात नही। दूसरे महायुद्ध के बाद के भारतवर्ष, और खास करके इसके शहरी हिस्से के लिये यह बात उतनी ही लागू होती है। खैर, आज के समाज की यह आत्महत्याप्रवणता का मूल कारण दारिद्र नही है। क्योंकि मॉरिस हल्ब्वाचस के दिये हुए आकडो के सकलन काल के प्रति दृष्टि-पात करने से यह दिखाई देता है कि जिस समय पश्चिम के देशो में आत्महत्या की सख्या में वृद्धि हुई है ठीक उसी समय उन देशो में भौतिक समृद्धि का भी सूत्रपात हुआ है। यह बात सही है कि व्यक्तिगत दारिद्रय के कारण मनुष्य कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है, पर हल्ब्वाचस् का सिद्धान्त यह है कि दुनिया के गरीब देशो में आत्महत्या की संख्या सब से निम्न है, तथा युरोप की बढती हुई समृद्धि के साथी के तौर पर वर्धित आत्महत्या की सख्या दिखाई देती है। आलबियर कामु की रचना में मानो दरअसल इस युग का आर्तनाद गूज रहा हो। "आज केवल एक ही यथार्थ गभीर दार्शनिक समस्या है और वह है आत्महत्या" (द मैथ ऑफ सिसिफस्)। हमें ख्याल रखना चाहिए कि आज के साहित्य जगत् में पूर्वोक्त मनोभाव के तीन प्रधान प्रतिनिधि—कामु, सार्तर तथा हेमिंगवे—भौतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध युरोप तथा अमेरिका की सतान हैं। वे अेसिया या अफ्रीका के किसी गरीब मुल्क के कलाकार नही हैं।

खैर, इस युग की यह आत्महत्याप्रवणता तथा जीवन विमुख पलायनवादी मनोवृत्ति समाज का मूल रोग नही है। यह सभी मूल रोग के उपसर्ग है। बुराई समाज की बुनियाद में ही छिपी हुई है। इस शताब्दी का मनुष्य अपने सहजीवियो से विछिन्न व अेकाकी मरुभूमि के बालुका कणो के जैसा एक दूसरे के पास रहने पर भी किसी के साथ मानवीय सबध द्वारा सबधित नही है, हम लोगो की सख्या है, पर सहति नही। दर असल आज जिसको हम समाज के नाम से पुकारते हैं बहुत से समाजविज्ञानियो की राय से वह "ह्यूमैन जगल" याने मनुष्यो से बसी एक जगल से ऊचे दर्जे का कुछ नही है।

दो मूल कारण :

धर्म तथा आध्यात्मिकता को यदि व्यक्तिगत विषय मानकर चर्चा के दायरे से बाहर रखा जाय तो समाज की दो बुनियादी बातें बाकी बचती हैं। एक राजनैतिक तथा दूसरी आर्थिक। राजनैतिक अर्थात् जिस पद्धति से समाज शासित या सचालित होता है। समाज के सदस्यो की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये जो उत्पादनव्यवस्था चलती है उसी का नाम है आर्थिक पहलू। इसलिये समाज की मौजूदा बीमारी के कारण हमें राजनैतिक तथा आर्थिक इन दोनो क्षेत्रो में ही खोजने का प्रयत्न करना पडेगा।

राजनैतिक व्यवस्था :

आज की दुनिया में साधारणतया दो प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था देखने को मिलती है। एक प्रकार का नाम है तानाशाही जो कि प्राचीन राजतत्र का उत्तराधिकारी है और दूसरा प्रकार दुनिया में लोकशाही के नाम से मशहूर है। तानाशाही के अनेक स्वरूप होते है, जिनमें नग्न सैनिक शासन से लेकर राजनैतिक स्वेच्छातत्र भी आ जाता है। हुक्म के मुताबिक उठना, बैठना तथा चलना फिरना मनुष्यत्व का परिपन्थि है, तानाशाही में मनुष्य का कोई स्वतत्र सत्ता रह नही जाती। उनमें मनुष्य का स्थान केवल एक यत्र के कलपुर्जे के रूप में ही रह जाता है। कोई खास राजनैतिक मतवाद के रगीन चश्मे के अन्दर से जो लोग दुनिया को नही देखते उन लोगो को शायद यह कहने की जरूरत नही होगी कि जो शासन व्यवस्था व्यक्ति की स्वतत्रता की विरोधी है वह कतई काम्य नही है। अगर यह मान भी लिया जाय कि ऐसी व्यवस्था में सर्व साधारण का अन्न वस्त्र का अभाव दूर होता है फिर भी पिंजरा या पैर की बेडी सोने की होने के बावजूद पिंजरे का तोता तो स्वतत्र नही कहा जा सकेगा।

मौजूदा लोकशाही याने प्रतिनिधित्वमूलक शासन व्यवस्था नग्न स्वेच्छातत्र से अच्छा होने पर भी उसे भी आदर्श स्थिति नही कहा जा सकता। क्योकि इस व्यवस्था में कुछ वर्षों के बाद भिन्न भिन्न राजनैतिक दलो के मुट्ठी भर नेताओं के द्वारा मनोनीत किसी व्यक्ति को वोट देने के सिवाय समाज के राजनैतिक कार्य सचालन के सदर्भ में आम जनता का और किसी भी प्रकार की आजादी या अधिकार नही रह जाता। कुछ इने-गिने राजनैतिक नेताओ के द्वारा मनोनीत कई एक जन प्रतिनिधि देश का काम काज चलाने के विधान की रचना करते हैं। और उसको कार्यान्वित करते हैं एक आधा लाख सरकारी कर्मचारी। ये लोग फिर एक स्वतत्र वर्ग जैसे जन समुद्र के भीतर एक-एक छोटे द्वीप के तौर पर रहते है। राजनैतिक नेता व जन प्रतिनिधि एव सरकारी कर्मचारीगण जनता के अग होने पर भी एक-एक स्वतत्र द्वीप के बासिन्दा हैं।

भारतवर्ष की जनता ने लोकशाही के स्वल्पकालीन अनुभव से ही इस सत्य को देख लिया है। मौजूदा लोकशाही में इसकी कोई गुजाइश नही है कि जनता परस्पर प्रत्यक्ष सहकार के द्वारा समाज के कार्यों का सचालन करेगी और इस प्रकार से परस्पर सबध बधन को जीता जागता बनायेगी। तानाशाही में मनुष्य जिस प्रकार से एक पिण्ड बन जाता है लोकशाही में भी वह उसी प्रकार से केवल मतदाता मात्र रह जाता

है। याने एक ही नैर्व्यक्तिकता का नमूना। इसलिए मौजूदा राजनैतिक व्यवस्थाओं की अपूर्णता इस अपरिहार्य सिद्धान्त की ओर इशारा कर रहा है कि राजनैतिक क्षेत्र में एक ऐसी नवीन प्रथा कायम करनी चाहिए जो हर एक व्यक्ति को उसके पड़ोसियों के साथ मानवीय संबंध में संयुक्त करते हुए एक सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में सुसंगठित रूप से चलने का अवसर प्रदान करे।

आर्थिक व्यवस्था

जरा गौर से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि पूंजीवाद व समाजवाद के दो विभिन्न नामों से आज की दुनिया में जो आर्थिक व्यवस्था चल रही है वह असल में एक ही है। सारी दुनिया में आज औद्योगिक क्रांति का तर्कसंगत परिणाम केन्द्रीकृत उत्पादन व्यवस्था के रूप में बोलबाला है। पिछले दिनों में पूंजीवाद के स्वरूप में परिवर्तन जरूर हुआ है और इसके फलस्वरूप मार्क्स ने "केपिटाल" ग्रंथ में श्रमिकों की आर्थिक दुरवस्था का जो चित्र अंकित किया था, आज की दुनिया में वह शायद ही कहीं दिखाई दे। पर पूंजीवाद का मूल स्वधर्म--मनुष्य से वस्तु को अधिक महत्व देने की वृत्ति--में कोई फर्क नहीं पड़ा है। समाजवाद की विचारधारा अभयवाणी की घोषणा करते हुए आविर्भूत हुई थी कि वह पूंजीवाद की वस्तु को मनुष्य से ऊंचा मानने की मनोवृत्ति को स्थानच्युत करते हुए इनसान को फिर से अपने गौरव के स्थान पर स्थापित करेगा। पर क्या साम्यवाद और क्या लोकतांत्रिक समाजवाद का किसी भी प्रकार का फलित रूप इस आशा की परिपूर्ति में समर्थ नहीं हुआ है। आज की दुनिया में समाजवादी देशों की उपास्य देवता का स्थान पूंजीवादी मुल्कों की भौतिक प्रगति ने ग्रहण किया है। समाजवादी देशों के नेतृत्व अपने-अपने मुल्क में मानवीय मूल्यों के स्थापन के प्रयत्न को मजबूत करने के बजाय बीच बीच में यह नारा लगाते रहते हैं कि और पांच या दस वर्षों के अन्दर वे भौतिक संपदा के उत्पादन के मामले में पूंजीवादी अमेरिका को "कैचअप" करेंगे--याने उनके समकक्ष होंगे।

मनुष्य वस्तुओं का गुलाम

इसके फलस्वरूप क्या तानाशाही और क्या लोकशाही सभी प्रकार की राज्य व्यवस्था तथा पूंजीवाद व समाजवाद दोनों प्रकार की अर्थ-व्यवस्था की छत्रछाया में मनुष्य पहले जैसा मानवीय शक्ति तथा गुणों का सक्रिय धारक तथा वाहक रह नहीं गया है। मनुष्य आज मनुष्येतर स्थूल शक्तियों की करुणा पर निर्भर एक दीन दरिद्र "वस्तु" में परिणत हुआ है। ऐरिख फ्राम के मतानुसार मौजूदा स्थिति इस प्रकार की है, "आधुनिक समाज में जो एक दूसरे से विच्छेद दिखाई देता है वह करीब-करीब संपूर्ण है। मनुष्य का काम, वे चीजें जिन का वह इस्तेमाल करता है, राज्य, उसके पड़ोसी मानव तथा स्वयं उसके साथ संबंध के क्षेत्रों में भी यही विच्छेद का भाव छाया हुआ है। मानव ने आज अपनी ही सृष्ट वस्तुओं की ऐसी एक दुनिया का निर्माण किया है जिसका अस्तित्व पहले था नहीं। मनुष्य ने उत्पादन के प्रयोजन में यंत्र का निर्माण किया तथा उसको चालू रखने के लिये उसने एक जटिल सामाजिक यंत्र का भी निर्माण किया है। और यह सारी सृष्टि उससे परे, उसके

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

चिट्ठी-पत्री

सिद्धराज ढड्ढा एक मित्र को लिखे पत्र में ये विचार व्यक्त करते हैं :

"नई तालीम का मुख्य ध्येय वर्ग निराकरण का है। यानी उसका काम "शिक्षित श्रमिक" तैयार करने का है, न कि बाबू वर्ग को बढाने का। अत: नई तालीम के विद्यालय का वातावरण-खास तौर से उसका आर्थिक मान और रहनसहन का स्तर-आज के औसत गाव के स्तर से बहुत भिन्न नही होना चाहिये। आदर्श तो यही है कि विद्यालय अलग हो ही नही, गाव और गाव का जीवन ही नई तालीम की शाला हो। हर गांव में एक एक नई तालीम का शिक्षक हो, जो गाव का जीवन जीता हुआ वहा के बच्चे-बच्चियो को, जहा जिस परिस्थिति में वे हैं, वही से एक-एक कदम आगे ले जाने का कार्यक्रम बनाये। तभी नई तालीम सार्वत्रिक हो सकती है।

पर मैं यह स्वीकार करता हू कि आज कार्यकर्ताओ के बालकों के शिक्षण का सवाल इससे थोडा भिन्न है। हम अधिकाश कार्यकर्ता भिन्न-भिन्न कामो से शहरो या कस्बों में रहते हैं। हम में से बहुत से प्रवास में ज्यादा रहते हैं और बहुत से कार्यकर्ता ऐसे हैं, जिनको अगीकृत काम के कारण कभी एक जगह और कभी दूसरी जगह अपना "घर" बदलना पडता है। पहली बात तो यह है कि कम-से-कम दस वर्ष की उम्र तक बच्चे-बच्ची अपने परिवार में ही रहने चाहिए। शिक्षण शास्त्र, मानस-शास्त्र और समाज-शास्त्र सब दृष्टियो से यह आवश्यक है। इस उम्र तक, जहा उसका परिवार है, वही—चाहे परिवार में चाहे स्थानीय किसी शाला में बच्चे का शिक्षण चलते रहना चाहिए।

कार्यकर्ताओ के १० वर्ष से ऊपर के बच्चों के लिए सामान्य तौर पर दो विकल्प हो सकते हैं। एक तो यह कि वे अपने परिवार में रहते हुए आज के सामान्य स्कूलों में शिक्षण पाते रहे और चारित्र्य, सद्गुण, सदाचार आदि की कमी घर के वातावरण से पूरी हो सके, ऐसा अगर हम वास्तव में इस मामले में 'सीरियस' हैं तो प्रयत्न करे। दूसरा विकल्प यह कि प्रात में अधिक नही तो कम से कम एक दो जगह ऐसे आवासयुक्त विद्यालय हों, जहा उन्हें नए ढग की तालीम मिल सके। मैं भी मानता हू कि ऐसा विद्यालय हो तो अच्छा है।

अब सवाल यह है कि यह विद्यालय हो कैसे? इनका भी हेतु वर्ग परिवर्तन और वर्गनिराकरण का ही हो सकता है। लेकिन शिक्षको का प्रश्न है। आज एक शिक्षक को-जिसके बाल-बच्चे हैं, गृहस्थी है, उसको डेढ सौ-दो सौ लेना या देना ही पडता है। लेकिन इससे दो प्रतिकूलताएं पैदा होती हैं। एक तो यह कि विद्यालय का बजट बढता है। दूसरी यह कि ऐसे शिक्षको के परिवार के रहन-सहन का असर सारे विद्यालय पर पडता है। और विद्यालय का स्तर गाव के रहन-सहन से दूर चला जाता है।

मुझे एक ही उपाय सूझता है कि हमारे शिक्षक "वानप्रस्थी" हों। यानी शिक्षक ऐसे हों, जिनकी गृहस्थी की आर्थिक जिम्मेदारी कम-से-कम हो। मुझे भरोसा है कि अगर हम ऐसा निश्चय करके चले और खोज करें तो एक विद्यालय के लिये उपरोक्त प्रकार के पाच-सात शिक्षक जरूर मिल सकते हैं, जो नई तालीम के विचार के अनुकूल हो।"

पुस्तक परिचय

गांधीजी और गुरुदेव

लेखक : गुरुदयाल मल्लिक

नवजीवन प्रकाशन मंदिर मूल्य ८० नये पैसे

गांधीजी और गुरुदेव ऐसे "विषय" बन गये है, जिनके बारे में इस युग के सब से नामी लेखकों ने खूब लिखा है, आगे भी लिखते रहेंगे। उनके जीवन, विचार और कार्यो के बारे में कितनी पुस्तकें, कितने लेख कितनी कहानियां और कविताएं छप चुकी हैं, और छप रही हैं। इन दोनों युगपुरुषों के जीवनकार्य का तुलनात्मक अध्ययन भी कई पण्डितों ने और भक्तों ने किया है। श्री गुरुदयाल मल्लिक दोनों के निकटतम शिष्यों में से हैं, जिनकी "अन्तर की और बाहर की दृष्टि को" इन दो गुरुओं ने "जीवन में जो कुछ प्रेय है उसकी ओर से जन्म जन्मान्तर के श्रेय की ओर मोड दिया"। ऐसे लेखक ने "जीवन में विरल अवसरों पर ही अनुभव का विषय बनने वाली भक्ति-भाव पूर्ण अवस्था में लीन हो कर" दोनो के जीवन के विविध पहलुओं पर जो विचार किये उनको प्रस्तुत पुस्तक में शब्दबद्ध किया है। इस काम के लिये मल्लिक जी से ज्यादा योग्य अधिकारी कौन हो सकता है? प्रास्ताविक के बाद सत्य, धर्म, आराधना, व्रत, कला, साहित्य, शिक्षण आदि छब्बीस विभिन्न विषयो पर दोनों गुरुओं की निष्ठा के बारे में विचार करके आखिर उन्होंने प्रेम प्रणाम किया है। कहने की जरूरत नहीं कि पुस्तक अत्यन्त भावपूर्ण है। निःसन्देह इससे पाठकों को प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित हुई है।

प्राप्ति स्वीकार

अखिल भारत सर्व सेवा संघ के प्रकाशन

१. हमारा राष्ट्रीय शिक्षण
लें० चारुचंद्र भण्डारी २.५०

२. शान्ति सेना (अंग्रेजी)
लें० विनोबा १.५०

३. विथ् विनोबा
ले० डोनाल्ड ग्रूम ०.७५

४. लोक राज्य
ले० शंकरराव देव ०.२५

५. सहजीवन और सहअध्ययन
ले० कृष्णराज मेहता ०.८५

१. लेटर्स् टु राजकुमारी अमृत कौर
ले० एम्. के. गांधी २.५०
नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस

२. द टास्क् बिफोर इन्डियन स्टूडेन्ट्स्
ले० एम् के. गांधी ०.७५
नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस

३. गांधी एण्ड टगोर
ले० गुरुदयाल मल्लिक ०.८०
नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस

साथियो,

यह दरखास्त पाच माह की छुट्टी के लिए कर रहा हू । उम्मीद है आप खुशी के साथ मुझे मजूरी देंगे । केवल मजूरी ही नही, बल्कि आपकी शुभकामनाए और आर्शीवाद भी मुझे मिलेगा, ऐसी आशा करता हू । 'नई तालीम" के पाठक होने के नाते आप सब युद्ध विरोधक अन्तर्राष्ट्रीय से भलीभाति परिचित है । पिछले दिसम्बर के महीने में अन्तर्राष्ट्रीय का जो दसवा त्रैवार्षिक सम्मेलन हुआ था, उसकी पूरी जानकारी आपतक पहुचाई गई थी । उसी समय अन्तर्राष्ट्रीय के भारतीय सदस्यो ने गाधीग्राम में एक बैठक में अन्तर्राष्ट्रीय की भारतीय शाखा बनाने का निश्चय किया था । भाई बनवारीलाल चौधरी अभी तक अकेले ही यह काम सम्हालते आये है । अब यह तय किया गया है कि भारत के ८, १० स्थानो में अन्तर्राष्ट्रीय की मण्डलिया बनें और उन मण्डलियो के सयोजक मिलकर काम सम्हाले । भारतीय शाखा का काम मुझे सौंपा गया है और मैं तहेदिल से उम्मीद करता हू कि आप सबका इसमें सक्रिय भाग रहेगा जिससे कि मैं इस जिम्मेदारी को किसी हदतक तो पूरी कर सकू ।

भाई बनवारीलाल अन्तर्राष्ट्रीय की प्रबन्ध समिति के सदस्य है और प्रबन्ध समिति की आगामी जुलाई में श्री दानिलो दोलची के विकास केन्द्र में–जो इतालिया के सिसीलिया द्वीप में है, होने वाली बैठक में उन्होंने मुझे भाग लेने को कहा है । उसकी तैयारी कर रहा हू और जब तक यह अक आप लोगों को मिलेगा तबतक यदि कुछ अकस्मात् रुकावट नहीं आ पडी, तो मैं श्री दोलची के केन्द्र में पहुच जाऊगा । बैठक जुलाई १८ से २१ तक है ।

उसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय से सम्बन्धित एक युवक सम्मेलन में जो हालैण्ड में होगा, भाग लेना है । यह सम्मेलन अगस्त के तीसरे सप्ताह में होगा । जिन साथियो और गुरुजनो से प्रत्यक्ष मिल सका हू, उनसे इजाजत मिली है कि, साथ साथ योरोप के कुछ देशों के शान्तिवादियों, और शिक्षाविदो व शिक्षाकेन्द्रो का परिचय भी करता आऊ और अिसीलिए आपसे ५ माह की छुट्टी की यह दरखास्त की । आशा है आपकी सहायता 'नई तालीम" को नियमित चलाने में पूरी पूरी रहेगी । आप सबको सादर प्रणाम

देवी प्रसाद

मेरा पता यह रहेगा,
C/o Arlo Tatum,
Lansbury House, 88 Park Avenue
Enfield, Middlesex, England

सेवाग्राम बुनियादी शाला में इस साल छठे दर्जे तक के वर्ग रहेंगे और यह गाव में ही चलेगी । ७ वीं ८ वीं की बुनियादी कक्षाएं तथा उत्तर बुनियादी विद्यालय सर्व सेवा सघ के आहाते में होगा । आनन्द की बात है कि इस साल से इस विद्यालय के सचालन की जिम्मेदारी श्री सुमन बग ले रही है । आसपास के गावों के तथा महाराष्ट्र के अन्य जिलों से पचास तक नये विद्यार्थी इस साल प्रवेश करेंगे, ऐसी अपेक्षा है । विद्यालय १ ली जुलाई से खुल गया है । प्रतिमाह भोजन का खर्च २० रु और अन्य खर्च करीब ५ रु होगा ।

चौदहवां अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन

सितम्बर ता. ९-१०-११ (मध्य प्रदेश)

यह सूचित करने में हमें आनन्द होता है कि ता ९ १०-११ सितम्बर को पचमढी, मध्य प्रदेश में अ० भा० नई तालीम कार्यकर्ता सम्मेलन बुलाने का तय किया गया है। इस सम्मेलन में मुख्यत व्यापक राष्ट्रीय शिक्षण, बुनियादी तालीम के सगठन और कार्यक्रम के बारे में विशेष चर्चाए होगी। साथ साथ शिक्षक प्रशिक्षण की समस्याओ के बारे में और उत्तर बुनियादी तालीम के बारे में विशेष विचार होगा। हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के दिल्ली प्रस्ताव के अनुसार कार्यक्रम को कैसे विकसित किया जाय इस के बारे में भी विचार विमर्श करेगे।

ऐसा सोचा गया है कि प्रतिनिधियो की सख्या ५०० से ज्यादा न हो जिससे कि चर्चाओ में ज्यादा सगठन और सतोष मिले। जो अपनी सस्थाओ से प्रतिनिधि बनना चाहते हो, वे पाच रुपये प्रतिनिधि शुल्क भेजकर अपना नाम दर्ज कर सकेगे। आपसे प्रार्थना है कि प्रतिनिधियो के नाम शीघ्र ही दर्ज करा दें। हमेशा के जैसे रेल्वे रियायत मिले, यह कोशिश की जा रही है।

पचमढी मुबई कलकत्ता (अलाहाबाद द्वारा) रेल्वे मार्ग से पिपरिया स्टेशन से ३२ मील दूरी पर है। पिपरिया से पचमढी पहुचने का बस आदि का तो प्रबन्ध होगा ही। सितम्बर माह में पचमढी में मौसम सुहावना रहेगा और न विशेष ठडी या बहुत वर्षा रहेगी, लेकिन मामूली गर्म कपडे, कबल आदि अपने साथ रखना ठीक होगा।

जो प्रदर्शनी में भाग लेना चाहगे उनको उसके बारे में अधिक जानकारी मिल सकेगी। आशा है कि देश के नई तालीम कार्यकर्ता सम्मेलन में भाग लेकर नई तालीम आन्दोलन को आगे बढाने में पूरा योग देंगे।

सर्व सेवा सघ, — राधाकृष्ण
सेवाग्राम (वर्धा) — सहमत्री

(पृष्ठ २५ का शेषाश)

ऊपर विराजित है। वह अपने आप को आज स्रष्टा या केन्द्र बिन्दु के तौर पर नही मानता है, वह अपने हाथो की सृष्टि का गुलाम है। मनुष्य जैसा-जैसा अधिक से अधिक विशाल शक्तियो को इस धरातल में साकार करता है, वैसे वैसे अपने आपको एक मानव के तौर पर शक्तिहीन मानने लगता है। वह अपने द्वारा सृष्ट वस्तुओ की शक्ति का सामना करता है, जिसके साथ उसका कोई सबध तक नही है। मनुष्य का मालिक उसकी खुद की सृष्टि बन गयी है, अपने ऊपर अपना स्वामित्व है ही नही। वह एक सोने का बछडा निर्माण करने के पश्चात् कह रहा है, "यही तुम्हारा भगवान् है जिसने तुमको ईजिप्ट से बाहर लाया है।"

क्रमश.

साथियो,

यह दरखास्त पाच माह की छुट्टी के लिए कर रहा हू । उम्मीद है आप खुशी के साथ मुझे मजूरी देंगे । केवल मजूरी ही नही, बल्कि आपकी शुभकामनाए और आर्शीवाद भी मुझे मिलेगा, अैसी आशा करता हू । 'नई तालीम" के पाठक होने के नाते आप सब युद्ध विरोधक अन्तर्राष्ट्रीय से भलीभाति परिचित हैं । पिछले दिसम्बर के महीने में अन्तर्राष्ट्रीय का जो दसवा त्रैवार्षिक सम्मेलन हुआ था, उसकी पूरी जानकारी आपतक पहुचाई गई थी । उसी समय अन्तर्राष्ट्रीय के भारतीय सदस्यो ने गाधीग्राम में एक बैठक में अन्तर्राष्ट्रीय की भारतीय शाखा बनाने का निश्चय किया था । भाई बनवारीलाल चौधरी अभी तक अकेले ही यह काम सम्हालते आय हैं । अब यह तय किया गया है कि भारत के ८, १० स्थानो में अन्तर्राष्ट्रीय की मण्डलिया बनें और उन मण्डलिया के सयोजक मिलकर काम सम्हाले । भारतीय शाखा का काम मुझे सौंपा गया है और मैं तहेदिल स उम्मीद करता हू कि आप सबका इसमें सक्रिय भाग रहेगा जिससे कि मैं इस जिम्मेदारी को किसी हदतक तो पूरी कर सकू ।

भाई बनवारीलाल अन्तर्राष्ट्रीय की प्रबन्ध समिति के सदस्य हैं और प्रबन्ध समिति की आगामी जुलाई में श्री दानिलो दोलची के विकास केन्द्र में—जो इतालिया के सिसीलिया द्वीप में है, होने वाली बैठक में उन्होंने मुझे भाग लेने को कहा है । उसकी तैयारी कर रहा हू और जब तक यह अक आप लोगो को मिलेगा तबतक यदि कुछ अकस्मात् रुकावट नही आ पडी, तो मैं श्री दोलची के केन्द्र में पहुच जाऊगा । बैठक जुलाई १८ से २१ तक है ।

उसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय से सम्बन्धित एक युवक सम्मेलन में जो हालैण्ड में होगा, भाग लेना है । यह सम्मेलन अगस्त के तीसरे सप्ताह में होगा । जितने साथियो और गुरुजनो से प्रत्यक्ष मिल सका हू, उनसे इजाजत मिली है कि साथ साथ योरोप के कुछ देशों के शान्तिवादियो, और शिक्षाविदो व शिक्षाकेन्द्रो का परिचय भी करता आऊ और अिसीलिए आपसे ५ माह की छुट्टी की यह दरखास्त की । आशा है आपकी सहायता 'नई तालीम" को नियमित चलाने में पूरी पूरी रहेगी । आप सबको सादर प्रणाम

देवी प्रसाद

मेरा पता यह रहेगा,

C/o Arlo Tatum,
Lansbury House, 88 Park Avenue
Enfield, Middlesex, England

सेवाग्राम बुनियादी शाला में इस साल छठे दर्जे तक के वर्ग रहेंगे और यह गांव में ही चलेगी । ७ वीं ८ वीं की बुनियादी कक्षाएं तथा उत्तर बुनियादी विद्यालय सर्व सेवा सघ के आहते में होगा । आनन्द की बात है कि इस साल से इस विद्यालय के सचालन की जिम्मेदारी श्री सुमन बग ले रही है । आसपास के गावों के तथा महाराष्ट्र के अन्य जिलो से पचास तक नये विद्यार्थी इस साल प्रवेश करेंगे, ऐसी अपेक्षा है । विद्यालय १ ली जुलाई से खुल गया है । प्रतिमाह भोजन का खर्च २० रु और अन्य खर्च करीब ५ रु होगा ।

चौदहवां अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन

सितम्बर ता. ९-१०-११ (मध्य प्रदेश)

यह सूचित करने में हमें आनन्द होता है कि ता. ९ १०-११ सितम्बर को पचमढी, मध्य प्रदेश में अ० भा० नई तालीम कार्यकर्ता सम्मेलन बुलाने का तय किया गया है। इस सम्मेलन में मुख्यत व्यापक राष्ट्रीय शिक्षण, बुनियादी तालीम के सगठन और कार्यक्रम के बारे में विशेष चर्चाए होगी। साथ साथ शिक्षक प्रशिक्षण की समस्याओ के बारे में और उत्तर बुनियादी तालीम के बारे में विशेष विचार होगा। हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के दिल्ली प्रस्ताव के अनुसार कार्यक्रम को कैसे विकसित किया जाय इस के बारे में भी विचार विमर्श करगे।

ऐसा सोचा गया है कि प्रतिनिधियो की सख्या ५०० से ज्यादा न हो जिससे कि चर्चाओ में ज्यादा सगठन और सतोष मिलें। जो अपनी सस्थाओ से प्रतिनिधि बनना चाहते हो, वे पाच रुपये प्रतिनिधि शुल्क भेजकर अपना नाम दर्ज कर सकेगे। आपसे प्रार्थना है कि प्रतिनिधियो के नाम शीघ्र ही दर्ज करा दें। हमेशा के जैसे रेल्वे रियायत मिले, यह कोशिश की जा रही है।

पचमढी मुबई कलकत्ता (अलाहाबाद द्वारा) रेल्वे मार्ग से पिपरिया स्टेशन से ३२ मील दूरी पर है। पिपरिया से पचमढी पहुचने का बस आदि का तो प्रबन्ध होगा ही। सितम्बर माह में पचमढी में मौसम सुहावना रहेगा और न विशेष ठडी या बहुत वर्षा रहेगी, लेकिन मामूली गर्म कपडे, कबल आदि अपने साथ रखना ठीक होगा।

जो प्रदर्शनी में भाग लेना चाहेगे उनको उसके बारे में अधिक जानकारी मिल सकेगी। आशा है कि देश के नई तालीम कार्यकर्ता सम्मेलन में भाग लेकर नई तालीम आन्दोलन को आगे बढाने में पूरा योग देंगे।

सर्व सेवा सघ, सेवाग्राम (वर्धा)

राधाकृष्ण
सहमत्री

(पृष्ठ २५ का शेषाश)

ऊपर विराजित है। वह अपने आप को आज स्रष्टा या केन्द्र बिन्दु के तौर पर नही मानता है, वह अपने हाथो की सृष्टि का गुलाम है। मनुष्य जैसा-जैसा अधिक से अधिक विशाल शक्तियां को इस धरातल में साकार करता है, वैसे वैसे अपने आपको एक मानव के तौर पर शक्तिहीन मानने लगता है। वह अपने द्वारा सृष्ट वस्तुओं की शक्ति का सामना करता है, जिसके साथ उसका कोई सबध तक नही है। मनुष्य का मालिक उसकी खुद की सृष्टि बन गयी है, अपने ऊपर अपना स्वामित्व है ही नही। वह एक सोने का बछडा निर्माण करने के पश्चात् कह रहा है, "यही तुम्हारा भगवान् है जिसने तुमको ईजिप्ट से बाहर लाया है।"

क्रमश:

Regd. No. N.-106

इस देश में विद्या और ज्ञान के साथ त्याग जोड़ा गया था और माना गया कि जिन्हें विद्या प्राप्त नहीं है, वे अगर आनन्द-भोग करते हैं, तो उसमें हर्ज नहीं, क्यों कि वे अज्ञान में हैं। पर ज्ञानी ऐसा भोग करें, तो यह ठीक नहीं है। लेकिन आज का विद्वान तो विद्यानन्द नहीं, दूसरे ही आनन्द के भोग में तृप्त होता है। विद्या के साथ ऊंचा जीवनमान-यानी भोग और पैसा-जोड़ा गया। यह विद्या का अपमान है। इसलिए विद्या की नहीं, पैसे की वासना बढ़ी।

–विनोबा

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

अगस्त १९६१ | वर्ष १० : अंक २

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ भा सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

अगस्त १९६१

वर्ष १० अंक २.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और एक प्रति का ३७ न पै है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मंगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें। 'नई तालीम' में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है किन्तु उसे प्रकाशित करते समय 'नई तालीम' का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ३ ★ अगस्त १९६१

विद्या और बाह्य साधन

प्राच्य देश में मूल्य निर्णय का जो आदर्श है, उसके अनुसार हम अमृत (विद्या) के साथ उपकरणों के होड कराने की जरूरत ही नहीं समझते। विद्या-वस्तु अमृत है, बाह्य साधनों के द्वारा उसे नापने की बात हमारे दिमाग में भी नहीं आती। आन्तरिक सत्य की दिशा में ही वह बडा है। वस्तुतः हमारे देश के प्राचीन विद्यालय आज भी मौजूद हैं। वे अत्यन्त सत्य हैं, स्वाभाविक हैं, फिर भी बडे रूप में दिखाई नहीं देते। इस देश की सनातन संस्कृति का मूल स्रोत वहीं है; किन्तु उसके साथ न तो बडी-बडी इमारतें हैं और न अति जटिल व्ययसाध्य व्यवस्था-प्रणाली ही। वहां विद्यादान का चिरन्तन व्रत देश के अन्तरंग में अलिखित शिलालेखों में लिखा हुआ है। विद्यादान की पद्धति, उसकी निःस्वार्थ निष्ठा, उसका सौजन्य, उसकी सरलता, गुरुशिष्यों का अकृत्रिम सहृदयता का संबन्ध सब तरह के आडम्बरों की उपेक्षा करता आया है; क्यों कि सत्य ही उसका परिचय है। प्राच्य देश के कारीगर जिस ढंग से अत्यन्त साधारण हथियार से अति-असाधारण शिल्पद्रव्य बनाया करते है, पाश्चात्य बुद्धि उसकी कल्पना तक नहीं कर सकती। जो निपुणता भीतर की वस्तु है, उसका वाहन प्राण और मन में ही हो सकता है। बाहर का स्थूल उपादान जब अत्यधिक हो जाता है तो असल चीज दब जाती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शिल्पी रवीन्द्रनाथ

नन्दलाल बसु

रवीन्द्रनाथ के चित्रों को समझने की इच्छा रखनेवाले *व्यक्ति को यह स्मरण रखना* निहायत जरूरी है कि इन चित्रों को उन्होंने उस समय बनाना शुरू किया था जब सारे ससार में उनकी कवितायें, नाटक, कहानियां, निबध और अन्यान्य साहित्यिक कृतियां अत्यधिक सम्मान पा चुकी थी, उनके धार्मिक प्रवचन और सामाजिक तथा राजनैतिक लेख ससार की मनीषा को नवीन और मौलिक चिन्तनसामग्री दे चुके थे, उनके गानो के सुर समूचे देश को झकृत कर चुके थे और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी योजनायें ससार के मनीषियो का ध्यान पूर्णरूप से आकृष्ट कर चुकी थी। *सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ये चित्र* उस व्यक्ति के जीवन के सध्याकाल में बनाये गये हैं जिसकी साहित्यिक प्रतिभा अविसवादी थी, जो मौलिक विचारक और मनस्वी थे, जो छद और अलकार का बादशाह और रस का अक्षय निर्झर था।

ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि शिल्पी *या कलाकार शिल्प या कला के द्वारा अपने* आपको छन्दोमय बनाता है (छन्दोमयमात्मान कुरुते)। रवीन्द्रनाथ चित्राकन आरभ करने के पहले सत्तर वर्ष की निरन्तर साधना के द्वारा अपने को अपने युग के किसी भी दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक छन्दोमय बना चुके थे। छन्द काव्य की ही भाति चित्रशिल्प की भी जान है। इसलिए जब रवीन्द्रनाथ ने चित्र बना कर "खेलना" शुरू किया तो इस खेल *के पीछे एक विशाल साधना थी। किन्तु उनकी* साहित्यिक सफलतायें उन्हें केवल छन्दोमय बनाने में ही सहायक रही हो, सो बात नहीं है। काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि में सफलता प्राप्त करने का अर्थ है कि लिखने वाले को इस बात का पूरा ज्ञान है कि कहा कौनसी वस्तु कितनी मात्रा में रखनी चाहिए और कहा किस बात का कितना हिस्सा त्याग देना चाहिए। अर्थात् वह प्रमाण की साधना चित्र-शिल्प का अत्यन्त आवश्यक अग है। प्रमाण के उचित निर्वाह के बिना चित्र अच्छे बन ही नही सकते। साहित्यिक सफलता का एक *तीसरा अर्थ* भी चित्र शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नाटक, उपन्यास और कहानी आदि में लेखक भिन्न भिन्न पात्रो के रूप में स्वय बोलता है। यह तभी हो सकता है जब वह भिन्न प्रकृति के पात्रो के साथ अपने आप को एक या अभिन्न कर सके। जो नाटककार अपने पात्रो में प्रवेश करके उनके साथ एक *नही हो सकता* वह सफल नही हो सकता। रवीन्द्रनाथ इस कला के माने हुए उस्ताद थे। अब यही बात ठीक चित्र-शिल्प में भी लागू होती है। चित्रकार को चित्रणीय वस्तु के साथ एक हो जाना चाहिए। जब तक वह अपने *साथ चित्रणीय वस्तु की एकता नहीं स्थापित* कर लेता तब तक सफल नही हो सकता। सो चित्र बनाना शुरू करने के पहले (१) छन्द

(२) प्रमाण और (३) ऐक्य की साधना में रवीन्द्रनाथ अपने युग के किसी भी दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक सिद्ध हो चुके थे।

हाल ही में रवीन्द्रनाथ की अन्तिम वयस की लिखी हुई लोरियों का संग्रह 'छड़ा' (लोरी) नाम से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने एक कविता दी है जो इन लोरियों का रहस्य समझने में सहायक है। चित्र-शिल्प में रवीन्द्रनाथ के चित्रों का बहुत-कुछ वही स्थान है जो काव्य साहित्य में लोरियों का है। इसलिए लोरियों के विषय में उनकी यह कविता वस्तुतः उनके चित्रों को भी समझने में सहायक है। उनके चित्रों की विवेचना आरंभ करने के पहले यदि पाठक इस कविता का हिन्दी रूपान्तर पढ़ ले तो उन्हें आगे की बातों के समझने में सहायता मिलेगी।

अलस मन के आकाश में
जब प्रदोष उतरता है
कर्म के रथ की घड़घड़ाहट
जिस क्षण रुक जाती है
अस्तव्यस्त छिन्न-चेतन
चिथड़ी बातों के झुंड
न जाने किस स्वप्नराज्य की
सुन लेते हैं पुकार,
दिन के बिलों को छोड़कर
जाने कहां से आ पड़ते हैं।
किसी में होता है भाव का आभास
किसी किसी में अर्थ भी नहीं होता
धुंधले मन की यह रचना है
जो अपने अनियम से ही चलती है
झिल्ली की झनकार पर अकारण ही
उसकी बैठक जम जाती है।
प्रदीप की जरा-सी रोशनी
जब अपनी शिखा कंपाती है
तब अचानक चारों ओर से
शब्दों के फतिंगे उस पर टूट पड़ते हैं।
स्पष्ट आलोक की सृष्टि की ओर
ताक कर देखता हूं
तब मन में सन्देह होता है—
यह अचानक आया हुआ मतवालापन है क्या।
बाहर से देखता हूं
एक नियम-घिरा अर्थ,
भीतर उसका क्या रहस्य है
यह कोई नहीं जानता।
मौज के स्रोत की धारा में
क्या-क्या सब डूब रहे हैं, उतरा रहे हैं,
जवाब नहीं देते, वह क्या हैं,
कहां से आ रहे हैं;
केवल इतना ही जानता हूं कि वे हैं;
बाकी सब कुछ अंधकार है।
एक साथ खेल चल रहा है
दूसरे को बांधने का
बंधन को ही अर्थ कहता हूं।
बंधन छिन्न होने पर वे
केवल शून्य में दिशा भूली हुई।
पागल वस्तुओं के दल (हो रहते हैं)।

इन लोरियों के समान ही रवीन्द्रनाथ के चित्रों के विचित्र उपादान उनके साधना-पूत अचेतन मन के कोने से—जिसे स्वप्नराज्य कहते हैं—आकर एक ऐक्य में बंध जाते हैं और सारे चित्र को एक 'अर्थ' दे जाते हैं। इस बंधन से टूटने पर वे "केवल शून्य में दिशा भूली हुई पागल वस्तुओं के दल" हो जाते हैं। यहां एक और बात स्मरण रखनी चाहिए। चित्र के 'अर्थ' से यहां 'प्रयोजन' या 'माने' का भाव नहीं है। शिल्प-शास्त्र में अर्थ एक विशेष

प्रकार की सृष्टि है। उदाहरणार्थ ताजमहल अनेक पत्थरों का समवाय है। पर शिल्पी ने इस कौशल से इन पत्थरों को सजाया है कि सब मिलकर एक सौंदर्य की सृष्टि हो गये हैं। ताजमहल के कोई माने पूछे तो नहीं बताया जा सकता। पर उसका अर्थ है। यही 'अर्थ' यहा अपेक्षित है। 'माने' या 'प्रयोजन' नहीं। इस प्रबध में 'अर्थ' शब्द के इस विशेष भाव को याद रखना चाहिए।

चित्र रचना का आरभ कविता लिखते समय जब कभी परिवर्तन की आवश्यकता होती थी तभी रवीन्द्रनाथ काट कूट किया करते थे। मार्जित-रुचि होने के कारण वे इस काट कूट को सुदर बनाने का प्रयत्न करते थे। कभी फूल बना दिया, कभी पत्ता। फिर इन फूल पत्तो को मिला कर एक रूप देन की कोशिश की। रवीन्द्रनाथ के चित्र इन्ही काट कूटो और उनको सुदर बनाने के परिणाम हैं। यो बहुत पहले उन्होने बाकायदा चित्र भी बनाए थे, जो सुरक्षित हैं, किन्तु काटाकूटी के परिणाम स्वरूप चित्र रचना की प्रवृत्ति परवर्ति-काल की ही है।

छन्द : जिस प्रकार काव्य में छद (रिदम) होता है उसी प्रकार चित्र में भी। प्रकृति के विभिन्न छन्दो को लेकर ही शिल्पी रूप की व्यजना किया करता है। इन छदो द्वारा ही चित्र प्राणवान् हो उठता है। रूप जैसा भी हो, अगर उस में प्राण धर्म है तो वह कलाकार की साधना की वस्तु है, परन्तु प्राणहीन रूप कलाकार का लक्ष्य नहीं हो सकता। प्राण क्या है? शिल्पी जिस चीज को प्राण कहता है वह केवल लोक में प्रचलित प्राण के सकीर्ण अर्थ में नहीं। मृत्यु में भी एक प्रकार का प्राण होता है। किसी मरी वस्तु को सचमुच मरी हुई हम इसलिए देखते हैं कि उसमें एक मरणधर्मा प्राण होता है। विकासोन्मुख अकुर को चित्रित करने में उत्तम शिल्पी पत्तो में एक विशेष प्रकार के छन्द का आरोप करेगा जब कि मुरझाये हुए पत्तो में दूसरे प्रकार का। यद्यपि एक जीवन की ओर जाने वाला छन्द है और दूसरा मृत्यु की ओर, किन्तु कलाकार के लिये अपने-अपने स्थान पर दोनो आराध्य हैं, दोनो में 'प्राणधर्म' विद्यमान है।

रवीन्द्रनाथ के समस्त चित्रो में प्राण का इतना अधिक प्रकाश है कि इस युग के श्रेष्ठ चित्रकारो के चित्र भी उनकी बगल में रखने पर फीके पड जाते हैं। अगर इन चित्रों में और कोई गुण न भी होता तो भी केवल अपनी अखण्ड प्राणवत्ता के बल पर ही ये चित्र सम्मान पाते। एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि ये सभी चित्र जीवनोन्मुख प्राणवाले हैं, मरणोन्मुख प्राण वाले चित्र उनके हैं ही नहीं। इस प्रकार अखण्ड प्राणवत्ता में जीवनोन्मुखता उनके चित्रों की अपनी विशेषता है। समस्त जीवन-व्यापी छन्द साधना ने रवीन्द्रनाथ को इतना छन्दोमय और प्राणमय बना दिया था कि उनके चित्रों में यह अपने आप–बिना किसी जानबूझकर (कॉनशसनेस) की गई चेष्टा के–सहज ही उद्वेल हो उठा है। भारतीय चित्रकला को रवीन्द्रनाथ की यह अनुपम देन है। यदि आज के भारतीय शिल्पी इस बात को रवीन्द्रनाथ से सीख सके तो निश्चय ही उपकृत होगे।

अरूप की साधना रवीन्द्रनाथ ने प्रकृति का गभीर पर्यवेक्षण किया था। वे प्रत्येक वस्तु के छन्द को–उसके अरूप या भावात्मक धर्म

(एब्सट्रेक्ट) को–परिपूर्ण भाव से स्वायत्त कर चुके थे। चित्र बनाते समय ये भाव सहज ही उनकी लेखनी पर आ जाते थे। चित्रांकन के समय वे तूलिका व्यवहार नहीं करते थे, कलम से ही काम चला लेते थे और रंग भरने के लिये तो उनका चोगानुमा कुर्ता ही काम कर देता था। उसी के एक छोर को रंग में डुबो कर रगड़-रगड़ कर रंग फुटा देते थे। इन अरूप भावों के उपयुक्त रूप में ग्रथन या समोजन में ही उनका कृतित्व है। पुराणों में तिलोत्तमा की कथा दी हुई है। समस्त देवियों के अंगों से तिल-तिल भर सर्वोत्तम सौंदर्य आहरण कर के ही इस परमसुंदरी अप्सरा का निर्माण हुआ था। निर्माता का कौशल उन तिल-तिल भर आहरण किये हुए सौन्दर्य के उपयुक्त रूप से ग्रथन और संयोजन में ही था। अगर किसी अनाड़ी के हाथ वे सौंदर्यकण पड़ते तो वह एक भद्दा सा ढूह बना दे सकता था। चतुर शिल्पी उन्हीं वस्तुओं को उपयुक्त स्थान में उपयुक्त मात्रा में रख कर अनुपम रूप की सृष्टि कर सकता है। रवीन्द्रनाथ के चित्रों में इस मात्रा और प्रमाण की बारीकी का परिचय मिलता है। इसी को शिल्प-शास्त्र में प्रमाण या 'प्रपोर्शन' कहा गया है।

अद्‌भुत-तत्व : प्रमाण लोकाचारमूलक भी होता है और शिल्पशास्त्रीय भी। हाथी, मछली, बकरी, बंदर इनकी लंबाई-चौड़ाई ऊंचाई के प्रमाण के संबंध में साधारणतः सभी लोग जानते हैं। किसी चित्र में इनका यथारूप विनियोग हो तो दर्शक के मन में ठीक-ठीक की जो धारणा होती है वह लोकाचार-मूलक होती है। किन्तु मंडन शिल्प के लिए एक ही गोमूत्रिका बेल में शिल्पियोंने हाथी, मछली, बकरी और बंदर का एक समान ही चित्रण किया है। यह 'प्रमाण' लोकाचार-मूलक तो नहीं है, पर शिल्प-शास्त्र में मान्य है। परन्तु यदि एक हाथी को बहुत छोटा करके अंकित किया जाय और उसके पास ही एक मनुष्य को बहुत बड़ा करके, तो उसका प्रभाव चित्त को झकझोर देनेवाला होगा। यह चित्र 'अद्‌भुत' दीखेगा। शिल्पी दर्शक के चित्त को झकझोर कर नये सिरे से नवीन भाव की उपलब्धि कराने के लिये इस शैली का आश्रय लिया करता है। रवीन्द्रनाथ के चित्रों में यह अद्‌भुत-तत्व स्वतःस्फूर्त होकर प्रकट हुआ है। इनके अद्‌भुत दीखने का एक और भी कारण है। प्रायः हमें सील खाई हुई दीवारों पर अजीब आकार और शक्लें दिखाई देती हैं। टूटी हुई दीवारों पर प्रकृति के हाथ से नाना विचित्र रूप बन जाया करते हैं। भग्न दीवार रेखायें अपने आप में भी एक प्रकार की विद्रूप-क्रूरता लिए रहती है। अकसर इन्हीं अद्‌भुत दृश्यों और रूपों के आधार पर रवीन्द्रनाथ की कल्पना प्रेरित हुआ करती थी और रंगों और रेखाओं के सहारे अद्‌भुत-तत्व को प्रकाशित किया करती थी।

इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के चित्रों के पांच मुख्य गुण हैं १. उद्वेल प्राणवत्ता २. जीवनोन्मुखता, ३. प्रमाण संयोजन ४. अद्‌भुत तत्व और ५. अलंकरण भाव।

भारतीय परम्परा से योग : अपनी कला में रवीन्द्रनाथ भारतीय परंपरा में ही पड़ते हैं। उनके चित्रों में प्रकाशन की अपेक्षा व्यञ्जन की ओर ही अधिक प्रवृत्ति है। यह जानी हुई बात है कि भारतीय कविगण ध्वनि या व्यंजना को काव्य की आत्मा मानते थे। रस सब से उत्तम ध्वनि या "सजेस्यन" है। काव्य में शब्द और

अभिधेय अर्थ गौण है, ध्वनि या व्यग अर्थ ही प्रधान। भारतीय चित्रकार भी भारतीय कवि की भाति रेखा और रग को गौण वस्तु मानता है, उनके द्वारा ध्वनित 'अर्थ' को प्रधान। इधर पश्चिमी देशों में चित्रो का वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। कौन सी वस्तु का कौन सा अग किस प्रमाण में होने पर वस्तु ठीक (वास्तव) दीखेगी इस बात की बहुत सूक्ष्म विवेचना का गई है। इसीलिये वहा के चित्रो में तीन डाइमेंशन स्पष्ट दिखाये जाते हैं। अर्थात् चित्र में लबाई या चौडाई ही नही दिखाई जाती, ऊचाई या मोटाई दिखाने के लिए आलोक और छाया का विधान भी किया जाता है। दूसरी तरफ भारतीय प्राचीन चित्र कागज या दीवार से चिपके हुए (फ्लेट) दिखाये गये हैं। उनमें से अधिक डाईमेशन देखने को नही मिलते। रवीन्द्रनाथ के चित्र भी ऐसे ही है।

मैंने एक बार कहा था कि रवीन्द्रनाथ के चित्र जीवन्त (रियल) तो होते हैं पर वास्तविक (रियलिस्टिक) नही होते। बहुत से पाठको ने इस बात को अच्छी तरह समझाने के लिये मुझसे अनुरोध किया था। पश्चिमी देशो में चित्रणीय वस्तु का इतना सूक्ष्म अध्ययन हुआ कि एक शिल्पि सप्रदाय वस्तु को, वह जैसी है, वैसी ही दिखाने पर अड गया। यही रियलिस्टिक है। किन्तु सिंह अकित करने वाला चित्रकार सिंह के सभी अगो और चेष्टाओ को अकित कर के भी—अर्थात् सिंह की बनावट के प्रति पूर्ण ईमानदार रह कर भी—एक ऐसा सिंह बना दे सकता है जिसमें वह शौर्य पराक्रम और अनुतोभय भाव नही आ सकता जो सिंहत्व की जान है। उसका अकित यह सिंह रियलिस्टिक तो होगा पर रियल नही। दूसरी तरफ एक शिल्पी सिंह के अगोपाग के चित्रण में गलती करके भी यदि ऐसी सिंह मूर्ति बना देता है जिसे देखकर दर्शक के मन में सिंहत्व का भाव जाग उठे, तो वह रियलिस्टिक न हो कर के भी रियल सिंह को अकित कर सका है। रवीद्रनाथ इसी श्रेणी के शिल्पी थे।

औसत शिक्षित व्यक्ति को ऊपर की बात जरा अजीब लगेगी। सिंह की बनावट ठीक होने पर भी क्यो सिंह गलत हो गया और बनावट में गलती होने पर भी क्यो सिंह ठीक हो गया, यह बात ऊपर से पहेली-जैसी लगती है। यही वह अरूप (एब्सट्रेक्ट) धर्म है जो वस्तु के बिना भी सत्य है। रवीन्द्रनाथ के चित्रो में यह धर्म वर्तमान है। वह कभी वस्तु के साथ है और कभी वस्तु से अलग। इसी छन्द को यथार्थता के कारण उनके चित्र रियलिस्टिक न होकर भी रियल हैं।

प्रत्येक चित्र के पाच सयोजक तत्व होते है जो मिलकर उसे समग्रता प्रदान करते हैं। (१) आईडिया या विषय—चित्र का यथार्थ अभिप्राय (२) टेकनीक या रीतिनैपुण्य (३) बैलेंस या भिन्न-भिन्न अगो को यथास्थान नियोजित करना (४) इन सबका पृष्ठतल पर निर्वाह (सर्फेस क्वालिटि या ट्रीटमेंण्ट) और (५) वह अकथनीय सूक्ष्म तत्व—प्राण (लाइफ मूवमेंट) जो चित्र के सभी अगो में समाया हुआ होता है। विश्लेषण के लिये इन सब को हम मन में अलग अलग कल्पना कर सकते हैं, किन्तु चित्र में ये सब अखण्ड रूप से मिले हुए होते हैं।

साधारणत शिल्पि विषय या आईडिया से शुरू करता है और पीछे उसे रूप देकर पस्तुत

करना चाहता है–यही इस देश के और बाहर के शिल्पी प्राय. किया करते है । किन्तु रवीन्द्रनाथ की सृष्टि अक्सर उसी समय शुरु हो जाती है जब कि विषय की ठीक-ठीक चेतन कल्पना भी उनके मन में नही रहती । लगता है जैसे केवल सृष्टि-नैपुण्य या आर्क्टिटेक्चुइल डिजाइन या वर्ण-सन्निवेश ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहा हो, किन्तु जब चित्र बन चुकता है तब मालूम होता है कि उसके सभी सयोजक तत्व एक ही विषय के भीतर सम्पन्न हो सकता है । लोकाचार मूलक सृष्टि-रीति यद्यपि उलट गई होती है फिर भी उनके चित्र एकदम रियल होते हैं । यदि लोकरुचि उन चित्रो की ओर प्रश्नसूचक भाव से ताक उठती है तो उसका कारण यही है कि विषय को ही वह आज तक सबसे अधिक प्राधान्य देती आई है । चित्रकार अपने विषय की जो कल्पना लेकर शुरू करता है उसमें बराबर प्रतिक्षण न जाने कितने सूक्ष्म परिवर्तन घटित होते रहते हैं और अंत में मालूम पडता है कि उसकी मूल कल्पना शिल्प सृष्टि के भीतर अप्रधान हो पडी है, एक नई कल्पना के भीतर सारे सयोजक तत्वो ने अपन को लीन कर दिया । रवीन्द्रनाथ ने चेष्टा द्वारा विषय की अवज्ञा नहीं की । फिर भी उनके चित्रो में विषय उपेक्षित रहा है और इसीसे उनमें एक वैशिष्ट्य आ गया है ।

एक बार बातचीत के सिलसिले में रवीन्द्रनाथ ने मुझसे कहा था कि सत्य की चाहे जो परिभाषा की जाय, उसका एक गुण यह होता है कि वह हमारे ध्यान को बरबस अपनी ओर खीच लेता है । और जितना ही हम उसकी ओर देखते हैं उतना ही अवशभाव से उसकी तरफ आकृष्ट होते जाते हैं । 'अद्‌भुत' चीज भी इसी तरह अपनी ओर हमारा ध्यान खीच लेती हैं किन्तु उसका आकर्षण लगातार देखने से घटता जाता है और सत्य का आकर्षण बढता जाता है । मै मानता हू कि रवीन्द्रनाथ के चित्रो मे एक अद्‌भुत तत्व जरूर है पर उनमें सत्य भी इतना अधिक है कि हम जितने ही निकट से उन्हे देखते हैं वे हमें उतना ही अधिक आकृष्ट करते हैं–"ज्यो ज्यो निहारिये नेरे है नैननि त्यो त्यो खरी निकरै-सी निकाई', (मतिराम) । ये चित्र स्वय ही अपने भाष्य होने लगते हैं ।

प्राचीन भारतीय शिल्पी वस्तुवादी तो नही थे पर प्राणमयी सृष्टि के निर्माता जरूर थे । वे वस्तु के अगोपाग को कभी कभी उतनी सूक्ष्मता के साथ नही उपस्थित कर सके जितना आधुनिक वैज्ञानिक शिल्प कर लेता है । उदाहरण के लिए, मान लिया जाय कि एक मकान के सामने खडे हुए किसी मनुष्य को अंकित करना है । तो वास्तविकता का तकाजा यह है कि मनुष्य इस प्रमाण का बनाया जाय कि उसकी आखें छत का समूचा अंश न देख सके । कभी कभी भारतीय शिल्पियो ने इस नियम की अवहेलना की है, फिर भी उनके चित्र का सौन्दर्य अणुमात्र भी खडित नही हुआ है, क्योकि वे उस चीज को सफलता पूर्वक अंकित करके दिखा सके है जो मनुष्य में मनुष्यता ले आ देती है और मकान में मकान–पन। रवीन्द्रनाथ इसी श्रेणी में पडते हैं ।

रंगो का सामंजस्य : रवीन्द्रनाथ के रंग बहुत ही उज्जवल होते हैं । वे जर्मनी में बनाए हुए पेलिकन के तरल रंगो का व्यवहार करते थे । प्राचीन भारतीय चित्रो में उज्ज्वलता बराबर रही है । भारतवर्ष गर्म देश है ।

यहा की प्रकृति में वह धुन्धटिकाच्छन्न फीकापन नही है जो यूरोप में साधारणत. पाया जाता है। यूरोप में जब रवीन्द्रनाथ के चित्रो की प्रदर्शिनी हुई थी, तो वहा के लोगो को उन चित्रो का उज्जवल गाढा रग बहुत पसद आया था, वे लोग भारतीय चित्रकार से ऐसी ही आशा करते थे। यद्यपि रवीन्द्रनाथ ने उज्ज्वल तीव्र रगो का प्रयोग किया है परन्तु उनकी पहचान इतनी बारीक थी कि इन रगों के सामजस्य में भद्दापन बिल्कुल नही आ पाया है। घटिया दर्जे के पटो में रग की तीव्रता तो होती है परन्तु रगो के मेल का ज्ञान होने के कारण वे बहुत भद्दे दीखते है। रवीन्द्रनाथ गाढे नीले रग को भी उसी को बगल में गाढतर काली रेखा देकर सुरुचिपूर्ण बना देते थे। रगो के सामजस्य के विषय में और भी बहुत-सी बाते मुझे कहनी हैं, पर वे इस छोटे प्रबन्ध में नही अटेंगी।

आदिमगुण होते हुए भी बौद्धिक यद्यपि इन चित्रो में आदिम (प्रिमिटिव) चित्रो के गुण वर्त्तमान हैं, विशेष करके इनके प्राकृत रूप (क्रूड फार्म) और उच्छल वीर्य (विरिलिटी) इन्हें आदिम चित्रो के बहुत निकट ले आते हैं, तथापि ये पूर्ण बौद्धिक हैं। इनके पीछे जो साधना काम करती है वह बहुत ही मार्जित, सुसस्कृत और बुद्धिपूर्वक है। इस प्रकार ये चित्र जहा आदिम चित्रो के प्राकृत भाव और उच्छल वीर्य से परिपूर्ण हैं वहा पहले दर्जे की बौद्धिक साधना से समर्थित हैं। उपर्युक्त दो गणो ने उनकी बौद्धिकता को बहुत ही जीवन्त और वेगवान बना दिया है।

कवि ने अपने ही चित्रो के सम्बन्ध में 'चित्रलिपि' की भूमिका में जो कुछ कहा है उसका भाव इस प्रकार है . लोग अक्सर मुझ से मेरे चित्रो का अर्थ पूछा करते हैं। मैं उसी प्रकार चुप रह जाता हू जिस प्रकार मेरे चित्र चुप रहा करते है क्योकि उनका काम अपने आपको अभिव्यक्त करना है, अर्थ बताना नही। वे जैसा-कुछ दीखते हैं उस दीखने के पीछे कोई ऐसा अर्थ नही होता जो उनसे भिन्न हो और बाहर से आया हो और जिसे चिन्तन द्वारा खोजा या शब्दो द्वारा समझाया जा सके। उनके इस रूप में ही यदि उनका चरम मूल्य निहित रहा तो वे हमारे निकट स्थाई हो जाते हैं, अन्यथा हम उन्हें स्वीकार नही करते और भुला देते हैं, फिर भले ही उनमें कोई वैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन हो या नैतिक औचित्य वर्त्तमान हो।

प्रेम, पवित्रता और धैर्य-ये आत्मिक शिक्षा के आधार स्वरूप हैं। शारीरिक दण्ड द्वारा ऐसी शिक्षा नहीं दी जा सकती, न विद्यार्थी को तर्क-वितर्क के जाल मे पारगत करके ही वह दी जा सकती है। तरह तरह के विधि विधानों से भी वह विकसित नहीं की जा सकती। आत्मिक शिक्षा मे आत्मा की स्वाभाविक निर्भयता और तेजस्विता को ही विशेष महत्व दिया जाता है। ऐसी शिक्षा के द्वारा ही आत्मिक युग का, अहिंसात्मक स्वराज्य का आवाहन हो सकता है।

काका कालेलकर

एक संस्मरण

रामदास गांधी

करीव पचास वर्ष बीत गए हैं जब मैं ने सर्व प्रथम गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शान्तिनिकेतन के द्वारा उनकी विश्वबन्धुत्व की साधना के बारे में स्वर्गस्थ चार्ली एन्ड्रूज से सुना था। फिर भी वह प्रसंग एक चलच्चित्र की भांति मेरी आंखों के समक्ष चल रहा है। ऐसे कोई युगपुरुष और अलौकिक कला के पूजारी जो कि गुरुदेव थे, वैसे दिव्यात्मा के संबन्ध में आने की संभावना मानव के इतिहास में कम ही पायी जाती है।

जिन्होंने दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह आन्दोलन का इतिहास पढा है, उनको याद होगा कि सन् १९१३ में गुरुदेव ने स्वर्गस्य चार्ली एन्ड्रूज और आचार्य डब्ल्यू. पियरसन को शान्तिदूत के नाते सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के अमोघ मन्त्र के साथ बापू के पास भेजा था। वे बापू को यह आश्वासन दिलाना चाहते थे कि दक्षिण आफ्रिका स्थित भारतवासियों के हित के रक्षण का जो प्रयत्न वे सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा कर रहे थे, उसमें शांतिनिकेतन आश्रमवासियों का पूरा साथ है।

आखिर स्मट्स् सरकार और बापू के बीच समाधानकारी समझौता हुआ जिससे दक्षिण आफ्रिका में भारतवासियों की बुनियादी तकलीफ दूर हो सकी। और बापू वां हम तीनों भाई और फिनिक्स् शाला के कुछ विद्यार्थिया को ले कर भारत आने की तैय्यारी करने लगें। लेकिन स्व. गोपाल कृष्ण गोखले की इच्छा थी कि बापू लंदन में उनसे मिलकर बाद में भारत लौटे। इसलिए बापू और बा लंदन गये और हम तीन भाई मगनलाल भाई और फिनिक्स शाला के अन्य विद्यार्थियों के साथ सन् १९१४ के सितंबर माह डरबन् से सीधे भारत आये। बंबई, राजकोट, दिल्ली, और हरिद्वार गुरुकुल कांगडी में कुछ समय बिताकर सन् १९१४ के अन्त में हम शाति निकेतन पहुँचे।

गुरुदेव ने और शान्तिनिकेतन के आचार्यगण तथा देशविदेश से आये हुए विद्यार्थी समाजने जो हमारा हार्दिक स्वागत किया, उससे हमें जो अनुपम आनन्द का अनुभव हुआ उसकी तुलना किससे करूँ? पुराणों में सान्दीपनी ऋषि के आश्रम में कृष्ण, सुदामा और अन्य मुनिशिष्यों को ज्ञानसाधना के साथ कौटुंबिक भावना का सन्तोष प्राप्त होने की झलक मिलती है। वैसा ही सुख और आनन्द शान्तिनिकेतन में रहते हुए हमें प्राप्त हुआ था। मुझे केवल दु:ख इस बात का है कि पर्याप्त काल तक गुरुदव की स्नेहयुक्त छत्रछाया में और शान्तिनिकेतन के उच्च ज्ञान और श्रेष्ठ कला के वातावरण में रह कर विद्याभ्यास की इच्छा पूरी न कर सका।

१९१५ में इंग्लेण्ड से लौटने के बाद बापू और बा शान्तिनिकेतन आये। बडोदादा और गुरुदेव का दिल प्रेम और आनन्द से भरभरासा रहा। बारह वर्ष के अरण्यवास के बाद पिता की प्रतिज्ञा का पूरा पालन करके लौटने पर श्रीरामचन्द्र जी का अयोध्यापुरी में भरतजी से पुर्नमिलन का कविभक्त तुलसीदासजी ने जो वर्णन किया उसी के साथ बां-बापू के शान्तिनिकेतन में आगमन व गुरुदेव के साथ मिलने के भव्य दृश्य की तुलना हो सकती है।

समग्र नई तालीम का एक प्रयोग

धीरेन्द्र मजूमदार

क्रांति के आरोहण में संस्था के स्थान के बारे में मैं काफी अरसे से सोचता और लिखता हू । पवनी के प्रस्ताव के बाद से ही मैं कहता रहा हू कि यद्यपि तन्त्र मुक्ति आवश्यक है फिर भी क्रांति के लिए सस्थाओ का स्थान विशिष्ट है । लेकिन यह विशेषता साधक शक्ति के रूप में है, न कि प्रेरक शक्ति के रूप में । मैं कहता था कि रिक्शा या मोटर बाजार नही करता है, आदमी बाजार करता है । और वह रिक्शा या मोटर का इस्तेमाल करता है । जब मैंने गाव में बैठने के लिए निश्चय किया था तो यही कहा था कि सर्व सेवा सघ की बुनियादी इकाई लोकसेवक है और मै उस इकाई को बनाने जा रहा हू । यह स्पष्ट है कि लोकसेवक क्रान्ति का केन्द्र है, लेकिन क्रांति का कार्यक्रम तथा प्रवृत्ति चलाने में वह देश में मौजूद तमाम साधनो का इस्तेमाल करेगा । वह मुख्यत : जनता में अभिक्रम और नेतृत्व पैदा करके काम करेगा । लेकिन जनता की योग्यता निर्माण के लिए उपलब्ध साधनो का इस्तेमाल भी करेगा । जब हम कहते हैं कि साधना का इस्तेमाल करेगा तो उसकी मर्यादा का भी पूरा ख्याल होना चाहिए । साधन तीन प्रकार के होते हैं धन, जन और कानून । जनक्रान्ति के अधिष्ठान में जब हम साधनो के इस्तेमाल की बात करते हैं तो हमें मुख्यतः मनुष्य की बात सोचनी चाहिए । दूसरे साधन कम-से-कम इस्तेमाल करना चाहिए ताकि जन मानस में यह भान हो कि अपनी शक्ति से ही काम कर रहे हैं । इस बात को ठीक-ठीक समझने के लिए दो बातो का विश्लेषण अच्छी तरह कर लेना चाहिए । यह समझना चाहिए कि सरकारी या गैरसरकारी सस्थाए साधन हैं, आधार नही । आधार लोकसेवक द्वारा प्रेरित जनशक्ति ही है ।

हम गाव में बैठ गये और नई तालीम का काम शुरू कर दिया । लेकिन बच्चे आते ही उनके काम के बारे में सवाल आया । इतने थोडे बच्चो को गाव की खेती में लगाने में वे खो जाएँगे । इसलिए उनके लिए अपनी ही कुटिया के सामने वाली परती जमीन तोडकर छोटा सा प्लाट बना लिया गया और काम शुरू कर दिया गया । धीरे-धीरे कुछ बच्चे बढने लगे और इन दो महीनो में १८ बच्चे ग्राम भारती में शिक्षण के लिए भरती हो गए । कुछ बच्चो को उनके पालक भेज देते हैं और कुछ अपने आप आ जाते हैं, फिर उनके पालको को समझाना पडता है । पालक मना करते हैं तो उसका मतलब यह नही कि वे बच्चे को पढाना नही चाहते, बल्कि वे इसलिए मना करते हैं कि उनके घर की परिस्थिति ऐसी नही है कि जिससे वे बच्चे को पढने के लिए खाली कर

सके। फिर जब हम उन्हे समझाते है कि ग्राम भारती की परिकल्पना यह है कि घर में बच्चो के लिए जो आवश्यक काम होता है वह भी शिक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत है, तो वे मान जाते है।

इसी जगह समग्र नई तालीम का वास्तविक स्वरूप आ जाता है। १९५४ ई० में सणोसरा नई तालीम सम्मेलन के अवसर पर मैंने अपने भाषण में कहा था कि नई तालीम का मतलब है समग्र जीवन की तालीम और सर्वोदय समाज का मतलब है तालीममय समाज। इसके लिये आवश्यक है कि समाज का समस्त कार्यक्रम तालीम का माध्यम हो। इसकी टेकनीक निकालनी होगी। अन्यथा शाला में केवल उद्योग और कृषि दाखिल करने से उद्योग युक्त पुरानी तालीम होगी, नई तालीम नही। मै लोगो से यही कहता हू कि भैस की पीठ का बच्चा उतर कर स्कूल में नही जा सकता है, इसलिए स्कूल को भैस के पीठ पर जाना होगा। गाव के लोग इतने ही में ग्राम भारती की धारणा कर लेते है।

अब हरेक बच्चे की गृह कार्य योजना बनाने की बात हुई। प्रत्येक पालक के साथ चर्चा करके इसका एक विशेष टेकनीक निकालना होगा कि किस तरह घर के काम को शिक्षा का माध्यम बनाया जा सके। आज बच्चे जो घर का काम करते है उनमें कोई सिलसिला नही है। अत्यन्त गरीबी और साधनहीन परिस्थिति में जिन्दगी को कायम रखने के सघर्ष की आवश्यकता में जब जो काम आ जाए, उन्हे करना पडता है। जिन झोपडियो में ये लोग रहते है उनमें दरवाजा नहीं है तो जब मातापिता, बडे भाई बहन सब खेत में काम करने चले जाते है तो बच्चा घर पर ही रहता है ताकि घर की रखवाली हो। वे कभी घास लाने जाते है, कभी भैंस चराने, कभी बच्चा सम्हालता है तो कभी घर का खाना भी बनाता है, ताकि जो लोग खेत में कमाने गए है वे लोग लौटकर बना बनाया खाना खा सके। जिस तरह सस्थागत बुनियादी शाला में शिक्षको का प्रथम काम उद्योग के औजारे, खेती बागवानी, आदि कामो को व्यवस्थित और सयोजित करना होता है, उसी तरह ग्राम भारती में शिक्षक का पहला काम इन तमाम फुटकर कामो का अध्ययन तथा उसका सयोजन करना होगा ताकि काम बेतरतीब ढग से न होकर आयोजित ढग से हो और इस आयोजन में बच्चे के समग्र परिवार की तालीम भी निहित हो।

वस्तुत गृहकार्य समग्र नई तालीम का मूलोद्योग है, ऐसा समझना चाहिए। लेकिन यह वास्तविक ग्राम भारती की परिकल्पना नही है। हम कहते है कि ग्रामभारती ग्राम स्वराज्य की क्राति के आरोहण का सातवा कदम है तो उसका स्वरूप सामुदायिक कार्यक्रम के माध्यम से ही शिक्षा देने का होगा। उस समय गृहकार्य मुख्य कार्यक्रम न होकर एक महत्व का कार्य होगा। लेकिन आज जब समाज में समुदाय की कल्पना करना भी स्वप्नवत् है और स्थिति ग्राम भावना के ही विकास करने की है तो बच्चा जिस परिस्थिति में है उस परिस्थिति से ही काम आरभ करना होगा। इसलिए अभी काफी अरसे तक गृहकार्य को ही मूलोद्योग रखना पडेगा। ताकि धीरे धीरे बच्चो का मानस विकास की ओर मुडने पर उससे ग्राम भावना का अकुर निकल

सके। आज तो ग्रामभावना दूर की बात है, अपने विकास के बारे में भी कोई नही सोचता हैं। अत. ग्राम भारती के नाम से आज हम जो कुछ कर रहे हैं वह पूर्वतैयारी का ही काम है, ऐसा समझना चाहिए।

फिर भी अभी से ही सामुदायिक कार्यक्रम को भी शिक्षा के माध्यम के रूप में सगठित करने की आवश्यकता है। इसलिए हमलोगों ने उसके लिए खेती का एक प्लाट ले लिया जिससे घर की आवश्यक्ता के साथ सामजस्य रखकर कुछ सामुदायिक उत्पादन कार्य की भी शुरुआत हो सके। और धीरे धीरे सामुदायिक कार्यक्रम का समय बढ सके तथा गृहकार्य को सुव्यवस्थित करके उधर से सामूहिक काम के लिए अधिक फुर्सत मिल सके। हमने देखा है कि ऐसा हो सकेगा। इसके लिए दो दिशा से आगे बढना होगा।

१. परिवारो के अव्यवस्थित कार्यक्रम को शृखलाबद्ध करना क्योकि आज परिवारो का कार्यक्रम ऐसा न होने के कारण उनको थोडे काम में ज्यादा समय लग जाता है।

२. सामुदायिक काम में उत्पादनवृद्धि कर कमाई करने का अवसर बढाना। इन दोनो दिशाओ में प्रयास करन के लिए हमने निम्न लिखित कार्यक्रम शुरू किया है।

प्रथम जो कोई बालक ग्राम भारती में शिक्षा पाता है उसके लिए यह छूट है कि जिस दिन वह चाहेगा उस दिन ग्राम भारती के प्लाट पर काम न करके अपने घर काम करे। इसके लिए नियम यह रखा है कि घर में जिस दिन उसकी आवश्यकता हो उस दिन उसका पालक घर के काम की सूचना दे, सूचना मिलने पर शिक्षक पालक से पूछते हैं कि क्या जरूरत है और उसके लिए कितना समय चाहिए। अगर शिक्षक को ऐसा लगे कि जो काम है उसके अनुपात में अधिक समय की माग है तो शिक्षक उनसे चर्चा करके कम समय में काम कैसे हो सकता है, यह बताते हैं। कभी कभी उनके घर जाकर वह काम कम समय में कराकर भी बताते हैं। मैंने ऊपर लिखा है कि बच्चो को काफी दिन तक घर में केवल रखवाली के लिए ही रहना पडता है। यह रखवाली का काम ही एक प्रकार से समय की बर्बादी ही है। बहुत घरों में तो रखवाली भी नही हो पाती है। क्योकि यह बात तो सब को मालूम ही है कि बच्चा कभी स्थिर नही बैठता। वह इधर उधर भाग जाता है जिससे समय की बर्बादी होती है। ऐसे काम के लिए पालक जब बच्चे के लिए इजाजत मागने आते हैं तो हमलोग उन्हें कहने लगे हैं कि इजाजत तब मिलेगी जब दिन भर घर पर करने के लिए कोई काम बताया जाय। ऐसे काम बताने में कई चीजें मालूम भी हो जाती है। एक उदाहरण लिखता हू। एक दिन हमने पालक से पूछा कि उसको क्या काम देंगे तो उन्होने कहा काम तो कुछ नही है। हम ने कहा कि आजकल काम की क्या कमी है, धान सुखाने, कूटने, मलने का कुछ भी काम दे सकते हैं। हमने यह काम इसलिए बताया कि ये लडके मां-बाप के साथ यह सब काम करते हैं। बच्चे के पिता ने कहा कि धान सुखाने देंगे तो बच्चा दूकान पर कुछ धान बेंच आयगा और पैसा रख लेगा। हम ने उनसे कहा कि आप विश्वास करके काम दिजिए, वह चोरी नही करेगा। हमारे कहने पर बालक दिन भर धान का काम किया और चोरी नही की। इस प्रसग

पर तालीम के काम मे दिलचस्पी लेनेवाले सबको सोचने की जरूरत है। आज हम राष्ट्रीय शिक्षा की बात करते हैं। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा किसको देना है, यह हम नही सोचते हैं। उपरोक्त प्रसग स्पष्ट कर देता है कि राष्ट्र है कहा। एक वर्ग दूसरे वर्ग का विश्वास नही करता है, एक परिवार दूसरे परिवार का विश्वास नही करता है, एक भाई दूसरे भाई का विश्वास नही करता है, यहा तक कि पति पत्नी का और पत्नी पति का विश्वास नही करती है। माता पिता बच्चे का विश्वास नहीं करते है।

इनको शिक्षित करने के लिए शिक्षक का स्तर कैसा होना चाहिए, यह बात सबसे पहले सोचनी है। दूसरी बात यह सोचने की जरूरत है कि राष्ट्रीय शिक्षा की केवल योजना ही नही बन सकती है। उसके लिए सकल्प की आवश्यकता है। और परिस्थिति का विश्लेषण कर समस्याओ के समाधान की सूझ चाहिए। फिर नित्य प्रगति के साथ नित्य समस्या के समाधान के समवाय में शिक्षाक्रम के सयोजन की आवश्यकता है। अत इस राष्ट्र में शिक्षक रखकर शिक्षा का कार्यक्रम नही चल सकता है। शिक्षण को साधना के रूप में ही विकसित किया जा सकता है। मेरे इस विचार पर से सहज सवाल उठता होगा कि फिर शिक्षा सर्वमुलभ कैसे होगी? अगर गहराई से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाएगा कि भारत के जनसमाज की मानसिक और चारित्रिक जो परिस्थिति है उसके सदर्भ में तालीम को तुरन्त सर्वसुलभ करने की चेष्टा का मतलब यह है कि चेष्टा करनेवाले अपने समय का अपव्यय कर निराश होने की परिकल्पना कर रहे हैं। आज के समाज में शिक्षा क्रान्ति का प्रकरण है। क्रान्ति के आरोहण के साथ साथ ही शिक्षा की व्यापकता भी बढेगी और आगे चलकर वह सर्वमुलभ भी हो सकेगी। क्योकि क्राति की प्रगति के साथ साथ जब समाज के चरित्र की भी प्रगति होगी तो शिक्षा का क्षेत्र सरल होगा और वह उतनी कठिन साधना का विषय नही रह जायगी। तबतक आज जो शिक्षा के नाम से बालको और तरुणो को कुछ विषयो की जानकारी दी जाती है उसी में कुछ हेर फेर करके आगे बढाने का व्यापक कार्यक्रम ही चल सकेगा।

समवायपद्धति : नई तालीम की विशेषता समवाय पद्धति है। जबतक हम इस समवाय पद्धति का उच्चारण ही करते रहे हैं, इस पर कुछ विशेष प्रगति नही कर सके हैं। कारण यह है कि हमने अपना कार्यक्रम समवाय पद्धति से आरभ किया है। वस्तुत कोई साधक अपनी साधना को सिद्धि पर से शुरू करना चाहेगा तो वह कभी सिद्ध नही होगी। मैंने पहले भी कहा है कि मनुष्य जहा है वही से चलना शुरू करेगा। आज जनता के मानस में शिक्षण का मतलब पढाई है, शिक्षक का भी उस विषय का ज्ञान, जिसके साथ विभिन्न जानकारी का समवाय करना है, अत्यन्त सीमित है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम उत्पादन तथा सामाजिक कार्यक्रम में बच्चो को कुशल तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले बनाए और साथ साथ गणित और भाषा का अच्छा ज्ञान दें। साथ ही शिक्षक कृषि और उद्योग का अपना ज्ञान बढाते हुए बच्चो की वैज्ञानिक दृष्टि को आगे बढाए। इसी प्रक्रिया को विकसित करने में समवायशिक्षणपद्धति भी विकसित होगी। अत मैं मानता हू कि आज

रेडियो, टेलिविजन और सिनेमा इत्यादि यांत्रिक मनोरंजन प्रक्रियाओं के अधिक जनप्रिय होने के पीछे यही कारण है। यही कारण है कि आज के युग में उंचे दर्जे के साहित्य के बजाय रोमांचकारी जासूसी कहानी और यौन साहित्य का आकर्षण अधिक होता है। साहित्य पत्रिका के बदले सिनेमा की अभिनता-अभिनेत्रियों की जीवन कथा तथा तरह तरह की सनसनी फैलाने वाले किस्सा कहानीयों की निम्न रुचि की पत्र पत्रिकाओं की बिक्री अधिक होती है।

तो फिर प्रश्न उठता है कि आज के जमाने में मनुष्य की यह जो दयनीय स्थिति है इसका कारण क्या है ? पहले ही कहा गया है कि पूंजीवाद को सभी बीमारियों का एक मात्र कारण कहकर आत्मप्रसाद लाभ करने का दिन बीत गया है। क्योंकि समाजवादी देशों का मनुष्य भी एक ही प्रकार की निःसगता की बीमारी के कारण तरस रहा है और वहां भी मनुष्य का स्थान वस्तु के नीचे है। इसलिये इतना तो स्पष्ट है कि राज्य व्यवस्था या उत्पादन व्यवस्था के संचालकों को बदलकर मौजूदा स्थिति में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है। क्योंकि बीमारी का जड़ इनसे भी गहरा है। चाहे राजनैतिक व्यवस्था हो या उत्पादन व्यवस्था—हर क्षेत्र में संख्या अगर एक निर्दिष्ट सीमा के बाहर बढ़ जाय तो उसका प्रत्यक्षभाव लुप्त होकर एक परोक्षभाव की शुरुआत होने ही वाला है। और इसके साथ-साथ वास्तविकता का भान भी लुप्त हो जाता है। आज से बहुत दिनों के पहले अरिस्तटू ने इस सत्य को जान लिया था। इसलिये उन्होंने घोषणा की थी की किसी भी नगरराज्य की आबादी यदि एक निर्दिष्ट सीमा के ऊपर बढ़ जाय तो वह नगर वास करने के लायक रह नहीं जाता। आज जो अशारीरिक कर्तृत्व तथा यांत्रिक समरूपता दिखाई देती है इसके मूल में है मौजूदा उत्पादन व्यवस्था। इस उत्पादन व्यवस्था के कारण जल्द से जल्द मनुष्य अपने आप को मशीन के साथ समरस कर लेने के लिये मजबूर होता है। इसके लिये कड़ी शिस्त का पालन करानेवाली सामूहिक आदतों की जरूरत पड़ती है और मनुष्य को एक सामान्य रुचि तथा आनुगत्य को कबूल कर लेना पड़ता है।

यंत्रनिर्भर उत्पादन व्यवस्था के कारण ही यांत्रिक मानव तथा यांत्रिक समाज का निर्माण होता है, यह सत्य ऐरिख फ्राम के निम्नोद्धृत मंतव्य से स्पष्ट होगा। ऐरिख फ्राम का कहना है कि, "उद्योगधंधों के मशीन बनाने के काम में मनुष्य इतना तल्लीन हो गया कि इस प्रकार का यंत्र बनाना ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय हो गया। उसकी जो शक्ति का उपयोग एक समय ईश्वर तथा मुक्ति की खोज में होता था वह केवल प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये तथा नित्य वर्धनशील भौतिक आराम के साधनों को जुटाने में लगने लगी। उत्पादनकार्य को एक उच्चतर जीवन व ध्येय में पहुंचने के साधन के तौर पर इस्तेमाल करने के बजाय मनुष्य उससे सम्मोहित होकर उसको ही जीवन का साध्य बना दिया। इतना ही नहीं, इस लक्ष्य के चरणों में जिंदगी को लुटा दिया। आज के श्रम विभाजन, काम का अधिक-से-अधिक यंत्रीकरण तथा सामाजिक ढांचे के नित्य बढ़ते हुए आकार के कारण मनुष्य इस यंत्र का मालिक होने के बजाय स्वयं उसका एक अंग बन गया। फिर वह अपने आपको

एक वस्तु, एक विनियोग (इन्वेस्टमेन्ट) के तौर पर पाता है। तत्पश्चात् इसमें सफल होना ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय हो गया और इस सफलता का अर्थ है अधिक से अधिक मुनाफे के लिए अपने को बाजार में बेचना। एक व्यक्ति के तौर पर उसकी कीमत उतनी ही होगी जितने पर वह अपन आपको इस बाजार में बेच सके। प्रेम, युक्तिशीलता या कला-सबधी दक्षता इत्यादि मानवीय गुणो को उसकी कीमत आकते समय हिसाब में नही लिया जाता। सुख का अर्थ इतना ही रह गया कि वह नये किस्म का तथा यान्त्रिक दृष्टि से कारगर वस्तुओ का अधिक-से-अधिक कितना उपभोग कर सकता है—वह कितना सगीत, सिनेमा, तरह तरह का मजा, यौनसम्भोग, शराब तथा सिगरेट को गले से उतार सकता है। उसके अपने स्वतत्र अस्तित्व का कोओी भान ही रह नही गया। अपने से जुदा होकर वह अपने हाथो के अुपज का, और अपने द्वारा सृष्ट नेताओ का गुणगान करने लगा, मानो वे अैसी चीजें है जो मनुष्य से श्रेष्ठ है।"

केवल अेरिख फ्राम ही नही और भी बहुतेरे समाजविज्ञानियो की भी यही राय है। बी अेच मेयो अुनके "डेमोक्रसी एन्ड मार्क्सिसम्" नाम के ग्रथ में (पृष्ठ २७) में लिखते है, "सच कहा जाय, तो स्वतत्रता, कला कौशल, मन शाति और मानव मानव में भ्रातृत्व के लिये अुतना खतरा राज्य से नही है, जितना स्वय व्यापक औद्योगीकरण से है। यदि यह ठीक है तो यह नि-सकोच कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण और प्राविधिशास्त्र के सम्यक् व्यवस्थापन के लिये अुपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना हम अब तक नही सीख पाये है। जो भी हो, गाडविन से लेकर लुई मम्फोर्ड तक सभी प्रबुद्ध समाजवादी विचारको का यही मत रहा है।"

वर्तमान सभ्यता तथा अुद्योग धधो की अेक प्रमुख विकास भूमि इग्लैंड की स्थिति का वर्णन करते हुये प्रख्यात अग्रेज पडित अेच. जे. फ्ल्युयर कहते है, "अनियोजित यन्त्रोद्योग की भूल-भुलैया में पैर रखनेवालो का अगुवा ब्रिटेन रहा है। उद्योगीकरण का परिणाम यह हुआ कि जनता अपने घरो से उन्मूलित होकर शहरो की गन्दी बस्तियो में भेड की तरह भरने लगी। और कालक्रम से इस प्रक्रिया के फलस्वरूप विपुल अनार्जित वृद्धि की स्थिति आयी, ताकि उसका उपयोग आगे चलकर औद्योगिक पूजी के रूप मे हो सके।

"पृथक् अणुओ के समूह के जैसे यह जन-समुदाय भी अकस्मात् एकत्रित भीड की भाति व्यक्तिसमूहमात्र रह गया। आश्चर्य की बात यह है कि विचारशील लोग भी प्राय भूल जाते है कि समूह को समाज नही कहा जा सकता और सामाजिक प्राणी के लिए सामाजिक जीवन पहली आवश्यकता है। यह सच है कि सामाजिक भावना मनुष्य की आधार-भूत भावना होने से वह अन्य रूपो में सामने आयी, किन्तु फिर भी स्थानीय सामाजिक जीवन से इसका सबध अत्यन्त परिमित रहा।"

मिसालो की सख्या और न बढाते हुये यह कहा जा सकता है कि मनुष्य को उसके स्वय सृष्ट इस अकेलापन के, निरर्थक जीवनधारण के कब्जे से बचाने के लिये राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में एक ऐसी व्यवस्था कायम करना पडेगा जिसके फलस्वरूप मनुष्य मनुष्य के बीच प्रत्यक्ष सबध फिर से स्थापित किया

जा सके । पश्चिम के आधुनिक समाजविज्ञानी इस वांछित समाज व्यवस्था को 'फेस टू फस' या 'कम्यूनिटेरियन्' समाज का नाम देते हैं । याने ये छोटे छोटे अन्तरंग समाजों के रूप में होगा जहाँ लोग एक दूसरे के सुखदुःख में साथीदार रहे । इस समाज के सदस्यगण यथा-सभव प्रत्यक्ष रूप से अपना सभी काम काज करेगें और राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों का काम तथा सत्ता को एक प्रशासक वर्ग के ऊपर सौपना कम से कम होगा । गाधीजी की विकेंद्रित राजनैतिक व आर्थिकव्यवस्था-याने स्वय सपूर्ण ग्रामीण गणतत्र या रवीन्द्रनाथ की 'स्वदेशी समाज' की कल्पना इस आदर्श का ही द्योतक है, अब यह बात पाठको के सामने स्पष्ट होना चाहिये । इसका अर्थ यह नही है कि भविष्य समाज की रूपरेखासबधी रवीन्द्रनाथ के मन्तव्य का हूबहू अनुकरण करन की बात सुझायी जारही है । उनके विकेंद्रित स्वावलबी समाज की मुख्य योजना या भावना को कायम रखकर उस योजना में युग के प्रयोजन के अनुसार आवश्यक सस्कार किया जा सकता है और करना उचित भी है । कहने का तात्पर्य यह है कि रवीन्द्रनाथ के स्वदेशी समाज का मूल विचार साठ साल के बाद भी आज उतना ही सही है । केवल इतना ही नही, काल के प्रभाव से मौजूदा समाज व्यवस्था की विकृति व उसके कारण मनुष्य की दुर्दशा और भी उत्कट रूप से प्रकट हुई है तथा स्वदेशी समाज के ध्येय की यथार्थता तथा प्रयोजन आज और भी तीव्र रूप से महसूस होता है । इसलिये इस आदर्श का रूपायन सभव है या नही-यह निरर्थक प्रश्न न उठाकर रवीन्द्रनाथ का "स्वदेशी समाज' का आदर्श आपात दृष्टि से कठिन लगने पर भी मानवकल्याणकामियो को इस प्रकार की समाज व्यवस्था को साकार करने के लिये जुट जाना जाहिये ।

(पृष्ठ ४५ का शपाश)

परिस्थिति में हम जहा कही प्रयोग शुरू करेग वहा एसे ही बच्चे आएग, यह निश्चित है । ऐसी हालत में बच्चो के दिमाग को सभालन और सजाने मे ही शिक्षक की सारी शक्ति खर्च हो जाती है । वस्तुत जहा हम एसे ही बच्चे मिलत है वहा हमारी शिक्षण प्रक्रिया का डार्विन साहब के जीवन विकास सिद्धा त के जितने स्टज है, सबको पार करना पडता है और अभी काफी अरसे तक वैसा ही करना पडेगा । दूसरी दिक्कत यह है कि स्वावलबन की प्रक्रिया से अनुभव पाये बिना सास्कृतिक जीवन को पालते हुए स्वावलबन का समोजन कैसे होगा, यह जाना नहीं जा सकता है । इसलिए हमारे पास भी इस सदर्भ मे कोई आकडे नही है । हम आज जो कुछ सोचते हैं और कहते है वह केवल वैचारिक आधार पर ही कहते हैं । इसलिए अब मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि नई तालीम के काम शुरू करने से पहले शिक्षक को स्वावलबन का अभ्यास करना जरूरी है । इसीलिए अब मैं सोच रहा हू कि बच्चो का जो रेसपान्स हुआ है उसको तोड बिना इस दिशा में भी पयोग हो । देख रहा हू यदि नरेन्द्र के बिना 'रूटिन' चल जाय तो उसे इस प्रयोग के लिए खाली कर सकूगा क्या ? अभी दो तीन दिन हुए भाई विजय बहादुर भी विनोबाजी की सलाह से मेरे पास पहुचा है । अब सभव है कि इस दिशा में भी कुछ सक्रिय कदम उठा सकूगा ।

आज के विद्यार्थियों से अपेक्षा

दादा धर्माधिकारी

तुम लोगो के दर्शन करने आया हू। तुम्हारे सामने दिल की बात कह रहा हू। जब उम्र ढलने लगती है, जीवन का झरना कुछ धीरे-धीरे बहने लगता है। उसकी धार बहुत पतली हो जाती है। ऐसे वक्त जहा कही एक बडा जल-प्रपात (बडी धाराओ में पहाड से नीचे गिरते हुए) आदमी देख सके, तबियत खुश हो जाती है। बच्चो में जब जाता हू, जल-प्रपात देखता हू। अपने जीवन में ताजगी आजाती है। मोटर में बैटरी खत्म हो जाती है तो फिर भरते हैं। जिन्दगी की बैटरी कहा भरी जाती है? जहा बच्चे होते हैं, फुर्ती होती है। अपनी शक्ल देखकर तो खुशी छोडनी होगी।

नई दुनिया कौन बनावेगा ?

इमर्सन का नाम तुमने सुना होगा। एक बार एक मूर्तिकार उसकी मूर्ति बना रहा था। मूर्ति बहुत खूब-सूरत थी। इमर्सन से इसके बारे में पूछा, तो उसका उत्तर था, "इस मूर्ति में एक ही बुराई है कि जैसे-जैसे यह मेरी तरह बन रही है, यह भद्दी दिखाई दे रही है।" अब हम ऐसी दुनिया देखना चाहते हैं, जिसमें मेरी तरह के आदमी नही होगें। एक नई दुनिया, जिसमें तुम्हारी तरह के आदमी हो। कोई यह नही चाहता कि मेरी जैसी दुनिया में रहना पडे। नई दुनिया कौन बनावेगा ? तुम बनाओगे। बच्चे घरोंदे बनाते हैं। तुम कैसे घरोंदे बनाओगे ?

कोई उपदेश देने नही आया हू। अपनी माग तुम्हारे चरणो में रखने आया हू। जिस दुनिया में हम रहे, तुम्हे न रहना पडे। एक बात तो हो गई। हम अग्रेजो के राज में पैदा हुए थे। तुम में से बहुत ऐसे होगे, जो अग्रेजो के राज में पैदा नही हुए। मैं जब छोटा था तो मेरा एक जानी दोस्त था। हम दोनो खेलते थे और लड भी लेते थे। कभी आलिगन होता था, कभी कुश्ती होती थी। लेकिन मैं था एक सरकारी अफसर का बेटा और वह था हमारे घर पीसने वाली का लडका। मैं जब स्कूल जाता था, तो देर से बिस्तर से उठता था। मुह धोना होता था। मा कहती थी कपडे बदल लो। मैं कहता था, "इन्ही से जाऊगा" वह कहती थी, "रात के कपडो में स्कूल जाना खान्दान के लिए शोभा नही देता"। दूध और लड्डू लेकर मा खडी रहती थी। हम रूठकर चले जाते उस लडके को बुलाने जाता था, तो क्या देखता हू? वह मा का आचल पकड कर रोते-रोते कहता नाश्ते के लिए बासी रोटी तो दो। मा कहती, "मैंने कल रात बचाकर रखी

(इण्टर कालेज, कौसानी (अल्मोडा) के विद्यार्थियो के बीच १० ६-६१ को दिया गया भाषण)

थी, पर वह तो तू उसी समय खा गया था।" उसके पास एक ही कुर्ता था। बारिश के दिन सूखने की गुंजायश नहीं रहती। पहनने को कुछ नहीं होता तो स्कूल ही नहीं जाता था। मेरा दोस्त था, दिल में एक टूक उठती थी। क्या कभी वह दिन भी आवेगा, जब सबके पास इतने कपडे होंगे, जितने मेरे पास हैं। क्या इन्हे भी कलेवा मिलेगा? अभी वह दिन नहीं आया है। तुम यह सकल्प करो कि वह दिन आवेगा, जब सबके पास कपडे होंगे। सबके पास कलेवा होगा सबके पास छाते होंगे। ऐसे मकान होंगे, जो उनको गर्मी-सर्दी और बारिश में सरक्षण दे सके। इसकी कोशिश हम करेंगे। हो सकता है कि इस कोशिश में हम काम आ जावे। तुम्हारे जमाने में यह नहीं होना चाहिये। सकल्प करो कि हमारी दुनिया में जो बच्चा पैदा होगा वह एक मालिक का होगा, दूसरा मजदूर का होगा ऐसा नहीं होगा। अगर मेहनत करेंगे तो सब करेंगे, परिश्रमी होंगे तो सब होंगे। इस तरहकी दुनिया आप बनावेंगे। मेरे जमाने के आदमियो में ताकत भी नहीं रह गई, नीयत भी नहीं रह गई।

भ्रष्टाचार का विषचक्र

एक बार मुझे एक विश्वविद्यालय में बुलाया गया। पोस्ट ग्रेजुएट (स्नातकोत्तर) कक्षा के लडको की यूनियन के चेयरमेन ने आक्षेप करना शुरू कर दिया कि आपके जमाने के सब लोग भ्रष्ट है। मैने कहा कि मैं मान गया। फिर वह नीचे बैठ गया। मैंने कहा नीचे क्यो बैठ गये? कुछ और कहो। उसका उत्तर था, "मुझे जो कहना था, आपने मान लिया। अब कहने को कुछ शेष नहीं"।

मैंने कहा "हम सब गधे हैं, पर आप हमारे बेटे हैं। हम मक्कार है, झूठे हैं। इतना ही चाहते है कि तुम हमारी शक्ल के न बनो। क्या भगवान ने तुम्हे कारबन-पेपर रखकर बनाया?"

हमने कोशिश की कि हम अपने पिताजी की तरह नहीं बनेंगे। वे सरकारी नौकर थे, हम नहीं बने। अगर सब भ्रष्ट है, तो तुम्हारा सकल्प क्या होगा? यही कि हम भ्रष्ट नहीं होंगे। आज उल्टी बात हो रही है। मेरे एक मित्र का लडका था। उसने बी० ए० परीक्षा फर्स्ट डिविजन में पास की थी और उस समय एम् ए की परीक्षा दे चुका था। कालेज की छुट्टियां थी, पर वह घर नहीं आया। मै उस मित्र के साथ टिका हुआ था। उन्होने छुट्टियो में लडके को घर बुलाया। उसने लिखा, "परीक्षा तो हो गई, परीक्षक का पता लगा रहा हू। सब पर्चों में तो फर्स्ट क्लास के मार्क हैं, पर एक पर्चा कुछ खराब हो गया है। परीक्षक का पता लग जावेगा तो कोशिश करूगा। पहले उसे लालच दिखाऊगा। अगर नहीं मानेगा तो डडा दिखाऊगा।" यह वह विद्यार्थी कहता है, जो फर्स्ट आने वाला था।

भ्रष्टाचार के दुनिया में दो ही साधन हैं। एक है पैसा, अेक है डडा। तुम में से कितने लडको ने यह छोडा है। कोई मिनिस्टर चोरी करता है। कोई कलेक्टर दौरे का भत्ता ज्यादा लेता है। परन्तु मै पूछता हू तुम में से कितने लडको ने नकल करना छोडा है? दुनिया भर के लडके नहीं छोडेंगे। ५-१० भी छोडेंगे तो वे गाधी-जवाहर बन सकते हैं। ऐसे तुम में से निकलने चाहिये।

समवेदना का स्पर्श हो

जहा मै पढता था, वहा मैदान में इमली के पेड लगे हुअे थे। जब तक पेड में इमली

लगी हुई रहती है, लडको के सामने चुनौती है। हम पत्थर मार कर इमली झाडते थे। पीछे के बेंच पर बैठकर एक-एक इमली दूसरो को दिखाकर खाते थे। होता यह था कि इमली मैं खाता था, पानी दूसरे के मुह में आता था। मैं सोचता था कि इसके मुह में पानी क्यो आता है? इसका विज्ञान के पास कोई उत्तर नही है। इसको स्पूतनिक वाले से पूछिए — एक को चोट लगने से दूसरे को ठेस क्यो पहुचती है। एक आदमी रास्ते में गिर पडता है, तुम हाय! कहते हो। एकदम तुम्हारी आखो में पानी आ जाता है। दूसरे के दु ख में हम दु खी हो उठते हैं। कल्पना मात्र से ही सिहर उठते हैं। तुम नाटक देखते हो। एक आदमी सिनेमा में मरता है, तुम्हारी आखो में आसू आ जाते हैं। इसके लिए कोई कुरान, वेद, पुराण या गीता की जरूरत नही। यह मनुष्य की तबियत है, स्वभाव है। मनुष्य की तबियत को हम सब तरफ फैलाना चाहते हैं। छोटे बडे, राजा-रक सब में इसको हम फैला देना चाहते हैं। जब तक कुछ लोग भूखे हैं, भोजन में हमें सुख नही होना चाहिये। यह क्रान्तिकारी की तबियत है। क्रान्ति अब कौन करेगा? जिससे दु ख देखा नही जा सकता। मैं चाहता हू, तुम इस तबियत के बनो।

तुमने कहानी सुनी होगी। समुद्र के किनारे एक मल्लाह की बेटी और एक साहूकार की बेटी शख चुन रही थी। समुद्र में तूफान उमड रहा था। मल्लाह की बेटी किश्ती पर जान के लिए मचलने लगी। साहूकार की बेटी बोली, "तू उस किश्ती में जाना चाहती है, जो गेंद की तरह उछल रही है। क्या तुझे मरने का डर नही है"? मल्लाह की बेटी बोली, "क्या लोग समुद्र में ही मरते हैं? चारपाई पर तो उससे भी अधिक मरते हैं"। मृत्यु की सख्या जहा पर ज्यादा हो, वह ज्यादा भयकर है। तरूण वह है जो एवरेस्ट शिखर से खटिया को भयकर मानता है। बूढा वह है जो एवरेस्ट से बचकर चारपाई पर आता है। तुममे खतरे का मुकाबला करने की शक्ति हो।

बड़े देश के लिये बड़ा दिल

तुम तो यहा पर ऐसी पोशाक पहिने हुए हो, जो यहा की जलवायु के कुछ कुछ अनुकूल है। परन्तु अल्मोडा और नैनीताल में जाओ। नैनीताल और त्रिवेन्द्रम के कालेज के लडको की पोशाक एक ही जैसी है। हमारी पोशाके इस देश में इस्परेंटो (Esperanto) पोशाके हैं। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सब की पोशाके एक ही जैसी हैं। फर्क तब आता है, जब झगडा होता है। यह जिला उत्तर प्रदेश में हो या बिहार में हो। इस झगडे को लेकर वे अलग-अलग हो जाते हैं। विज्ञान ने हमें मिला लिया है, लेकिन दिल मिले हुए नही हैं। आलिंगन नही होता, कुश्ती लडने लगते हैं। भगवान् ने देश तो हमें इतना बडा दिया है, लेकिन दिल छोटा है। एक एक आदमी अपने प्रदेश के नाप का होता है। क्या तुम महाराष्ट्र के किसी नये आदमी को जानते हो? वे ही पुराने नाम आवेगे। आज इस देश में छोटी तबियत के लोग हैं, इसलिये बौने आदमी पैदा हो रहे हैं। सारे भारतवर्ष के नाप के आदमी पैदा नही हो रहे हैं। कुमायू का एक ऐसा आदमी जिसे कन्याकुमारी का आदमी जानता हो, कितना ऊचा होगा? तुम्हें वह ऊचाई चाहे न मिले, तबियत ऊची होनी चाहिये। आज हमारे देश में भारतवर्ष का नागरिक खोजे नही मिलता।

क्या मैं यह उम्मीद करूं कि तुम वैसे बनोगे ? यदि तुम नहीं बनोगे तो यह देश तितर-बितर हो जावेगा। और तुम सब एक-एक ठीकरे के नाप के होगे। तुमसे इसलिए कहता हूं कि जितने आन्दोलन होते हैं, उनमें विद्यार्थी आगे होते हैं। मुसलमानो ने इस देश के दो टुकडे किए है, लेकिन इस देश का विद्यार्थी महमूद गज़नी का हथौड़ा लेकर आया है, जो भारत–माता के ठीकरे-ठीकरे करने पर तुला हुआ है।

एक बात और है। मैं एक शहर में गया था। लडके एक आदमी के पीछे पडे हुए थे, जिसने किसी स्त्री को बेइज्जत किया था। दूसरे दिन वे ही लड़के लड़कियो के बोर्डिंग हाऊस के आसपास-चक्कर काट रहे थे। किसी ने मुझ से पूछा कि मेरी बहिन की ओर कोई आख उठाकर देखे तो मैं क्या करूं ? मैंने कहा, उसका सिर काट डालो, पर अगर तुम किसी की तरफ देखते हो तो पहले अपना सिर काट डालो।

जब मैं छोटा था, तो मास्टर साहब हम को एक खेल खिलाते थे। गत्ते के टुकडों पर दुनिया का नक्शा बनाते थे। जब नक्शा बन जाता था तो कहते थे ठीक से देख लो। बाद में उसे तोड देते थे और कहते थे अब इसे मिलाओ। हम तो कही के वही लगा देते थे। एक लड़का भांप गया। उसके उल्टी तरफ मनुष्य बना हुआ था। मनुष्य को मिला दिया तो दुनिया बन गई यही अरमान लेकर मैं यहा आया हूं।

प्राप्ति स्वीकार

	पुस्तक का नाम	लेखक	कीमत रु.नये पैसे	प्रकाशन	पन्ना
१	गाधी चरित मानस	वालजी गोविन्दजी देसाई	० – ६०	नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद–१४	१००
२	वालनटरी पावरटी	मो क गाधी	० – २५	,,	३०
३	द मेसेज आफ सेन्ट थायुमानवार	के रामचन्द्र		दी मॅनेजीग एडीटर रिलिजिअस् डायजेस्ट, जयन्थीपुरा, दाटनगामा सीलोन	६७
४	रिलीजिअस डायजेस्ट	के, रामचन्द्र		,,	८०
५	आरोग्य का अमूल्य साधन	रावजीभाई मणिभाई पटेल	३ – ५०	भारत सेवक समाज प्रकाशन लालभाई सेठका वडा पानकोर नाका अहमदाबाद–१	३०८
६	विनोबा का सान्निध्य		२ – ००	कस्तुरबा गाधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट कस्तुरबाग्राम, इन्दौर (मध्यप्रदेश)	१७०

पार्टिनिको से पत्र

साथियो,

३० जून को ही यहा का त्रैसप्ताहिक बैठक हुई। मेरा सौभाग्य था कि मैं उसके लिये उपस्थित रह सका। इन्होंने ऐसी परपरा बनायी है कि तीन हफ्तो मे एक बार दो दिन के लिये मिलते हैं। पहले दिन एक विषय पर सेमिनार की तरह होता है और दूसरे दिन काम काज की रिपोर्ट, चर्चा आदि। पाचो केन्द्रो के कार्यकर्ता आते हैं। उस दिन "अहिंसा का आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था के साथ क्या सम्बन्ध है" इस विषय पर चर्चा हुई।

अगले दिन रात को इनके एक केन्द्र मे जो पार्टिनिको मे ही एक बहुत गरीब मोहल्ले के लोगो का है, बैठक हुई। ये बैठके बीच-बीच मे होती हैं। एक कमरा लिया हुआ है। उसमे टेलीविज़न भी है। रात को ९ बजे के करीब लोग आते हैं। १०, १५ और कभी-कभी ३० तक हो जाते हैं। पिछले दिनो कुछ अधिक लोग केन्द्र के भी आये थे। अभी तक तीनो बैठक मे मैं हिस्सा ले चुका हू। तीनो बार तीन अलग विषयो पर चर्चा हुई। पहले दिन का विषय था "क्या हम बदल चाहते हैं, यदि चाहते हैं तो कैसा और किस तरह ?" दूसरी बैठक का, जिसमे मैं गया था, विषय था, "बाप्टीजम की आवश्यकता।" तीसरी बैठक कल रात थी, विषय था, "बच्चों की शिक्षा।"

पहली बैठक मे देखा कि लोग या तो सरकार की तरफ देखते हैं या हड़तालो की भाषा मे बोलते हैं। सत्याग्रह की व्याख्या कार्यकर्त्ता मे भी कम लोग समझ पाते हैं। सत्याग्रह की चर्चा शायद अधिक होती भी नहीं। व्यक्ति को यदि बदल चाहिये तो उसका प्रारभ उसके अपने जीवन से होना चाहिये, यह बात अभी तक कम ही कार्यकर्ता समझ पाये हैं। कठिन भी है। यहा की जनता बडी पिछडी है और उनके सामने एकदम नये ढग से कुछ रखना मनुष्य तभी कर सकता है जब उसके अन्दर की आग उसे जला रही हो।

एक दो वर्ष पहले इन्होंने एक कल्चरल सेन्टर (सास्कृतिक केन्द्र) शहर के पढेलिखे और शिक्षक वर्ग के लिये सगठित किया था। उसमें बडी छोटी उम्र के काफी शिक्षक आदि आते थे। दोनो पीढियों का आपस मे बनता नही था और क्यो कि "स्टडी सेन्टर" के लोग प्रचलित मान्यता के अनुसार बन तन कर नही रहते और साथ-साथ वे बूढे ढग के सदस्य नई बातों को नही समझते जिससे इस केन्द्र मे एक "काइसिस" आ गया था। इनका एक कार्यकर्ता न्यूनसिओ इस सास्कृतिक केन्द्र के पीछे शक्ति लगा रहा है और उसका यही घर है। लोग उसे मानते भी हैं। नवयुवक सदस्य केन्द्र का भार उठाने के लिये तैयार है बशर्ते कि स्टडी सेन्टर के लोग उससे हट जाय। स्टडी सेन्टर ने मान लिया और न्यूनसिओ है ही इसलिये सोचा कि ठीक ही है, हमारा काम तो वह करेगा ही। वह केन्द्र चल रहा है, इसमे एक अच्छा पुस्तकालय भी धीरे-धीरे खडा हो रहा है। उन नवयुवकों के साथ मैं दो बार मिला। एक बार शिक्षा के बारे मे चर्चा हुई और अगली बार काफी लम्बी चर्चा अहिंसा को लेकर। विचार यह किया था कि क्योकि युद्धविरोधक अन्तराष्ट्रीय की प्रबन्ध समिति की बैठक हो रही है और यहा के लोगो को सघ के काम या मिलिटरी ट्रेनिंग आदि के बारे मे बिल्कुल कम जानकारी है–है ही नहीं, इस विषय की चर्चा करना अच्छा होगा। अच्छी चर्चा हुई। किन्तु एक बात देखी। क्योकि इनमे जो लोग हैं वे अच्छे खासे घरानो के हैं और गरीबी से दूर हैं, परस्पर अमीरी की दिखाते हैं, तो कम्यूनिज्मसे घबराते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति की बात आई तो यह सुन कर कि हम उत्पादन के साधनों पर से व्यक्ति की मालकियत हटाना चाहते हैं, फौरन एक युवक ने पूछा "तो फिर कम्यूनिज्म मे और आपके सिद्धान्तो मे क्या फर्क है ?" दानिलो को भी ये लोग कम्यूनिस्ट मानते हैं। दर असल जब १९५८ मे दानिलो को लेनिन शान्ति पुरस्कार मिला तब क्योकि उन्होंने उसे लेने से इन्कार नहीं किया, मजूर किया, उससे कई नजदीक के मित्र भी उससे दूर हो गये। एक तरफ यह गरीबी जो

दीखते ही कडे से कडे दिलको भी पिघला देती है और जो नरम से नरम दिल को मा दहला देती है और दूसरी तरफ लोगो का यह रुख । अजीब दुनिया है । गाधी किसी की सपत्ति को जबरदस्ती नही खतम करना चाहता है, वह तो समझाता है कि यदि "समझ कर सच्चा प्यार करना चाहते हो और अगर सचमुच जीवन भर के सुख का बीमा करना चाहते हो तो सम्पत्ति का मोह छोडना ही एकमात्र रास्ता है" यह सुनकर जवाब तो नहीं देते पर मन मे शायद ये यही सोचते हैं कि यह हम लोगो को भुलावा ही है। पर ऐसा सोचेंगे भी क्यो नही ? उत्तर इटली का जो जीवन है प्राविधिक क्षेत्र मे अत्यत विकसित उसकी झलक बडी बडी बाते करनेवालो को भी नचा देती है। विज्ञानदत्त इस 'सुखमय' जीवन के प्रलोभनो से कौन छूट सकता है ?

कल दानिलो के साथ बातचीत के दौरान मे मैंने कहा, "इस तरह का दुःख तो सब जगह है, वह हमारे लिए अति परिचित है। प्राविधिक और औद्योगिक विकास के साथ उसको हम जल्दी विदा भी कर सकते हैं। लेकिन स्वीडन जैसे अत्यन्त प्रगतिशील देशो मे जो दुःख है वह ज्यादा चिन्ताजनक है।' दानिलो खुश हो गया। कहने लगा 'देखो तुमसे यह बात सुन कर बहुत अच्छा लग रहा है।" दर असल मुझे क्या मालूम था यही उसके सिद्धान्त का मूलभूत मुद्दा है। वह कितना अच्छा कहता है, "मैं तो इस काम को स्वय मे इतना महत्वपूर्ण नही समझता जितना इसका फायदा उठा कर उत्तर के लोगों को बताना चाहता हू कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है।'. मैं यह उसके शब्दो मे नही रख पाया और उसने तो फिर मुझे अपना पूरा सिद्धान्त ही समझाया। बहुत अध्ययन है उसका और दिल मे जलन। जो महत्वपूर्ण बात मुझे लगी वह यह है कि समस्या को वैज्ञानिक ढग से समझना अत्यन्त आवश्यक है। ये लोग कोशिश कर रहे हैं और इनके काम मे "डोक्यूमेन्टेशन"—ठीक ठीक विवरण रखने—का बडा स्थान है जो हमारे यहा शून्य ही है।

मेरा बडा प्रश्न इनसे यह है कि कार्यकर्त्ता की ट्रेनिंग क्या और कैसे हो ? इनके यहा मुझे वह नही दीखती। कार्यकर्त्ता आते हैं और काम पर लग जाते हैं। पहले दानिलो उनको कुछ कहता है फिर जो कुछ बैठको में होता है, वही। कार्यकर्त्ता का अपना जीवन आदर्श का बने यह चेष्टा भी नहीं है। सब से पूछ रहा हू, कल एडवर्ड से भी इसके बारे में खूब बातें हुईं।

वैसे दिन भी कितने हुए, केवल ७,८ वर्षो दानीलो यहा आया था और यहा की गरीबी देखकर यही रह गया। उसके काम का प्रचार काफी हुआ, तो उसे कुछ साथी मिल गये। जो "भगवान् का घर" (हाउस आफ गॉड) उसने बनाया था वही उसका केन्द्र था। उसके पहले स्पीने साले में एक घर में रहता था। जब उसे लेनिन पुरस्कार मिला तो उस पैसे से उसने पाच केन्द्र बनाये। इन केन्द्रो में प्रमुख व्यक्ति खेती का विशेषज्ञ होता है। ये लोग बडे अच्छे ट्रेनिंग वाले हैं। और इनके साथ दो तीन सोशियल वर्कर्स होते हैं ? जो या तो नर्स का कार्य करते ही हैं डिस्पेन्सरी बना कर और वहीं—वही आफ्टर स्कूल बच्चो के लिये चलाते हैं। गाव के लोगो से बातचीत करते हैं। मुझे इन कार्यकर्ताओ में हमारे सेवा सैनिको का दर्शन होता है।

खेती का विशेषज्ञ लोगो को सलाह देता है। परसों मेनको के केन्द्र में एक का काम देखने का मौका मिला। उसने लगभग १२८ एक्सपरिमेन्टल प्लाट लोगो से बनवाये हैं। इनकी कोशिश यह है कि लोग अधिक बागवानी शुरु करे ताकि पानी का इस्तेमाल करना सीखें। और अगर बागवानी करेंगे तो जमीनपर बडे बडे जमीन मालिको का एकाधिकार टूटकर छोटे छोटे किसानो को लाभ होगा। साथ साथ सारी खेती का ढग भी बदलेगा। अब तो लोग अगूर और गेहू लगा देते है। इन फसलों को पानी की जरूरत नहीं होती और बडे बडे किसान एक बार बीज डाल देते है या कलम लगा देते हैं तो फिर काम की आवश्यक्ता नहीं। लोगो को काम नहीं मिलता। बागवानी से और गीली खेती से लोगों को काम मिलेगा। जहा—जहा बाध बना कर पानी इकट्ठा हो सकता है वहा वह करने का प्रयास भी चला है। खेती के विशेषज्ञ खूब अध्ययन करके

पूरी जानकारी इकट्ठी करके इलाके के लिये खेती की योजना बनाते हैं। और उसके आधार पर लोगो को बताना चाहते हैं कि खेती का आधार अच्छी योजना होना चाहिये। पर मुझे नहीं लगा कि जिसे हम सतुलित खेती कहते हैं, वह इनके ध्यान में है।

पार्टिनिको का आरोग्य केन्द्र देखा। एक नर्स जिसने बच्चो की नर्सिंग की ट्रेनिंग अपने देश स्विट्जरलैण्ड में ली है, उस केन्द्र की देखभाल करती है। मरीज आते हैं और दवादारू करवाते हैं। आधा घण्टा मैं वहा था। पता चला कि चमडे के रोग बहुत हैं। और पेट के भी। हमारे यहा जैसे आख की बीमारिया होती हैं, वह नहीं है।

आफ्टर स्कूल में शिक्षिका दोपहर के समय (स्कूल एक ही समय लगते हैं) बच्चो को इकट्ठा करती है और दो तरह के काम पर खास ध्यान देती है। कई बच्चे ऐसे होते हैं जो अपने काम मे कच्चे होते हैं, उनकी या जिन बच्चो को होम टास्क दिया हो, उन्हे मदद करना, स्कूल के काम मे जो कठिन लगी वे बाते समझा देना आदि। दूसरा कार्य बच्चो को सृजनात्मक और मनोरजनक प्रवृत्तियों में लगाना। बच्चे चित्र बनाते हैं, नाटक खेलते हैं, मूर्ति-कला आदि करते हैं। पिछले दिनो एक सुन्दर नाटक ऐसे एक केन्द्र के बच्चों द्वारा खेला गया था। सिड्रला की कहानी का रूपान्तर था। बडा अच्छा किया। स्टेज भी बच्चो के चित्रो से बनायी थी। यह नाटक उसी स्थान पर देखा जो कि पहले "हाउस आफ गॉड" नाम से बनाया था। यहा के कार्यकर्त्ता यह भी कोशिश कर रहे है कि शिक्षा का उनका यह काम धीरे-धीरे साधारण शिक्षको के लिये एक नमूने के तौर पर बन जाय।

केन्द्र के द्वारा पार्टिनिको में नवयुवको के लिये भाषा के वर्गो की व्यवस्था है। बीच-बीच में फिल्म शो और कन्सर्ट के कार्यक्रम रखे जाते हैं। काफी लोग देखने आते हैं। दर असल यह देश कुछ निराला है। इसे योरोप नही कहना चाहिये। यहा अरबो का बडा असर है। इस तरह के कार्यक्रम मे स्त्रिया अधिक नहीं आती हैं। स्त्रियो को घर मे ही रहना पडता है, वह बाहर निकल नही सकती। इस अवस्था मे यहा न तो स्त्री सामाजिक काम कर सकती है, न पुरुष। यानी यहा का काम दपती ही अच्छा कर सकेंगे, ऐसा मैं सोचता हू।

दानिलो को अच्छे कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता है। और अब इनके काम का एक नया प्रकार शुरू हुआ है। अभी तक तो इतना प्रोपगन्डा हुआ था कि लोग अखबारो मे पढ कर, किताबें पढ कर या इसके भाषणो को सुन कर दौडे आते थे, चाहे वे किसी कार्यविशेष मे दखल रखते हो या केवल भावना के दबाव से टिकट कटवा कर आ गये हो। अभी तक ऐसे लोगों से काम चला, भला बुरा जो कुछ भी हुआ। अब क्योंकि पैसे के बारे मे भी सोचना है, केवल कार्य-विशेष में ट्रेनिंग पाये लोगो को ही लेंगे। कठिन परिस्थिति है। केवल ट्रेन्ड लोगो को ही लेंगे तो भावना वाले नहीं आ सकेंगे। भावना हो तो ट्रेनिंग आसान होती है। पर ट्रेनिंग भी और भावना भी कम मे ही मिलती है, और ट्रेनिंग के बाद भावना का उद्गम कम ही लोगो मे होता है।

कम्यूनिटी के बतौर यहा लोग रहे ऐसा दानिलो नही चाहता है। उसे पहली अवस्थाओ मे अनुभव हुआ है और तभी उसने अपना ढग भी बदला है कि कम्यूनिटि मे लोग जनता से अलग हो जाते हैं। अपने आपको आदर्श समझने लगते हैं। उसका कहना है कि "कम्यूनिटि बनाना मेरा उद्देश्य नही है।" उद्देश्य समाज को बदलने का है। कार्यकर्त्ता मडली तो औजार है।" वह कहता है कि उसको कम्यू-निटि की दृष्टि से दो ही बातें चाहियें। और ये दो बातें होंगी तो उसकी कम्यूनिटी बन गयी, यह समझेगा। पहली बात आदमी भला हो, सेवावृत्ति वाला हो और दूसरी यह स्पष्ट हो कि अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता। साथ काम करने की आदत हो, उसकी टेक्नीक बने। यह कम्यूनिटी है। उसे अपने ७,८ साथिओ पर बडी श्रद्धा है, उन पर पूरा-पूरा भरोसा करता है। आज कुल ६० कार्यकर्त्ता हैं।

इस पिछले प्रचार के कारण इनको एक बडा लाभ यह हुआ था कि अलग अलग देशो मे दोलची

(शेषाश पृष्ठ ५८ पर)

नई तालीम समाचार

जून के अंतिम सप्ताह में गांधी स्मारक निधि, दिल्ली के कार्यालय में नई तालीम सम्पर्क समिति की दूसरी बैठक श्री ढेबर भाई की अध्यक्षता में हुई। इस बैठक में सर्वश्री डा० के० एल० श्रीमाली, श्रीमन् नारायण, अरुणाचलम्, जी० रामचन्द्रन्, अण्णा साहब सहस्त्रबुद्धे, पूर्णचन्द्र जैन, मार्जरी साईक्स तथा राधाकृष्णन् उपस्थित रहे। सदस्यों के अलावा गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री आर० आर० दिवाकर तथा मध्यप्रदेश और पंजाब के शिक्षा मंत्री विशेष आमंत्रण पर उपस्थित थे। बैठक में खास तौर से तीन बातों पर चर्चा हुई।

१. उत्तर बुनियादी विद्यालयों के विद्यार्थियों का, खासकर जहां उन्हें प्रान्तीय सरकार ने उच्च माध्यमिक विद्यालय के समान मान्यता अबतक नहीं दी है, आगे का कार्यक्रम क्या हो? इस बारे में चर्चा के पश्चात् यह तय हुआ कि राज्य सरकारों से यह मांग की जाय कि उत्तर बुनियादी तालीम को इतर माध्यमिक शालाओं के बराबर मान्यता दी जाय। जहां-जहां शालाएँ सरकार से अनुदान की मांग पेश करती हैं, वहां उच्चतर माध्यमिक शालाओं के अनुदान के प्रमाण में इन्हें भी अनुदान दिया जाय। जिससे इन शालाओं में भी विज्ञान की प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालयों को और अधिक समृद्ध बनाया जा सके। उत्तर बुनियादी विद्यालयों की समीक्षा का स्वरूप निर्धारित करते समय उस तालीम की विशेषताएं—उद्योग काम और सामूहिक जीवन-दोनों को ख्याल में रखते हुए योजना बनाई जाय। आज प्रचलित विश्वविद्यालयों में उत्तर बुनियादी विद्यालयों में तालीम पाये हुए विद्यार्थियों को प्रवेश नहीं दिया जाता है। आम तौरपर यह माना गया है कि रूरल इस्टीटयूट में उन्हें प्रवेश मिल सकेगा। लेकिन कोई भी विद्यार्थी विश्वविद्यालय में यदि प्रवेश लेना चाहता हो और उसके लिये आज उच्च माध्यमिक की परीक्षा में बैठना चाहता हो, तो उसको उसी साल परीक्षा में बैठने का अवसर दिया जाय। ऐसी सबकी राय रही।

२. तृतीय पंचवर्षीय योजना में—सब प्रशिक्षण विद्यालय बुनियादी ढंग के विद्यालय होंगे ऐसी योजना है। साथ ही सब प्राथमिक शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिणत कर Reorientation किया जायगा ऐसा कहा गया है। समिति ने विशेष जोर दिया कि शिक्षण का प्रसार और सफलता शिक्षक-प्रशिक्षण की मजबूती पर निर्भर है। अगली पंचवर्षीय योजना में इस बात की कोशिश होनी चाहिये कि इस काम को सुदृढ़ बना सकने वाले कार्यकर्ताओं की खोज करके शिक्षक-प्रशिक्षण कार्य का स्तर ऊंचा किया जाय।

३ बुनियादी शिक्षा की अवधि में जिन शालाओं में, खास करके स्वतंत्र रूपसे चलाये जाने-वाली शालाओं में, अंग्रेजी पढाने का प्रबन्ध नहीं है। उनके सामने विद्यार्थियों के आगे की पढाई की जो दिक्कतें आती हैं उस सम्बन्ध में चर्चा हुई। इस

(पृष्ठ ५७ का शेषांश)

कमेटियां बन गयी थी। अभी भी नई बनती हैं। इन कमिटियोंने एक एक केन्द्र का भार सभाल लिया था। आर्थिक और कार्यकर्ता भेजने का भी।

एक बात बड़ी अच्छी लगी। हर केन्द्र में उस क्षेत्र का नक्शा—बड़ा प्रामाणिक—और उसके आधार पर अपनी सर्वे की जानकारी और साथ-साथ आंकड़ों के चार्ट इस तरह सजाया हुआ है कि जब कभी उस क्षेत्र के बारे में बात करें तो सारा इलाका, उसकी जानकारी और अपनी योजना का चित्र सामने आता है। उनके एक प्रमुख कार्यकर्ता ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "अध्ययन किये बिना काम की योजना बनाना बेकार है और काम किये बगैर अध्ययन नहीं होता है।" यह बात बड़ी अच्छी तरह समझ लेने की है।

आप सब को सादर प्रणाम,

देवी भाई

नई तालीम में शिक्षण पद्धति-१ दैनन्दिनी

मार्जरी बहन

दैनन्दिनी लेखन बुनियादी शाला के विशेष कार्यक्रमों मे से एक है। शिक्षकों और बच्चो से यह आशा की जाती है कि वे अपनी प्रतिदिन की दैनन्दिनी रखें और अपने मासिक कार्यक्रम की नोंद, अहवाल और अपनी प्रगति का उसमें उल्लेख करे। इस लेख में इस बात की चर्चा की जायेगी कि दैनन्दिनी लेखन अेक शैक्षणिक पद्धति के रूप मे क्या महत्व रखती है, उसमे जो खतरे हैं उनसे कैसे बचा जा सकता है और कुछ अैसे सुझाव इस बारे मे प्रस्तुत किये जायेंगे कि दैनन्दिनी को बच्चो मे बौद्धिक विकास और नैतिक शिक्षण का माध्यम किस प्रकार बनाया जा सकता है।

सबसे बडा खतरा जिसे हमे दूर करना है या तो उससे बचना है वह यह है कि दैनन्दिनी लेखन को हम एक नीरस यत्रवत कार्यक्रम न बनावे। कभी-कभी ऐसा देखने मे आता है कि बुनियादी शाला और बुनियादी प्रशिक्षण शाला मे रखी गयी दैनन्दिनी मे कोई अन्तर नहीं रहता। वे हू-बहू एक ही प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ वर्ग–२ की दैनन्दिनी प्राय. निम्नानुसार होती है –

"मैं आज सुबह अमुक बजे उठा। नित्य क्रिया से निवृत्त होने गया, मुह धोया, दात साफ किया, सुबह का काम किया, नाश्ता किया, स्नान किया, पाठशाला गया।"

वर्ग ६ की दैनन्दिनी मे ठीक चार साल बाद उन्हीं शब्दो मे वही चीज लिखी जाती है। बुनियादी प्रशिक्षण-शाला के शिक्षक की दैनन्दिनी थोडी विस्तृत भले हो परन्तु कई उल्लेखनीय बातो का जिकर उसमे नही रहता। दिन-प्रतिदिन और सप्ताह-सप्ताह उसी बात की पुनरावृत्ति होती रहती है। उसमे न कोई विचार होता है, न योजना होती है, न पढनेवाले को रूचि रहती है और न अैसी दैनन्दिनियो का शैक्षणिक दृष्टि से भी कोई महत्व होता है।

इसमे और अैसे ही नई तालीम के अन्य पहलुओं में गांधीजी का सूत्र अच्छा है कि उद्योग या अन्य कोई उपयोगी प्रवृत्ति व्यक्ति के सर्वोच्च सर्वांगीण विकास के लिये एक समाप्य दरवाजा है बशर्ते कि उसे यंत्रवत्‌रीति से नही अपितु एक वैज्ञानिक दृष्टि से सिखाया जाय अर्थात्‌ इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया जाय कि जो काम हम विद्यार्थियो को सिखा रहे हैं वह "क्यो" और "कैसे"।

तब उसके पश्चात सवाल आता है कि दैनन्दिनी लेखन के "क्यों" और "कैसे" क्या हैं? यदि "क्यो" शब्द को पहले ले और विवेचन करे तो सामान्यतः दो कारणो से दैनन्दिनी लेखन महत्वपूर्ण है :—

(१) दैनन्दिनी शब्द–लेखन के द्वारा आत्मप्रकटन के लिये नित्य बहुमूल्य अभ्यास प्रदान करती है।

(२) वह आत्म समीक्षा तथा स्वालोचना का एक सुन्दर साधन हो सकती है।

हम इन दोनों मे से हर एक मुद्दे के बारे मे थोडा विस्तार से विचार करेगे।

१–आत्मप्रकटन

इस लेख मे लेखन शैली की प्राथमिकताओं पर प्रकाश डालना हमारा उद्देश्य नहीं है। वर्ग १ और २ की पठन और लेखन पद्धतियों के बारे मे बताना एक स्वतत्र विषय है जिसे हमे स्वतत्ररूप से पाठ्य-

विचार करना होगा। इस विषय के बारे में हम यहां चर्चा नहीं करेंगे। हमारे वर्तमान उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से हम यह मान रहे हैं कि अक्षर-चयन व उच्चारण की प्रारम्भिक पद्धतियों ने बालकों को इतना सुयोग्य बना दिया है कि उन्हें क्या लिखना चाहिये, इसका निश्चय वे कर लेते हैं। इस चीज ने हमें हमारे प्रथम सिद्धान्त की ओर अभिमुख किया है कि आत्म-प्रकटन के किसी अभ्यास को सही और सतोषजनक बनाना है तो बालक के पास लिखने लायक कुछ चीज रहनी चाहिये। कुछ ऐसी बातें होनी चाहियें जो वह लिखना चाहता है या तो व्यक्त करना चाहता है।

दूसरे वर्ग में व्यक्तिगत दैनन्दिनी लिखने की अपेक्षा सामूहिक वही (क्लास जर्नल) का बहुत महत्त्व है। इस काम के लिये पाठशाला का आखिरी घंटा रखना चाहिये। शिक्षक बच्चों से उस दिन हुई घटनाओं, कामों व अन्यान्य प्रवृत्तियों में सबसे रुचिकर और लिखने योग्य कौन सी घटनायें हैं, इस बारे में चर्चा करें। बच्चे मौखिक सुझाव देते हैं और शिक्षक उन्हें स्पष्ट, सरलतम वाक्यों में बोलने के लिये प्रोत्साहित करता है। उनके द्वारा सम्पन्न किये हुये काम को स्पष्ट और सही ढंग से वर्णन करने के लिये यदि नये शब्दों की आवश्यकता हुई तो ब्लैकबोर्ड पर लिख दिये जाते हैं। चर्चा के पश्चात प्रत्येक विद्यार्थी अपनी-अपनी स्लेट पर उस दिन की वही लिखता है। जब बच्चे घर चले जाते हैं तो बच्चों द्वारा स्लेट पर लिखे हुये सबक को शिक्षक पढ़ता है और उनके लिखने में जो त्रुटियां रह जाती हैं उन्हें सावधानी से सुधारता है। दूसरे दिन प्रत्येक बालक वही की साफ प्रति तैयार करके कक्षा-वही में लिखता है। बारी-बारी से एक-एक बच्चा अपनी वही कक्षा को सुनाता है। उसमें यदि सुधार की आवश्यकता हुई तो दूसरे बच्चे वैसा सुझाते हैं और यदि कक्षा के सभी बच्चे उसे स्वीकार करते हैं तो उतना सुधार करके उस दिन की वही लिखी जाती है। उसके बाद कक्षा-वही लिखने के लिये दूसरा बालक चुना जाता है और यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि सब बच्चों की बारी आ जाय।

उदाहरणार्थ कुछ मुख्य कक्षा-वहियां नीचे उद्धृत की जाती हैं :-

"सोमवार, जून ५, १९६१ आज हम छुट्टियों के बाद पाठशाला आये। हमारी कक्षा में २४ बच्चे हैं। हम लोगों ने "अ" को इस सप्ताह के लिये कक्षा-नायक और "ब" को पीने के पानी की देख-रेख करने के लिये चुना।"

"बुधवार, जुलाई ३, १९६१ हम लोग श्री "क" को देखने गये जो खेत में ज्वार बो रहे थे। सीता बुखार के कारण पाठशाला नहीं आ सकी।"

"बृहस्पतिवार, जुलाई ४, १९६१ आज सुबह गुरुजी और लक्ष्मी सीता के घर उसे देखने के लिये गये। गुरुजी ने सीता की मां को उसके लिये औषधि दी। हम लोगों ने अपने बगीचे में ज्वार बोई।"

शिक्षक का उद्देश्य बच्चों के लिखने में और उच्चारण में जो त्रुटियां होती हैं उन्हें सुधारने का होना चाहिये। जिस शब्द का उच्चारण बच्चों को मालूम नहीं है उसके विषय में पूछने के लिये उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिये ताकि प्रथम बार ही वे अच्छी तरह लिख सकें। इस प्रकार शुद्ध-लेखन की अच्छी आदत डालनी चाहिये। इससे अध्यापक के ऊपर का भार कम होगा। इसमें सबसे महत्वपूर्ण यह भी है कि बच्चों को सफलता प्राप्त करने का आनंद और उत्साह मिलता है। लेखन क्रिया भारस्वरूप नहीं बनती। जिस चीज को करने में व्यक्ति को एक प्रकार का आनंद मिलता है वही मनुष्य सीख सकता है।

कक्षा-वही (क्लास जर्नल) की यह पद्धति उच्च कक्षाओं में भी उपयोगितापूर्वक चलाई जा सकती है-जिससे सालभर के काम की एक बहुत मूल्यवान नोंद हम रख सकते हैं। ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता है, वह अपनी-अपनी बारी से कक्षा वही लिखता है, अपने सहपाठियों को सुनाता है, आपस में फिर चर्चा होती है और आवश्यक सुधार के पश्चात ही उसकी स्वच्छ प्रति बनाई जाती है।

तृतीय वर्ग के आगे कक्षा–वही के साथ बच्चे अपनी व्यक्तिगत दैनन्दिनी भी रख सकते हैं। बच्चो को उनकी रुचि के अनुसार घटित घटनाओं को अपनी–व्यक्तिगत दैनन्दिनी में लिखने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। यह आवश्यक नही है कि ये घटनायें शाला से ही सम्बन्धित हो, उनके घरो मे हुई घटनाओं का उल्लेख भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ —

"पिछली रात हमारी गाय ने वछडा दिया। वह बछिया है। मेरे पिताजी बहुत प्रसन्न हैं।"

"मेरे मामा हमारे घर आये। वे हमारे लिये मिठाई लाये। वे मद्रास मे रहते हैं जो—मील दूर है। वहा से रेलगाडी—घटे म आती है।

"आज सुवह हमारे प्रधानाध्यापक महोदय मेरे बुखार से पीडित भाई को देखने के लिये आये। उन्होने पिताजी को गौशाला के निकट मच्छर के अडे दिखाए। हम सब लोगों ने वह स्थान साफ करने मे मदद की।"

प्रत्येक वर्ष बच्चो की आत्मप्रकटन करने की शक्ति बढती जायगी और कक्षा–वही सविस्तर और स्पष्ट होती जायगी। पाचवे वर्ग से ऊपर जब बच्चा जाता है तो शिक्षकों को साधारण परिच्छेदो के निर्माण आदि के बारे मे उसे सर्व–साधारण जानकारी देनी चाहिये। उदाहरणार्थ किसी विशेष घटना का उल्लेख, सहल, स्कूल ड्रामा आदि कक्षा वही मे तथा व्यक्तिगत दैनन्दिनी मे बडी सावधानी से लिखे जाने चाहिये। विषय के बारे मे प्रारम्भिक चर्चा भी की जा सकती है और विशेषत लेखन–क्रिया हेतु ज्यादा समय दिया जा सकता है। चूकि इस चीज मे विद्यार्थी काफी रुचि रखते हैं और उनका मस्तिष्क ताजा रहता है इसलिये इसे शीघ्रातिशीघ्र किया जाना चाहिये।

पाठशाला के छठवे, सातवे और आठवे साल मे यह सम्भव है कि बच्चे द्वितीय भारतीय भाषा का अध्ययन (हिन्दी या अन्य भाषा) प्रारम्भ करगे। कक्षा–वही तथा व्यक्तिगत दैनन्दिनी का इन भाषाओं के ऊपर भी अधिकार प्राप्त करने के लिए अपनी मातृ–भाषा के सिद्धातो के आधार पर उपयोग किया जा सकता है। नई भाषा के प्रथम वर्ष के दौरान मे व्यक्तिगत दैनन्दिनी अपनी मातृ–भाषा मे लिखी जा सकती है जब कि कक्षा–वही वर्ग के सभी बच्चो के साथ पहले मौखिकरूप मे और तत्पश्चात नयी अभ्यास की जाने वाली भाषा मे लिखी जासकती हैं। जैसे–जैसे बच्चे प्रगति करते हैं वे उसका कुछ भाग या पूरा अपनी व्यक्तिगत दैनन्दिनी भी नयी भाषा मे लिख सकते हैं। यह भी महत्व की बात है की मातृभाषा की पढाओ की तरह शिक्षक मौखिक अभ्यास के द्वारा नये आये हुये शब्दों को श्यामपट पर लिखकर जहातक सम्भव हो बच्चो को गल्ती करने से रोके। भाषा–त्रुटि के लिये "प्रिवेन्सन ईज मच बेटर दैन क्योर।"

दैनन्दिनी लेखन के सम्बन्ध मे एक आखिरी मुद्दा और रह जाता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है बच्चो की भाषा प्रकट करने की शैली का विकास कुछ तो इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने व्यक्तिगत रुचि की प्रमुख घटनाओं का अपनी दैनन्दिनी मे लिखने के लिये कितना उपयोग करता है। लेकिन भाषा के स्रोतो के निर्माण पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है और वह आनद के लिये किये गहरे अध्ययन के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। अंग्रेजी के तत्ववेत्ता श्री बेकन ने कहा है अध्ययन से सम्पूर्ण मानव बनता है। अच्छी पुस्तको का पठन और सुन्दर साहित्य के परिच्छेदो का कठस्थकरना बच्चो की आत्मप्रकटन करने की शक्ति के पोषण और विकास के लिये प्रमुख तरीके हैं। नई तालीम पाठशाला के कार्यक्रम से दैनन्दिनी लेखन की पद्धति बिल्कुल अलग नहीं की जा सकती है क्योकि अन्यान्य प्रवृत्तियो मे से इसके लिये मसाला मिलता है। पुस्तको के पढने के कार्यक्रम से शब्द–संग्रह बढता है तथा सही ढग से सोचने की वृत्ति का विकास होता है।

अब दैनन्दिनी के एक दूसरे महत्वपूर्ण शैक्षणिक पहलू "आत्म–समीक्षा" की ओर हम देखें।

कक्षा–वही और व्यक्तिगत दैनन्दिनी दो अलग–अलग भाग हैं, ऐसा यदि हम सोचगे तो उपयोगी

होगा। एक भाग घटनाओं का वर्णन है। ये घटनायें ही ज्ञानोपार्जन का साधन बनती हैं जो कि बच्चों की उनके दैनिक कार्यक्रम में रूचि पैदा करती हैं। दूसरे भाग में किसी काम को समाप्त करने में कितना समय लगा, इसका सही लेखा जोखा रहता है। दैनन्दिनी का यह दूसरा भाग ही है जो कि व्यक्ति के आत्म-समीक्षा की शक्ति के विकास से बहुत गहरा सम्बन्ध रखता है।

दैनिक कक्षा-बही में ऊपर लिखी हुई साधारण जानकारी के वर्णन के अलावा प्रतिदिन के कार्य का लेखा रहना चाहिये। यह निम्नलिखित नमूने के अनुसार रखा जा सकता है।

दिनांक	प्रवृत्ति	लगने वाला समय	बालकों की संख्या	किया हुआ काम
	सफाई	१५ मि या १/४ घंटे।	६	कक्षा में झाड़ू लगाना।
			६	कक्षा के आस-पास के स्थान तथा टट्टी पर की सफाई।
			३	पीने का पानी लाना।
			६	सामान की गिनती।
	कताई तकली पर	६० मि या १ घ	२१	४२६ तार या २ लटी ६६ तार
	बागबानी	४५ मि या ३/४ घंटा	२१	-ग्राम्स-कपास-पौट की दूरी पर प्लाट में बोई गई।

नमूने के तौर पर बताई गई ऊपर की प्रवृत्तियों को बच्चे पूरा करेंगे और हर प्रवृत्ति के पूरा होने के पश्चात उससे निकले नतीजे का मूल्यांकन करेंगे। किसी काम के लिये कितना समय खर्च किया गया और क्या हासिल किया गया इसे सही ढंग से नोंद रखने की आदत व्यक्ति के विकास के मूल्यांकन की एक महत्वपूर्ण तैयारी माननी चाहिये, जो व्यक्ति के अपने उत्तरदायित्व को बढ़ाती है।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं यह लेखा-जोखा भी सविस्तर और स्पष्ट होता जाता है। उद्योग प्रवृत्तियों को तकली, चरखा, औटाई तुनाई, आदि विभागों में बांटा जा सकता है। अन्त में बुनाई आयेगी। या तो दूसरे उद्योग लिये जा सकते सकते हैं। उसी तरह बागबानी के काम भी विभाजित कर दिये जायेंगे। सामाजिक शास्त्र, वैज्ञानिक प्रयोग और गणित अभ्यास इत्यादि में उपयोग किये गये समय की भी नोंद रखी जा सकती है।

समय-समय पर बच्चों को उनकी सुलेख तथा स्वच्छता में की गयी प्रगति का माडेल चार्ट्स के साथ तुलनात्मक मूल्यमापन करने के लिये मदद करनी चाहिये।

ऊपर जो कुछ बताया गया है वह दैनन्दिनी लेखन के इस पहलू का एक प्रारम्भिक नक्शा मात्र है। जिस प्रकार आत्मप्रकटन पुस्तकालय को उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मसमीक्षा को औद्योगिक कार्य, समाज-सेवा अथवा कार्यक्षम ढंग से रखे गये रेकार्ड्स आदि पाठशाला के कार्यक्रमों से अलग नहीं किया जा सकता। इन विषयों में हरअेक के बारे में अेक स्वतंत्र लेख लिखा जा सकता है।

अेक चीज जो इससे स्पष्ट होनी चाहिये उसे पुनः उल्लेख कर हम लेख समाप्त करें। दैनन्दिनी-पद्धति की सफलता शिक्षक की इस प्रवृत्ति को चलाने के मकसद को समझने और जागरूकता से दैनन्दिन कार्य की योजना बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने के ऊपर निर्भर रहती है। संक्षेप में नीचे लिखे कार्य शिक्षक करेगा।

१. प्रत्येक शिक्षक को यह महसूस करना चाहिये कि वह भाषा का ही शिक्षक है। और अपने सभी काम में उसे सरल, स्पष्ट और शुद्ध भाषा का उपयोग करना है।

२. शिक्षक स्वयं अपनी दैनन्दिनी रखे और निरन्तर उस पद्धति से आत्म समीक्षा और स्वय-प्रकटन के काम में अपने आपको तज्ञ कर ले।

३. शिक्षक को दैनन्दिनी लेखन आनंदमय और रुचिकर बनाने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार सब कुछ प्रयत्न करना चाहिये। और दैनन्दिनी केवल दैनिक-कार्यक्रम निर्देश करने वाली बनाने के बदले उसमें महत्वपूर्ण अनुभवो की नोंद की जाय।

४. शिक्षक को चाहिये कि वह बडी सावधानी से बच्चो द्वारा लिखी गई दैनन्दिनी की और भाषा को देखे ताकि उसमें लिखी गई जानकारी के आधार पर बच्चो के विकास का हम मूल्याकन कर सकें।

(मूल अंग्रेजी से –मोहन)

नई तालीम समाचार

(पृष्ठ ५८ का शेषांश)

सम्बन्ध मे सरकार से मिलकर असुविधाए दूर करने की कोशिश की जाय।

गुजरात नई तालीम संघ की कार्यकारिणी की बैठक जून माह मे सणोसरा मे हुई। मुख्य चर्चा उत्तर बुनियादी शालाओ की परीक्षा–विधि और मान्यता के बारे मे हुई। पिछले साल गुजरात सरकार ने उत्तर बुनियादी विद्यालयों की समीक्षा करने के लिये एक समिति का गठन किया था और आदेश दिया था कि इस काम के लिये एक स्थाई योजना बनाई जावे। उस योजना के सम्बन्ध में चर्चा हुई। राज्य सरकार ने सब गैर बुनियादी शालाओं में आसान उद्योग दाखिल करने का जो विचार रखा है उस बारे मे चर्चा हुई। आमतौर पर इस विचार का स्वागत हुआ। लेकिन समिति ने यह स्पष्ट किया कि कुछ उद्योगो को शामिल कर लेने मात्र से शालाए बुनियादी शालाए नहीं बनेगी। उद्योग सब शालाओ के लिए एक आम अच्छा कार्य-क्रम माना जाय। इस कार्यक्रम का यह नतीजा नही हो जाना चाहिये कि बुनियादी शालाओ के गठन और प्रसार का काम मद हो।

बंगाल नई तालीम संघ की बैठक बलरामपुर में हुई। बगाल नई तालीम सघ का पुनर्गठन हुआ। प्रान्तीय सरकार के साथ बुनियादी शिक्षण के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने के लिये एक छोटीसी समिति नियुक्त की गई।

अगले सितम्बर मास में अखिल भारत सर्व सेवा संघ की ओर से समग्र नई तालीम के स्वरूप के बारे में एक अध्ययन गोष्ठी सेवाग्राम में बुलाने का सोचा जा रहा है। गोष्ठी में हिन्दुस्तानी तालीम संघ के दिल्ली प्रस्ताव के अनुसार समग्र नई तालीम की क्या योजना हो इस बारे में चर्चाएं होंगी। इस में श्री धीरेन्द्र भाई उपस्थित होगें। हाल ही में उन्होंने उनके बलिया के अनुभवों के आधार पर "ग्राम–भारती" नाम की एक पुस्तिका तैयार की है, वह चर्चाओं का आधार रहेगी। इस परिसंवाद के बारे में ज्यादा जानकारी सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम से प्राप्त हो सकेगी।

होगा। एक भाग घटनाओं का वर्णन है। ये घटनायें ही ज्ञानोपार्जन का साधन बनती हैं जो कि बच्चों की उनके दैनिक कार्यक्रम में रुचि पैदा करती हैं। दूसरे भाग में किसी काम को समाप्त करने में कितना समय लगा, इसका सही लेखा-जोखा रहता है। दैनन्दिनी का यह दूसरा भाग ही है जो कि व्यक्ति के आत्म-समीक्षा की शक्ति के विकास से बहुत गहरा सम्बन्ध रखता है।

दैनिक कक्षा—बही में ऊपर लिखी हुई साधारण जानकारी के वर्णन के अलावा प्रतिदिन के कार्य का लेखा रहना चाहिये। यह निम्नलिखित नमूने के अनुसार रखा जा सकता है।

दिनांक	प्रवृत्ति	लगने वाला समय	बालकों की संख्या	किया हुआ काम
	सफाई	१५ मि. या १/४ घंटे।	६	कक्षा में झाड़ू लगाना।
			६	कक्षा के आस-पास के स्थान तथा टट्टी घर की सफाई।
			३	पीने का पानी लाना।
			६	सामान की गिनती।
	कताई तकली पर	६० मि. या १ घ	२१	४२६ तार या २ लटी ६६ तार
	बागवानी	४५ मि या ३/४ घंटा	२१	—ग्राम्स—कपास—फीट की दूरी पर प्लाट में बोई गई।

नमूने के तौर पर बताई गई ऊपर की प्रवृत्तियों को बच्चे पूरा करेंगे और हर प्रवृत्ति के पूरा होने के पश्चात् उससे निकले नतीजे का मूल्यांकन करेंगे। किसी काम के लिये कितना समय खर्च किया गया और क्या हासिल किया गया इसे सही ढंग से नोट रखने की आदत व्यक्ति के विकास के मूल्यांकन की एक महत्वपूर्ण तैयारी माननी चाहिये, जो व्यक्ति के अपने उत्तरदायित्व को बढ़ाती है।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं यह लेखा-जोखा भी सविस्तर और स्पष्ट होता जाता है। उद्योग प्रवृत्तियों को तकली, चरखा, ओटाई, धुनाई, आदि विभागों में बांटा जा सकता है। अन्त में बुनाई आयेगी। या तो दूसरे उद्योग लिये जा सकते सकते हैं। उसी तरह बागवानी के काम भी विभाजित कर दिये जायेंगे। सामाजिक शास्त्र, वैज्ञानिक प्रयोग और गणित अभ्यास इत्यादि में उपयोग किये गये समय की भी नोट रखी जा सकती है।

समय-समय पर बच्चों को उनकी सुलेख तथा स्वच्छता में की गयी प्रगति का माडेल चार्ट्स के साथ तुलनात्मक मूल्यमापन करने के लिये मदद करनी चाहिये।

ऊपर जो कुछ बताया गया है यह दैनन्दिनी लेखन के इस पहलू का एक प्रारम्भिक नक्शा मात्र है। जिस प्रकार आत्मप्रकटन पुस्तकालय को उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मसमीक्षा को औद्योगिक कार्य, समाज-सेवा अथवा कार्यक्षम ढंग से रखे गये रेकार्ड्स आदि पाठशाला के कार्यक्रमों से अलग नहीं किया जा सकता। इन विषयों में हरअेक के बारे में अेक स्वतंत्र लेख लिखा जा सकता है।

अेक चीज जो इससे स्पष्ट होनी चाहिये उसे पुनः उल्लेख कर हम लेख समाप्त करें। दैनंदिनी-पद्धति की सफलता शिक्षक की इस प्रवृत्ति को चलाने के मकसद को समझने और जागरूकता से दैनन्दिन कार्य की योजना बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने के ऊपर निर्भर रहती है। सक्षेप में नीचे लिखे कार्य शिक्षक करेगा।

Regd. No. N.-106

आमार कीर्त्तिरे आमि करि ना विश्वास ।
जानि, कालसिन्धु तारे
नियत तरङ्ग घाते
दिने दिने दिबे लुप्त करि ।

आमार विश्वास आपनारे
दुइ बेला सेइ पात्र भरि
ए विश्वेर नित्यसुधा
करियाछि पान ।

प्रति मुहूर्त्तेर भालोबासा
तार माझे हयेछे सञ्चित ।
दु ख भारे दीर्ण करे नाइ,
कालो करे नाइ धूलि
शिल्पेरे ताहार ।

आमि जानि, जाब जबे
ससारेर रङ्ग भूमि छाडि
साक्ष्य देबे पुष्पवन ऋतुते ऋतुते
ए विश्वेर भालोबासियाछि ।

ए भालोबासाइ सत्य, ए जन्मेर दान ।
विदाय नेबार काले
ए सत्य अम्लान हये मृत्युरे करिबे अस्वीकार ।

अपनी कीर्ति पर मै विश्वास नहीं करता:
जानता हू कालसिन्धु उसको
तरङ्गों के निरन्तर आघातों से
दिन ब दिन लुप्त कर देगा ।

मेरा विश्वास अपने आप में है,
दोनों वेला उसी पात्र को भर कर
इस विश्व की नित्य सुधा का
पान किया है ।

प्रति मुहूर्त का प्यार;
उसमें सञ्चित हुआ है ।
दु ख के भार ने दीर्ण नहीं किया,
उसके शिल्प को
धूल ने काला नहीं किया,

मै जानता हू, जब जाऊँगा
ससार की रङ्ग भूमि को छोड कर
पुष्पवन प्रत्येक ऋतु में साक्ष्य देगा
इस विश्व को प्यार किया है ।

यह प्रेम ही सत्य है, इस जन्म का दान है
विदाई लेने के समय
यह सत्य अम्लान रह कर मृत्यु को अस्वीकार करेगा ।

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गुरुदेव पुण्य तिथि– ७ अगस्त

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम म मुद्रित और प्रकाशित ।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

सितम्बर १९६१ वर्ष १० : अंक ३

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ भा. सर्व सेवा सघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

सितंबर १९६१

वर्ष १० अक ३.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। अिसका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है। चदा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ३ ★ सितम्बर १९६१

शरदारंभ में शारदा की सेवा

दस वर्षों की भूदान-यात्रा में हमने सब जगह यह अनुभव किया कि सर्वोदय-साहित्य के लिए जनता में भूख पैदा हुई है। अनेक वादोंने और विवादों ने मिलकर के भारतीय जनता के चित्त को समाधान देने में अपनी असमर्थता साबित की है। इससे उल्टे, बावजूद इसके कि सर्वोदय के सेवक अपने जीवन में सर्वोदय-विचार को प्रकाशित करने में लगभग असमर्थ साबित हुए है, सर्वोदय-विचारों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। जो युग-धर्म होता है उसकी यही पहचान है। लोगों की यह भूख कृत्रिम नहीं है। जैसे दिनभर इधर उधर उड़कर थका पक्षी शांति के लिए अपने घोसले में पहुंच जाता है वैसे भारतीय मन सर्वोदय-साहित्य को अपना विश्राम-स्थान महसूस कर रहा है। ऐसी हालत में सर्वोदय-सेवकों का यह कर्त्तव्य रहेगा कि वे उस साहित्य को घर घर पहुंचा दें। यह सर्वोदय सेवकों का नित्य-कर्म ही होना चाहिये। उसके साथ साथ वह नैमित्तिक कर्म भी बने तो एक अभियान का स्वरूप उसको आ सकता है। इस दृष्टि से सर्व सेवा संघ सोच रहा है कि हर साल शरदारंभ में दो-तीन हफ्ते खास शारदा की सेवा के लिए दिये जायं। उधर तमिळनाड् वाले इस काम में अग्रसर हो चुके है। उसका अनुभव भी अच्छा आया है। आशा करता हूं सर्व सेवा संघ की इस सूझ का क्षुधित जन उत्साहपूर्वक स्वागत करेंगे।

साहित्य में पुस्तकों के अलावा पत्रिकाओं का भी अपना स्थान है। पत्रिकाएं नियमित रूप से गांव-गांव में पहुंचे तो लोक-मानस में सतत स्फूर्ति-संचार होता रहेगा। इसलिए पत्रिकाओं के प्रचार की तरफ भी खास ध्यान होना चाहिए।

विनोबा का
जय-जगत्

ग्राम शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा

काका कालेलकर

गांधीजी की नई अथवा बुनियादी तालीम का स्वरूप समझाते मैने हमेशा दो बातों पर विशेष जोर दिया है।

मै कहता हू कि आज तक शिक्षा के वाहन (माध्यम) की चर्चा में अंग्रेजी या स्वभाषा की चर्चा होती आयी है। लोग अंग्रेजी भले ही सीखें, किन्तु शिक्षा का वाहन तो वही भाषा हो सकती है जो विद्यार्थी के लिये परिचित है, नजदीक की है और सुलभ है, जिसका बोझ विद्यार्थी को उठाना नही पडता। ऐसी भाषा तो स्वभाषा अथवा स्वदेशी भाषा ही हो सकती है। आज देशमें अंग्रेजी को ही वाहन या माध्यम बनाने की बाते जोरो से चलती हैं। आजकल के अध्यापक अंग्रेजी में ही पढा सकते है, यह उनकी कमजोरी है। स्वभाषा के द्वारा पढाने का वे पर्याप्त प्रयत्न ही नही कर रहे हैं। यह उनके पुरुषार्थ का अभाव है, निर्वीर्यता है। और इसीलिये वे विद्यार्थिओ पर अंग्रेजी जसी अपरिचित, परायी भाषा द्वारा समझान का अत्याचार कर रहे है। आजकल बडे-बडे लोग भले ही माध्यम के तौर पर अंग्रेजी का पुरस्कार करते होगे। लेकिन वह निरा पागलपन है, विद्यार्थी द्रोह है और उससे ज्ञान साधना में क्षीणता आनवाली है इसमें कोई शक नही है। जागृत हुई जनता दीर्घकाल तक इस अत्याचार को सहन नही कर सकेगी और अंग्रेजी के जरिये ही पढाने का आग्रह रखनेवाली सरकार यथासमय टूट जायेगी।

भाषा के बारे में हमारा-गांधीजी का-निर्णय ऊपर दे चुका हू। लेकिन नई तालीम की हमारी दृष्टि कहती है कि तालीम का जरिया, शिक्षा का वाहन भाषा नही, किन्तु प्रत्यक्ष कर्म ही हो सकता है। गुरु-शिष्य किस भाषा में बोले, विचार-विनिमय करे? इसका जवाब है-स्वदेशी भाषा में, स्वभाषा में। न कि अंग्रेजी में। लेकिन शिक्षा का जरिया, वाहन, या माध्यम तो कोई राष्ट्रोपयोगी प्रवृत्ति का रचनात्मक कर्म ही हो सकता है।

निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और निर्मिति यही है शिक्षा का सच्चा माध्यम। इसलिये बच्चों को और बडो को भी जो कुछ भी हम सिखाना चाहते है, प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा ही सिखाना चाहिये। क्रिया द्वारा सीखी हुई चीज पक्की होती है। उसमें गलतिया कम होती हैं और पूरी पूरी कुशलता आती है। शिक्षक जहा तक हो सके, करके दिखावे। विद्यार्थी का करने में मदद करे और जहा आवश्यक हो मुह से समझाये भी। लेकिन कर्म के द्वारा सिखाने से ही बुद्धि का विकास तुरन्त होता है, अच्छा होता है और भ्राति के लिये अवकाश नही रहता। बुद्धि के विकास के लिये उत्तम से उत्तम साधन कर्म ही है। "बुद्धि कर्मानुसारिणी।"

यह हुई एक बात। जिस दूसरी बातपर मैं जोर देता आया हू वह है शिक्षा के हेतुकी और शिक्षण काल के वायुमडल की।

पुराने जमाने में सांस्कृतिक आदर्शों की शिक्षा घरके जीवन में अुत्सव-त्योहार के द्वारा पुराण-श्रवण द्वारा और सामाजिक जीवन की चर्चा के द्वारा मिलती थी और आजीविका की शिक्षा अच्छे से अच्छे, कुशल, माहिर अुस्तादों के काम में मददगार होकर, शागिर्द देखादेखी प्रयोग करके और अुस्तादका सहायक बनकर लोग पाते थे।

अुसके बाद नौकरी पाने के लिये जरूरी शिक्षा हासिल करने के दिन आये। लोग अुसे "एजुकेशन फार ए जॉब, एजुकेशन फार ए करियर" कहने लगे। "शिक्षा याने नौकरी की तैयारी" यह आदर्श संकुचित है अितना समझने में बहुत देरी नहीं लगी। फिर शिक्षाशास्त्रियों का मंत्र चला, "एजुकेशन फार लैफ" समस्त, समर्थ और समृद्ध जीवन की साधना के रूप ही शिक्षा देने की होती है, यह व्यापक आदर्श तत्वतः समाजमान्य हुआ। जीवन समझने के लिये और जीवन जीने के लिये जो-जो विषय जरूरी थे उनकी शिक्षा सरकार की ओर से मिलने लगी। जीवन की सफलता के लिये जरूरी सब बातें हम पढ़ाते हैं यह रहा शिक्षा शास्त्रियों का दावा।

अिस चीज को मान्य करके गांधीजी अपनी नई तालीम में अेक कदम आगे बढे। उन्होंने कहा कि समस्त, समर्थ और समृद्ध जीवन के लिये व्यक्तिगत अेवं सामाजिक जीवन के लिये जरूरी सब बातें सिखाने का आदर्श मंजूर है। अैसे आदर्श का अिन्कार कौन करेगा? लेकिन अैसी शिक्षा का जरिया भी जीवन ही हो सकता है।

जीवन नौ बटा दस ($\frac{9}{10}$) हिस्सा आजीविका प्राप्त करने के लिये किसी-न-किसी पेशे का कौशल हासिल करने का होता है। जीवन जीना, खाना, पीना नहाना-धोना, अन्न पकाना, मकान साफ रखना यह हो गई जीवन की प्रारंभिक बातें। उसके बाद अनाज के लिये खेती करना, कपडे के लिये वस्त्र बनाना, रहने के लिये मकान खडा करना और सब कामों के साधन के रूप अच्छे-अच्छे औजार बनाना यही होती है जीवन की अधिकांश साधना।

अिसी जीवन-साधना को शिक्षा का जरिया बनाना यही है नई तालीम का रहस्य और उसकी खूबी।

गांधीजी ने यह भी कहा कि जब राष्ट्र का बडा हिस्सा गांवों में रहता है, ग्रामीण उद्योग-हुन्नर को ही शिक्षा का जरिया बनाना चाहिये। समस्त प्रजाका स्वाभाविक बुद्धि-विकास खेती और स्थानिक ग्रामोद्योग चलाने से ही होता है। आजीविका के लिये ग्रामोद्योग अत्यावश्यक हैं ही। किन्तु बौद्धिक विकास के लिये, सूझ और व्यवस्थाशक्ति बढाने के लिये ग्रामोद्योगों से बढ़कर अच्छा जरिया है नहीं। विद्यालय ज्यादातर परिश्रमालय ही होना चाहिये। तभी जाकर जनता का बौद्धिक विकास सप्रमाण होगा और जीवन के अनुभव द्वारा बुद्धि परिपक्व होनेपर मनुष्य जीवनचतुर, जीवन-कुशल और सयाना बनेगा। जीवन के द्वारा ही सब तरह की संस्कारिता आ सकती है। (सफल जीवन के द्वारा ही सब संस्कारिता की, संस्कृतियों की कसोटी होती है।)

यहां तक तो गांधीजी कह गये। लेकिन इस चीज को अमल में लाते-लाते हमें साक्षात्कार हुआ कि बुनियादी तालीम, नई तालीम हम पाठशाला के मकान में नहीं चला सकते। लडके मन्दिरों में, मस्जिदों में धर्मशाला में या

किसी खास मकान में भले ही बैठें, गाव के लोग अपनी सहूलियत के लिये समस्त ग्राम की एक गौ-शाला बनावे, ग्रामोद्योग की सफलता के लिये परिश्रमालय चलावे; किन्तु नई तालीम या विद्यालय तो कोई अलग मकान नही, सारा पूरा ग्राम ही हो। विद्यार्थियो को नई तालीम देने के लिये उनको सारे गाव में घुमाना चाहिये। खेती के दिनो में उनसे खेती करने में मदद लेनी चाहिये। गाव सफाई का काम विद्यार्थियो को ही सौप देना चाहिये। स्वयसेवक दल गाव के नौजवानों का ही हो। लडकियो का भी एक अलग दल होना ही चाहिये। गाव के १५ बरस के ऊपर के सब लड़के-लड़कियां शान्ति सेना में भरती हो। और जब समस्त गाव एक बडा विराट परिवार बनेगा तब गाव के सब छोटे-बडे लडके और लडकिया स्वयसेवक बनकर गाव का सब काम करेंगे और करवायेंगे। विद्यार्थी दल और स्वयसेवक दल में ज्यादा फरक होना ही नही चाहिये। सारा पूरा गाव और उसकी सारी पूरी प्रवृत्ति-यही होनी चाहिये गाव की पाठशाला।

इतना किया तो अभ्यासक्रम, पाठ्यपुस्तकें, इम्तहान या झझट और डिग्री-डिप्लोमा की बला कुछ भी नही रहेगी। विद्यार्थिओ का इम्तहान सारे समाज के सामने दिन-प्रतिदिन होता ही रहेगा। उसके अनुसार उसकी योग्यता और लोगों का अभिप्राय घटता-बढता जाता है। जीवन की ऐसी सादी और शुद्ध व्यवस्था ही शिक्षा का तन्त्र बनेगी। सर्वोदय की प्रवृत्ति अलग, कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स अलग, स्वयसेवक दल अलग और शान्तिसेना अलग- ऐसा अलग-अलग सोचना ही नही पडेगा। जीवन के जरिये जीवन की शिक्षा और उसीके द्वारा जीवन की सफलता यही होनी चाहिये बुनियादी शिक्षा का और ग्राम जीवन का वैज्ञानिक स्वरूप।

(मगल प्रभात से तारीख १ अगस्त १९६१)

"यहां बच्चे ऐसे काम सीख रहे है जो उन्हें अपनी परिस्थितियो का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के समर्थ बनाएंगे। मवेशियो का पालन-पोषण, चरागाह का चुनाव, अनाज उगाना और तैयार करना-यह सब ऐसे काम हैं, जिन पर सारी दुनिया का जीवन निर्भर करता है। बहुत ही प्रगतिशील स्कूलो में जैसे होता है, यहां भी बच्चे ध्यानपूर्वक सुनने, देखने और करने से सीखते है। उनकी शारिरिक तथा मानसिक प्रवृत्तियां साथ-साथ चलती हैं। इससे भी बढकर, बच्चे जानते हैं कि जो कुछ वे कर रहे है उसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है-कल का भोजन या साल का फसल। शिक्षा का पहला सर्वमान्य ध्येय यही है-बच्चो को आज की और बाद की भी परिस्थिति का मुकाबला करना सिखाना।"

"एजुकेशन एण्ड चेंज"-पुस्तक से।

मनमोहन चौधरी

आज की समस्याऐं

भारत एक गरीब पिछड़ा हुआ देश है। उसकी गरीबी मिटाकर लोगों का जीवनमान जल्द से जल्द ऊंचा करना हमारे सामने सब से बड़ा काम है। इसके लिये एक तरफ समाज रचना में परिवर्तन का प्रयत्न करना है जिससे कि उसकी विषमताएँ मिटें, समाज में उत्पन्न होने वाले धन का अधिक समतापूर्वक बंटवारा हो तथा समाज की सारी साधन सामग्री और शक्ति उत्पादन में लगे। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की सहायता से हम यह साधन सामग्री तथा उसकी शक्ति बढ़ाने की कोशिश भी करते हैं। स्वराज्य के बाद दो पंचवर्षीय योजनायें बीत चुकी हैं और तीसरी की शुरुआत हो रही है। इन योजनाओं के बारे में सर्वोदय की दृष्टि भिन्न रही है और जिन गृहीत सीद्धान्तों पर वे आधारित हैं उनके बारे में मतभेद है। मोटे तौर पर हम केन्द्रित उद्योगों के खिलाफ रहे हैं तथा विकेन्द्रित उद्योगों पर ही हमने अधिक भार दिया है। मनुष्यशक्ति तथा पशु शक्ति के उपयोग पर हमने अधिक जोर दिया है जो इस देश में आज व्यापक पैमाने पर बेकार जा रही है। इसलिये प्रचलित विचारधारा तथा संयोजन में जहां लोहा, इस्पात, तेल, बिजली, मोटर, लोकोमोटीव आदि के कारखाने तथा उनमें काम करनेवाले इंजीनीयर, टेक्नीशीयन आदि की तालीम पर जोर है, वहां सर्वोदय में हम खादी, ग्रामोद्योग, खेती तथा उनको चलाने वाले तज्ञ कार्यकर्ताओं की तालीम पर जोर देते हैं। दोनों विचारों की दिशाएँ परस्पर बिलकुल विपरीत मालूम पडती हैं, साथ ही पुरानी तालीम तथा नई तालीम के ध्येय भी एक दूसरे से भिन्न लगते हैं। हम जरा इन दोनों तरीकों से अलग होकर सोचें। थोडा सोचने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि भारत की जनता का जीवनमान उठाने के लिये हमें आधुनिक विज्ञान की सारी शक्तियों की सहायता लेनी होगी। आज सभ्य जीवन का जो मान बन गया है, उसके लिये ऐसा हिसाब लगाया गया है कि आज के मूल्यमान के अनुसार प्रति व्यक्ति कम से कम ६० रुपये—यानी हर परिवार को ३०० रुपये की माहवार आमदनी चाहिए। सिर्फ मनुष्य तथा पशु की शक्ति से यह संभव नही होगा। इसके लिए हमें दूसरी नैसर्गिक शक्तियों की मदद भी लेनी होगी।

इसलिये जिन केन्द्रित उद्योगों का विकास इस देश में हो रहा है एक हदतक उनकी आवश्यकता है, उनके पैमाने तथा प्राथमिकता के बारे में मतभेद होगा; शायद इस्पात के चार कारखाने अभी खड़े करने की आवश्यकता नहीं थी, यह हम कहेंगे। सीद्री का हम विरोध करेंगे, पर मोटरें, लोकोमोटीव, हवाईजहाज, आदि से लेकर बिजली के सामान, मशीन टूल्स, इलेक्ट्रोनीक्स आदि सैकडों प्रकार के आधुनिक उद्योगों का विकास यहां शीघ्रातिशीघ्र करने की आवश्यकता है, यह मानना पडेगा। हां, इनके संगठन तथा संचालन में विकेंद्रीकरण का

माद्दा अधिक से अधिक आये, यह हम जरूर चाहेंगे ।

दूसरी तरफ हमें खेती में तथा खादी ग्रामोद्योगों में भी बिजली आदि शक्तियों का उपयोग करना पडेगा । यह हम किस क्रम से करें तथा कौन से काम पूरे पूरे मनुष्यों की अंगुलियों के लिये सुरक्षित रखे जाय यह एक प्रयोग तथा संयोजन का विषय है, पर 'पावर' से अछूते खादी ग्रामोद्योगों की कल्पना अब खतम हो चुकी है ।

इसका मतलब यही है की आज जो योजना में माग रखी जाती है कि हमें सालाना तीस हजार टेक्नीशीयन्स, दस हजार वैज्ञानिक या साठ हजार चिकित्सक चाहिए और उन्हे उत्पन्न करने की शिक्षणव्यवस्था चाहिये, यह सारा नई तालीम के बाहर का विषय नहीं होना चाहिये । खादी ग्रामोद्योग तथा नई तालीम के कार्यक्रम का यह एक मुख्य ध्येय है कि जनता का अभिक्रम जागृत हो जाय तो करोडो की बुद्धि तथा बल से भारत का उद्योगीकरण आज से कही अधिक तेजी से आगे बढेगा । हमें आज की प्रगति से संतोष नहीं है, अणुशक्ति की आराधना करने वाले वैज्ञानिक से शुरू करके ग्रामोद्योग के टेकनीशीयन तक हजारो नही, लाखो वैज्ञानिक, तज्ञ, टेक्नीशीयन चाहिये और नई तालीम का यह दावा होना चाहिये कि उसके जरिये आज से कही अधिक संख्या में तथा अधिक कुशल, अभिक्रमशील और सृजनशील तज्ञ और वैज्ञानिक उत्पन्न होंगे ।

आज सेकंडरी एजुकेशन के पाठ्यक्रम में भी कई उद्योगों को स्थान दिया गया है। उसका पाठ्यक्रम देखनेपर अचंभा होगा कि औद्योगिक शिक्षण की आवश्यकता किस हद तक स्वीकृत हो चुकी है । लेकिन वास्तविक स्थिति उससे करीब करीब उल्टी है । देश में शायद सौ में दो ही चार ऐसे सेकंडरी स्कूल मिलेंगे जहां किसी धंधे की वास्तविक तालीम दी जाती हो । औद्योगिक तालीम या टेस्ट ही परीक्षा में १०० नंबर प्राप्त करने में है । इसलिये परीक्षा में पास होने के लिये जितनी चाहिये उतनी ही जानकारी ठूस दी जाती है। विद्यालय में नियमित उत्पादन के आधार पर उद्योग चले बिना–याने नई तालीम के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना–उनमें उद्योग का वातावरण बनना असंभव है ।

पर इसमें नई तालीम को भी आगे बढने की आवश्यकता है । सारे देश के कोने कोने में शीघ्र फैलाया जा सके, इस दृष्टि से ही बुनियादी तालीम के आरंभ की अवस्था में कताई, बुनाई तथा खेती को मूल उद्योग के तौर पर लिया गया । पर आज बुनियादी के ऊपर के वर्गों में तथा उत्तर बुनियादी में विविध धंधो के समावेश की आवश्यकता है । ये धंधे सिर्फ परंपरागत ग्रामोद्योग ही नही, आधुनिक जीवन से संबंध रखने वाले भी होने चाहिये । केंद्रित उद्योगों के विकेन्द्रीकरण का प्रयोग तथा शुरुआत यही से होनी चाहिये । नट्स व ब्ल्टस, साइकिल के पुरजे तथा पूरी साइकिल बिजली के सामान, रेडियो के पुरजे, खेती ग्रामोद्योगों के औजार, हाथ से तथा मोटर से चलने वाले पानी के पंप, उसके लिये मोटरें आदि सैंकडो चीजें इस तरह बुनियादी शालाओं में बन सकती है और बननी चाहिये । इससे आधुनिक वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान

का विस्तार देश में व्यापक पैमाने पर होगा और देश के औद्योगीकरण के लिये एक विशाल भूमिका निर्माण होगी।

परंपरागत ग्रामोद्योगों का तकनीकी स्तर ऊंचा उठाने की दिशा में प्रयोग बुनियादी विद्यालयों में चलने चाहियें। अण्णासाहब सहस्रबुद्धे ने सेवाग्राम में ग्रामोद्योगों की क्षमतावृद्धि का जो प्रयोग शुरू किया है वह इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

आज हमारे देश के सामने दूसरा बड़ा सवाल यह है कि शिक्षण की प्रक्रिया सामाजिक भेदों को बढ़ावा देनेवाली साबित होती है। कोई भी लड़का चार वर्ग तक पढ़ लेता है तो मेहनत मशक्कत से बचना चाहता है। उच्च शिक्षा उच्च कमाई का ही साधन मानी जाती है। समाज के प्रति कृतज्ञता तथा कर्तव्यभावना बहुत ही कम देखने को मिलती है। अिस समस्या के दो पहलू हैं। अेक तो यह की पढ़ाई के बाद अूंची आमदनी की अपेक्षा एक हद तक स्वाभाविक तथा स्वस्थ मनोवृत्ति का लक्षण है। गाव के लोग जहां बिलकुल गरीबी में पिसे जा रहे हैं वहां यह अपेक्षा स्वाभाविक ही है की आठ दस साल शिक्षण प्राप्त करने के बाद लड़के की कमाई की शक्ति बढ़े। अगर बिना पढ़ा लिखा बाप खेती या बढ़ईगीरी से जितना कमाता था, लड़का दस साल पढ़ाई के बाद भी उस धंधे को उसी प्रकार चलाकर उतना ही या उससे कम कमाये तो फिर पढ़ाई की जरूरत क्या? आज पढ़े लिखे लोगों के लिये नौकरी करीब-करीब आमदनी का एक-मात्र जरिया है। अिसलिये कुछ लोग नौकरी के लिये पढ़ना चाहते हैं तो और कुछ लोग–जिनको नौकरी तक पहुंचने की उम्मीद ही नही है– अपने बच्चों को विद्यालय में भेजना ही आवश्यक नही समझते। अिसलिये यह जरूरी है कि विकेन्द्रित उद्योगों से अच्छी कमाई की शक्यता का निर्माण किया जाय। उत्तर बुनियादी के बाद अगर कोई भी लड़का सात आठ घंटे मेहनत करके दो ढाई सौ कमाने की योग्यता प्राप्त कर लेगा तो फिर नौकरी के लिये दौड धूप बहुत ही कम हो जायेगी।

सवाल का दूसरा पहलू यह है कि आज की प्रचलित शिक्षण व्यवस्था में समाज बोध के विकास का कोई स्थान नही है। उसकी मानसिक भूमिका पूरी पूरी पूंजीवादी याने व्यक्तिवादी है। नई तालीम में इस समाजभावना के निर्माण के अनुकूल अमुक प्रकार का वातावरण तथा तकनीको का विशेष स्थान माना गया है और यह कोई भी स्वीकार करेगा कि सामान्य विद्यालय के विद्यार्थियों की बनिस्बत नई तालीम के विद्यार्थियों में समाजभावना कही अधिक मात्रा में पाई जाती है। पर अिसका कोई लेखा जोखा हमारे पास नही है। अिसको हम कहातक आगे बढा सकते हैं? समाज पर अिसका असर नजर में आये, यह कैसे हो सकता है? उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हम अिस वातावरण तथा तकनीक को कैसे दाखिल करेंगे।

पांच हजार या शायद उससे भी कही अधिक उच्चशिक्षण पाये हुये हिंदुस्तानी नवजवान आज अमरीकी संयुक्त राष्ट्र तथा दूसरे देशो में बसे हैं जहां वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने गये थे। वहां से वे भारत को लौटना ही नही चाहते। वहां के सुखी, संपन्न जीवन के आकर्षण से छूट नही सकते। इस सवाल का हल क्या है? भारत सरकार ने वैज्ञानिकों को ऊंचा मेहनताना देना शुरू किया है। पर

क्या एक गरीब देश के लिये यह उचित है और कितना भी ऊचा वेतन हम क्यो न दें, अमरीका के साथ स्पर्धा में कतई टिक नही सकते। इसलिये इस सवाल का हल नैतिक विकास में ही मिलने वाला है और शिक्षण में नैतिक विकास का समावेश कैसे हो, इसका कोई समाधानकारक मार्ग किसी को हाथ लगा हो, एसा दीखता नही।

आर्थिक विषमता के प्रश्न को छोडकर हम जरा नैतिक विकास के व्यापक क्षेत्र की ओर मुडेंगे तो आज विद्यार्थियो में अनुशासनहीनता का सवाल हर कही खडा हुआ दीखेगा। हमारे देश के शिक्षण की धुरी सभालने वाले धुरधरो को इसका यही एक उत्तर मिला है कि विद्यार्थियो को मिलिटरी के हवाले कर दो। 'लाजिमी राष्ट्रीय सेवा' की परिकल्पना सैनिक अनुशासन के वाहन के तौर पर ही की गई है। सैनिक विद्यालयो का आज देश में बोलबाला है। कही एक सैनिक विद्यालय का उद्घाटन करते हुये हमारे प्रतिरक्षा मत्री श्री कृष्णमेनन ने जैसा कहा है, वे सचमुच बढती हुई मिलीटरीजम का लक्षण नही है, वह शिक्षण का दिवाला निकलन का ही लक्षण है। आज सैनिक विभाग ही एक ऐसा विभाग है जहा अमुक प्रकार के गुणो की आवश्यकता अपरिहार्य मानी जाती है और उसकी तालीम सैनिक विद्यालयो में देने की कोशिश होती है, क्योकि हमारी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारो के सेक्रटरीयट तथा दूसरे विभाग जिस ढग से चलते हैं उस ढग से किसी लडाई का इन्तजाम एक भी दिन चले तो सारा मामला तुरत ही खतम होगा। इसलिये सैनिक अफसरो में कुछ ऐसे गुण पाये जाते हैं जिनका दर्शन समाज के दूसरे किसी वर्ग में उस हद तक नही मिलता। यह मानी हुई बात है कि आज सैन्य विभाग एकमात्र ऐसा विभाग है जो भाषा, प्रान्त, जाति आदि भेदो से करीब करीब मुक्त है और जिसमें एक अखिल भारतीय भावना है। अपने जीवन को खतरे में डालकर कर्तव्य करन की आदत उनको होती है तथा नेतृत्व के गुणो का विकास उनमें एक हद तक हुआ होता है। सैनिक अफसरो को नेतृत्व की व्यवस्थित तालीम दी जाती है। इन सब कारणो से ही आज सैनिक विद्यालयो के लिये इतना आकर्षण है। सैनिक विद्यालयो के साथ साथ मिलीटरिजम भी बढेगा, लोकतत्र पर भी खतरा आयेगा इस सभावना तक लोगो की दृष्टि पहुचती नही। अगर इस सैनिकीकरण के खतरे से देशको बचाना हो तो सिर्फ उसीका विरोध करने से नही चलेगा। जिस अभाव की पूर्ति के लिये उसका आवाहन हो रहा है, उसकी पूर्ति का दूसरा उपाय हमें सुझाना होगा।

एक–विद्यार्थियो में सृजनशील अनुशासन का विकास नई तालीम में कहा तक हुआ है उसकी छानबीन करके हमें देश के सामने रखना होगा। तथा उस प्रयोग को आगे बढाते हुए उच्चतम शिक्षण तक उसे पहुचाना होगा।

दो–उसी तरह उच्च शिक्षण के साथ साथ समाजभावना का भी कैसे विकास हो सकता है, इसका उपाय अपने नई तालीम के प्रयोगो के अनुभव से सुझाना होगा। मैं यहा जरा स्पष्ट कर देना चाहता हू कि हमारे देश में एक प्रकार की स्थितिशील नैतिकता पर जोर दिया जाता है। गाव के लोग गरीब है तो मैं भी उसी प्रकार, उसी के बराबरी का जीवन बिताऊ, जिसमें समाजभावना की पराकाष्ठा मानी

जाती है। बेशक अिसमें आत्मज्ञान को पराकाष्ठा हो सकती है। पर जहां व्यापक गुण विकास का सवाल है वहां मनुष्य के गतिशील, सृजनशील गुण पर ही अधिक दृष्टि रखनी चाहिये। कोरापुट या रत्नागिरी के फटी लंगोटी पहनने वाले आदिवासी गांव का लडका पढालिखा भी उसी प्रकार लंगोटी पहनकर रहेगा, यह अपेक्षा मैं नहीं रखूंगा। वह तो देशके सामान्य भद्रजनों का जैसा लिबास पहनना चाहेगा। गांव से बाहर जाकर व्यापक दुनिया को देखने का—उससे अनुभव लेने का—हौसला उसमें पैदा होगा। पर मैं यह जरूर चाहूंगा कि तज्ञ अर्थ शास्त्री, इंजिनियर या वैज्ञानिक बनकर वह अपने दुःखी देशवासियों के दुःख दूर करने के लिये ही अपनी सारी विद्या तथा शक्ति का उपयोग करे, उसी में अपनी सार्थकता माने। विदेश में पढाई के लिये जाय तो वहां बस जाने का मोह उसे न हो, गरीब देश की समस्याओं को झेलने की पुरुषार्थवृत्ति तथा उनपर विजय प्राप्त करने की साहसपूर्ण अभिलाषा उसमें हो।

तीन—नेतृत्वशक्ति का विकास किस प्रकार हो सकता है, उसके भी प्रयोग हमें करने होंगे। नेतृत्व याने सिर्फ राजनैतिक या उसी प्रकार के आंदोलनात्मक नेतृत्व नहीं समझना चाहिये। जीवन प्रवाह की विविध धाराओं में हरएक में —विज्ञान, साहित्य, कला, समाज सेवा, उद्योग आदि में—आगे चलने वाले, नये मार्ग निकालनेवाले, कइयों को इकट्ठा कर के संगठन खडा करनेवाले नेताओं की आवश्यकता होती है। लोकतान्त्रिक संदर्भ में इस नेतृत्वशक्ति का व्यापक दर्शन टीम स्पिरिट के रूप में मिलना चाहिये। सारे देश में जब इस नेतृत्वशक्ति का विकास होगा तथा टीम स्पिरिट का दर्शन मिलेगा तो उसमें से देश की बडी बडी जिम्मेवारियां संभालने वाले नेतृत्व का उदय होगा। इस प्रकार के व्यापक वृहत्तर नेतृत्व की तालीम किसी संस्था में देना संभव नहीं है। पर सीमित अर्थ में नेतृत्व की तालीम की आवश्यकता तथा गुंजाइश है।

ये तीन मुद्दे एक दूसरे से अलग नहीं हैं, जुडे हुये हैं। अन्य कई गुणों का विकास भी आवश्यक है, पर महत्व की दृष्टि से इनको यहां लिया है। इसके बारे में नई तालीम को सोचना पडेगा। हमारी प्रचलित शिक्षण व्यवस्था में जिस गुणविकास की कमी है और जिसे सैनिक शिक्षण से भरने की कोशीश हो रही है, उसके बदले एक लोकतांत्रिक, साम्ययोगी, शांतिपरायण समाज के लिये अनुकूल, सृजनशील नैतिकता का नया नमूना नई तालीम की ओर से पेश नहीं होगा तो और किस की ओर से होगा? अिस मामले में नई तालीम के आजतक के अनुभवों का निष्कर्ष देश के सामने रखना चाहिये। तथा उनके बारे में अध्ययन तथा प्रयोग होने चाहिये। उच्चतम शिक्षण तक नई तालीम के कुछ प्रयोग जरूर चलाये जाने चाहिये जहां इस प्रकार गुण विकास का प्रयत्न हो।

दो मुख्य सवाल मैंने पाठकों के सामने रखे हैं; एक नई तालीम के जरिये तकनीकी विकास का, दूसरा गुण विकास का। दोनों दिशाओं में हम कुछ सोचेंगे तथा करेंगे तो नई तालीम आंदोलन को आगे बढाने में मदद होगी, अैसा मैं मानता हूं।

नई तालीम में शिक्षण पद्धति-२

पढ़ना, लिखना, और गणित

मार्जरी साईक्स

दैनदिनी से सबंधित लेख में मैंने कहा था कि मै उसमें १ ले, २ रे दर्जे को लिखने की कला सिखाने के विषय को नही ले रही हू, बल्कि इसके बारे में अलग विचार करना चाहिये। अभी इस विषय को ले, यह ठीक लगता है। मै यहा सिर्फ लिखने के बारे में ही नहीं बल्कि सीखने के तीनो उपादानभूत विषयो—पढना, लिखना और गणित के बारे में ही चर्चा करुगी। लिखने के पहले बच्चे को पढना आ जाय, और अब लिखने के पहले गिनना आ जाय, यह तर्कसगत है, मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से भी ठीक है। बुनियादी तालीम के बारे में शुरू के ही एक लेख में गाधीजी ने कहा था कि छोट बच्चो की पढने और गिनने की शक्ति सामान्यत उनके लिखन की क्षमता से छ महीने आगे रहेगी। उन्होने यह भी सुझाया था कि लिखना सीखना चित्रकला के साथ जुडा हुआ होगा—याने बच्चा अक्षरो के आकार बनाते समय उनकी सुन्दरता और सौष्ठव के बारे में सचेत होगा। ये दोनो विचार सीखने की प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्तो के बारे में गाधीजी को जो सही दृष्टि थी, वह हमें दर्शाते है। आगे चल कर इसके बारे में और चर्चा करेगे।

पढना और लिखना केवल उद्योग के साथ ही नही, बल्कि स्कूल के दैनिक जीवन की सभी प्रवृत्तियो के साथ समन्वित हो सकता है। जब बच्चे पहले स्कूल में आते हैं तो एक दूसरे के नाम सीखना 'पारिवारिक भावना" में मदद करता है। अपने और दूसरों के नाम लिखने पर कैसे दीखते हैं यह देखने के लिये बच्चो की स्वाभाविक उत्सुकता जगायी जा सकती है। इस तरह नाम पहचानना एक खेल बन सकता है, सब नाम अलग अलग कार्ड पर बडे बडे, साफ अक्षरो में लिखे जायगे और उनको निकाल कर पहचानने में बच्चो को बडा मजा आयगा, साथ-साथ अक्षरज्ञान का अभ्यास भी पक्का होगा।

जब बच्चे इस तरह नाम पहचानने में समर्थ बन जायगे तो रोजाना हाजिरी लेने में उनकी मदद मागी जा सकती है। बच्चे हाजिरी बही में से वर्ग के बच्चो के नाम पढेंगे, जो उपस्थित है उनके नाम के आग निशान लगाएग और फिर ये निशान कितने हुए, और कतार में कितने बच्चे है, यह गिन लेगे। अलबत्ता इसके लिये पक्की हाजिरी बही का उपयोग नही करना चाहिए। हफ्ते हफ्ते में अलग सूची तैयार करनी होगी जिस पर से हाजिरी नायक अपना आलेख तैयार करेगा। इसको शिक्षक जाच लेगें और फिर पक्के रजिस्टर पर चढा देंगे। इस प्रकार के अभ्यास से बहुत फायदा है। इससे पढने और गिनने का प्रत्यक्ष प्रयोजन बच्चा समझ लेता है, ठीक ठीक आलेख रखने के काम से उसका परिचय होता है, और वह भी समाज का एक जिम्मेदार सदस्य है, यह भावना उसके मन में बैठ जाती है। जब बच्चे लिखना सीख गये होगे, तो नाम भी खुद लिख

कर सूची तैयार कर लेंगे, लेकिन शुरू-शुरू में तो सूची में नाम लिखने का काम शिक्षक को ही करना होगा।

रोज काम शुरू करने के पहले अगर शिक्षक श्यामपट पर उस दिन की तारीख, वार और बच्चो की उपस्थिति लिख लेता है तो उससे भी बच्चो को पढने और गिनने का एक स्वाभाविक अवसर मिलता है। शिक्षक बच्चो के साथ सलाह करके लिखेगा। वह पूछेगा "आज क्या वार है ?" बच्चे उत्तर देंगे और फिर शिक्षक वार का नाम लिखते समय उनसे ध्यान पूर्वक देखने के लिये कहेगा। साथ-साथ एक एक अक्षर का साफ उच्चारण भी करेगा। इसी प्रकार वह बच्चो से तारीख, उपस्थिति सख्या आदि भी कहलवायगा, फिर लिखेगा। जब इस प्रकार यह रोज नियमित होता रहेगा तो बच्चे जल्दी ही इन नामो, अक्षरो और अको से परिचित हो जाएगे और उनमें से कई तो शीघ्र ही खुद भी लिखने की इच्छा प्रगट करेगें।

स्कूल जीवन की प्रवृत्तियो के साथ पढना सीखने का सबन्ध जोडने के अवसर साप्ताहिक बाल सभाओ में भी वहुत आते हैं, जहा समाज के द्वारा आवश्यक कामो की जिम्मेदारी उठाने के लिये "मत्री" चुने जाते हैं। सभा को कार्रवाही के साथ, जिन जिन कार्यों के लिये चुनाव हो रहा है, उनका नाम-"झाडू लगाना" "पीने का पानी" "दुपहर का भोजन परोसना" इत्यादि श्यामपट पर लिख देना चाहिए। इसके अलावा उद्योग के साधनो को उनकी जगह पर व्यवस्थित रखने का काम है। बगीचे के काम के औजार-फावडे, खुर्पी, इत्यादि-अगर कमरे के एक कोने में रखे हैं तो प्रत्येक का नाम दीवार पर उसके स्थान के ऊपर लिखा जाना चाहिये। बच्चे ये नाम पढ कर चीजो को अपनी जगह पर ठीक ठीक रख लेगें। अगर साधनो को खूटियो पर टागा है तो उन खूटियो के ऊपर उस उस चीज का नाम लिख देना चाहिये।

रोज की कताई, बगीचे का काम इत्यादि का आलेख रखने में पढने व गिनने के अभ्यास के मौके बहुत आते हैं। वैसे ही चीजो का वजन करने व मापने में तथा घडी देख कर समय बताने में भी। १ ले दर्जे के आलेख इतने सरल होने चाहियें कि बच्चे खुद भी उनको समझ सके और मदद भी कर सकें। रोज वर्ग की समाप्ति पर बच्चो के साथ चर्चा करके एक बहुत ही सरल दैनन्दिनी श्यामपट पर लिख कर तैयार की जा सकती है (२ रे दर्जे के लिये कुछ सुझाव पिछले लेख में दिये थे।) पहले पहल वाक्य बहुत छोटे छोटे होने चाहियें-३ या ४ शब्द-और इन शब्दो को विभिन्न वाक्यो में कई दफे दुहराना चाहिये।

यह सारी पद्धति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि बच्चे पूरे पूरे शब्दो और अको को देखें, पहचानें और समझें जैसे वे रोजाना जीवन में उनके सामने आते हैं। बच्चा शब्दो को एक अर्थपूर्ण इकाई के रूप में देखता है, बाद में वह उसके विभिन्न भागो-अक्षरो-को अलग पहचान सकता है। उदाहरणार्थ उसको यह समझने में देरी नही लगेगी कि सप्ताह के सात दिनो के नामो के अन्त में "वार" आता है -सोमवार, मगलवार इत्यादि। वह अपने मित्रों के नामो के आगे भी "देवी" "कुमार" इत्यादि पदो की आवृत्ति देखेगा। आखिर एक एक अक्षर की ध्वनि को वह पहचानने

लगता है। वर्णमाला से शुरू करने की पुरानी पद्धति से यह बिलकुल उल्टा है। "शिक्षण विचार" में विनोबा न इसका 'पूर्णात पूर्णम्' का सिद्धान्त बताया है और पश्चात्य देशो में आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान ने बच्चो को पढना सिखाने की पद्धति के रूप में इसका समर्थन किया है।

इससे हम एक बडे महत्वपूर्ण मुद्दे पर आ जाते है। पढना, गिनना तोलना इत्यादि की प्रक्रियाओ के साथ रोजमर्रा जीवन की प्रवृत्तियो का समन्वय बच्चो में पढना लिखना और गणित सीखने की एक प्रबल स्वाभाविक आकाक्षा पैदा कर देता है और उसे इस ज्ञान के प्रत्यक्ष वास्तविक उपयोग का भान देता है। फिर भी यह प्रबल प्रेरणा स्वय में बच्चे के रास्ते की सब कठिनाइयो को दूर नही करती है। कुछ बच्चे एसे होगे ही जिनके लिय अक्षराभ्यास और गणित दूसरो से ज्यादा कठिन प्रतीत होगा। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि बच्चे की इन कठिनाइयो के कारणो को समझे और उन पर विजय पाने में विद्यार्थी की सहायता करे। पढना, गणित आदि सिखाने के बारे में अनुभवी शिक्षको न विस्तारपूर्ण किताबें लिखी है जिनके अध्ययन से बहुत लाभ होता है। जोड, घटाव आदि सिखाने की तकनीक तथा कुछ साधारण सुलभ उपकरणो के उपयोग की जानकारी नई तालीम शिक्षक के लिये उतनी ही आवश्यक है जितनी कि किसी दूसरे के लिये।

अमुक विषयो की आवृत्ति व अभ्यास के लिए उपयुक्त सामग्री उपस्थित करना एक विशेष महत्वपूर्ण तकनीक है। पहले दर्जे में अक्षराभ्यास का एक सरल तरीका परिचित वस्तुओ और उनके नामो का साथ मिलाना है। बच्चो को कुछ पत्ते दिये जाते है, प्रत्येक में फलो या जानवरो या घरेलू उपकरणो के पाच पाच चित्र होते है और अलग अलग कार्ड पर पाच नाम लिखे हुये होते है। नाम पढकर उस कार्ड को उन उन वस्तुओ के साथ रखना है। थोडा आगे जाकर किसी प्रवृत्ति को दर्शानेवाले चित्र रख सकते है और उनके साथ प्रश्न होगा, "वह क्या कर रहा है?"। "वह कूद रहा है", "वह नहा रहा है," "वह खा रहा है" आदि आदि उत्तर एक साथ रखे हुए कार्डो पर से देख कर निकालना और ठीक ठीक चित्र के साथ रखना है। इसी प्रकार गणित की विविध प्रक्रियाओ के अभ्यास के लिये भी कार्ड का उपयोग किया जा सकता है। बच्चो की कुशलता की प्रगति के साथ साथ एक समय ऐसा आता है जब वे ऐसे अभ्यास पसन्द करते है, उन्हे यह महसूस करने में आनन्द आता है कि किसी कार्य में उनकी पूरी पूरी दक्षता है।

हां, यह बात जरूर है कि इन साधनो को बनाने में काफी वक्त लग जाता है। लेकिन एक दफे ठीक ठीक बना लिया तो वे बहुत समय तक टिकते हैं और उनका बार बार उपयोग किया जा सकता है, थोडी कुछ मरम्मत या खोय गये की जगह एक आध नये रखने मात्र की जरूरत पडती है। फलो, सब्जियो आदि के सूचीपत्रो में से–जो मुफ्त में ही मिल जाते हैं–और पत्रिकाओ व अखबारो से साइकिल, दवाइया, साबुन आदि के चित्र निकाल कर पुराने पोस्ट कार्डो पर चिपकाने से अच्छे अच्छे चित्रो के कार्ड बन जाते हैं। पाठ्य पुस्तको के इतने पन्ने पढो, और इतना

गणित करो, कहने के तरीके से उल्टा। इससे प्रत्येक बच्चा अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रगति कर सकता है और जो आगे है, पीछे वालों का काम जबतक पूरा नही होता है तब तक बिना कुछ किये बैठे रहने के ऊबने वाले अनुभव से उनका बचाव होता है।

अन्त में लिखने और चित्र कला के सबन्ध के बारे में दो शब्द। लिखना सिखाने का एक पुराना तरीका है, जो बहुत ही अच्छा है-बच्चो को रेत पर लिखने से शुरू करने देना। इसमें बच्चो के हाथ आसानी से चलते है, छोटी जगह की सीमा का बन्धन नही और उन्हे स्वतन्त्रता और आत्मविश्वास का बोध होता है। स्लेट और पेन्सिल कैसे पकडना यह समस्या नही, अक्षरो की बनावट और सुन्दरता पर पूरा ध्यान दिया जा सकता है। बच्चो की चित्रकला के बारे में भी यही सिद्धान्त लागू है। वहां भी निर्बाध स्वतंत्रता और हाथ को पूरा पूरा चलाने की सुविधा की जरूरत है। जब बच्चा अपने हाथ के चलन पर काबू पा जाता है और अपने बनाये हुए रूपो की सुन्दरता में आनन्द लेता है तब धीरे धीरे वह उंगलियों को और पेन्सिल को ठीक ठीक चलाने में समर्थ होता है। रेत के बाद बच्चों के लिखने का सबसे अच्छा माध्यम एक बडा श्यामपट और चॉक है। इसलिये जब कभी आपको एक वर्ग का कमरा बनाने या पुराना दुरुस्त करने का मौका मिलता हो तो उसकी दीवारो पर बच्चो के लिये ठीक ऊंचाई पर खूब सारे ब्लेक बोर्ड बना लीजिये। यह कहने की जरूरत नही कि शिक्षक का हस्ताक्षर ब्लेक बोर्ड पर लिखते समय-और हर वक्त ही–नमूने का हो, इसका ख्याल रखा जाना चाहिये।

मै जानती हू कि इस लेख में शिक्षण की पद्धतियो और व्यवहारो के बारे में बहुत सक्षेप में ही चर्चा की गयी है जब कि इनको पूरा पूरा समझने के लिये ज्यादा विस्तार की जरूरत है। जिन शिक्षको को इस विषय में रुचि है, अगर वह कुछ पूछना चाहें तो उत्तर देने में मुझे हर्ष होगा।

(पृष्ठ ७८ का शेषाश)

ऐसी अपेक्षा थी। प्रौढशिक्षा का उद्देश्य समाज मे नई तालीम के द्वारा नये मूल्यो और वृत्तियो का निर्माण करना था। आज की सघर्षपूर्ण परिस्थिति मे हम इस ध्येय से बहुत दूर हैं।

ग्राम दान के सन्दर्भ मे नई तालीम का यह स्वरूप फिर से प्रस्फुटित हो उठा है। समाज परिवर्तन के लिये जनमानस को तैयार करना शिक्षण की ही प्रक्रिया है। इसके लिये शिक्षा को विकासकार्यों के साथ जोडना ही काफी नही होगा, बल्कि अपने क्षेत्र के निर्माण कार्यों में ही शिक्षा की पूर्ति भी होगी। आज समाज मे जो सघर्ष और तनाव है, उनको हटा कर स्वस्थ सामाजिक वृत्तियो का निर्माण और देश को ऊपर उठाने के लिये नई शक्तियों का सचार करना भी शिक्षा का ही कार्य है। नई तालीम जिस समाज की कल्पना करती है, उसमे लोगो के बीच परस्पर आन्तरिक सवेदना होगी–विनोबाजी के शब्दो मे हर कोई दूसरो के सुख दुख के बारेमें सोचेगा। लेकिन वह शिक्षा स्कूल की चारदीवारी में नहीं दी जा सकती है, न ही केवल स्कूल के शिक्षक ही इस काम को उठा पाएगे। तालीम के सामने नयी समाजरचना की यह प्रक्रिया ओर पहलू सबसे बडी चुनौती है।

राधाकृष्ण

नई तालीम सम्मेलन के अवसर पर

हमें करना क्या है ?

अगले चन्द हफ्तों के अन्दर देश के विभिन्न भागों से आये हुए नई तालीम कार्यकर्ता बुनियादी तालीम के प्रसार तथा देश की शिक्षाव्यवस्था में इसको कारगर रूप में उतारने के बारे में विचार करने के हेतु पचमढी में मिलेंगे।

आज की स्थिति :

बुनियादी तालीम के कार्यक्रम व विकास की वास्तविक स्थिति आज ऐसी है जो मन में गभीर असमाधान पैदा कर देती है। स्वतत्र भारत के करोडो बच्चो के स्वस्थ विकास के लिये उपयुक्त परिस्थिति उपस्थित करने व समाजपुनर्निर्माण के शक्तिशाली साधन के रूप में बुनियादी तालीम की योजना देश के सामने आकर आज २५ वर्ष बीत गये हैं। इस सबन्ध मे विचार करने के लिये सब राज्यो के शिक्षा मत्रियों का प्रथम सम्मेलन दो दशाब्दियो के पहले बुलाया गया था और तब से हर साल सम्मेलनों और सभाओ मे हम बुनियादी तालीम के सिद्धान्तो और कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार करने की घोषणा करते आये हैं। हिंदुस्तानी तालीमी सघ और उससे सबधित सस्थाओं ने निष्ठा और नम्रता के साथ विभिन्न स्तरो की शिक्षा मे उसको प्रयोग में उतारने का प्रयत्न किया है, उन्हें काफी हद तक सफलता भी मिली है।

फिर भी आज हम कहा हैं? इन छोटी सस्थाओं के सामने, जिन्होने स्वतत्र रूप से बुनियादी तालीम का प्रयोग व विकास करने का प्रयत्न किया है—कई कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं। उनके काम की तारीफ तो बहुत हुई, फिर भी उनम शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियो को दूसरे समकक्ष विद्यार्थियों के बराबर उच्च विद्यालयों में प्रवेश नही मिलता है, न काम पर उन्हें लिया जाता है। इससे माता पिताओं और जनसामान्य के मन में इस शिक्षापद्धति के प्रति अविश्वास और अनास्था पैदा हुई। इसलिये शासकीय तत्र की मागो की यथासभव पूर्ति करने के हेतु इन सस्थाओ को अपने सिद्धान्तो मे समझौते और कार्यक्रम मे बदल करना पड रहा है, उनके काम का मौलिक स्वरूप धीरे धीरे विलुप्त होता जा रहा है। कभी कभी ऐसा दीखता है कि प्रचलित व्यवस्था के बन्धनो को पार करना तथा काम के नये तरीके और नये मार्ग अपनाना असभव सा है। पाठ्यक्रम मे इधर इधर हिलने की गुजाईश कम हो रही है, परीक्षा की पद्धति अपने अन्दर भी प्रवेश कर रही है। नये पथप्रदर्शन का उत्साह मिट कर एक अनिवार्य स्थिति को शिकायत करते करते स्वीकार करने की वृत्ति बढ रही है।

राज्यो के द्वारा चलाई जानेवाली बुनियादी तालीम की स्थिति भी कम दर्दनाक नही है। २५ साल के बाद भी प्राथमिक विद्यालयो को बुनियादी पद्धति मे परिवर्तित करने का काम पूरा नही हुआ है। इनमे फिलहाल बुनियादी सिद्धान्तो को अशत कार्यान्वित करने का काम भी गभीरता से नही लिया जा रहा है। पाँच साल पहले भारत सरकार द्वारा नियुक्त समीक्षा समिति ने अपनी जो रिपोर्ट पेश की, उस समय से स्थिति कुछ बदली नही।

अब अनिवार्य शिक्षा की योजना के अनुसार सब लडके लडकियो को स्कूल में दाखिल होना ही है। परन्तु विद्यालयो और शिक्षकों की सख्या में तथा उपकरणो में आवश्यक वृद्धि नहीं हुई है। इस हालत मे हमारे गावो के तथा शहरो के भी स्कूलो के सामने गभीर समस्याएँ खडी हो रही हैं। स्कूलों मे बडी

भीड, उपकरणो और अन्य सुविधाओं की कमी, एक शिक्षक के वर्ग मे इतने बच्चे कि उनपर उचित ध्यान देना असभव होता है, निरीक्षण के पुराने तरीके जो आज की परिस्थिति मे उपयुक्त नहीं हैं,-ये सब एक तटस्थ विचारक के मन मे यह शका पैदा कर देते हैं, इस तरह बिना जरूरी तैयारी के अनिवार्य शिक्षा लागू करने के परिणाम क्या सचमुच वाञ्छनीय हैं ? और असल मे हम समस्या के मूल मे गये ही नही । जो बच्चे स्कूल मे आ नहीं सकते क्यो कि मा बाप को घर मे उनकी मदद चाहिये, उसके बगैर उनको उस दिन की रोटी नसीब नही होगी-उनका क्या होगा ? एक वक्त का नाश्ता, या स्कूल मे जाने के लिये एक जोडी कपडा, घर से उनकी मदद छूट जाने की क्षति की पूर्ति नहीं कर सकता है । आज इन बच्चो की शिक्षा की समस्या हमारी ग्रामीण जनता के आर्थिक स्तर की समस्या के साथ जुडी है और इस सारी परिस्थिति पर समग्र दृष्टि से विचार कर के ही मार्ग निकालना है । नही तो आकडे देख कर ही सन्तोष मानने से धोखा खाने का खतरा है । और तिस पर भी तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त मे छ और ग्यारह साल के बीच के बच्चों के ७६ प्रतिशत ही स्कूल मे पहुचेंगे ।

यह एक गंभीर परिस्थिति है, जिसके परिणामों के बारे में अभी हम पूरे सचेत नही हुए हैं । शिक्षा को एक तुरन्त करने के काम के रूप में नहीं लिया जा रहा है, जिसमे हमारी सारी शक्ति और बुद्धि लगाने की जरूरत है । आज हमें अपने लडके लडकियों को जो शिक्षा मिल रही है, उसके गुणात्मक स्तर और ठीक ठीक प्रसार पर विचार करना चाहिए । और इस सारे प्रश्न को अलग टुकडों में नहीं, परन्तु आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति व समग्र शिक्षा की व्यापक पृष्ठ-भूमि मे देखना और समझना है ।

शिक्षा और विकेन्द्रित व्यवस्था :

इस परिस्थिति के बीच एक नया कदम लिया जा रहा है, जो सचमुच एक ठीक कदम भी है । नीचे की कक्षाओं के स्कूल चलाने की जिम्मेदारी पंचायत समितियों को सौंपी जा रही है । इस विषय के दो पहलू हैं, जिन पर पूर्ण विचार किया जाना चाहिये । इसके परिणामस्वरूप सात साल की मौलिक शिक्षा का विभाजन नहीं होना चाहिये-जैसे कि धीरे धीरे हो रहा है । गाव के स्कूल पाचवे दर्जे तक जा कर समाप्त होते हैं और केन्द्रीय माध्यमिक शालाए ६ ठे दर्जे से शुरू होती है । इस तरह बुनियादी शाला की शृखला बीच में टूट जाती है ।

इन स्कूलो को अच्छी तरह से चलाने के लिये नये जिम्मेदार लोगो को-पचायत और शाला समिति के सदस्यो को-आवश्यक जानकारी व प्रशिक्षण मिलना चाहिये, उनमें नये मूल्यो व वृत्तियो का निर्माण होना चाहिये, इतना ही काफी नही, बदलते हुए जमाने की मागो के अनुसार इन स्कूलो में आवश्यक परिवर्तन लाने की स्वतत्रता भी उन्हें मिलनी चाहिये । निरीक्षको और प्रशासको को गाँव के लोगो से स्कूल के लिये आवश्यक जमीन व इमारतो के लिये चन्दा मागना ही पर्याप्त नही, नये समाज में शिक्षा के मूल्य व जिम्मेदारियों का सन्देश भी लोगों के पास पहुचाना है । प्रौढ व समाज शिक्षा का कार्यक्रम भी इस काम के साथ जुडा हुआ होना चाहिये ।

समस्या का मूल-शिक्षक प्रशिक्षण :

सन्तोषजनक व व्यापक शिक्षण के प्रश्न के पीछे मूल समस्या शिक्षक प्रशिक्षण की है । स्कूलो की सख्या में वृद्धि के साथ शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये भी नये विद्यालय खोले गये । इन विद्यालयों में ही हमारी राष्ट्रीय शिक्षा का भावी रूप दिन प्रति-दिन, घण्टे प्रति घण्टे, तैयार हो रहा है । कोई शका नहीं, इनमें से कई तो बहुत अच्छा काम कर रहे हैं । फिर भी इस काम की ठीक ठीक समीक्षा आवश्यक है । ये प्रशिक्षण केंद्र जल्दी जल्दी बढ रहे हैं; इसलिये भी समीक्षा और भी जरूरी हो रही है । कहीं कही ऐसा भी देखा जाता है कि इन प्रशिक्षण केन्द्रों के अध्यापक खुद भी बुनियादी तालीम की पद्धतियों में तथा उद्योग और कलाओं में प्रशिक्षित नही होते हैं । कभी कभी किसी हाइस्कूल में एक अतिरिक्त वर्ग ही प्रशिक्षण विद्यालय के

तौर पर चलाया जा रहा है। कइयों में शिक्षक विद्यार्थियों को एक साथ रहने तथा सामाजिक काम व उपासना में हिस्सेदार बनने के मौके और सुविधाए नहीं हैं। सामाजिक जीवन की जिम्मेदारियो को निभाने की कुशलता तथा समवाय पद्धति की शिक्षणकला के विकास की दिशा मे बहुत कुछ करना बाकी है। ज्यादा तर प्रशिक्षण विद्यालयो मे वार्षिक परीक्षा की तैयारी करने का रिवाज अभी भी चल रहा है। कहने का मतलब यह नही कि कही अच्छा काम नही हो रहा है। लेकिन ऐसे अच्छे केन्द्रो की सख्या और प्रभाव बहुत ही मर्यादित है।

अब ऐसा समय आ गया है जब कि हमे शिक्षक प्रशिक्षण के लिये धीरता-पूर्वक निश्चित कदम उठाने चाहिए। इन सब विद्यालयो के लिये एक निम्नतम कार्यक्रम तुरन्त अपनाना जरूरी है। अनुकूल वातावरण तैयार करने तथा काम मे ताजगी व गति लाने के लिये एक सगठित प्रयास की इस समय आवश्यकता है। योग्य अध्यापको की नियुक्ति की बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आदर्शशाली अनुभवी शिक्षको को इस काम के लिये निमत्रित करना होगा। देश म शिक्षा का गुणात्मक स्तर उठाने और उसके प्रसार का काम शिक्षको के समुचित प्रशिक्षण के बिना आगे बढ नही सकता।

किशोरावस्था की तालीम :

बुनियादी तालीम का स्वाभाविक और सबद्ध विकास उत्तर बुनियादी तालीम मे होता है जो किशोरावस्था के लडको के लिये उपयुक्त शिक्षा है और बुनियादी तालीम के सिद्धातो व पद्धतियो पर ही आधारित है। देश के कुछ भागो मे इसका अच्छा काम हुआ है। लेकिन आजकल के मट्रिकुलेशन सर्टिफिकेट की अपरिहार्य माग इसके सामने रोडा अटका कर खडी है। ऐसा दीखता है जैसे कि कई सारे कामों के लिये और विश्वविद्यालयों मे प्रवेश के लिये यह एकमात्र दरवाजा और योग्यता का एकमात्र प्रमाण है, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि मट्रिकुलेशन की तैयारी के लिए लिये जानेवाले विषयो का इन कामो के साथ कोई भी सबन्ध नही रहता है, या वे अपर्याप्त होते हैं। ऐसे कामो के लिये भी, जिनमे बुनियादी तरीके की तालीम विशेष रूप से उपयुक्त होती है, हमारा प्रशासनतत्र उत्तर बुनियादी विद्यालयो से आये लडके लडकियो की तरफ उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। यह वृत्ति उत्तर बुनियादी तालीम के विकास और प्रसार के रास्ते म सब से बडी बाधा है। इसमे यह काम नई दिशाओ म विकास नही कर पाता, पुराने बन्धनो मे सिकुडे रखकर अधिकारियों का समाधान करने के लोभ से इन विद्यालयों के सचालक बच नहीं सकते हैं। इसमे कोई आश्चर्य नही कि आज ये सस्थाए राज्यो के शिक्षा विभागो से निवेदन कर रही हैं कि अगर ये लडके लडकिया परीक्षा मे बैठना चाहे तो उन्हे प्रवेश की अनुमति दी जाय। यह एक तात्कालिक आवश्यकता हो सकती है, लेकिन इसका अवश्यभावी परिणाम उत्तर बुनियादी शिक्षा के क्रान्तिकारी क्रियात्मक स्वभाव को नष्ट करना होगा।

अब यह बात मानी गयी है कि रूरल इन्स्टिट्यूट या ग्रामीण महाविद्यालय उत्तर बुनियादी के आगे की शिक्षा के केन्द्र होगे और हमारे विद्यालयो से निकलने वाले लडके लडकियों को वहा प्रवेश मिलेगा तथा वे वहा उच्च शिक्षा पा सकगे। आज देश म ऐसे बारह विद्यालय हैं और वे स्थायी रूप ले रहे हैं। लेकिन हमारे विद्यार्थियो की अब तक की शिक्षा की विशेषताओ को आगे भी बनाये रखना हो तो इनमे नई तालीम की पद्धतियो, ध्येयों और मूल्यों के ऊपर उचित ध्यान देना होगा। इन ग्रामीण महाविद्यालयो की सफलता के लिये यह आवश्यक लगता है कि उस क्षेत्र मे कई अच्छे उत्तर बुनियादी विद्यालय चले और इनके, महाविद्यालयो के तथा क्षेत्रीय विकास कार्यों के बीच गहरा सहयोग और सपर्क रहे। तभी सारे काम मे गति आ सकती है और जनता के जीवन पर उसका असर दिखाई देगा।

समग्र नई तालीम :

गाधीजी ने नई तालीम की व्याख्या सब के लिये और पूरे जीवन के लिये तथा जीवन के जरिये शिक्षा के रूप मे की थी। शिक्षा नई समाजरचना का साधन बनेगी और उस परिवर्तन के लिये तैयारी भी करेगी,

(शेषाश पृष्ठ ७५ पर)

सं० प्र० पांडे

सर्वोदय मंडल, करजगांव

गत जून माह में नाग विदर्भ के रचनात्मक तथा शैक्षणिक संस्थाओं का परिचय करने के हेतु यात्रा करने पर करजगांव के सर्वोदय मंडल का काम देखने का सुअवसर मुझे मिला था।

यहां का कार्य संगठित करने का श्रेय मुख्यतः श्री नारायण पवार का ही है। श्री. पवारजी १९५४ तक सेवाग्राम में तालीमी संघ के मार्गदर्शन में पूर्व बुनियादी तथा प्रौढ शिक्षा का कार्य करते थे। १९५४ की गांधी जयन्ती के अवसर पर एक नये क्षेत्र में नई तालीम का कार्यप्रयोग स्वतंत्रता पूर्वक करने का संकल्प उन्होंने किया। १९५४ के दिसंबर में अमरावती जिले के लोणी ग्राम में भूदान विचार का प्रचार आरंभ किया। और साथ साथ स्थानीय लोगों की मदद से एक बालक मंदिर का कार्य शुरू किया। दोपहर के समय गांवके मजदूरों के साथ काम करते थे।

इसी अवधि में श्री. पवारजी ने एक स्वावलंबी विद्यालय की योजना मित्रों और रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सामने रखी। सभीके मन में कार्य के संबंध में शंकाएं थी किंतु जितनी अधिक शंकाएं बढती गयी उतना ही उत्साह भी बढता गया। यह योजना जब यहां के लोगों के सामने रखी तो नव जवानों को यह पसंद आयी और ऐसा शिक्षण केन्द्र करजगांव में चलाने की सम्मति स्थानीय सज्जनों ने दी। जहां एकमत से निर्णय लेकर कार्य आरंभ करने का आश्वासन मिलेगा वहीं काम शुरू करने के श्री. पवार जी के निश्चय की भी पूर्ति करजगांव में हुई। गांव की पश्चिम दिशा में एक कुटिया तथा जमीन को इस कार्य के लिये देने का गांव वालोंने निश्चय किया। ३० जनवरी १९५५, गांधी पुण्यतिथि के अवसर पर कार्यारंभ हुआ। लोगों ने इस मकान का तथा जमीन का दानपत्र कर दिया। सर्वोदय दिवस आश्रम पद्धति के अनुसार मनाया गया। कुटी का नाम "सर्वोदय कुटी" रखा। तहसील के रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सम्मति से "सर्वोदय मंडल" की स्थापना हुई।

मंडल रजिस्टर किया और उसका संविधान बनाया गया। शोषणरहित समाज का निर्माण, सत्य अहिंसा के मार्ग से विधायक कार्यद्वारा देहाती जनता की सेवा करना, दारिद्र्य अज्ञान तथा बीमारियां दूर करने के लिये जीवनोपयोगी शिक्षण ग्रामवासियों को देकर उनका आत्म विश्वास बढाना—ये उद्देश्य सामने रखे गये।

इसकी पूर्ति के लिये नई तालीम, कृषि-सुधार, ग्रामोद्योग, पशुसुधार, स्त्रीसंगठन, बालक-विकास, ग्रामसफाई, ग्रामआरोग्य, पुरानी घातक रूढियों को यथासंभव दूर करना तथा आदिवासी और हरिजन सेवा—ये मुख्य कार्यक्रम रखे गये। उक्त उद्देश के लिए पैसा इकट्ठा करने का प्रयत्न भी मंडल ने शुरू किया।

सर्वोदय कुटी : सर्वोदय विचार को मानने वाले और तदनुसार जीवनसाधना करनेवाले सदस्यों का एक सामूहिक परिवार माना गया है। साम्ययोगी जीवनसाधना इसका उद्देश है। प्रारभ में यह परिवार ३० व्यक्तियों का था, जिसमें बुनकर, कृषक और शिक्षक परिवार सभी शामिल थे और इनके लिये एक ही चूल्हे का आयोजन था।

सवेच जेवू। सवेच राहू।
सवेच करुया काम।
आपुल्या साठीं वाठाम राम।

इस मत्रसिद्धि के लिये सभी का प्रयत्न रहा। स्वावलवी विद्यालय तथा छात्रालय के आरभ तक यह सामूहिक जीवन का कार्यक्रम ठीक रूप से चला। आज इस पारिवारिक जीवन का रूप कार्यकर्ताओंने अपने अनुभव और आवश्यकता के अनुसार बदल दिया है। सर्वोदय मडल के सभी धान्य भाडार और अन्य वस्तुओं की खरेदी पारिवारिक आवश्यकता के अनुसार होती है। कार्यकर्ताओं के परिवारों में ओपधि तथा विद्याध्ययन की जिम्मेवारी सामूहिक रीति से निभाई जाती है और उसके लिये होने वाला खर्च सामूहिक रूप से बाट लिया जाता है।

१९५५ से ही ५ से ७ वर्ग तक का एक विद्यालय भी यहा शुरू किया। सन् ५६ में ८ वा वर्ग भी शुरू किया। हिं ता सघ द्वारा इस विद्यालय को मान्यता दी गई। यह विद्यालय पूर्ण रूप से बुनियादी पद्धति से चलाया गया। १९५८ में गाधी स्मारक निधि की नई नीति के अनुसार ग्राम सस्थाओं को मिलने वाली मदद वद हुई। तब शाला का सारा कारभार जनपदसभाको सुपुर्द किया गया। छात्रालय न होने के कारण इस विद्यालय में गाव के बाहर के विद्यार्थी नही आ सके। १९५८ से छात्रावास शुरू करने की भी योजना थी, जो अभी पूरी नही हो सकी। शाला का अभ्यासक्रम हिं ता सघ के आठ सालो के शिक्षाक्रम पर आधारित था। मूलोद्योग कृषि, वागवानी और वस्त्र स्वावलबन रखे गये थे। शाला जनपद के हाथ में देने के बाद बुनियादी तरीकों में कुछ बदल हुआ है।

बालवाडी— स्थानीय बहनो के तथा कार्यकर्ताओ के सहयोग से इस कार्य का आरभ शुरू से ही किया। दिसम्बर १९५४ में लोणी में जो बाल वाडी शुरू की वह एक साल के बाद बद पडी। अप्रैल १९५५ में करजगांव में बालवाडी स्थानीय कार्यकर्ता बहनो की मदद से शुरू किया। अब यह कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। आज बालवाडी के लिये गाधीघर की स्वतत्र इमारत है जहा पानी, सडास, खेल के साधन आदि की पूरी सुविधाएँ मौजूद है। आस पास के गावों के साथ सपर्क स्थापित कर वहा भी बालवाडिया शुरू करने का प्रयत्न हुआ और काफी सफलता मिली। लोणी में दो बालवाडिया आज हैं और अन्य आसपास के ५ गावो में अलग समय की बालवाडिया खेलवाडी के रूप में चलायी जा रही हैं। बालविकास की दृष्टि से स्थानीय साधनो का उपयोग कैसा हो, इसका पूरा ध्यान रखा जाता है।

स्वावलम्बी विद्यालय— भूदान ग्रामदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान नव समाज रचना करने के लिये स्वावलम्बी सुसस्कृत नागरिक तैयार करने की दृष्टि से हिं ता सघ सेवाग्राम के उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम का ध्येय और स्वरूप ध्यान में रखकर इस स्वावलम्बी विद्या-

लय का दैनिक कार्यक्रम चलाने का निश्चय किया था। देहात का समग्र जीवन ही शिक्षा का केन्द्र माना गया और सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को शिक्षा का माध्यम मांना। ग्रामोद्योगों के प्रत्यक्ष और शास्त्रीय काम का अनुभव तथा विषयज्ञान देने का प्रबन्ध विद्यालय के द्वारा किया गया। १९५५ के जून में इस विद्यालय की शुरुआत हुई। शिक्षकों ने और विद्यार्थियों ने मिलकर अपने निवास के लिये मकान बनाया। प्रति दिन मजदूरों के साथ ४ घंटे परिश्रम करने का भी कार्यक्रम दैनिक जीवन में शामिल था। इसीके द्वारा उनके भोजन का प्रबंध होता रहा। भोजन संबधी सारे कार्य विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर करते थे। १२ विद्यार्थियोंने तीन सालों का इस विद्यालय का शिक्षाक्रम पूर्ण किया। कताई, बुनाई, तेलघानी, साबुन, मधुमक्खी पालन, कुम्हार काम, पशुशवच्छेदनकला, ग्राम सफाई और कृषि इन उद्योगों की प्रत्यक्ष शिक्षा विद्यार्थियों ने करजगांव-बैतूल, सेवाग्राम, भांदक आदि स्थानों में जाकर लिया। कताई का कार्यक्रम नियमित रूप से चला। भूदान ग्रामदान के लिये प्रत्यक्ष पदयात्राओं में विद्यार्थियों ने भाग लिया। कालडी सर्वोदय सम्मेलन में भी यहां के विद्यार्थी गये थे। देहातों में रहकर ग्रामीण जीवन का भी विद्यार्थियों ने अध्ययन किया। इस विद्यालय का शिक्षाक्रम जिन विद्यार्थियो ने पूरा किया उन्होंने यद्यपि ग्रामदानी गांवों में कार्य करने का निश्चय किया था, फिर भी कुछ कारणवश भिन्न भिन्न कार्यों में सलग्न हुए हें। गां. स्मा. निधि की ओर से चलाये जाने वाले ग्रामसेवक विद्यालय में ५ विद्यार्थी शामिल हुए जो आजकल ग्रामसेवा का कार्य कर रहे हें।

खादी विभाग : प्रारंभ से हि यहां के कार्यक्रम में कताई का प्रमुख स्थान रहा। बुनाई यहीं की जाती है। देशी रंगाई भी करने का प्रबंध है। चार करघे हें और तीन अंबर चर्खे भी चलते हें। यहां के नजदीक के बडे गांव वरूड में इस संस्था की ओर से खादी भांडार चलाया जाता है। यहां का बुना ओर रंगा हुआ ज्यादा कपडा वहां बेचा जाता है। तेलघानी, कुम्हार काम, मधुमक्खी पालन तथा ताडगुड नीरा का काम आदि ग्रामोद्योगों के आयोजन और विकास का प्रयत्न चल रहा है।

ग्राम आरोग्य केन्द्र : १९५५ से ही यह केन्द्र सौ० कौसल्या ताई पवार द्वारा चलाया जाता है। इस केन्द्र का सारा भार सर्वोदय मंडल ने लिया है। घर घर में पहुंचकर आरोग्य विषयक शिक्षा देने का यह एक अच्छा केन्द्र है। गर्भवती माताओं की स्वास्थ्य चिकित्सा, योग्य रीति से प्रसूतिकार्य, बच्चों का संगोपन और साधारण बीमारीयों में सुलभ व कम खर्चीली औषधियों से उपचार किया जाता है। आगे चलकर ग्रामीण बहनों के लिए एक प्रसूति केन्द्र की व्यवस्था करने की कार्यकर्ताओं की योजना है। कुओं में दवाइयां डालकर पानी शुद्ध करने की व्यवस्था भी इसी आरोग्य केन्द्र द्वारा की जाती है। इस विभाग के कार्यकर्ता की सेवाओं का लाभ आवश्यकतानुसार आसपास के देहातों को भी मिलता है।

कृषि गोपालन : संस्था के पास अपनी जमीन नही है। गाव की खेती का उत्पन्न बढाने का प्रयास चल रहा है। जमीन का किस्म, खाद और पानी की दृष्टि से इस क्षेत्र की जमीन ऊंचे दर्जे की है और कुअें काफी हैं। खाद के

में यहा के तथा आसपास के देहातो में काफी जागृति निर्माण हुई है। यहा १५ घरो में व्यक्तिगत सडास रखे गये हैं। ग्राम पचायत ने गाव के चार भागो में चार बडे सामूहिक सडास बनाये हैं। इन सडासो के द्वारा काश्तकारो को काफी खाद प्रतिवर्ष मिलता है। सामूहिक सडासो द्वारा एक हजार रुपया प्रतिवर्ष (२०० गाडी) ग्रामपचायत को मिलता है। इसतरह खाद निर्माण की रुचि दिनोदिन यहा के लोगो में बढ रही है जिसका परिणाम उत्पादन वृद्धि में हो रहा है। पारिवारिक स्वावलबन की दृष्टि से दो गायें आज रखी गई है। दो जोडी बैल भी रखे गये है। एक जोडी बारी बारी से तेलघानी के काम में उपयोग में आती है। गोबर का योग्य उपयोग हो इस दृष्टि से एक गोबर ग्यास प्लान्ट भी अब लगाया गया है। बाहर निकले हुये गोबर का उपयोग खाद कम्पोष्ट बनाने के लिए तथा ग्यास का उपयोग तेलघानी साबुन तथा रसोई कार्य के लिए करने की योजना है। विकास खडों के क्षेत्र में यहा के कार्य के प्रति काफी इज्जत है तथा समय समय पर सस्था के मार्गदर्शन का लाभ उठाने की उनकी वृत्ति रहती है।

ग्राम सफाई यहा सफाई का स्तर काफी अच्छा है। हर निरुपयोगी चीजका खाद के लिये उपयोग करने की वृत्ति निर्माण हो रही है। यही वृत्ति आसपास के देहातो में भी बढती हुओ देखी जाती है। ग्रामीणो की दृष्टि से सुलभ और खाद निर्मिति की दृष्टि से उपयुक्त नये सडास यहा प्रयोग करते हुये तैयार किये गये हैं। नायगाव पद्धति के सेप्टिक सडास से हर दूसरे या तीसरे दिन द्रवरूप खाद मिल सकता है जिसको चाहे तो सीधे फसल को दिया जा सकता है या तो कम्पोस्ट में डाला जा सकता है। लोणी ग्रामवासियो के लिये सार्वजनिक रूप से उसका उपयोग भी किया जा रहा है। ये सडास और मूत्रीघर उत्पादन वृद्धि के लिए एक तरह का वरदान ही है ऐसा कहना चाहिए।

सास्कृतिक कार्यक्रम : सर्वधर्मसमभाव स्थापन कर उच्चनीच भाव दूर करने की दृष्टि से दैनिक प्रार्थना तथा प्रासगिक उत्सव त्योहार आदि ग्रामवासियो के साथ मनाये जाते हैं। दीर्घ व सतत प्रयत्न के बाद स्थानीय विवाह प्रसगो में बीडी पीने की प्रथा खतम हो गयी है। यजमान तथा अतिथि दोनो समझबूझकर इसका पालन कर रहे हैं। मृत्यु के समय गीता पारायण और प्रार्थना का एक रिवाज यहा शुरु हो गया है। होली त्योहार के गदे रिवाजो को नष्ट कर भजन पूजन, सामूहिक प्रार्थना आदि को उसके स्थान पर अख्तियार किया है। पोले के समय बैलो के प्रदर्शन का रिवाज रूढ हो रहा है। इस तरह सस्था के कार्यक्रमो द्वारा सास्कृतिक विकास का प्रयत्न हो रहा है।

दो एकड में पारिवारिक स्वावलम्बन

प्रेमभाई

नई तालीम का विद्यार्थी अपने शिक्षाक्रम की समाप्ति पर एक स्वतत्र उपयोगी इकाई बन सके, ऐसी अपेक्षा रही है। नई तालीम के पाठ्यक्रम के पीछे यह अपेक्षा और दृष्टि है कि शिक्षाकाल के बाद विद्यार्थी को नौकरी खोजने की जरूरत न पडे। वह अपने पुरुषार्थ से उद्योग करके एक अच्छी सतुष्ट जिंदगी बिताने का भरोसा रखकर शाला से निकले इसी में हमारी सफलता है। इस प्रकार की अपनी तैयारी के लिये वह अनेको उद्योग लेकर उनमें दक्षता प्राप्त कर सकता है—जैसे कताई, बुनाई, सुतारी, लोहारी, तेलघानी, साबुन साजी, गोपालन, बागवानी, खेती आदि।

आज की समस्या :

गरीबी, बीमारी, अज्ञान, गन्दगी और बेरोजगारी से त्रस्त इस देश के प्रधान मत्री से लेकर एक साधारण पिता तक यह कहता सुनाई देता है कि आज के नौजवान पुरुषार्थहीन होते जा रहे है, पढ लिख कर वे नौकरी करना चाहते है, उद्योग या खेती करना पसद नही करते। पिछले दिन नेहरुजी ने कहा कि किसानो के लडके पढ लिख कर खेती नही करना चाहते है। सवाल उठता है ऐसा क्यो ? साफ बात है कि खेती में कडी मेहनत करने वालो को वह सुख चैन नही मिलता जो मेज कुर्सी पर बैठकर कुछ घण्टे कलम घिसने वालो को प्राप्त है। तब वे खेती क्यो करे ? इसलिये हमारे सामने प्रश्न है : क्या खेती बाबुगिरी से अधिक या समान आकर्षक उद्योग बन सकता है ? हमको मालूम है कि हिन्दुस्तान के कुछ किसान करोड-पति है, उनके लडके पिता की एस्टेट सभालते है और आनन्द मौज करते है। ऐसे किसान दो प्रकार के है। एक प्रकार के वे किसान है जिनके पास सैकडो हजारो एकड जमीन है, उसमें मजदूरो को लगाकर उत्पन्न हुए माल से सुखभोग करते है। दूसरे वे जो बहुत कीमती पैसे वाली फसलें उगाते है। देहरादून में के चाय बागान, दक्षिण के सुपारी नारियल पान के बगीचे, अगूर बगीचे, सेब, बादाम, खुमानी आदि के बगीचे सब इस श्रेणी में आ जायेंगे। प्रश्न है कि इस प्रकार की खेती सारे देश में चल सकेगी क्या ? ये किसान देश की खेती के नमूने कहे जा सकेंगे क्या ? यदि सारे देश के किसान पैसेवाली फसले उगाकर पैसा कमाने की होड में लग जांय तो देश को अनाज कहा से मिलेगा। स्पष्ट है ऐसी खेती देश के लिये नमूना नही कही जा सकती। तब क्या ये बडी जमीन वाले देश के आदर्श किसान है ? यह एक असभव बात है।

देश के लिये खेती का क्या नमूना हो सकता है जिसको एक साधारण किसान परि-

बार अपना सके, जिसमें इतनी जमीन हो और फसल चक्र और फसल योजना इस प्रकार हो जिसको यदि सब किसान अपनाये तो देश का आर्थिक ढॉचा बिगडे नही, सुदृढ बने। ऐसी खेती की पारिवारिक इकाई क्या होगी? यह इकाई, यह खेती, उसकी फसल योजना इस प्रकार की हो जिसको एक पढ़ालिखा नौजवान भी खुशी से अपना सके।

हिन्दुस्तान में करीब ३२ करोड एकड जमीन भारत में है। खाने वालों की सख्या करीब ४० करोड है। याने १ एकड से कुछ अधिक जमीन प्रति व्यक्ति आती है। भारत के औसत परिवार की सदस्य सख्या पाच है, इस प्रकार प्रति परिवार को करीब ४ एकड भूमि उपलब्ध है। प्रश्न है इस चार एकड जमीन से एक परिवार की जिन्दगी अच्छी सन्तोषजनक चल सकती है क्या? उस जिन्दगी के लिये फसल योजना ऐसी हो सकती है क्या जिसे सारे किसान परिवार अपना कर देश को स्वावलम्बी बना सके। स्पष्ट है कि इस प्रकार की कृषि इकाई में परिवार के स्वावलम्बन के लिये काफी अनाज, कपास, सब्जी और मवेशियो के लिये चारा पैदा करने के बाद बची हुई जमीन का ही किसी पैसे वाली फसल के उपयोग में ला सकेंगे। इस प्रकार की कृषि इकाई में जमीन का क्या प्रतिशत अनाज के लिये, कपास के लिये, चारे के लिये, भाजी के लिये, पैसे वाली फसलो के लिये होगा, यह प्रयोग करने की वस्तु रह गई।

एक प्रयोग :

इन प्रश्नो का हल ढूढने के दृष्टि से एक प्रयोग इकाई १९६० की मई में सेवाग्राम में शुरू की गई। प्रस्तुत इकाई में करीब दो एकड जमीन है। चार एकड़ की आधी जमीन इसलिये ली गई क्योंकि यह सिंचित भूमि है। हिन्दुस्तान में सारी भूमि सिंचित नही है। सिंचाई के लिये कुएँ पर मोटर पप उपयोग में लाया गया है। कल्पना यह है कि इसमें से एक परिवार याने पाच व्यक्तियों के लिये करीब २५ मन अनाज, १,२ मन कपास और २५ मन भाजी के अलावा दो जानवर पाल सकें इतना चारा (करीब २५० मन) पैदा करने के बाद बची हुई जमीन में पैसे वाली फसलें उगाकर परिवार को १०० रुपये महीना दे सके। खेत की इतनी शक्ति बढाने का प्रयत्न करे।

पिछले वर्ष करीब ३२ डेसिमल जमीन में से १२ मन धान मिला, ५० डेसिमल जमीन से ४५ मन ज्वार की कड़बी मिली (शुरू में अधिक वर्षा के कारण फसल की हानि हुई) ५० डेसिमल जमीन में केला लगाया गया व ५० डेसिमल जमीन अगूर की तैयारी के लिये रखी। उसी वर्ष रबी फसल से ७५ डेसिमल जमीन में करीब १८ मन गेहू मिला। २३ डेसिमल भूमि से १३२ मन बरसीम (हरा चारा) मिला। अन्य वस्तुओ में घर के पास की छोटी बाडी से करीब २५ मन टमाटर लौकी, ककडी, पपीता आदि मिला। अलावा इस के ५० मन गेहू का भूसा व २५ मन धान का पुवाल मिला। कुल मिलाकर हरा व सूखा २५२ मन चारा मिला, बरसात में बाधो पर हुई घास इससे अलग है। १२ मन में यदि ९ मन चावल पकडें तब गेहू चावल मिलाकर २७ मन अनाज मिला। स्पष्ट है परिवार के लिये काफी अनाज, सब्जी व चारा मिला, लेकिन अन्य जरूरतों के लिये पैसा पहले वर्ष नही दे सके। नये साल में केला निकलेगा, कुछ अगूर भी मिलेगा तो

भी शायद १०० रु. प्रति माह तक नहीं दिया जा सकेगा। आनेवाले तीन साल बाद इतना दिया जा सकेगा, ऐसा दिखता है।

केला इस वर्ष निकल जायेगा। उसमें ९०० रु. खर्च होगा व करीब १५०० रु. आमद होगी। अंगूर में करीब ७० डेसिमल है। उसमें १९६२ की जनवरी में पहली फसल प्राप्त होगी, लेकिन वह थोडी होगी। अगले वर्षो मे वह फायदेमंद बनती जायगी। तब परिवार को १०० रुपया महीना अवश्य दिया जा सकेगा ऐसा दिखता है। अगले साल की फसल योजना में ½ एकड् में कपास है, उसके बीच मुंगफली मिश्रित है। कल्पना है कि वह *परिवार की तीन वर्ष की करीब ५ मन कपास* की जरूरत को पूरा कर सकेगी। इस वर्ष केला निकालने के बाद नया केला नही लगायेंगे। याने अंगूर के अलावा पैंसे की फसल नहीं लगायेंगे।

फसल की योजना :

जमीन का क्या प्रतिशत किस फसल के नीचे रहेगा यह अभी आखिरी स्वरूप नही ले सका है। तव भी मोटे में यदि यह माने कि वर्ष में कुछ खेतों में दो और तीन फसले लेगें तो कुल जमीन जो वर्ष भर में बोई जायगी उसका रकबा ३.५० से ४ एकड् तक *जायेगा*। इसमें से अंगूर (पैसे वाली फसल) ०.७५ में १.०० एकड में चारा व १.७५ से २०० एकड में अनाज, दलहन, तिलहन, कपास, सब्जी व फल रहेंगे। यद्यपि इस प्रकार के प्रतिशत के आंकडे अभी प्रयोगसिद्ध होने के है। तो भी मोटे तौर पर हम कह सकेंगे कि ५०–५५ प्रतिशत जमीन अनाज, कपास, दलहन भाजी के लिये, २५ प्रतिशत चारे के लिये, २५ प्रतिशत पैसे वाली फसलों के लिये रहेगी।

छोटे किसानों की समस्याएं :

ऊपर के वर्णन में से कई प्रश्न उठ खडे होंगे। २ एकड् जमीन में बैल जोडी तो नहीं रख सकेंगे। बैल जोडी व अन्य बडे साधनों की मिलकयत किसको होगी व उपयोग किस प्रकार होगा ? दूसरा प्रश्न है कि एक परिवार में उपलब्ध श्रमशक्ति इस प्रकार की खेती के लिये काफी होगी क्या ? यदि बाहरी श्रम की सहायता लेनी पडेगी तो उसका संगठन व उपयोग किस प्रकार होगा ? पैसे वाली फसल के लिये यहां अंगूर को चुना गया है, अन्य ऐसी कौन सी फसलें हो सकती हे जिनको अन्य इलाके के लोग अपना सकेंगे ? इस प्रकार की सघन खेती को जमाने के लिये, पानी आदि की सुविधा के लिये कितना पैसा लगेगा ? वह कहां से आयेगा।? कितने वर्ष में वापस किया जा सकेगा आदि आदि अनेकों प्रश्न उठ खडे होंगे।

ऊपर दी गई फसल योजना में २ जानवरों के लिये चारा पैदा करने की जिम्मेदारी मानी गई है। इनमें से एक बैल व एक गाय हो सकती है। ऐसी दो परिवार इकाई यदि आपस *में सहयोग करेंगी तो बैल जोडी की समस्या* हल हो सकेगी। अन्य बडे साधनों को (लोखण्डी नागर जो तीन बैल जोडियों पर चलता है।) ६ परिवार मिलकर रखेंगे। कुछ साधन ग्रामस्तर पर गांव सभा या सहकारी संघ के हो सकेगे। वास्तव में आज के वैज्ञानिक युग में सहकार के बिना रास्ता नही। अन्य देशों में जहां वडे यंत्र खेती में काम में लाये जाते हैं

वहां भी प्रत्येक किसान सब यंत्र नही रख पाता। न यह संभव है, न ही आवश्यक। सर्विस को-आपरेटिव से किराये पर लेता है।

दूसरा प्रश्न है श्रम का। सेवाग्राम के दो एकड़ वाले प्रयोग में दो व्यक्ति काम करते हैं। कभी बोआई, निंदाई, कटाई आदि, अवसरो पर मजदूरों की या शाला के विद्यार्थियों के श्रम की सहायता भी ली जाती है। कई परिवार इकाई मिलकर आपस के सहकार से बोआई, निंदाई, कटाई आदि चला सकेंगे। ग्रामदान में या सहकारी सोसायटी के अंतर्गत यह बहुत आसान हो जायेगा।

अंगूर को कैश क्राप के रूप में यहां चुना गया है। इसकी भी एक विशेष भूमिका है। अंगूर का प्रति एकड उत्पादन ५५००० पौण्ड तक गया है। अंगूर की कैलोरिक कीमत ज्यादा है। इसके उत्पन्न की प्रति एकड कीमत २५००० रु. तक कई बगीचों में हुई है। यह एक ऐसी फसल है जो प्रति एकड़ के उत्पादन की दृष्टि से काफी परिमाण में होता है जिसकी कीमत बहुत है और जो पौष्टिक तत्वों के लिहाज से मूल्यवान् है। इस प्रकार की अन्य फसलें भी हो सकती हैं। आबोहवा और जमीन के किस्म के अनुसार सेव, नीबू, संतरा, कपास आदि को कैश क्राप के लिये चुन सकते हैं।

इस प्रकार की फसल योजना को जमाने में ६,७ हजार रुपया शुरू में लगाना होगा। इसमें से २.३ हजार रुपया प्रति वर्ष निकलता रहेगा, ३,४ हजार रुपया पूंजी के रूपमें लगाना होगा जो ८ से १० वर्ष में वापस किया जा सकेगा।

दस वर्ष बाद ऐसा परिवार कर्ज मुक्त होकर एक स्वतंत्र सन्तुष्ट जिंदगी बिता सकेगा। यह पैसा जुटाने का सवाल राष्ट्रीय स्तर का है जो हम अभी यहां नही लेंगे।

आज गांव में स्वराज्य का फल लोगों को नहीं मिल रहा है, क्योंकि स्वराज्य के पश्चात् स्वराज्य का काम हम लोग ठीक ढंग से नहीं कर सके। गांव के टुकडे टुकडे करके रहने से हमारा कल्याण नहीं होगा। गांव में मिलजुल कर रहने से ही हमारा कल्याण होगा। ग्रामदान में तो लोग तभी सुखी होंगे, जब गांव का हर मनुष्य दूसरे के सुख के लिये सोचेगा, प्रयत्न करेगा।

विनोबा

बर्ट्रेन्ड रसल की अपील :

ब्रिटन के प्रसिद्ध चिन्तक और शान्तिवादी नेता श्री बर्ट्रेन्ड रसल ने अणुयुद्ध की तैयारियो के विरोध में वैश्व पैमाने पर एक विराट् आन्दालन के लिये आह्वान किया है। एक सौ की समिति हालिलाच के पनडब्बी के अड्डे पर तथा लदन के पार्लियमेन्ट स्क्वयर में सितंबर के १६-१७ ता. को एक ही वक्त अहिंसात्मक प्रदर्शन करने की तैयारिया कर रही है। हमारे सामने समय कम है, जागृति का तकाजा है, इस पर जोर देते हुए यह वृद्ध नेता कहते हैं "हमारे देश में और दूसरे देशो में भी ज्यादातर लोग इस बात को समझ नही रहे हैं कि पूरब की और पश्चिम की सरकारें परस्पर निन्दा और विरोध के प्रचार से ऐसा एक वातावरण तैयार करने के प्रयत्न में हैं जहा लोग बिना समझे बूझे एक अणुयुद्ध के लिये राजी होंगे। अणुयुद्ध का परिणाम होगा योरोप का पूरा-पूरा विनाश और उत्तर अमेरिका का भी-जहा एक ही सभ्यता है।

"अगर इन आगामी हफ्तो में आप इसके लिये कुछ नही करते हैं तो इस अपराध में आप भी हिस्सेदार होंगे। आपके प्रियजनो के विनाश में आपका भी भाग होगा। सरकारो को इन प्रमादपूर्ण कृत्यो से रोका जा सकता है, लेकिन वे एक व्यापक विरोध आन्दोलन से ही रुकेंगी, जिसमें सभी चिन्तनशील स्त्री पुरुष शामिल हैं। समय कम है, करना अभी है। नही तो वक्त निकल जायगा।

"एक दृढ सकल्प हमें करना यह है कि सभी मत भेदो का-चाहे वह बर्लिन के बारे में हो या अन्य किसी विषय पर-फैसला परस्पर बातचीत और विचारविनिमय से ही करना है, न कि युद्ध से। क्योकि इस अणुयुग में अगर युद्ध हुआ तो दोनो पक्षो की प्रिय वस्तुओ में से कुछ भी नही बचेगा।"

रस्सल ने ससार की जनता को आह्वान करते हुए कहा "आत्यन्तिक विनाश के खतरे की इस घडी में आपका कर्त्तव्य है कि प्राच्य और पाश्चात्य शासको के-जिनके हाथ में दुनिया का भविष्य है-दिल व दिमाग में विवेक और मानवीयता का किंचिन्मात्र भी जगाने के लिये भरसक प्रयास करे।"

× × ×

एक सौ की समिति के मत्री मैकेल रान्डल लिखते हैं, "इस देश में अणुअस्त्रो के विघटन के आन्दोलन की पहली जीत की आशा दीख रही है-हालिलाच के पनडुब्बी अड्डे को हटाना। अब कुछ दिनो से ऐसी बातें हो रही हैं कि व्यापक विरोध प्रदर्शनो के परिणामस्वरूप अमेरिका ब्रिटन में अपना पोलारिस अड्डा बनाने के निश्चय पर पुर्नविचार कर रहा है"।

× × ×

लदन में सितम्बर १४ से १८ ता तक नि.शस्त्रीकरण के-खासकर आणविक निःशस्त्रीकरण के बारे में विचार करने के लिये एक सम्मेलन बुलाया जा रहा है। पूरब के तथा पश्चिम के देशो के बीच की समस्याओ के समाधान और परस्पर अविश्वास हटाने के उपायो के बारे में

सम्मेलन विचार करेगा। इसमें भाग लेनेवाले सज्जन किसी पार्टी या दलविशेष के प्रतिनिधियों के रूप में नहीं, बल्कि अपने अपने देश के सम्मानित व्यक्तियों की हैसियत से ही सम्मेलन में आएगे।

आमन्त्रकों में से तीन सोवियत संघ के हैं, छ संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका के और पांच ग्रेट ब्रिटन के। भारत से श्री जयप्रकाश नारायण सम्मेलन में जाएगे, ऐसी आशा है।

× × × ×

अतर्भूखण्ड पदयात्री दल :

अन्तर्भूखण्ड पदयात्री दल ने अगस्त महीने के प्रथम सप्ताह में पूर्वी जर्मनी की सीमा को पार किया। पिछले दिसबर १ ली तारीख को सान फ्रान्सिस्को से जो दल इस पदयात्रा में निकला था उसमें अब ब्रिटन, फ्रान्स, बेल्जियम, हालण्ड, पश्चिम जर्मनी और स्कान्डिनेविया के नागरिक शामिल हुए हैं। अब तक अमेरिका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चार हजार मील, इग्लैण्ड में १०० मील तथा बेल्जियम और पश्चिम जर्मनी से ५५० मील ये भाई चले है।

पदयात्रियो को रास्ते में कई कठिनाइयो का सामना करना पडा है। अमेरिका में इनके आगे गुप्त पुलिस जाती रही और लोगो को उन्हे किसी तरह की सुविधाए देने से रोकने की चेष्टा की। फ्रेंच सरकार ने उन्हे उस देश में प्रवेश की अनुमति तक नही दी। पश्चिम जर्मनी की पुलिस ने उन्हें अपने इश्तहार वितरित करने से रोकने का तथा सैनिक अड्डो से दूर रखने का प्रयत्न किया।

फ्रान्स के ले हार्वे नामक स्थान पर—जहा दल को जहाज से उतरने से दो दफे रोका गया—जो प्रदर्शन हुआ उसको फ्रेन्च अखबारो में स्थान मिला, इसलिये उनके पहुचने की खबर लोगो के पास पहुच गयी, जो शायद अन्यथा नही होती। पुलिस के उन्हे सर्वथा तग करने के बावजूद फ्रेंच शान्तिवादियो की एक टुकडी ३०० मील पदयात्रा कर बेल्जियम् की सीमा पर दल में शामिल हुई।

पश्चिम जर्मनी में कुछ सैनिक अड्डो के सामने प्रदर्शन करने के (अपराध) के लिये दल के कुछ सदस्यो को गिरफ्तार कर लिया गया।

कम्यूनिस्ट सरकारो ने अभी तक उनका स्वागत करने की ही नीति रखी है। प्रसिद्ध अमेरिकन् शान्तिवादी और कोड आफ नान वायलन्ट एक्शन के अध्यक्ष श्री ए जे. मस्ते पदयात्रा के ८०० मील के उस खण्ड के बारे में, जो सोवियत देशो में होनेवाला है, और मास्को के रेड स्क्वयर में प्रदर्शनो के आयोजन के बारे में अधिकारियो के साथ चर्चा करने के लिये मास्को गये थे। सोवियत अधिकारियो और पीस कौन्सिल के सदस्यो के साथ उनकी बहुत सद्भावनापूर्ण बातचीत हुई। अधिकारियों ने यह राय जाहिर की कि पदयात्रा एक गभीर और भावनापूर्ण काम है, जिससे शान्ति के काम में सहायता मिलेगी।

× × ×

शान्ति सेना मण्डल की बैठक

देश में शान्ति सेना के आज तक के काम के पर्यवलोकन करने के निमित्त शान्ति सेना मण्डल की बैठक आजकल काशी में हुई। लोक-

सेवक और शान्ति सैनिक के विशेष कार्यों का विवेचन चर्चा का एक मुख्य विषय था। चर्चाओं का निष्कर्ष यह रहा कि अपने कर्मक्षेत्र की जनता के साथ घनिष्ठ संपर्क तथा उनकी समस्याओं की जानकारी शान्ति सैनिक के लिये अनुपेक्षणीय है। अन्य संघों और व्यक्तियों के द्वारा किये जानेवाले शान्तिकार्य में उसे सहयोग और साथ देना चाहिये, तनाव और हिंसा का निर्माण करनेवाली शक्तियों को समझना तथा उनके कारणों और निवारण के उपायों का अध्ययन करना है।

देश में बढती हुई हिंसा की वृत्तियों और एक अहिंसक समाजरचना के लिये आवश्यक परिस्थितियों के बारे में भी अच्छी चर्चाएं हुई।

× × × ×

काशी में शान्ति सेना विद्यालय का कार्य १५ अगस्त से आरंभ हुआ। प्रशिक्षण काल की अवधि ४ महीने की रहेगी। काशी नगर के काम को और प्रत्यक्ष सेवा कार्य को अधिक महत्व देने का विचार है।

× × × ×

यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि महाराष्ट्र के बडे राजनैतिक पक्षों और राष्ट्रीय नेताओं ने आगामी आम चुनाव के समय के लिए एक आचार संहिता मान्य की है। उत्तर प्रदेश का शांतिसेना मण्डल भी प्रदेश के नेताओं से ऐसी कुछ आचारमर्यादाओं को मान्य कराने के लिये प्रयत्न कर रहा है। गुजरात के सर्वोदय मण्डल ने बडौदा में १४ जुलाई को गुजरात प्रदेश सर्वोदय सम्मेलन में इस दिशा में सहायक होने की दृष्टि से कुछ आचारमर्यादाएं प्रस्तुत की हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

१. चुनाव प्रचार में व्यक्तिगत निंदा नहीं होनी चाहिये।

२. अपने कार्यक्रम की रूपरेखा जनता के सामने रखी जाय। विरोधी पार्टी या उसके कार्यकर्त्ताओं के संबन्ध में असत्य अथवा उल्टा प्रचार नही किया जाना चाहियें।

३. समाज में परस्पर वैर विरोध की वृद्धि हो, ऐसा प्रचार न करे।

४. चुनाव प्रचार में हल्की भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

५. चुनाव प्रचार के लिए किसी भी व्यक्ति, संस्था या ग्राम को धन अथवा दूसरी सुविधाओं का लालच नही देना चाहिये।

६. चुनाव प्रचार के समय किसी व्यक्ति अथवा संस्था को सीधे या आडे धमकी नही देनी चाहिए।

७. संकीर्णता या साम्प्रदायिकता के प्रसार को रोकना चाहिए।

८. सामान्य प्रजा के मन पर संस्कारों की दृष्टि से कोई खराब असर न हो, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।

पुस्तक-परिचय

शिक्षा और परिवर्त्तन

["एजुकेशन एण्ड चेन्ज", लेखक-आर ए. होड्किन, प्रकाशक-ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस]

इस पुस्तक को पढने का मुझे आजकल मौका मिला और पूरा पढने पर मन में लगा कि हमारे साथी कार्यकर्ता, शिक्षक, ग्राम सेवक, शान्ति सैनिक-सब जो अंग्रेजी जानते है इसे पढें और लाभ उठावे तो अच्छा होगा। हमारे विचारो का जब कभी दूसरे देशो के विचारको का समर्थन मिलता है तब हमारा विश्वास बढता है और उत्साह भी। पुस्तक छोटी है, केवल १५० पन्ने की-कुल बारह अध्याय। शिक्षा के करीब करीब सब पहलुओ पर प्रकाश डाला है, गहरे अध्ययन और बारीक अनुभव के आधार पर चिन्तन की सामग्री दी है, खतरो से बचने के मार्ग भी दर्शाये हे।

अनन्तकालगति में दुनिया के एक हिस्से का प्रभाव दूसरे पर पडा है। आज करीब एक शताब्दी से पश्चिमी शिक्षा और समाजशास्त्र का जोरदार असर पूर्वी देशो पर पडता आ रहा है। पहली बात यह हुई कि कई पूर्वी देश पश्चिमी मुल्को के अधीन हुए। साथ साथ पश्चिम में विज्ञान की काफी तरक्की हुई, यन्त्रीकरण और उसके द्वारा उत्पादन बढा। पूर्वी देशो में, जो पराधीन हो चुके थे, बिक्री के केन्द्र तो तैयार थे ही। धीरे धीरे पश्चिमी शिक्षा भी इन देशो में खूब चलने लगी। अब की हालत ऐसी है कि कई पूर्वी देश आजाद हुये, और उनके जीवन के कई अशो में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। लेकिन उसी गति से शिक्षण बदलता नही; बदल भी नही सकता, तो एक बडी विषम परिस्थिति खडी हो रही है।

उक्त ग्रन्थ में लेखक महोदय ने इन सब बातो का शैक्षणिक आधार, मनोवैज्ञानिक कारण और निराकरण के तरीके सक्षेप में, पर पूरा-पूरा दिया है। पहले अध्याय में शिक्षा के आधार और उद्देश क्या हे उसकी चर्चा है। तीन उद्देश्य मोटे तौर पर सर्वत्र समान माने जा सकते है।

१ जीवन की विभिन्न परिस्थितियो का मुकाबला करने के लिये बच्चो को तैयार करना।

२. समाज में सामञ्जस्य के साथ रहने के लिये उपयुक्त व्यवहार और भाषा का विकास।

३ अपने लिये अभी अज्ञात विषयो के प्रति एक श्रद्धापूर्ण वृत्ति का निर्माण।

पहले उद्देश्य में बुनियादी तालीम के हाथ के काम और ज्ञान का समवाय झलकता है। दूसरा उद्देश्य छात्रो को समाज में अच्छा सभ्य व्यवहार करने का अभ्यास देना है। यह हुई मन की शिक्षा। तीसरा उद्देश्य कोई धार्मिक शिक्षा नही है, लेकिन पशु से निराला, मनुष्य में जो सहज भलाई है, उसको बढाकर पूर्णत्व की ओर अग्रसर होने की वृत्ति का निर्माण है। इन तीनो के लिये स्कूलो की जरूरत नही है। परिवार और समाज में से ही यह सहज मिल सकता है। स्कूल फिर क्यो? स्कूलो की शुरुआत और आजकल उनके कार्यों के बारे में विश्लेपणात्मक विचार किया है।

दूसरे अध्याय का नाम है परिवर्त्तन और चुनाव। सूडान देश के एक देहात का उदाहरण

दिया है । सरकारी मदद से गांववालो की स्वाध्यरक्षा के लिये एक वाटर फिल्टर का इन्तजाम किया गया। लेकिन गांववाले उसका उपयोग नही करते । पर उसी देहात के एक किसान का बेटा अेक मोटर लारी रखता है। ऐसे उदाहरण हमारे देश में भी मिलते हैं । सवाल यह है–पश्चिम के कुछ आचार विचार जल्दी पसद किये जाते हैं और कुछ नही। क्यो ? वाटर फिल्टर को लोक जीवन में पचा नही सके। लेकिन किसान का बेटा मोटर लारी को पचा सका–याने अपने जीवन में मोटर लारी के कारण जो परिवर्तन हुआ, उसे उसने सहर्ष स्वीकार किया।

इन परिवर्त्तनो के लिये जनमानस को तैयार करने में शिक्षको का क्या कर्त्तव्य है, इसका विवेचन करते हुए लेखक कहता है :–

"साधारण लोगो के मानस को परिवर्तन के लिये तैयार करने में शिक्षको की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। दस बीस साल के बाद कौन से विचार ज्यादा महत्वपूर्ण होगे, यह तो शिक्षक आम तौर पर नही जान सकते है। छोटे दर्जो में करने का काम वच्चो में उन गुणो का विकास करना है जो उन्हे पूर्वग्रह के बगैर नये विचारो को समझने व जांचने के समर्थ बनाएगे। जैसे कि हम पहले देख चुके हैं, परिवर्तन का मूलस्रोत स्कूल नही हो सकता है। वह कुछ बीज वो सकता है, लेकिन उसका मुख्य काम क्षेत्र तैयार करना है, जिससे कि उससे ऐसे लोग निकलेगे, जो अच्छे विचारो को चुनते व अपनाने में तथा दूसरो का परित्याग करने के काबिल हो।"

तीसरे अध्याय में इस बात का विवेचन है कि समाज में तनाव, संघर्ष, खींचातानी, ये सब किन कारणों से उत्पन्न होते हैं, उनके मनोवैज्ञानिक कारण क्या हैं । शिक्षा उस परिस्थिति में कैसे उपयोगी हो सकती है। परिवार में कभी कभी ऐसे तनाव पैदा होते हैं जो पिता और पुत्र में, मा और बेटी में इतने भेद पैदा करते हैं। फिर भी वह तनाव सहन किया जाता है । कालगति में उसका निराकरण भी हो जाता है। जिस समाज में परिवर्तन जल्दी जल्दी हो रहा है, उसमें पुरानी बातो को कायम रखते हुये नये विचारों को अपनाने में कठिनाई होती है। इस अध्याय में लेखक माहाशय ने गाधीजी के ब्रह्मचर्यव्रत का अच्छा उल्लेख किया है।

आज कल स्कूलो में यह शिकायत सुनायी देती है कि विद्यार्थिओ में शिस्त नही है । शिक्षक के सामने यह सवाल खडा होता है कि विद्यार्थी को दवा कर शिस्त में रखना या उसे आजादी देना । इसका विवेचन पाचवे अध्याय में किया है। हमारे देश में भी यह देखा जाता है कि शिक्षक और विद्यार्थी के बीच में कभी कभी तनाव होता है। इस अध्याय के अन्त में लेखक मोहदय ने एक सलाह दी है जो अत्यन्त उपयोगी हो सकती है। उन्होने लिखा है कि बारह साल की पढाई पूरी होने पर छात्रो को एक साल के लिये राष्ट्र की सेवा में लगाना बहुत ही उपयोगी होगा। लेकिन राष्ट्रसेवा सैनिक शिक्षा का विकल्प नही होना चाहिये। बल्कि उस साल में छात्र को अपने देश की परिस्थिति को प्रत्यक्ष काम द्वारा समझने का मौका मिले। इस तरह से लेखक ने कई सामयिक सवालो का विवेचन किया है।

आठवे अध्याय में गाधीजी की बतायी हुई नई तालीम का सहानुभूति पूर्ण तथा प्रशंसनीय

उल्लेख है। लेखक इस बात के बारे में सचेत है कि गाधीजी के देश में उनके शैक्षणिक विचारो की व्याप्ति और सफलता अपेक्षित प्रमाण में नही हुई है। इसके कारणो का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं, "गाधीजी को खुद इन विचारो को प्रत्यक्ष कार्यरूप देने के काम में लग जाना सभव नही था। यह दूसरो को करना पडा। और आज हर एक शिक्षक, जो अपने स्कूल में बुनियादी तालीम के सिद्धान्तो के पालन का प्रयास करता है और हर एक मा-बाप, जो अपने बच्चे की 'प्रगति' के बारे में बोलता है, और हर एक शाला निरीक्षक गाधीजी के सिद्धान्तो की व्याख्या इन कठिन यथार्थ्यों के सन्दर्भ में अपने अपने तरीके से करना चाहता है–बच्चो के स्वभाव का याथार्थ्य, मा-बाप की मागो का याथार्थ्य और नही मिलनेवाले उद्योगो के साधनो का याथार्थ्य। ताज्जुब यह है फिर भी यह सग्राम इतने जोर से चल रहा है। सभव है भारत की शिक्षाव्यवस्था का भावी रूप पूरा पूरा उस क्रान्तदर्शी के विचारो के अनुसार न बने, फिर भी इस कालावधि में सैकडो हजारो लोगो ने उनके आदर्शों का व्यावहारिक रूप ढूढ निकालने में अपना समय लगाया होगा।"

अन्यान्य अध्यायो में शिक्षा की योजना, शिक्षको के प्रशिक्षण, प्रौढ शिक्षण आदि की भी अच्छी चर्चा है। आखिरी अध्याय में गुण विकास को ही शिक्षा का आखिरी मजिल मानकर विषय समाप्त किया है।

हमारे देश के पाठको के लिये पुस्तक का एक सस्ता हिन्दी सस्करण निकले, तो वह बहुत उपयोगी होगा।

आर शकरन्।

प्राप्ति स्वीकार

पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक	कीमत रु नये पैसे	पृष्ठ
(१) इन सर्च ऑफ द सुप्रीम	एम् के गाधी	नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद	५ ००	३८८
(२) टू थ काल्ड् दम डिफेरेन्ट्लि		,,	१ ५०	१३१
(३) गीता-रत्न प्रभा	काका कालेलकर	,,	३ ००	३४०
(४) सर्वोदय और शासन-मुक्त समाज	शैलेश कुमार बद्योपाध्याय	अखिल भारत सर्व सेवा सघ	१.००	१३६
(५) पशु लोक में पाच वर्ष	य म पारनेरकर	,,	१.००	११९
(६) विकेद्रित अर्थ-रचना		,,	० ५०	६८
(७) स्वामी श्री नारायण गुरु	सत्यन्	,,	० २५	३१

विनोबा

नई तालीम का आगे का काम

[सितबर ९, १० और ११ तारीख को नई तालीम के आगे के कार्यक्रम पर गभीरता के साथ चिन्तन करने के लिये कार्यकर्त्ता पचमढी मिल रहे है । तालीमी सघ और सर्व सेवा सघ के सगम के सदर्भ में काम के आगे के स्वरूप के बारे में विनोबाजी ने जो निर्देश दिय थे वह इस अवसर पर हमारे विचारो और चर्चाओ में मार्गदर्शक होगे, इस विचार से उनके मन्तव्य का वह हिस्सा यहा दिया जा रहा है । स—]

अभी तक तालीमी सघ ने जो प्रयोग किये, वे एक हद तक पूरे हुए हैं । अगर हम उन्ही प्रयोगो को फिर फिर से करते हैं, उसमें कुछ नुक्स हैं तो उन्हे सुधारते जाते हैं, उसमें समय देते हैं तो हमारा समय ही जायेगा । नायकमजी हमारी तमिलनाड की यात्रा में साथ रहे थे । उन्हे भी लगा कि अब नई तालीम का रूप और भी नया होना चाहिये, बदलना चाहिये । अब ग्राम को ही स्कूल समझकर प्रयोग किये जाय । हमरा पुराना ढाचा करीब २० साल तक चला । उसका एक नमूना हमने पेश किया, उसकी एक दिशा भी मिली । सरकार के सामने हमने वह चीज रखी है, अब उसे उठाना है तो वह उसे उठा सकती है, उसमें परिवर्तन या वृद्धि जो भी करनी है, करने का उसे हक है । यह केवल तालीमी सघ का काम नही है । कहने का तात्पर्य यह है कि नई तालीम का एक प्रयोग पूरा हुआ । अब उसे दूसरा रूप देना चाहिये, यह विचार तालीमी सघ ने भी मान्य किया है, और वैसा प्रस्ताव भी कर लिया ।

सरकार व्यापक काम ही करने वाली है, एक-दम से सारे भारत पर लागू करने की बात आती है, उसमें हमें कुछ बाते ढीली करनी पडती हैं । उसके बिना व्यापक प्रयोग नही हो सकते । परतु ढीला करते समय कुछ बातो का आग्रह भी रखना पडता है । नही तो कुछ का कुछ बनेगा । इसलिये सरकार के साथ बातचीत करने का काम भी पर्याप्त शक्ति से करना हो तो सर्व सेवा सघ ही कर सकता है । सरकार को यह मालूम हो कि अिनकी कुल जमात अिस बारे में सोचती है । जो कुछ जानकारी हासिल करनी है सर्व सेवा सघ से ही हासिल करनी है । अैसा हो जाये तो सरकार के लिअे और हमारे लिये भी अच्छा है । नही तो कुछ अेका-गीपन आ सकता है और सरकार अपना कुछ आग्रह रखेगी तो प्रेम के साथ अुसका मुकाबला करना होगा, कही ढील करनी होगी और कही दृढ रखनी होगी ।

इन दिनो नई तालीम के दो टुकडे करने की बात चलती है । पहला टुकडा पाच साल

का और दूसरा तीन साल का। कहा जाता है कि पहले विभाग को शुरू कर दिया जाय और बाद में दूसरे विभाग को चलाया जाय। यह जरूरी नही कि पहला विभाग जितना व्यापक हो उतना ही दूसरा भी हो। पहले विभाग को स्वयपूर्ण मानकर ही काम किया जाय। मुझे तो यह खतरनाक मालूम होता है। समव है यह ठीक भी हो। अब इस पर समग्र विचार हम सबको करना होगा। और यह योजना ठीक है या बेठीक–इस पर पूरी तरह सोचकर सरकार के सामने अपना विचार स्पष्ट करना होगा। अग्रेजी का सवाल भी उठा है। अग्रेजी कहासे शुरू की जाये इसकी चर्चा चलती है। यह सवाल कुल तालीम के सामने पेश है और आगे जाकर कुल तालीम ही नई तालीम बनने वाली है तो नई तालीम का फर्ज है कि वह इस बारे में अपने विचार स्पष्टता से पेश करे। यह तो सब जानते है कि हमारे मन में अग्रेजी के खिलाफ कोअी विरोध (प्रिजुडिस) नही है। परतु सारे देश की बुनियादी तालीम का यह उसूल हमने माना है कि बुनियादी तालीम में अग्रेजी का प्रवेश न हो, उसके बाद हो। सरकार अब इसका निर्णय करेगी तो अिस बारे में हमारा विचार दृढ होना चाहिये। कअी सवाल एसे है जिन पर निर्णय नही हो सकता हो तो हम उनकी चर्चा करके उसे छोड दें। लेकिन जिन पर सर्व सम्मति से या लगभग सर्व सम्मति से निर्णय हो सकता है, वहा वह निर्णय सरकार के सामने पेश करना सर्व सेवा सघ का ही काम होना चाहिये, केवल तालीमी सघ का नही। सर्व सेवा सघ यह काम न करे तो मैं अुसमें खतरा देखता हू। क्योकि सरकार कुछ सोचती है तो अपनी पूरी शक्ति से सोचती है और हम अगर अधूरी शक्ति से सोचते है तो हमारी बात नही चलेगी। हमारे लिअे लोक अनुकूल न हो और फिर हमारी बात न तब तो ठीक है लेकिन हम अधूरी शक्ति से काम करेगे तो लोकमत अनुकूल होने यह समव है कि हमारी बात न चले। २ छोटे सघ को नही, बडे सघ को यह काम करना होगा।

हम खादी ग्रामोद्योग, प्राकृतिक उपचार आदि काम करते हैं। वे सब सर्व सेवा सघ से सबधित है। इन सब को नई तालीम का अग बनना होगा। हमारे पास लाखों बस्तियें हैं, देश में हमारे १००-२०० छोटे-मोटे आश्रम हैं, जिनके जरिये खादी ग्रामोद्योग आदि काम चलते हैं। लेकिन उन कामो में अब नई तालीम का कोई खास प्रवेश नही हुआ है। अिसमें मैं यह चर्चा नही करना चाहता हू कि किसका क्या दोष है। लेकिन यही बताना चाहता हू कि हमारा समग्र चिंतन नही हुआ और हमारे प्रयोग जिस तरह व्यापक होने चाहिये थे वैसे नही हुये, इसलिये अब सर्व सेवा सघ को इस काम को उठाना चाहिये और अपने कुल काम को नई तालीम का रूप देना चाहिये। तब हमें अनुभव आयेगा कि व्यापक परिमाण में काम कैसे करना है। सरकार व्यापक काम करती है तो हम भी व्यापक हो सकते है। हमारे कुल कामो में हमारा करीब २०,२५ लाख व्यक्तियो से सबध आता होगा। इतने व्यापक पैमाने पर कैसे काम किया जा सकता है, इसका कुछ नमूना हम पेश करे इसकी देश को जरूरत है। हमारे सारे कार्य को नई तालीम का रंग देना चाहिये ऐसा मुझे लगा। रंगवाली चीज नई तालीम होगी।

सर्वोदय साहित्य के पाठकों के लिए स्थायी ग्राहक योजना

अखिल भारत सर्व सेवा संघ के पास बराबर मांग आती रही है कि सर्वोदय साहित्य में दिलचस्पी रखनेवाले मित्रों को संघ के नवीन प्रकाशनों की सूचना समय-समय पर मिलनी चाहिए। जानकारी के अभाव में अक्सर वे नवीन साहित्य के अध्ययन से वंचित रह जाते हैं। अतएव संघ ने नीचे लिखे अनुसार एक 'स्थायी ग्राहक योजना" चालू की है।

१. स्थायी सदस्यता का प्रवेश शुल्क १ रु. होगा।

२. स्थायी सदस्यों को 'भूदान-यज्ञ' हिन्दी, 'भूदान' अंग्रेजी, 'भूदान तहरीक' उर्दू या 'नई तालीम' हिन्दी मासिक, में से किसी पत्रिका के ग्राहक बनने पर एक पत्रिका के चन्दे में १ रु. की छूट प्रथम वर्ष में दी जायगी।

३. उपर्युक्त चारों पत्र पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्र के मौजूदा ग्राहकों को प्रवेश-शुल्क देने की आवश्यकता नही रहेगी, केवल ग्राहक नम्बर और पेशगी रकम भेजने पर स्थायी ग्राहक मान लिये जायंगे।

४. स्थायी ग्राहकों को चार रु. पेशगी जमा करना होगा। साल में निर्धारित मूल्य से कम मूल्य की पुस्तकें लेने पर दिया हुआ कमीशन का वी. पी. लौट कर आने से उसके खर्च आदि की रकम, इस धन में से जमा कर ली जायगी। किसी प्रकार का बकाया न होने पर पेशगी की रकम सदस्यता समाप्ति पर वापस कर दी जायगी।

५. हमारी अपेक्षा है कि संघ द्वारा प्रकाशित हर नई किताब स्थायी ग्राहकों के पास पहुचे। फिर भी ग्राहकों को अपनी रुचि के अनुसार चयन कर के साल में कम-से-कम १५ रु. की किताबें लेना आवश्यक होगा।

६. स्थायी ग्राहकों को नये प्रकाशनों की सूचना यथासंभव हर दूसरे महीने दी जाती रहेगी।

७. सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, काशी से पुस्तकें लेने पर स्थायी ग्राहकों को २५ प्रतिशत कमिशन दिया जायेगा। पुस्तकें भेजने का व्यय, पैकिंग आदि खर्च ग्राहकों के जिम्मे होगा।

८. संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य का मूल्य कम होने के कारण फुटकर पुस्तकें मगांने वालों को डाक-खर्च प्रायः मूल्य के अनुपात में अधिक पड़ता है, यह ध्यान में रखना चाहिए। जो स्थायी ग्राहक एक साथ १५ रु. जमा करा देंगे, उन्हें बिना वी. पी. या बिना रजिस्ट्री के किताबें भेजी जा सकेंगी। इसमें डाक-व्यय कम हो जायेगा।

९. हर माह की २५ तारीख को साहित्य यहां से भेजा जायेगा। ग्राहकों को किताबों का चयन कर के उसकी सूचना हमें १५ तारीख तक भेज देनी होगी।

१०. इन विषयों में अनुभव से फेर बदल की आवश्यकता महसूस हो तो वह किया जा सकेगा। इसकी सूचना भूदान-पत्र-पत्रिकाओं द्वारा दी जायेगी। आशा है पाठक स्वयं इस योजना का लाभ उठायेंगे और मित्रों को भी इसके लिए प्रेरित करेंगे।

संचालक
अ० भा० सर्व सेवा संघ–

Regd No N-106

चाणक्य शायद कह गये हैं, जिनमें विद्या नहीं, वे 'सभामध्ये न शोभन्ते'। परन्तु सभा तो चिरकाल नहीं रहती। कभी-न-कभी तो सभापति को धन्यवाद दे कर बत्ती बुझा ही दी जाती है। मुश्किल तो यह है कि हमारे देश के आजकल के विद्वान सभा के बाहर 'न शोभन्ते'। वे किताब पढ़ने में मनुष्य हैं, इसी से मनुष्यों में उन्हें कोई शान्ति नहीं मिलती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

अक्टूबर १९६१ वर्ष १० : अंक ४

सम्पादक
देबीप्रसाद

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

अक्टूबर १९६१
वर्ष १० अंक ४.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. डाक से मंगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ४ ★ अक्टूबर १९६१

महात्मा गांधी

एक अन्य कारण से भी महात्मा गांधी एक महान् ऐतिहासिक विभूति के रूप में पूजे जायेंगे, इस बात का मुझे पूरा विश्वास है। वह कारण यह है: वे दो अत्यंत विभिन्न युगों की ठीक संधिरेखा पर खड़े हुए हैं। एक ओर तो वे भारत की सन्तसंबन्धी परंपरागत धारणा को मूर्तिमान् करते हैं और दूसरी ओर उनमें हमें जननेता का भी अत्यंत आधुनिक और उत्कृष्ट नमूना मिलता है। इस हद तक उनकी ऐतिहासिक स्थिति की तुलना जॉन द बाप्टिस्ट से की जा सकती है। बहुत संभव है कि मनुष्य भविष्य में जैसा बननेवाला है, उसकी उस भावी स्थिति में पुराने किस्म के एकांगी संत का घटनाओं के निर्माण में या इतिहास की रचना में विशेष स्थान नहीं होगा। भावी मनुष्य संपूर्ण मनुष्य होगा, जिसमें आत्मतत्त्व और जड़ तत्व का संतुलन होगा, लेकिन इस नये मनुष्य के लिये अभीष्ट परिस्थितियों का निर्माण दोनों युगों के संधिस्थल पर आसीन गांधी जितना कर रहे हैं, उतना अन्य कोई नहीं।

—काउन्ट हरमान केसरलिंग

शान्तिनिकेतन की दो तीर्थयात्राएँ

प्यारेलाल नैयर

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी मृत्यु के पहले गाधीजी को दो काम सौंप गये थे। पहला था शान्तिनिकेतन की आर्थिक कठिनाइयो में कुछ मदद करना, दूसरा उसकी व्यवस्था-सम्बधी बातो में दिलचस्पी लेना। दक्षिण आफ्रिका से जब फिनिक्स स्कूल के अन्तेवासी भारत आये थे, तो उन्हें यही आश्रय मिला था। खुद गाधीजी भी उस समय इगलैन्ड से लौटकर यही आये थे। कवि की मृत्यु के बाद वे फिर वहा नही जा सके थे। १९४५ के दिसबर में उन्होने इस पवित्र स्थान की तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया।

इसके पहले १९४० में गुरुदेव के स्वास्थ्य के गिरने की खबर पाकर उनसे मिलने के लिये गाधीजी वहा गये थे। उस समय भी एक पत्र में उन्होने इस प्रवास को "तीर्थयात्रा" बताया था। उसकी स्मृतिया अभी ताजी थी। दीनबन्धु एन्ड्रूज ने गुरुदेव के आमत्रण का गाधीजी के पास भेजा था। लेकिन गाधीजी के पहुँचने के थोडे दिन पहले दीनबधु अचानक बीमार हो गये और कलकत्ते के प्रेसिडन्सी हास्पिटल में उन्हे गभीर स्थिति में पहुचाना पडा। गुरुदेव और गाधीजी के "बडे परिवार" के वे केवल एक सदस्य नही, बुजुर्ग थे, और उनकी बीमारी की चिन्ता मिलन के इस आनन्द मय अवसर पर भी दोनो पर छायी हुई थी।

गाधीजी के पहुँचने के दिन तीसरे पहर एक छोटासा स्वागत समारोह हुआ। गुरुदेव के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की समाधियों से परिपूत "आम्रकुन्ज" में इसका आयोजन किया गया था। कहा जाता है कि महर्षि यहा पर सारी सारी रात समाधिस्थ अवस्था में बिताते थे। उनकी वसीयत के अनुसार इसे निर्गुण ब्रह्म की उपासना का स्थान बनाया गया था। उन्होने यह भी वसीयत की थी कि यहाँ किसी प्राणी का वध न किया जाय, इसलिये यह वन्य पशु पक्षियो का आश्रय स्थान बन गया है।

समारोह का आरभ कवि के प्रिय उपनिषद् पदो के गाने से हुआ था। उनके आखिरी शब्द "य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति" (जो ब्रह्म को इस तरह पहिचानते है वे अमृतत्व को प्राप्त करते है) अभी भी कान में गूज रहे थे। स्वागत का भाषण स्वय गुरुदेव ने पढा। लेकिन गाधीजी का मन दूर कलकत्ते में चार्ली एड्रूज के साथ था, अपने जवाब में इसका जिक्र करते हुये उन्होने उनके स्वास्थ्यलाभ और अतिम शान्ति के लिये प्रार्थना में सब का सहयोग मागा था।

दूसरे दिन सुबह का उनका सारा समय शान्तिनिकतन के विभिन्न विभागो का निरीक्षण करने में गया। वे श्रीनिकेतन भी गये। विद्याभवन में हरिबाबु से मिलना एक अपूर्व अवसर था। इन्होने २८ साल अकेले परिश्रम करके बगला

शब्दकोष तैयार किया था। इसके ६४ भाग छप चुके थे। और १६ अभी छपने के थे। चीना भवन में प्रोफ़ेसर तानसाग उपस्थित नहीं थे, क्योंकि उस समय वे सद्भावना मण्डल के साथ थे जो भारत घूम रहे थे, लेकिन उनकी पत्नी ने गांधीजी का हार्दिक स्वागत किया। चीनी पुस्तकालय उन्हें दिखाया। ये किताबें चीन राज्य ने विश्वभारती को भेंट की थी। गांधीजी से कहा गया कि वहां के चीनी बच्चे शान्ति निकेतन के दूसरे बच्चों के साथ बिलकुल हिल मिल गये थे, भाषा की उनके लिये कोई रुकावट नहीं थी।

इस्लामी संस्कृति के विभाग में दारा शिकोह की खुद लिखी हुई एक पाण्डुलिपि देखकर गांधीजी को बड़ा ही आनंद हुआ था। इस दार्शनिक राजकुमार की धार्मिक दृष्टि की उदारता व विशालता उस जमाने के लिये एक अद्भुत बात थी और आज के हमारे युग में भी कम ही पायी जाती है।

नन्दबाबु के कलाभवन में सब से आखिर वे गये। किसी ने गांधीजी से कहा कि कृष्ण भगवान् की तरह नंदबाबू अपनी लीला के पर्दे में छिपे रहते हैं। नम्रता और विनय की मूर्ति, वे अपनी कला के लिये ही जीते हैं। कला उनके लिये एक आध्यात्मिक साधना है। वे अपने शिष्यों से कहा करते हैं—"भगवान् की सृष्टि में जो सबसे छोटे व तुच्छ हैं, उनके साथ ऐकात्म्य भाव साधने के बगैर कोई कलाकार नहीं बन सकता"। गांधीजी को यह जानकर विशेष खुशी हुई कि बंगाल के बाद गुजरात से ही नन्दबाबु की शिष्यसंख्या ज्यादा थी।

गुरुदेव के साथ गांधीजी की उस समय पेट भरके बातचीत हुई थी। ये अत्यन्त घनिष्ठता की थी। ७९ वर्ष की उमर में कवि की मुखज्योति जरा भी क्षीण नहीं हुई थी। आँखें पहले से भी ज्यादा तेजस्वी थी। वे बगैर सहारे के चल नहीं सकते थे, फिर भी उनका स्थिर कदम था। कण्ठस्वर की ओजस्विता तथा मधुरता कम नहीं हुई थी। उनकी आत्मा में अभी भी जवानी की स्फूर्ति और ताज़गी भरी हुई थी। उस दिन शाम को उनकी प्रिय कृति "चण्डालिका" के नृत्यनाट्य में गुरुदेव के आग्रह पूर्वक निमंत्रण से गांधीजी उपस्थित रहे थे। गुरुदेव ने स्वयं अभिनय और रंगविधान का निर्देशन किया और उसकी छोटी से छोटी बात पर भी खुद ध्यान दिया। उनका उत्साह सात्त्विक था। गांधीजी को किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रम को शुरू से आखिर तक ऐसे रसपूर्वक देखते हुए मैंने कभी नहीं देखा था।

साढे पाँच साल बाद, १९४५ में गांधीजी की गाड़ी बोलपुर पहुंची। शाम की प्रार्थना का समय हो रहा था। रेलगाड़ी के उनके डब्बे के दरवाजे के सामने प्लेटफार्म पर कलपना से सजाया गया था। स्वागत की तैयारियों में सादगी के साथ कला की झलक दिखाई देती थी। न तो था जरा सा भी शोर गुल और न ही धक्का धुक्की। किसी प्रियजन की मृत्यु के बाद परिवार के पुनर्मिलन में जो गंभीर किन्तु संयत शोक का वातावरण होता है, वही वहां था।

सूर्यास्त हो गया था। गांधीजी को सीधे प्रार्थना भूमि में ले जाया गया। प्रार्थना भूमि घन वृक्षों से घिरे हुये एक खुले मैदान में बनी थी, सायंकाल की निस्तब्ध नीरवता में पत्ता तक न हिलता था। गुरुदेव के संगीत और धूप की सुगंध ने मानो सोने पर सुहागे का काम किया था।

प्रार्थना के बाद प्रवचन में गाधीजी ने गुरुदेव की उपमा अपने पख फैलाये हुये अडे सेते हुए एक पक्षी की दी। उनके आश्रयदायी पखो के नीचे शान्तिनिकेतन पनपा था। "हम सभी उनके पखो की सुरक्षा के बगैर अपने आपको आश्रयहीन महसूस कर रहे हैं। परन्तु हमें व्यर्थ शोक नही करना चाहिए। सब को एक न एक दिन चलना ही है। शान्तिनिकेतन आश्रमवासियो को अब मिल कर उनके आदर्श को कायम रखना है"।

दूसरे दिन सुबह शान्तिनिकेतन के लडके लडकियो के वैतालिक गान सुन कर हम लोग जग गये, वे आश्रम भूमि की परिक्रमा करके "उदोची" के उस कमरे की खिडकी के नीचे जाकर खडे हो गये जहा गुरुदेव बैठकर काम करते थे। एक समवेत सगीत के साथ वन्दना करके वे विसर्जित हुये।

आश्रम के अन्तेवासियो की साप्ताहिक सभा "मदिर" में हुई। वहाँ गुरुदेव अपने जीवन में प्रवचन देते थे। गाधीजी ने देखा कि लडके लडकियाँ अव्यवस्थित बैठे थे। पीठ सीधी नही थी और न ही उनमें एकाग्रता थी—इसका जिक्र करते हुये उन्होने कहा कि शान्तिनिकेतन के विद्यार्थियों के जीवन की छोटी से छोटी चीज में भी शान्तिनिकेतन की मोहर होनी चाहिए। उन्हे गुरुदेव की शिक्षा का सन्देश-वाहक बनना है। वह सदेश विश्वशान्ति और विश्वभ्रातृत्व का है। इसमें वश, जाति, वर्ण, या धर्म की दीवारे या भेदभाव नही हो सकते। एक दु खतप्त ससार को शान्ति का शीतल सदेश पहुँचाना गुरुदेव का काम था। अब शा[illegible]केतन के विद्यार्थी—विद्यार्थिनियो को शान्ति के सच्चे सैनिक बनकर दुनिया में निकलना है, जिससे कि शान्तिनिकेतन सचमुच शाति का निकेतन बने। इसके लिये आवश्यक है कि उन्हे ईश्वर में जीवन्त श्रद्धा हो—"जैसे मूर्तिकार की कुशलता सगमरमर के टुकडे में प्रविष्ट होकर उसमें प्राण फूक देती है, वैसे ईश्वर करे कि गुरुदेव की आत्मा आप लोगो में प्रवेश कर के सारे जगत में फैले।"

एक प्रश्न के जवाब में गाधीजी ने कहा, "मेरी यह मान्यता है कि गुरुदेव एक व्यक्ति के नाते अपने कृतियो से भी महान् थे, इस सस्था से भी महान् थे, जहा उन्होने अपनी शिक्षा दीक्षा दी, जहा अपने गान गाये और अपनी सारी आत्मा उडेल दी—शायद यह सभी नेक और अच्छे आदमियो के बारे में सच है—अगर आप लोगो को उनकी श्रेष्ठता व महानता का—जिसे वे खुद भी अपने कामो में पूरा पूरा प्रगट नही कर पाये, प्रतिनिधित्व करना है तो वह तपश्चर्या के द्वारा ही हो सकता है। आपका आदर्श केवल बगाल या भारत का ही प्रतिनिधित्व करना नही हो सकता—गुरुदेव मानव जाति के प्रतीक थे, लेकिन यह वह तभी कर पाये थे जब कि भारत की दलित जनता की मूक भावना और आकाक्षाओ के वह प्रतिनिधि बने। आपका भी वही लक्ष्य होना चाहिए। अगर आप भारत के दरिद्र जनसमूह के अत -करण को नही समझेंगे तो गुरुदेव का एक मानवी के नाते प्रतिनिधित्व नही कर सकेंगे।'

गुरुदेव और गाधीजी भारत के आत्मा के दो ध्रुव थे। एक भारतीय सस्कृति के शिलाधार तपश्चर्या का प्रतीक थे, दूसरे भारतीय कला का। ये दोनो परस्पर विरोधी नही, पूरक है। उपनिषद् में ईश्वर का सम्बोधन "कवि पुराणम्

शिक्षा और युद्ध

इस पत्र का लेखक आपके जैसा ही एक शिक्षक है। याने उसका काम बच्चो को शिक्षा देने का है। उसको पिछले महायुद्ध में सैनिक कार्य करना पडा था, जैसा कि शायद आपको भी करना पडा होगा*। इन्ही दो कारणो से वह शिक्षा और युद्ध के विषय पर आपको सबोधित करके कुछ निवेदन करने का अपना हक समझता है।

हम किस ध्येय को पहुचने की कोशिश में हैं, इस प्रश्न को उठाये बिना शिक्षण के धन्धे को गभीरता के साथ नही लिया जा सकता है। इस प्रश्न के जबाब कई प्रकारो से हुए हैं और सामान्यत विकास, वृद्धि, मन व भावनाओ की परिपक्वता प्राप्त करना, या सक्षेप में चरित्र निर्माण शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। इस विषय में जिम्मेदारी का बोध, समाज सेवा की भावना, मानवकल्याण की चिन्ता, आदि मूल्यो के प्रस्थापन की हम बहुत अच्छी-अच्छी बात करते आये हैं। और इन मूल्यों के स्थापन के प्रयत्न में स्वाभाविक ही यह माना जायगा कि हम बालको को ऐसे आचरणो व प्रवृत्तियो से बच कर रहना भी सिखाएँगे जो स्पष्ट रूप से पापिष्ठ और अन्यायपूर्ण तथा मानवकल्याण के विरोधी हैं।

जो मैं यहा कहना चाहता हूं, वह यह है कि युद्ध–याने मानवो के द्वारा मानवों को मारा जाना–निश्चित रूप से और सर्व सम्मति से, आज और भूत काल में भी मानव के दु खो व भयों का सब से बडा कारण रहा है। अपनी वास्तविक तथा सभावित विपत्तियो–जिनके कि आदमी शिकार बन सकता है–की विपुलता के कारण वह सब से बडा पाप है। इस वस्तुस्थिति के कारण शिक्षा के काम में इससे ज्यादा महत्वपूर्ण और कुछ नही हो सकता कि जवानो और बच्चो को युद्ध के वास्तविक स्वरूप को समझना तथा उसका सर्वथा परित्याग करना सिखायें।

फिर भी आज हम किसी भी आधुनिक 'सभ्य' राज्य में चारो तरफ देखेंगे तो यह सर्व साधारण अनुभव है कि सरकारें रोज अपने सहजीवियो की हत्या की भीषण तैयारियो में

*युद्ध के समय इग्लैण्ड म नौजवानो के लिये सैनिक सेवा अनिवार्य थी।

(पृष्ठ ९८ का शेषाश)

अनुशासितारम्" कर के किया गया है। उसे आदिकवि और सर्वोपरि अनुशासक का नाम दिया गया है। कवि अथवा कलाकार के नाते वह तारो को उनकी चमक देता है और अनुशासक के नाते उनकी गति को स्थिर करता है। कविवर की कला का आत्मा सयम था और गाधीजी की तपस्चर्या में कला भरी होती थी। भारत के उत्थान के लिये दोनो अनिवार्य हैं, ऐसे गाधीजी और कविवर मानते थे, केवल उनका क्षेत्र अपना अपना था। इन दो के मेल में भारत के पूर्ण विकास की चावी है। शान्ति निकेतन की आखिरी यात्रा इस सयोग की सूचक और प्रतीक थी।

लगी हुयी हैं, इतना ही नही, बल्कि सब जगह बच्चे इस विचार में पल रहे हैं कि युद्ध मानव जीवन की एक सामान्य बात है और आदमी के साधारण नागरिक कर्त्तव्यो में दूसरो को समठित तरीके से मारना भी एक भाग के तौर पर आता है। यह बात जरूर है कि इस परिस्थिति के लिये जिम्मेदार शक्तिया केवल शैक्षणिक सस्थाओ के अन्दर ही काम नही करती हे, उल्टा वह समाज के ताने बाने में मिली हुई है। स्कूल के अलावा और भी कई रास्तो से बच्चे को यह बार बार सुझाया जाता है कि युद्ध आदमी के लिये एक स्वाभाविक चीज है, और अमुक परिस्थितियो म–जिनका स्पष्टीकरण नही हुआ है–मानव की हत्या में भाग लेना उसकी अपनी इनसानियत के अयोग्य या लज्जाजनक नही है, उतना ही नही, बल्की वह एक नैतिक कर्त्तव्य और सच्चे पुरुषत्व का प्रमाण भी है। बच्चा यह अपन मा बाप से सीखता है, अखबारो से, टेलिविजन से, सिनिमा से और स्कूल से सीखता है और कई दफ आराधनास्थलो में भी यही सिखाया जाता है। शिक्षको की हैसियत से हम जो कुछ भी दावा करे, हममें से कितने सचाई के साथ कह सकते है कि हमने हर विचार पूर्वक व तर्क सगत तरीके से विद्यार्थियो में अपन सहजीवियो से प्रेम करन के अपने मानवीय कर्त्तव्य का बोध बढाने का तथा किसी भी परिस्थिति में उनका मारना पाप समझाने का पूरा प्रयत्न किया है, जैसा आज कोई भी सभ्य मानव मनुष्य मास खाने, पीडा करने और गुलामी को पाप समझता है।

हा सही बात, युद्ध सरकारो के हुकुम से चलते हैं, लेकिन वे सरकारे भी तो ऐसे मनुष्यो से बनायी हुई हैं, जो एक दिन अपनी मा की गोद में बैठ कर तुतलाकर बोलते थे और एक शिक्षक के मार्ग दर्शन में जिन्होंने अपने पहले अक्षर सीखे थे। और आज भी बहुत सारे लोगो के सक्रिय सहयोग व जनता की सामान्य सम्मति के बिना युद्ध की योजना नही बनाई जा सकती, न युद्ध का प्रारभ ही हो सकता है। यह कहना निश्चय ही एक तथ्यमात्र है कि विकास-क्रम की किसी भी अवस्था में मानव के जीवन का गुणात्मक स्तर उसकी नैतिक उच्चता से सीधे सबन्धित है। जब मानव इस पृथ्वी को दूषित करते हैं और उसे हर तरह के यान्त्रिक भयावह वस्तुओ से भर देते हैं, जिससे कि विश्व की आत्मा ही भयातुर हो उठती है, तो उसका कारण यह नही कि सज्जनो का समूह दुर्जनो के समूह से पराभूत हुआ है, यह भी नही कि पूजीवादी या साम्यवादी अपने में कोई विशेष दुष्ट प्राणी हैं, हमारी आज की भयकर परिस्थिति बहुसख्यक मानवो की नैतिक अपरिपक्वता का सीधा परिणाम है। और यह परिस्थिति युवक पीढो को जो शिक्षा दी जा रही है उसका प्रतिफलन करती है। एक समाज के नैतिक गुण का मूल्याकन करने के लिये हमें वही जानकारी आवश्यक है जो कि एक व्यक्ति के नैतिक गुण का मूल्याकन करने के लिये हमें चाहिये। याने हमें उन वास्तविक मूल्यो को जानना है जो एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह के बर्त्ताव का आखिरकार नियन्त्रण करते हैं। असल में हमें उस समाज के धर्म को जानना है, इस मर्यादित अर्थ में कि वह किस चीज को पवित्र मानता है। जब हम अपने राष्ट्र या इस बीसवी सदी के मनुष्य के बारे में अपने आपसे यह प्रश्न पूछते हैं तो एक आश्चर्यकारी व भयकर वैपरीत्य का सामना करते हैं। एक व्यक्ति से उसके धर्म के बारे में पूछने पर चाहे वह सिपाही हो या राजनी

तिज्ञ हो या पादरी हो बहुत करके वह ईसाई धर्म की भाषा में ही बोलेगा, लेकिन उसका असली धर्म अपने विषयवस्तु में इससे भिन्न है, इतना ही नही, बल्कि वह एकदम उल्टा है। हमारा धर्म-वह धर्म जो स्कूलो में सिखाया जाता है और जिसके बारे में गिरजाघरो में व्याख्यान होते हैं-अपने पडोसियो पर अपने जैसा ही प्रेम करना सिखाता है, दूसरो के साथ वैसा आचरण करना, जैसा हम अपने साथ चाहते हैं, दूसरो की परीक्षा और निन्दा न करना ताकि हमारी परीक्षा और निन्दा न हो, और पाप का प्रतिकार हिंसा से न करना सिखाता है। ईसाई समाज का हर कोई व्यक्ति इन वाक्यखण्डो से उतना ही परिचित है जितना अपनी रोज की खाने की रोटी से। लेकिन ये शब्दमात्र हैं। हमारा सच्चा विश्वास, प्रामाणिक धर्म, समाज जिसको पवित्र मानता है, वह सब इसके बिलकुल विपरीत है। उनका वर्णन इन परिपूत शब्दो मे नही किया जा सकता है, जैसे– जो नम्र और छोटे हैं वे धन्य हैं', या 'तुम छोटे बच्चो के जैसे बन जाओ', या 'जो कुछ भी तुम्हारा है सब दरिद्रो को दे दो', बल्कि ऐसे वाक्यो में किया जाता है जो व्यावहारिक आदान-क्षेत्र में बारबार साबित हुए हैं–वैसे शब्द जो व्यक्तिगत सपत्ति और सामाजिक श्रेष्ठता में गर्व प्रगट करते हैं और जरूरत पडी तो सपत्ति तथा अपने समाज के सम्मान की रक्षा के लिये मारने का निश्चय व्यक्त करते हैं। इसकी–जो आधुनिक आदमी का असल धर्म है–देशप्रेम के नाम से स्तुति होती है।

आधुनिक मानव की सच्ची दुर्दशा इस वैपरित्य में है। वह सत्य देखता है लेकिन उसको कार्यान्वित करने में असमर्थ है। हमारे प्रख्यापित एव वास्तविक विश्वासो के बीच का द्वन्द, जो हमारे आचरण में प्रतिफलित होता है, इतना बढ गया है कि आज के स्पर्धा पर अधिष्ठित, सपत्ति के पीछे लगे, युद्ध के भय से व्याकुल, हर आधुनिक समाज के हजारो लाखो दुखी, निरर्थक जीवनो में बीमारी, चिन्ता, भय हिंसावृत्ति और मानसिक अस्वास्थ्य के कई विकृत रूप व सघर्ष एक सर्व साधारण अनुभव हुआ है।

इस गभीर चुनौती के सामने उन लोगो के ऊपर एक विशेष जिम्मेदारी आती है जो भावी नागरिको के पालन पोषण व शिक्षा का काम कर रहे हैं। बढती हुई पीढी को यह समझाने से ज्यादा महत्वपूर्ण काम क्या हो सकता है कि युद्ध कोई खेल तमाशा नही, बल्कि एक भयकर दुष्कृत्य है, जिससे इस पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व का ही खतरा है। इससे भी ज्यादा हमें बच्चो व जवानो के हृदय और बुद्धि को जगाना है जिससे अपने सहजीवी को मारने के भीकर दुष्कृत्य में व्यक्ति की जिम्मेदारी को वे महसूस करे, जैसे कि अब बहुतेरे करने भी लगे हैं। उनको इतना सिखाना ही काफी नही कि मनुष्यहत्या एक गलत काम है, बल्कि यह भी समझाना है कि कुछ व्यक्ति समूह के–जो सरकार कहलाता है हुकुम से किये जाने के कारण वह कम गलत नही होता है।

बच्चो को प्राणिमात्र के प्रति श्रद्धा और आदर सिखाने का हर तरीके से प्रयत्न करने के साथ साथ, उन्हे इस मानवीय स्वभाव व कर्तव्य से अलग होने के परिणामो को समझाना भी चाहिये। या तो हम अपने आपको इस धरती पर थोडे समय के लिये प्राण व चेतना से अनुगृहीत जीवो के रूप में देखें, जिन्हे अपने सहजीवियो के प्रति श्रद्धा और प्रेम करने की क्षमता है, अपने आपको एक बृहद् मानव परिवार के सदस्य मानें, या तो कल्पना-

तीत पीडा और कष्ट के साथ निश्चित रूपसे विनाशगर्त में चले जायँ। हमारे समाज का नैतिक पतन इतना हुआ है कि "आशविच" (Auschwitz) के मृत्युशिबिरो व हिरोषिमा के आणविक विनाश की भीषण चेतावनियो के बाद भी–आज भी–मानव व्यापकहत्या की तैयारियो में एक दूसरे की प्रतियोगिता कर रहे हैं। हमारा अपना देश (इग्लैण्ड) भी इन तैयारियो में पूरा हिस्सा ले रहा है। आधुनिक आणविक अस्त्रो की मारक शक्ति इतनी ज्यादा है कि अनुमान लगाया गया है कि केवल छः बम इन द्वीपों में (ग्रेटब्रिटन के) सारे जीवन को खतम करने के लिये पर्याप्त होगे। इतना ही नही, अभी जितने अणुबम तैयार है, उनमें पृथ्वी के हर एक पुरुष, स्त्री व बच्चे के लिये ८० टन के करीब विनाशक सामग्री विद्यमान है।

एक शिक्षक कह सकता है,–मे उपरोक्त विचारो से पूरा पूरा सहमत तो हू, फिर भी बच्चो के मन में इस प्रकार की ऐकान्तिक श्रद्धा पैदा करने में दो गभीर गल्तिया हो सकती हैं। पहला: ऐसी शिक्षा का राष्ट्र की राजनीति पर परिणाम हो सकता है और शिक्षक का काम विवादग्रस्त राजनैतिक विचारो का स्कूलों में प्रचार करना नही है। दूसरा . अगर हम नयी पीढी को इन विचारो में पालने में समर्थ होते हैं तो हो सकता है, हम अपने देश को दूसरे देशो के साथ उसके सबन्ध के सिलसिले मे एक बडे धोखे में डाल दें।

पहले मुद्दे के बारे में हमें यह स्पष्ट समझना चाहिए कि सच्ची शिक्षा, जो कि समाज के दैनंदिन जीवन की जिम्मेदारियों की उपेक्षा नही कर सकती, उसका प्रभाव अवश्य ही राष्ट्र के राजनैतिक जीवन पर पडता ही है, हालांकि यह प्रकट या सीधे रूप में नही होता हां, शिक्षक को विद्यार्थी के मन में यह प्रतीति नहीं पैदा करनी चाहिये कि किसी विशेष राजनैतिक पक्ष के मार्गो के साथ अपने आपको जोड देने का उसका कोई नैतिक कर्त्तव्य है। मनुष्यहत्या पाप है यह सिखाना किसी राजनैतिक पक्ष का विरोध करना नही होता है। सभी राजनैतिक पक्षों के घटकभूत व्यक्ति कल के परिवारो और स्कूलो में पले हुए हैं, और उनकी शिक्षा हत्या को सामान्य राजनीति का एक अग मानने की हुई है। आज मानवीय शिक्षा का कर्त्तव्य इस आणविक युग की भीषण चुनौती का सामना करना है और आगामी पीढी में मारने की सन्नद्धता तथा मानव के सच्चे हित के बीच के विरोध का दृढ बोध पैदा करना है।

और दूसरी बात: मानव के मौलिक धर्म के बारे में यह कोई कोरी कल्पना नही है। उसका सत्य परिणामो के विचार पर निर्भर नहीं करके अक्षुण्ण रहता है। वह अन्य मानवो पर हमारे विश्वास का प्रमाण है–यह विश्वास कि वे भी हमारे जैसे ही हैं, मैत्री और प्रेम का बदला मैत्री और प्रेम ही होगा।

आदमी के व्यवहार में भय और अविश्वास का जो राज रहा है, उसको यह चुनौती है। हम सिर्फ इतना बताना चाहते हैं कि मानववश कायम रहेगा, और प्रेम करना सीखेगा, वह पृथ्वी पर से मिट नही जायगा, भविष्य उसके सामने प्रभूत सभावनाओ से समृद्ध पडा है, क्योकि सच्ची मानवीय शिक्षा सच्चे मानवीय विज्ञान के जैसे ही कोई सीमाओ को नही जानती और वह राष्ट्र या वश की बातो से अनभिज्ञ है।

एक समवायपाठ—

वर्षा कैसे होती है ?

देवलाल अंबुलकर

वर्षा के दिनों में अकसर विद्यार्थी निम्न-लिखित प्रश्न पूछते हैं :—

१. बादल किस तरह बनते हैं ? वर्षा कैसे होती है ?

२. वर्षा को कैसे नापते हैं ?

३. वर्षा होने का अंदाज किस तरह लगाया जाता है ?

४. ज्यादा वर्षा का दुष्परिणाम किस तरह रोकते हैं ?

५. कभी कभी बादल आकाश में दिखाई देते हैं, परन्तु वर्षा नहीं होती–क्या हम वर्षा को गिरा सकते हैं ? वर्षा नहीं चाहिये तो उसे क्या हम रोक सकते हैं ?

६. अन्य देशों में वर्षा किस तरह होती है ?

इनमें से पहला प्रश्न लेकर आजकल मैंने ७ वे वर्ग में चर्चा की थी। समय ३५ मिनिट लगा।

एक विद्यार्थी ने यह प्रश्न पूछा तो दूसरा विद्यार्थी खडा होकर कहने लगा, "मुझे मालूम है, मै बताऊं ?"

उसने बताया, "समुद्र, झील, तालाब आदि के पानी की भाप बनकर हवा में उड जाती है और वह ऊपर जाकर बादल बनते हैं, बस, और क्या ?"

मैंने उसे रोका और कहा "समुद्र या तालाब के पानी की जो भाप बनती है, उस क्रिया को क्या कहते हैं"? कोई उत्तर नहीं आया। फिर बताया गया, "उसे बाष्पीभवन कहते हैं, बाष्प का अर्थ भाप होता है। इस तरह भाप बनने की क्रिया को बाष्पीभवन कहते हैं।"

"यह बाष्पीभवन कहा कहा होता है ?"
"गुरुजी, वह तो हमारे घर में भी जब पानी उबलता है तब होता है।"

"पानी जब उबलता है तब उस क्रिया को उत्कलन क्रिया कहते हैं। लेकिन समुद्र की सतह पर जो बाष्पीभवन होता है, वह बहुत ज्यादा प्रमाण में होता है और यह सब भाप बनकर हवा में मिल जाती है।

"यह हवा किसी कारण वश गरम होकर ऊपर चढ़ने लगती है। उसके साथ यह बाष्प भी ऊपर चढ़ने लगता है। लेकिन ऊपर ठंडी है। उसका क्या परिणाम भाप पर होगा ?"

"भाप का पानी बन जायेगा।"

"ठीक है। भाप का रूपान्तर पानी की छोटी छोटी बूंदों में हो जाता है। ये बूंदें हवा में घूमनेवाले धूलिकणों पर सवार हो जाती हैं।"

एक विद्यार्थीने पूछा

" ये धूलिकण कहा से आते है ?"

"ये कण धूल से होते हैं । हवा जब जोर से बहती है तब वह मिट्टी को अपने साथ उडा ले जाती है । कारखानो का धुआं इजिन से निकलने वाला धुआं, इसमें भी बहुत से कण होते हैं। वे सब आकाश में हवा के साथ इधर उधर घूमने लगते हैं। बहुत ऊपर भी जा सकते हैं । इन कणो पर भाप पानी के रूप में जम जाती है ।

"जब यह बाष्पयुक्त धूलिकण आकाश में इकट्ठे होते हैं तब हमें बादल के रूप में दिखाई देते है । उसको हम बादल कहते हैं । बादल में यदि यह धूलिकण कम संख्या में हो तो वह बादल सफेद दिखाई देता है । और यदि वह ज्यादा संख्या में हो तो बादल काला दिखाई देता है ।"

"गुरुजी, धूलिकण ज्यादा संख्या में हो तो बादल क्यो काला दिखाई देगा ?"

"जब धूलिकण कम रहते हैं तो उसमें से प्रकाश इधर उधर जा सकता है, इसलिये वे सफेद दिखाई देते है । लेकिन जब इन धूलि कणो की संख्या ज्यादा रहती है तो प्रकाश उस पार नही जा सकता । इसलिये वे काले दिखाई देते हैं ।"

"लेकिन जब इन धूलिकणो पर पानी की बूंदें जम जाती हैं तब वह नीचे क्यो नही गिरती ?"

"यह धूलिकण कुछ हदतक पानी की बूंदोका भार लेकर इधर से उधर घूम सकता है, लेकिन उसपर तो पानी की बूंदें जमती ही जाती हैं । जब यह भार उसे असह्य हो जाता है तब वह जमीन पर गिर जाता है । उसे ही हम वर्षा कहते हैं ।"

"गुरुजी, हमने कल कोहरा देखा, क्या वह भी बादल के जैसा ही होता है ?"

'निश्चित । वह तो बादल ही है जो जमीन पर उतर आता है ।"

"फिर वह पानी जमीन पर क्यो नही गिरता ? क्योकि उसमें भी बाष्पयुक्त धूलिकण होंगे ।"

"देखो, तुम भूल जाते हो, पहले ही तुमको बताया गया कि धूलिकण कुछ हद तक पानी की बूंदो का भार सह सकते हैं, वे उसे गिरने नही देते ।"

'लेकिन हम देखते है कि कोहरे में पेड के पत्ते गीले हो जाते है ।"

"यह ठीक है, क्योकि उसमें से कुछ धूलि-कण अवश्य हो पत्तोपर बैठ जाते होंगे ।"

"लेकिन धूप गिरने पर कोहरा उड जाता है । क्यो ?"

' हवा गरम हो जाती और वह ऊपर चढती* है, उसके साथ य धूलिकण भी ऊपर चढते हैं । इसलिये कोहरा नष्ट हो जाता है ।"

विद्यार्थियो को संतोष हुआ । फिर मैंने उनको इस विषय पर उन्होने क्या समझा, वह विस्तार से लिखने के लिये कहा ।

नोट – *हवा गरम होकर क्यों उपर चढती है, यह समझने के लिये अभी ये बालक छोटे हैं, इसलिये मने उसका विस्तार करना ठीक नहीं समझा ।

नई तालीम सम्मेलन : अेक सिंहावलोकन

लगभग ढाई वर्ष के बाद देश भर के नई तालीम कार्यकर्ताओं को एकसाथ मिलने का अवसर पचमढी में हुआ। सर्व सेवा संघ की सम्पर्क समिति ने ६ माह पहले ही सम्मेलन बुलाने के बारे में आग्रह किया था और मध्य प्रदेश सरकार ने सम्मेलन आमंत्रित करने का दायित्व उठाया। सम्मेलन के लिये सितम्बर माह कोई अनुकूल मौसम भी नहीं था, परन्तु यह कार्य जितना जल्दी हो सके उतना अच्छा है–इस दृष्टि से इस प्रतिकूल मौसम में भी सम्मेलन का आयोजन किया गया।

पिछला सम्मेलन राजपुरा में हुआ था। उस के तत्काल बाद ही तालीमी संघ और सर्व सेवा संघ के संगम का निर्णय हुआ और कार्यकर्ताओं के सामने एक सप्तविध कार्यक्रम रखा गया। नई तालीम के काम के बारे में हमने अैसा महसूस किया है कि आज नई तालीम का कार्य केवल शिक्षकों का काम नहीं है, बल्कि सर्वोदय की सब प्रवृत्तियों में लगे हुये सब कार्यकर्ताओं का काम है और एक व्यापक दृष्टि से काम करने की आवश्यकता है। शालाओ के जरिये शिक्षण पद्धतियों में खोज और अभिवृद्धि होगी, बच्चों में अच्छे संस्कार डाले जायेंगे लेकिन सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन सामाजिक शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। इस सम्मेलन की भूमिका यह रही कि प्रान्तीय स्तर पर स्वतंत्र रूप से काम करनेवाली नई तालीम की संस्थाओं का आपसी सम्पर्क मजबूत करें। तालीमी संघ से प्रेरणा पाकर जो काम उन्होंने प्रारम्भ किया है उसमें कोई खाई न हो और सम्पर्क बराबर कायम रहे। कभी-कभी यह भावना भी सुनने में आती है कि असली काम समाज परिवर्तन का है। नये मूल्यों की स्थापना हुये बिना नअी तालीम का काम चल नही सकेगा। आज नअी तालीम के सामने अच्छी शालायें चलाना, बच्चों के चरित्र का विकास करना और समाज में नये मूल्यों की स्थापना के लिये व्यापक लोक शिक्षण का काम अपनाना यह दो तरह का काम है। यह कार्य परस्परविरोधी नही है। ये नअी तालीम के ही अलग अलग पहलू हैं और परस्पर पूरक हैं। केवल शाला शिक्षण से ही नया समाज नही बन सकेगा और न विचार प्रचार से ही नअी समाज रचना सम्भव होगी। इसका सम्मिलित रास्ता निकालना चाहिये। यही सम्मेलन मे उपस्थित लोगों के चिन्तन का मुख्य विषय रहा। स्वतंत्र रूप से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के समक्ष भी यही पृष्ठभूमि रही।

पचमढी नअी तालीम के काम की दृष्टि से कोअी खास महत्व का स्थान नहीं था। परन्तु मध्य प्रदेश का एक बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय वहां चलता है। यह पहले से ही सोचा गया था कि सम्मेलन के नाम से कच्चे रोड आदी बनाने मे खर्चा नही किया जाय। सम्मेलन में मर्यादित

संख्या में ही प्रतिनिधि आये, ५०० कार्यकर्ताओं तक ही सीमित रखा जाय; ताकि चर्चाओं में काम के अनुभव की पृष्ठभूमि और गहराई रह सके। मौसम की दृष्टि से भी पचमढी बहुत अनुकूल नही रहा। सम्मेलन के प्रथम दिन प्रतिनिधियो में से आधे पचमढी पहुँच गये थे और शेष नदी देनवा की बाढ के कारण पीपरिया में ही रुक गये। इस कारण सम्मेलन १० सितम्बर को ही आरम्भ हो सका। सम्मेलन के प्रबन्ध में इस बार यह प्रयत्न किया गया था कि प्रतिनिधि अलग अलग स्थानो में रहे और उनकी देखभाल की जिम्मेदारी एक एक बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयो की रहे। वहा की भोजन व्यवस्था और रहन सहन का सारा प्रबन्ध मध्य प्रदेश के अलग अलग स्थानो से आये हुये बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयो के शिक्षक और प्रशिक्षणार्थियो को सौंपा गया था। वर्षा के कारण और कोई प्रबन्ध सम्भव भी नहीं था, इस कारण कई बुनियादी विद्यालयो को इस प्रकार प्रत्यक्ष सगठन का अवसर मिला। ९ सितम्बर तक वर्षा का अत्यधिक प्रभाव रहा और व्यवस्था करनेवालो के मन में यहा तक शका प्रवेश कर गई थी कि यह सम्मेलन सम्भव होगा या नही। सबके मन में बहुत निराशा छा गई थी कि बहुत कठिनाइयो के बीच में तोस महीनो के बाद नई तालीम सम्मेलन बुलाया जा रहा है और वह भी एक निराशा के वातावरण में। आज आम कार्यकर्ता पूछता है कि यह क्या असामञ्जस्य है कि एक तरफ सरकार कहती है कि हम देश के सब बालकों को बुनियादी शिक्षण देना चाहते है, तदुपरान्त २५ वर्ष के बाद भी हम नही कह पाये हैं कि इस ओर हम काफी आगे गये है। नई तालीम लोकप्रिय होना एक बात रही, कार्यकर्ताप्रिय और विद्यार्थीप्रिय भी कैसे हो? यह स्वय में एक बडी समस्या है।

सितम्बर १०-११ को मौसम बहुत अच्छा रहा और सब के मन में एक आशा, प्रकाश और आनन्द का प्रवाह फैल गया। सम्मेलन के तीन दिन पूर्व से ही अलग केन्द्रो से आये कुछ नई तालीम के कार्यकर्ताओ ने सम्मेलन के तथा अध्ययन मण्डलियो के लिये चर्चा-विषयो के बारे में विस्तृत रूप से सोचने, और दिशा तथा कार्य पद्धति तय करने के लिये एकत्रित हुये थे। इस सयोजन का असर अच्छा रहा। क्योंकि अध्ययन मण्डलियो में सचालक और अन्य साथी तैयार होकर आये थे और कम समय होते हुये भी चर्चाओं को एक सही दिशा में लाने में सफल हुये। चर्चाओ के लिये सोचे गये विषय निम्न प्रकार है :

१ बुनियादी तालीम का काम और उसकी परिस्थिति।

२. उत्तर बुनियादी तालीम

३ शिक्षक प्रशिक्षण काम

४ समग्र नई तालीम

सम्मेलन का उद्घाटन केन्द्रीय शिक्षा मत्री डा० श्रीमालीजी ने किया, उन्होने नई तालीम कार्यकर्ताओं का ध्यान राष्ट्रव्यापी शिक्षा में, खासकर तृतीय पचवर्षीय योजना में जो मुद्दे रखे गये है, उनके बारे में खीचा। देश में अगले ५ वर्षो में सब शालाओ में बुनियादी तालीम के कुछ सिद्धान्तो का प्रवेश होगा और सब प्रशिक्षण विद्यालय बुनियादी तालीम की पद्धति से ही चलेगी।

(शेषांश पृष्ठ १२० पर)

चौदहवां अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन,

अध्ययन गोष्ठियों का निष्कर्ष

अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन, पंचमढी में दिनांक १०,११ सितम्बर १९६१ को विस्तृत चर्चाओं के लिए चार अध्ययन मंडलियों का गठन किया गया था, जिनके विषय और संयोजक निम्नानुसार थे।

चर्चा गोष्ठियों के विषय	संयोजक
अ. बुनियादी तालीम के काम की परिस्थिति एवं प्रगति.	श्री. द्वारका प्रसाद सिंह
	श्री. जे. के शुक्ला.
ब. शिक्षक प्रशिक्षण का कार्यक्रम	श्री. मार्जरी साइक्स.
	श्री. मिलापचंद्र दुबे.
स. उत्तर बुनियादी शिक्षण की समस्यायें.	श्री. वनवारीलाल चौधरी.
	श्री. चन्द्र भूषण.
	श्री. जुगतराम दवे.
	श्री. सुमन वंग
द. समग्र नई तालीम	श्री. अण्णासाहेब सहस्त्रबुद्धे.
	श्री, राममूर्ति.
	श्री. अक्षय कुमार करण.

चर्चाओं के बाद स्वीकृत निष्कर्षों को नीचे दिया जा रहा है।

अ. बुनियादी तालीम के काम की परिस्थिति एवं प्रगति

१. बुनियादी शिक्षा की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि प्रशासन, निरीक्षण, शिक्षण, व्यवस्था, साधन, छात्र और समाज सब का संतुलित प्रयास हो। बिना इसके बुनियादी शिक्षा का काम ठीक से नही चल सकता।

२. बुनियादी विद्यालयों की सफलता बहुत हद तक योग्य शिक्षकों पर निर्भर रहती है, इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों में बुनियादी ढंग के प्रशिक्षण की सुव्यवस्था हो।

३. साध्य जितना महान होगा उस अनुपात से साधन भी उपलब्ध होना चाहिए। यदि बुनियादी विद्यालयो को ठीक तरह से काम करना है तो उसके लिये अपेक्षित भूमि, भवन, आवश्यक सामान, शिक्षणोपकरण, चालू पूंजी, उद्योग सामग्रियों, सहकारीभंडार इत्यादि की व्यवस्था होनी चाहिए।

४. सुसंगठित उद्योगकार्य के लिए यह आवश्यक है कि दस बुनियादी विद्यालयों के बीच एक

सरजाम कार्यालय हो, जिसमें बच्चे माल का सग्रह हो, जहा से विद्यालय आसानी से उन्हे ले सके और यन्त्रो की मरम्मत का जहा प्रबन्ध हो ताकि पुराने औजारो को मरम्मत समय समय पर होती रहे।

५ बुनियादी शिक्षा की सफलता के लिए यह अति आवश्यक है कि ग्रामपचायत स्तर पर एक सम्पर्कसमिति स्थापित हो, जिसमें विद्यालय, पचायत, सहकारी समितिया महिला मडल, खादी ग्रामोद्योग सघ, नवयुवक सघ, कृषक मडल इत्यादि के लोग सदस्य रहे और समग्र रूप से ग्राम विकास योजना को कार्यान्वित करे।

६ शिक्षा विभाग को खादी ग्रामोद्योग सघ और आयोग से सपर्क स्थापित कर वस्त्र स्वावलबन की क्रियाओ–कपास की खती, ओटाई, धुनाई कताई रगाई और छपाई इत्यादि–में शिक्षको और छात्रो को निपुण और सुयोग्य बनाने के लिये उनके कार्यकर्त्ताओ की सेवाओ को लेने का प्रयास करना चाहिए। इसके बिना व्यापक रूप से वस्त्र स्वावलम्बन के काम में गति नही आ सकती।

इसी तरह कृषि, काष्ठ और धातु कला साबुन साजी, तेलघानी, मधुमक्खी पालन धान कुटाई, बास के सामान तैयार करना दतमजन बूट पालिश, सलाई पेंसिल, चाक, पेपर वेट ब्लाटिंग पेपर, अचार, मुरब्बा इत्यादि छोटे छोटे उद्योगो के विशषज्ञो का सहयोग लेना चाहिय ताकि बुनियादी शिक्षा के शिक्षको और छात्रो को प्रशिक्षित होने में सहायता मिल सके।

७ बुनियादी विद्यालयो की सफलता अच्छे मार्गदर्शन पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इसलिये बुनियादी शिक्षा में प्रशिक्षित, अनुभवी, निष्ठावान और सूझ बूझ वाले सज्जनो को निरीक्षण के काम में लगाना होगा। उनका काम केवल बुनियादी सस्थाओ की त्रुटिया की ओर सकेत करना नही है, बल्कि यथासमय अपने आचरण, व्यवहार और प्रत्यक्ष मार्गदर्शन आदि के द्वारा प्रोत्साहन देकर काम को सफलता पूर्वक आगे बढाना है। प्रारभ में जब एक निरीक्षक पदाधिकारी के अधीन सैकडो परम्परानुगत विद्यालयो का परिवर्तन बुनियादी विद्यालयो के रूप में होगा तो शैक्षणिक सभावनाओ के कार्यान्वयन के लिये प्रमण्डली स्तर पर उपनिरीक्षक की नियुक्ति की आवश्यकता होगी।

८ बुनियादी विद्यालयो में उत्पादन और खपत के सम्बन्ध में यह सम्मेलन अपनी राय प्रकट करता है कि विद्यालय परिवार निकट के गावो के परिवारोकी आवश्यक सामग्रियो को ध्यान में रखते हुये *यथा समव स्थानीय कच्चे* मालो का उपयोग कर वस्तुओ का उत्पादन करें। और आवश्यकता के अनुसार उनका वितरण जनता के बीच करे। कुछ एसी चीजें (फाईल, पेपर वेट दरी रैंक ब्लाटिंग पैड, एनवेलप, डस्टर इत्यादि) एक केन्द्रीय सहकार सस्था में रखें जिनके क्रय का आशिक भार प्रशासन पर भी रहे।

९ जिस प्रकार भारत सरकार ने माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा की परिस्थिति और सभावनाओ के अध्ययन के लिए यूनीवर्सिटी एज्यूकेशन कमिशन और सेकेण्डरी एज्यूकेशन कमीशन की स्थापना की उसी प्रकार प्राथमिक शिक्षा की सभावनाओ परिस्थितियो, व तज्जनित सामाजिक परिस्थितियो के अध्ययन के लिए अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा आयोग की स्थापना करे, जो

बुनियादी शिक्षा के प्रसार और प्रचार के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने और राष्ट्रीय स्तर पर जनता द्वारा अंगीकार करने के सम्बन्ध में अपना सुझाव दें।

१० सम्मेलन ने ऐसा अनुभव किया कि जनसमूह में विश्वास और श्रद्धा पैदा करने के लिए जो राष्ट्र निर्माण में अग्रणी हैं, उनका सक्रिय सहयोग नई तालीम के कार्यान्वयन में होना चाहिये। इसका पहला कदम उन लोगो द्वारा बुनियादी सस्थाओ से सम्पर्क स्थापित करना, कार्यकर्ताओ की स्थिति को समझना, कठिनाइयो को सहृदयता से सुनना और समय समय पर मार्गदर्शन देना होगा। दूसरा कदम जो प्रभावोत्पादक होगा, यह है कि उनके भी बालक बालिकायें इन विद्यालयो में शामिल होकर एक सहकारी और समन्वित जीवन उपस्थित करने में सहायक सिद्ध हो।

११ राज्य स्तर पर बुनियादी शिक्षा परिषद् स्थापित होनी चाहिये। जहा ये अभी स्थापित नही हुई है, उनकी स्थापना जल्दी होनी चाहिये और शिक्षाक्रम का बनाना, सामयिक निरीक्षण और परीक्षण, साहित्य निर्माण तथा निरीक्षी पदाधिकारियो की निरीक्षण रिपोर्टों पर कारवाई करने का, राज्य स्तर पर प्रकाशित एक पत्रिका द्वारा अपने विचारो को व्यक्त करने का, तथा कार्यकर्ताओ के विशिष्ट प्रयोगो से परिचय करान और राज्य सरकारो को बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में सलाह देने का काम उनके जिम्मे सौंप दें।

१२ सम्मेलन ऐसा अनुभव करता है कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर छात्रो की मानसिक प्रवृत्तियो की मनोवैज्ञानिक जाच कराकर उन्हें अपनी अपनी रुचि के अनुसार उपर जाने को प्रोत्साहित करे। पुरानी शिक्षा को तरह यदि छात्र प्राथमिक से माध्यमिक और माध्यमिक से विश्वविद्यालय की शिक्षा में जाने को प्रवृत्त होगें और उनकी प्रवृत्तियो और समाज की आवश्यकताओ के अनुसार उनका यदि वर्गीकरण नही होगा तो बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य पूरा नही होगा। इसीलिये बुनियादी और उत्तर बुनियादी स्तर पर ऐसे विशषज्ञो की सामयिक जाच की अपेक्षा है जो छात्रो और अभिभावको को इस दिशा में मार्ग दर्शन का काम करे।

१३. प्रथम पचवर्षीय योजना के अतर्गत सामुदायिक विकास योजना क्षेत्र में सारे देश में व्यापक रूप से बुनियादी विद्यालयो की स्थापना सरकार द्वारा हुई। १९५६ जून की नई नीती के अनुसार जब उन विद्यालयो का नियन्त्रण राज्य शिक्षा विभागो के अधीन हो गया। तब से उन विद्यालयो में काम करने वाले शिक्षक, जिनकी अधिसेवायें सरकारी अधि-सेवायें थी, अब तक असमजस में है कि उनकी श्रेणी किस प्रकार रखी गई है (सरकारी अधि-सेवा में अथवा गैरसरकारी अधिसेवा में)। इतना ही नहीं सामुदायिक विकास योजना के अतर्गत जिन जूनियर विद्यालयो की स्थापना हुई, उनका उचित दिशा में विकास नही हो रहा है। इसलिये यह सम्मेलन सिफारिश करता है कि इस परिस्थिति का सर्व सेवा सघ अध्ययन करे और केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय से मिलकर इसका हल निकाले।

१४ प्रशिक्षण केन्द्रो से जो शिक्षार्थी एक या दो वर्षो के कोर्स में प्रशिक्षण लेकर बुनि-यादी विद्यालय में जाते है तो उनके लिए आवश्यक साहित्य सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं

होती है। इसलिए सिफारिश है कि हर विद्यालय में एक सुसज्जित पुस्तकालय, हेंडबुक और टीचर्स रेफेरेन्स बुक्स और शिक्षण पत्रिका का अवश्य प्रबंध होना चाहिये।

१५. जिन राज्यों में अभी समन्वित शिक्षाक्रम (इनटेग्रेटेड सिलेबस) नहीं लागू हुआ है, वहां ऐसा शिक्षाक्रम तैयार करना चाहिए। ऐसा होने से राज्य सरकार की स्पष्ट नीति का परिचय, तरह तरह के विद्यालयों में काम करने वाले शिक्षकों और निरीक्षकों में उत्पन्न भ्रम का निवारण, शिक्षकों और निरीक्षकों में चिन्तन की एकरूपता; जनता का भ्रमनिवारण और सामूहिक रूप से बुनियादी शिक्षा का प्रबन्ध करना, ये तात्कालिक फल होगें।

१६. तृतीय पंचवर्षीय योजना में जो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना है उसके अन्दर भी अब से हर एक राज्य में बुनियादी शालाए ही खोलनी चाहिए। और अगर यह संभव न हो सके तो नवीनीकरण (ओरियन्टेशन) के साथ तो ऐसे विद्यालय स्थापित हो ही।

१७. अखिल भारतीय स्तर पर सर्व सेवा संघ के तत्वावधान में एक प्रशिक्षण महाविद्यालय होना चाहिये, जिसमें राज्य के विभिन्न स्तर के कार्यकर्ताओ का प्रशिक्षण दिया जाय।

२. शिक्षक प्रशिक्षण का कार्यक्रम

शिक्षक प्रशिक्षण का ध्येय सभी स्तरों पर ऐसे शिक्षक तैयार करना है जिनका बुनियादी शिक्षा के मूल आधारो में विश्वास हो, जिन्होने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त ज्ञान, मनोवृत्ति तथा व्यावहारिक कुशलता प्राप्त की हो।

यह मूल उद्देश्य के दो पहलू हैं जिनका घनिष्ठ पारस्परिक सबन्ध है :

१. प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, भावात्मक, नैतिक तथा बौद्धिक क्षेत्रो में सर्वांगीण-विकास के लिए पूरा अवसर दिया जाय।

२. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे समाज में उत्तरदायित्व वहन करने को तैयार किया जाय जिससे वैज्ञानिक वृत्ति के साथ मानवता तथा आध्यात्मिक मूल्यों को स्थिर रखा जा सके।

आज हमारे देश की तथा विश्व की यह विशेष मांग है कि समाज में भावात्मक एकीकरण हो और शान्ति का वातावरण बने। इस लिए जो शिक्षक प्रशिक्षण के लिए जिम्मेवार हैं उनसे यह अपेक्षा है कि ये अपनी पूरी शक्ति के साथ चिन्तन करके अपने विद्यार्थियों को इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए समर्थ बनावें। इसलिए प्रत्येक प्रशिक्षण सस्था की समस्त प्रवृत्तिया इस प्रकार आयोजित की जाय जिससे विद्यार्थियों में सहकार तथा शान्ति की मनोवृत्ति का निर्माण हो।

१. इस भावात्मक एकीकरण के लिए सामुदायिक जीवन की प्रवृत्तियो का पर्याप्त उपयोग किया जाना चाहिये। इन क्रिया कलापो में समस्त शिक्षक एव शिक्षार्थियों को समानता से भाग लेना चाहिये। जो काम प्रायः भृत्यो से लिए जाते हैं—उदाहरणार्थ सफाई आदि–उन सब में इन सबको मिलकर भाग लेना होगा, जिससे व्यवहार में यह स्पष्ट हो कि सब प्रकार के उपयोगी काम मान्यता दिये जाने योग्य हैं

और इस प्रकार के कामो का शैक्षणिक उपयोग हो सकता है।

२. उत्पादक उद्योग में व्यावहारिक उपयोगिता होनी चाहिये और इस प्रकार ईमानदारी से आयोजित किया जाना चाहिये जिससे सहकारिता तथा श्रमनिष्ठा की वृत्ति का विकास हो। इस विषय में यदि कोई प्रशासकीय नियम बाधक हो तो उसमें आवश्यक सशोधन किया जाना चाहिये। उत्पादक उद्योग की योजना बनाते समय यह ध्यान रखा जाय कि शिक्षक उसका उपयोग अपनी शालाओ में विद्यार्थियो को सिखाने में कुशलता से कर सके।

३. प्रशिक्षण सस्थाओ के कार्यकर्ताओ की योग्यता के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि उनको बुनियादी शाला में बालको को पढाने का कम से कम ३ वर्ष का प्रत्यक्ष अनुभव हो और पढाने की कला में उन्होने सफलता व कुशलता प्राप्त की हो। उद्योग शिक्षको तथा अन्य शिक्षको में किसी प्रकार का भेदभाव नही रहना चाहिये। ये दोनो प्रशिक्षण सस्था के कार्यक्रम में एक दूसरे के सहयोगी के रूप में रहे।

४ प्रशिक्षार्थियो के चुनाव के सबन्ध में यह मत है कि प्रशिक्षार्थियो को योग्यता के ही आधार पर चुना जाना चाहिये। प्रवेश के पूर्व इन बातो की जाच की जाय कि उनमें ज्ञान के साधनो को कुशलता के साथ उपयोग में लाने की क्षमता है तथा शिक्षक के लिए आवश्यक मनोवृत्ति भी है।

५. प्रशिक्षण सस्थाओ के मार्ग दर्शन पर विचार करते हुए अध्ययन मडल ने यह सिफारिश की कि इस कार्य के लिए राज्य स्तर पर एक विशेषज्ञो की समिति बनाई जाय जिनके सदस्य समय समय पर इन सस्थाओ में जाकर उनके काम के उचित स्तरो को स्थिर रखने में तथा उनकी समस्याओ का हल करने में परामर्श दें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि सस्थाओ की स्वतत्रता तथा मौलिकता को गुजाइश रहे।

६. छात्राध्यापको की व्यक्तिगत प्रगति का मूल्याकन निरन्तर किया जाता रहे और सत्रान्त के लिए ही न छोडा जाय। सर्वांगीण विकास के प्रत्येक अग का उचित मूल्याकन किया जाय। मूल्याकन में व्यावहारिक तथा लिखित दोनो ही प्रकार का समावेश हो। प्रशिक्षण सस्था के कार्यकर्ता तथा एक या दो विशेषज्ञ मिलकर मूल्याकन करे। केवल स्मृति की जाच मात्र मूल्याकन के लिए पर्याप्त न समझी जाये।

मण्डल ने यह भी सिफारिश की कि कुछ सस्थाएँ यह भी प्रयोग करे कि परिक्षाओ के समय निरीक्षण (इनविजिलेशन) न रहे, क्योंकि इसमें भी नैतिक शिक्षा निहित है।

३. उत्तर बुनियादी तालीम

उत्तर बुनियादी शिक्षा से अपेक्षायें :

१ गोष्ठी ने इस बात को एकबार फिर से स्पष्ट करने की आवश्यक्ता महसूस की कि उत्तर बुनियादी तालीम कोई औद्योगिक शिक्षण मात्र नही है, वह किशोर अवस्था की समग्र तालीम है।

२. स्वावलम्बन के द्वारा शिक्षा—यह हमारा ध्येय रहे। लेकिन अब तक के हमारे काम के अनुभव से यह मानना पडेगा कि हम कही भी पूर्णस्वावलवन साध नही पाये है और शायद आज की परिस्थिति में यह सभव भी नही

होगा। दैनिक जीवन के आवश्यक कार्यों-जैसे सफ़ाई, रसोई, आदि-में विद्यार्थी आत्मनिर्भर हो, यह अनिवार्य माना गया। विद्यार्थीसमाज पूर्ण रूप से वस्त्रस्वावलंबी हो, उसके लिये अंबर चर्खा आदि नवीनतम उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिये। वस्त्रस्वावलंबन व्यक्तिश: ही हो, यह जरूरी नही है, सामूहिक प्रयत्न से सब के लिये आवश्यक कपडे उत्पन्न हो, यह ज्यादा व्यावहारिक होगा। स्वावलंबन का मुख्य आधार उद्योग होगा, इसलिये उत्तर बुनियादी विद्यालयो में उद्योग का चुनाव आर्थिक दृष्टि से उसकी उत्पादनक्षमता को भी मद्देनज़र रख कर किया जाना चाहिये। विद्यार्थी की अपने उद्योग में कुशलता प्राप्ति का सर्वोपरि महत्त्व दिया जाय। साथ साथ उपकरणों में तथा काम की तकनीक में निरन्तर शोध व सुधार इन विद्यालयों में होती रहनी चाहिये। इस विषय में दूसरी जगह भी जो नया ज्ञान और प्रगति हो रही है, उससे वाकिफ़ रहना तथा उसको यथासंभव काम में लाना भी आवश्यक है।

३. स्थानीय स्थिति के अनुसार उद्योगों का पूर्ण विकसित रूप में चुनाव उनके पूरक उद्योगों के साथ एक इकाई के रूप में करना चाहिये। उद्योग में मर्यादित रूप में बिजली आदि शक्ति का उपयोग किया जा सकता है।

समयः उद्योग की उत्पादक प्रवृत्ति में निश्चित रूप से २ घंटा प्रतिदिन दिया जाय। इससे सम्बन्धित समवायी तकनीकी वैज्ञानिक इत्यादि ज्ञान हेतु १, या १॥ घंटा प्रतिदिन देना होगा।

समय समय पर सामाजिक आवश्यक कार्य करने हेतु अधिक समय देना होगा।

उत्तर बुनियादी विद्यालय के दैनिक कार्य का समय पत्रक इस प्रकार होगा। उद्योग २ घंटे; वस्त्र स्वावलम्बन आधे से दो घंटे; पारिवारिक कार्य १ से डेढ घंटा; वाचनालय ४५ मि. या १ घंटा, बौद्धिक वर्ग ३ से ४ घंटे, स्वाध्याय डेढ घंटा, खेल इत्यादि आधा से १ घंटा तक।

विषय ज्ञान : सेवाग्राम उत्तर बुनियादी अध्ययन मंडल द्वारा निर्दिष्ट पाठ्य क्रम को गोष्ठी ने मान्य किया।

समीक्षा : गोष्ठी का मत है कि समीक्षा कार्य हेतु जैसे केरल और मद्रास राज्य में समीक्षा समितियां हैं, वैसी ही समितियां अन्य राज्यों में भी गठित की जावे।

मान्यता : कई राज्य सरकारों ने उत्तर बुनियादी शिक्षा को उच्च माध्यमिक शिक्षा के तौर पर मान्यता दी है, इस का समिति अनुमोदन करती है; लेकिन साथ साथ विश्वविद्यालयों द्वारा भी ऐसी मान्यता दिये जाने के लिये आवश्यक कार्रवाई तुरत लेने की जरूरत महसूस करती है, जिससे कि उत्तर बुनियादी विद्यालयो से निकलने वाले विद्यार्थी फिर से किसी परीक्षा में बैठने के बगैर ही विश्वविद्यालयो में प्रवेश पा सके।

उच्च शिक्षा की अन्य व्यवस्था : सर्व सेवा संघ से प्रार्थना है कि वह राष्ट्र की आवश्यकता को ध्यान में रख कर उत्तम बुनियादी अर्थात् नई तालीम की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करे।

छात्रालय : छात्रालय युक्त पाठशाला उत्तर बुनियादी शिक्षा के लिये ज्यादा उपयुक्त है, परन्तु शिक्षा को व्यापक बनाने की दृष्टि से घर से आने वाले विद्यार्थियों को भी लेना होगा। जब तक विद्यार्थी उत्तर बुनियादी शिक्षाकाल

में पूर्णस्वावलवी नही बनता है-याने उसकी शिक्षा व निवास आदि के लिए परिवार को कोई खर्च न करना पडे-तब तक हम उसे छात्रालय में ही रहने का आग्रह नही कर सकते हैं। ऐसे विद्यार्थियो के लिये एक वक्त के भोजन की व्यवस्था उत्तर बुनियादी पाठशाला में करनी चाहिये।

कन्याओं की शिक्षा :

कन्याओ की विशेष आवश्यकता, अवस्था और कार्यक्षमता को ध्यान में रख कर शिक्षाक्रम में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए।

उत्तर बुनियादी शाला का स्वरूप

उत्तर *बुनियादी अध्ययन* मण्डल, सेवाग्राम द्वारा प्रस्थापित स्वरूप सामान्य रूप से गोष्ठी ने स्वीकार किया। वर्तमान माध्यमिक शालाओ को उत्तर बुनियादी में कैसे परिणत किया जा सकता है, इस प्रश्न पर गोष्ठी का मत रहा कि वर्तमान माध्यमिक शालाओ में सफाई यज्ञ व श्रमदान, सेवाकार्य, सास्कृतिक कार्यक्रम और गणतान्त्रिक समाज पद्धति प्रतिष्ठित की जाय। 'कमेटी फार द इन्टेगरेशन आफ पोस्ट बेसिक एण्ड मल्टी परपज स्कूलस्' की आठवी और नवी सिफारिश पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये।

४. समग्र नई तालीम

१. गाधीजी ने नई तालीम को गर्भ से मृत्यु तक चलने वाली अखण्ड प्रक्रिया मानाया। उनकी दृष्टि में यह प्रक्रिया समग्र थी। अन्य प्रक्रियाओ के साथ-साथ चलने वाली कोई आशिक क्रिया नही थी। इसलिये उन्होने कहा था कि दूसरे सब रचनात्मक कार्य नई तालीम में समा जाते हैं, यानी जब नई तालीम की समग्र प्रक्रिया चलती है तो दूसरे सब कार्य अपने आप होते चलते हैं। इस तरह तालीम अपनी समग्रता और सार्वभौमिकता के कारण सपूर्ण जीवन का पर्याय बन जाती है। और यह समग्रता और *सार्वभौमिकता समाज परिवर्तन तथा जीवन* शोधन की सम्मिलित प्रक्रिया के रूप में प्रकट होती है। बल्कि हम यह कह सकते हैं कि जीवन शोधन के साधन से समाज परिवर्तन का साध्य सिद्ध होता है। इस प्रक्रिया में कही सघर्ष नही है, सहज आरोहण है।

२ अभीतक हमने नई तालीम को आशिक प्रवृत्ति के रूप में चलाया है। वह वस्तुत हमारी शालाओ में पूर्व बुनियादी, बुनियादी, उत्तर बुनियादी और उत्तम बुनियादी के रूप में 'फार्मल' शिक्षण की पद्धति तक ही सीमित रही है। पहले चरण में प्रचलित शिक्षा पद्धति के समानान्तर उसका यह विकास ऐतिहासिक कारणो से अनिवार्य था।

३ लेकिन भूदान, ग्रामदान आन्दोलन ने सामाजिक विकास की जो भूमिका प्रस्तुत की, उसके कारण नई तालीम का नया चित्र सामने आया। हमें स्पष्टता के साथ यह प्रतीति हुई कि तालीम शालाओ तक ही सीमित नही रह सकती। इसी सदर्भ में जनवरी १९५८ में हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने दिल्ली की बैठक में यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा कि अगर नई तालीम को अहिंसक समाज के निर्माण का माध्यम बनना है तो उसे ग्रामदानी गावा में केवल शिक्षण का नही, बल्कि समग्र विकास का उत्तरदायित्व शिरोधार्य करना चाहिये। वास्तव में अहिंसा की

निर्माण का कार्य शिक्षण की प्रक्रिया के सिवाय और कुछ नही है।

४. उस प्रस्ताव द्वारा दिल्ली में तालीम के ऐतिहासिक 'रोल' (कार्य) की स्पष्ट पहचान हुई। नई तालीम का जो क्रान्तिकारी तत्व है वह इस रूप में साफ साफ प्रकट हुआ कि तालीम का अर्थ है हृदय परिवर्तन। हृदय परिवर्तन की सामाजिक शक्ति के रूप में नई तालीम को सीमित दायरे में कताई, कुदाल और किताब से आगे बढकर समाज के व्यापक दायरे में आरोहण (ट्रान्सफोरमेशन) का अभ्यास क्रम बनाना है। और उस बडे अभ्यास क्रम में अन्य चीजो के साथ साथ कताई को, कुदाल को और किताब को उनके उचित स्थान पर रखना है। भारत जैसे खेतिहर देश में हर गाव को आरोहण की इकाई मानकर उसके लिये उपयुक्त अभ्यासक्रम की रचना करनी पडेगी। स्पष्ट है कि ऐसा अभ्यास क्रम गाव में समग्र जीवन को ध्यान में रखकर बनेगा और गाव का हर बच्चा, बूढा, जवान स्त्री और पुरुष नई तालीम का विद्यार्थी बन जायेगा।

५ ग्राम भावना और सहकारी पुरुषार्थ इस अभ्यास क्रम का प्रारभ बिन्दु है। इसका क्या रूप किस गाव में प्रकट होगा यह गाव की आवश्यकता, वहा के निवासियो की आकाक्षा और उनके सास्कृतिक और सामाजिक स्तर पर निर्भर है। क्योकि मूल शक्ति ग्रामीण जनता के निर्णय की है। शिक्षक केवल दृष्टि दे सकता है और गाव के नागरिक की हैसियत से सामूहिक पुरुषार्थ में शरीक हो सकता है। किस गाव में शुरुआत किस तरह हो सकता है, यह गाव की परिस्थिति पर निर्भर है। सर्वोदय पात्र, बीघे में कट्ठा, भूमि हीनता, वस्त्र स्वावलबन, पुलिस तथा अदालत मुक्ति, ग्राम ईकाई की सघन योजना या सामान्य श्रमदान, इनमें से किसी एक या अधिक रूपो में गाव का अभिक्रम प्रकट हो सकता है। फिर तो शिक्षक की दृष्टि और गाव की शक्ति के योग से क्रमश आरोहण की सीढिया पार होती चलेगी। ग्राम भावना से ग्राम सहकार, ग्राम सहकार से ग्राम स्वामित्व और ग्राम स्वामित्व से ग्राम स्वराज्य तक, गाव सहज रूप में पहुचता जायेगा। आवश्यकता होगी शिक्षक के सूझ और धैर्य के साथ गाव में स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने की। यह सारी प्रक्रिया ही जीवन के नये मूल्यो में अपने आप को दीक्षित करने की है। यानी जीवन शोधन से समाज परिवर्तन की है। इस प्रक्रिया में विद्यार्थी शुरू से ही ग्राम परिवार का सदस्य और ग्राम पुरुषार्थ का भागीदार होगा। वह देखगा कि जिन्दगी को जीने की क्रिया में से ऊचे से ऊचे ज्ञान और वैज्ञानिक तकनीक की प्राप्ति होती है। घर के चूल्हे से लेकर गाव के खेत तक जो कुछ भी है, सब में सुधार आवश्यक होगा, ताकि अधिक से अधिक कमाई हो सके। तथा एक एक व्यक्ति में ज्ञान और चरित्र हो ताकि काम सार्थक और जीवन सुखी हो सके। इस तरह तालीम की परिधि में आर्थिक, सास्कृतिक और नैतिक उत्थान की सब प्रक्रियायें एक साथ आ जायेंगी। अगर हम और आगे सोचे तो देखेंगे कि गाव की नई तालीम की इस योजना में विकास के लिये न प्रत्यक्ष सघर्ष की आवश्यकता रह जाती है और न दलगत चुनाव आदि की। आज हम जिसे नई तालीम कह रहे है, वह गाव के लिये जीवन की बदलती परिस्थिति में नित्य नई तालीम होगी। और समाज लोक

नीति के आधार पर हर नई समस्या का समाधान अपनी सहकारशक्ति से, सब प्रकार के बाहरी नियन्त्रण या अकुश से मुक्त रहकर सहज ही ढूढ लेगा । तब समाज शासन निरपेक्ष होगा और क्रान्ति परस्पर अभियोजन की एक प्रक्रिया मात्र होगी ।

६ यह नई तालीम का ऐतिहासिक 'मिशन' है। इसकी सिद्धि उसका उत्तर दायित्व है। बापू ने जब भारत के सात लाख गावो के लिये सात लाख कार्यकर्ताओ की माग की थी तो उनके मस्तिष्क में नई तालीम का यही चित्र था । वह माग आज भी ज्यो की त्यो है ।

७ बापू के स्वप्न की पूर्ति के लिये आज देश में दोहरी अनुकूलता प्राप्त हुई है । एक ओर विनोबा जी ने भूदान ग्राम दान के रूप में सघर्षमुक्त क्रान्ति की एक नई 'डायनेमिक्स' प्रस्तुत की है । और दूसरी ओर राज्य की ओर ग्रामपचायतो के द्वारा लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में योजनाबद्ध कदम उठाया गया है। विकेन्द्रीकरण स्वावलवन के बिना अधूरा रहेगा, इसलिये राष्ट्रीय पैमाने पर ग्राम इकाई का समन्वित कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय जीवन की यह परिस्थिति नई तालीम के लिये अवसर भी है और चुनौती भी है। अगर हम तालीम को गाव के समग्र विकास के साथ-साथ जोड ले तो नई तालीम को जीवन शिक्षा के रूप में प्राप्त कर लेगे ।

८ जीवनकेन्द्रित तालीम आज केवल विचार का विषय नही है, बल्कि राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय धरातल पर मानव की आवश्यकता है । उसका ध्यान रखकर हम अपने-अपने सीमित क्षेत्र में गाव तथा शहर की जनता को उसकी प्रतीति करायें । और समस्याओ को सामूहिक चिन्तन का विषय बनावे तो अभीष्ट दिशा में हमारा पहला सुनिश्चित कदम सहज ही उठेगा । तब हम देखेंगे कि नई तालीम के प्रभाव में हर एक के हृदय में यह प्रतीति पैदा होगी कि मानव की प्रतिष्ठा मानव की हैसियत से ही है, न कि धन, धर्म जाति, लिंग, भाषा अथवा अधिकार के कारण । नई तालीम का शिक्षक अपने जीवन में विशुद्ध मानवीय मूल्यो का उदाहरण होगा ।

९. लेकिन नई तालीम के मार्ग में जो बाधाए है उनका इस लक्ष्य की सिद्धि की दृष्टि से निराकरण आवश्यक है । राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता की प्रतिद्वन्दिता, अर्थ नीति में स्वामित्व और मुनाफे की होड तथा जन्म के आधार पर भेद मानने वाली समाजनीति, यह सब नई तालीम की शुभ शक्ति के विरोधी तत्व है । समाज इस तत्व को पहचाने, यह हमारे लोक शिक्षण का तात्कालिक कार्यक्रम होगा ।

सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

१. अखिल भारतीय नई तालीम परिषद् बने :

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दूरदृष्टि थी कि उन्होने राष्ट्रीय शिक्षण के लिये बुनियादी तालीम का कार्यक्रम देश को दिया। अनको उतार चढाव और अनुभवो के बाद आज देश में बुनियादी तालीम का तरीका सर्वमान्य हो गया है। सारे देश में इसका सही ढग से विकास हो, चलते हुए काम का मूल्याकन होता रहे तथा साथ ही सारे देश के काम को सही दिशा में मार्गदर्शन मिले, इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन समस्याओ के बारे में अखिल भारतीय स्तर पर चिन्तन हो।

यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता है कि अखिल भारतीय स्तर पर एक नई तालीम परिषद् (नेशनल कौंसिल आफ बेसिक एजुकेशन) का निर्माण किया जावे। इस परिषद् में सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनो प्रकार के सदस्य हो। सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यो की सम्मिलित शक्ति नई तालीम के विकास में सहायक सिद्ध होगी।

अखिल भारत सर्व सेवा सघ से यह समेलन अनुरोध करता है कि वह अैसी अखिल भारतीय परिषद् के निर्माण में योगदान दें।

अखिल भारतीय परिषद् की तरह हर प्रदेश में बुनियादी तालीम के सही विकास, मार्गदर्शन और मूल्याकन के लिये सरकारी तथा गैर-सरकारी सस्थो को मिलाकर प्रादेशिक नई तालीम परिषदें बनायी जायें, अैसी सम्मेलन प्रान्तीय सरकारो से आशा करता है।

२. पूज्य विनोबाजी के सानिध्य में समय-समय पर परिसंवाद हों :

अिस सम्मेलन का मत है कि राज्य-शिक्षा विभाग के अुच्च अधिकारीगण, जो बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था अेव प्रसार के लिये जिम्मेवार हैं, वे सब नई तालीम के सिद्धान्त और पद्धति से पूर्ण परिचित हो। अिसके लिये आचार्य विनोबाजी के सानिध्य में समय समय पर शिक्षा अधिकारियो के परिसवाद और अध्ययन गोष्ठियो के आयोजन का सम्मेलन स्वागत करेगा। यह सम्मेलन भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय से अनुरोध करता है कि वह अखिल भारत सर्व सेवा सघ की सलाह से अैसे परिसवाद एव गोष्ठियो का आयोजन करे।

३. नई तालीम अध्ययन-मण्डल बने :

आज देश में सभी प्रदेशों में अैसी सार्वजनिक संस्थायें तथा कार्यकर्ता हैं जो नई तालीम का काम कर रहे हैं। यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रदेशों में होनेवाले कार्यों की परस्पर जानकारी हो और कार्य के विकास के लिये सम्मिलित चिन्तन हो। एक दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाया जाये और नई तालीम का विचार व्यापक हो।

अिस सम्मेलन का अनुरोध है कि अुपरोक्त कार्य को सफल रूप देने के लिये सम्मेलन के अध्यक्ष प्रदेशों के कार्यकर्ताओं में से चुनकर अेक अध्ययन-मण्डल (वर्किंग ग्रूप) का निर्माण करें। यह अध्ययन-मण्डल साल में कम-से-कम दो बार अवश्य मिले जिसमें से अेक बार पूज्य विनोबाजी के साथ मिलकर चर्चा करने तथा मार्गदर्शन प्राप्त करने का अवसर रहे।

सम्मेलन के अध्यक्ष अिस अध्ययन-मण्डल की अध्यक्षता करें और संयोजन का कार्य अखिल भारत सर्व सेवा संघ के सहमंत्री, श्री राधाकृष्णजी करें।

नीचे लिखे मुताबिक अध्ययन मण्डल सन् १९६१-६२ के लिये गठित किया गया है :—

१. श्री जी रामचन्द्रन् — अध्यक्ष
२. „ द्वारिकाप्रसाद सिंह — बिहार
३. „ करण भाई — उत्तर प्रदेश
४. „ काशिनाथ त्रिवेदी — मध्य प्रदेश
५. „ जुगतराम दवे — गुजरात
६. श्री के. एस. आचारलू — आन्ध्र
७. „ राधाकृष्ण मेनन — केरल
८. „ जनाब सईद अन्सारी — दिल्ली
९. „ क्षितीश राय — बंगाल
१०. „ एस. गोहानी — आसाम
११. „ ओमप्रकाश त्रिखा — पंजाब
१२. „ त्रिलोकचन्द — राजस्थान
१३. „ देवीप्रसाद — महाराष्ट्र
१४. श्री के. अरुणाचलम् — तामिलनाड
१५. „ डी. एल. आनन्दराव — आंध्र
१६. श्रीमती मार्जरी साइक्स — तमिलनाड
१७. श्री. आचार्य राममूर्ति — बिहार
१८. „ प्रभाकर — आंध्र
१९. „ जे. के शुक्ला — दिल्ली
२०. „ श्री डी. पी. नैयर — दिल्ली
२१. „ राधाकृष्ण — संयोजक

नई तालीम जगत्

दिनांक २-३ सितम्बर को कस्तूरबा ग्राम में मध्य प्रदेश के नयी तालीम कार्यकर्ताओ की गोष्ठी आयोजित की गयी। पिछले कअी महीनों से यह महसूस होता रहा कि मध्य प्रदेश में अलग अलग क्षेत्रो में जो कार्यकर्ता अिस काम में लगे हे उनका आपसी सम्बन्ध बढें, परस्पर परिचय हो तथा समस्याओं का समाधान मिले इस दृष्टि से एक गोष्ठी का आयोजन किया जाय। सर्व सेवा सघ के सहमत्री श्री राधाकृष्णजी के निमत्रण पर यह गोष्ठी श्री विश्वनाथजी खोडे और श्री काशीनाथ त्रिवेदी की अध्यक्षता में हुअी। निवास तथा भोजन आदि व्यवस्था कस्तूरबा निधि के कस्तूरबाग्राम में की थी। बैठक में करजगाव, टवलाअी, ठिबगाव, रसूलिया तथा कस्तूरबाग्राम की बुनियादी शालाओं के सचालक और अध्यापकगण, मध्यप्रदेश सर्वोदय मण्डल के प्रमुख कार्यकर्ता तथा अन्य कुछ साथी उपस्थित थे।

गोष्ठी के सामने पाच मुख्य विषय थे, जिनपर चर्चा हुअी

१ नअी तालीम को अेक विकसित शिक्षा पद्धति माना जाय या नया समाज बनाने का वाहन माना जाय।

२ शाला का कार्यक्रम क्या हो? आज प्रान्तो में यह कोशिश की जा रही है कि बुनियादी और गैर बुनियादी शालाओ के पाठ्यक्रम के काफी अश समान हो तथा बुनियादी शालाओ की कुछ विशेषतायें भी रहें। इस पाठ्यक्रम और समवाय पद्धति के बारे में आनेवाली समस्याओ पर विचार।

३ जब हमारी सस्थायें सरकार से मान्यता चाहती है और अनुदान मागती है तो अक्सर सरकारी नीति में नही बैठनेवाली दो मुख्य बाते सामने आती है। पहली बुनियादी शिक्षण की अवधि में अग्रेजी की पढाई तथा समीक्षा की पद्धति। इस बारे में शालाओ की कठिनाइयो को कैसे हल किया जाय।

४ आज मध्य प्रदेश में बुनियादी शालाओ की पढाई पूरे किये विद्यार्थियो की आगे की पढाई का प्रबन्ध नही है। क्या यह सम्भव है कि उपरोक्त पाच सस्थाओ के बीच अैसी कुछ व्यवस्था की जावे जिससे अेक उत्तर बुनियादी विद्यालय आरम्भ किया जा सके।

५ आज की शालाओ के लिये और आगे की योजना के लिये नये शिक्षको को अेकत्रित करने की समस्या।

सबसे पहले सस्थाओ का आपसी परिचय हुआ और काम में उपस्थित कठिनाइयो तथा समस्याओ की जानकारी दी गई। सबने यह महसूस किया कि सर्वोदय मण्डल की तरफ से नई तालीम के काम के लिये अेक सगठन खडा किया जाना चाहिये। यह समिति आज के काम का निरीक्षण करे और उसके विकास के सम्बन्ध में विचार करे।

स्वतत्र रूप से प्रयोग करनेवाली अिन सस्थाओं के बीच परस्पर सम्बन्ध बढे और

अेक दूसरे के विशेष प्रयोगों की जानकारी बराबर मिलती रहे, जिस दृष्टि से हर साल शिक्षकों की गोष्ठी आदि होती रहनी चाहिये तथा समय समय पर प्रयोगों की जानकारी तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिये समाचार बुलेटिन भी निकालने चाहिये।

प्रान्त में एक उत्तर बुनियादी शाला यथाशीघ्र आरम्भ करने की दृष्टि से नई तालीम समिति स्थान, शिक्षक तथा साधन आदि की सुविधाओं पर सोच विचार कर योजना बनावे।

उपरोक्त विषयों पर जो चर्चा हुई उसका निचोड निम्न प्रकार है

१. सच तो नई तालीम नवसमाजरचना का वाहन ही है, परन्तु हम सबके जीवन जब तक वैसे बन नही पाते, नई तालीम को यह रूप प्रदान नही किया जा सकता। एक विकसित शिक्षण पद्धति के रूप में भी इसे स्वीकारें और अमल में लावें तो बहुत कुछ हो सकेगा।

२ सरकार मान्य पाठ्यक्रम और शुद्ध पाठ्यक्रम में कही विरोधाभास नहीं दिखाई देता। सरकार मान्य कार्यक्रम नई तालीम की दिशा में पहली मंजिल है। अशासकीय शालाओं में इससे अधिक करके दिखलाया जावे तो दूसरों के लिये यह अनुकरणीय चीज होगी। स्थिति तो यह है कि उतना करके दिखलाने की भी क्षमता हमने प्रकट नहीं की है। प्रश्न दृष्टिकोण का आता है। समवाय हो नहीं रहा है, तब तक बौद्धिक का पल्डा भारी रहे या उद्योग का। एक पग उद्योग की ओर अधिक झुकता है दूसरा बौद्धिक की ओर अधिक। अशासकीय शालाओं को अभी कुछ सालों तक दोनों में ही क्षमता प्राप्त करनी होगी।

३. साधारण परीक्षाओं की अपेक्षा समीक्षा पद्धति का ही आग्रह रखना चाहिये। गोष्ठी का सुझाव था कि एक समीक्षा समिति निर्माण की जाय। स्थानीय सहायक जिला शाला निरीक्षक, संस्था के संचालक और सर्व सेवा संघ द्वारा मनोनीत एक व्यक्ति इसके सदस्य हों। अनुदान की कठिनाइयाँ तो अधिकारियों से मिलकर दूर की जा सकती हैं। पर अनुदान के लिए नई तालीम के रंग को फीका करना उचित नही लगता।

अंग्रेजी पढाये या न पढाये जाने के बारे में दो विरोधी मत रहे। शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो, यह तो सबको मान्य था पर एक अन्यभाषा के रूप में अंग्रेजी भी पढ़ाई जावे यह विचार भी प्रकट हुआ। बालक छोटी उम्र में दो तीन भाषाएँ सीख सकता है—उसे मातृभाषा, राष्ट्रभाषा या कोई प्रान्तीय भाषा तथा एक विश्व भाषा बचपन से ही सिखाई जा सकती है।

दूसरा मत था कि अंग्रेजी के कारण बालक की मातृभाषा बिगड़ती है तथा उसकी बुद्धि पर अनावश्यक बोझ पडता है—अंग्रेजी का शिक्षण माध्यमिक स्तर तक बालक के लिए भार रूप है यह विचार भी उत्कटता के साथ प्रकट हुआ। अतएव अंग्रेजी पढानी हो तो उच्च शिक्षण में पढ़ाई जावे।

४ आठवें वर्ग के बाद शिक्षण व्यवस्था एक उलट समस्या बनी हुई है। सही हल तो यही है कि प्रान्त में कम से कम एक उत्तर बुनियादी विद्यालय तो चलाया ही जावे। करजगाव या टवलाई में ऐसा प्रयत्न करना संभव है। कस्तूरबाग्राम भी सुझाया गया।

५ शिक्षक समस्या तभी हल होगी जब उत्तर-बुनियादी का प्रश्न हल हो जायगा। उत्तर-बुनियादी शिक्षण प्राप्त व्यक्ति बुनियादी शालाओं के लिये उपयुक्त शिक्षक बन

(पृष्ठ १०६ का शेषांश)

उन्होंने बताया कि अब परिस्थिति ऐसी होगई है कि बुनियादी शालाओं में पढनेवाले विद्यार्थियों के लिये ऊंची तालीम तक पहुचने का रास्ता खुल गया है । उत्तर बुनियादी तालीम के बाद कोई भी विद्यार्थी ग्रामीण विश्वविद्यालयों में प्रवेश पा सकता है । इन विद्यालयों को अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड ने भी मान्यता दी है । इसी साल एक विश्वविद्यालय ने यह भी फैसला किया है कि इन विद्यालयों से निकलनेवाले विद्यार्थियों को वह अपनी स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश देगा । दो विद्यालयों में यह सुविधा की गई है कि उन्ही में आगे की स्नातकोत्तर तालीम का प्रबन्ध हो । डा० श्रीमाली ने जोर दिया कि आज बुनियादी शिक्षा पाये हुये विद्यार्थियों को कोई कमी की भावना या समान सुविधाएं नही प्राप्त होने से जो निराशा का भाव होता है वह रखने की आवश्यकता नही है । ग्रामीण क्षेत्रों के अलावा शहरी क्षेत्रों में भी बुनियादी तालीम के प्रयोग चलेंगे, तब शहर और ग्राम में शैक्षणिक सुविधाओं का फर्क मिटेगा । उन्होंने यह आशा प्रकट की कि बुनियादी तालीम के कार्यकर्ताओं को शैक्षणिक उदारता दिखानी चाहिये ताकि उनके अपने प्रयोगों में संकीर्णता न आने पावे ।

सम्मेलन के अध्यक्ष श्री जी रामचन्द्रन् थे। उन्होंने कार्यकर्ताओं के सामने यह प्रश्न रखा कि सब की इच्छा होते हुये भी आज नई तालीम की प्रगति क्यों कितनी कम है । कितनी ही शालाऐं है जो बुनियादी कही जाती हैं लेकिन उनमें बुनियादी उसूलों का दर्शन कहा होता है? उत्पादक परिश्रम से घृणा की जाती है, उसका मजाक उडाया जाता है। उत्पादक परिश्रम बुनियादी तालीम की आत्मा है। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि बुनियादी तालीम के लिये यदि अनुकूल वातावरण बनाना है तो सब शालाओं में–चाहे वे नई खोलनी हों अथवा मौजूद हों–कुछ उसूलों को और कार्यक्रमों को सामान्य तौर पर लागू करना चाहिये, तभी एक अनुकूलता पैदा होगी । इससे यहाँ-वहाँ कुछ ठोस काम करने में भी सुविधा होगी । राष्ट्र की तमाम शालाओं की गिनती में बुनियादी शालायें नगण्य-सी है । देशव्यापी बुनियादी तालीम होने में न जाने कितनी पचवर्षीय योजनाओं की प्रतीक्षा करनी पडेगी । उन्होंने कहा कि राष्ट्र स्तर पर बुनियादी तालीम के बारे में विचार करने, नीति तय करने तथा निर्णय लेने के लिये सरकार और सर्व सेवा संघ से मान्य तथा आचार्य विनोबाजी से आशीर्वाद प्राप्त एक अखिल भारत नई तालीम परिषद् का गठन किया जाय । सर्व सेवा संघ और सरकार की सम्मिलित शक्ति से राष्ट्र निर्माण के लिये बुनियादी तालीम आगे बढ सकेगी । उन्होंने यह सवाल उठाया कि जैसी परिस्थिति आज बन रही है उससे क्या आगे आनेवाली पीढी हमारे बारे में यह नही कहेगी कि हमने गाधी को असफल बनाया, क्योकि हमने नई तालीम के कार्यक्रम को उसके समग्र रूप में लागू नही किया ।

सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों ने १० और ११ तारीख को २–२॥ घंटो के लिये चार विभिन्न अध्ययन मण्डलियों में भाग लिया। उपस्थिति अच्छी रही तथा चर्चाओं में काफी उत्साह रहा । हमारी कुछ आदत सी हो गयी है कि हम सम्मेलन में बैठकर भाषण आदि सुनने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन चर्चा-गोष्ठियों मे बैठकर पारस्परिक चर्चा करने में कम दिलचस्पी लेते हैं। अपने काम में यह नई प्रथा हमें जान-बूझकर अपनानी चाहिये ।

सम्मेलन के सामने सर्व सेवा संघ की तरफ से जो काम हुआ उसका विवरण भाई राधाकृष्ण ने रखा। संगम के समय आगे के कार्य-क्रम के स्वरूप के बारे में मार्गदर्शक जो सप्त-विध उद्देश्य निर्धारित किये गये थे, उनके अनुसार कहां तक काम हुआ, सम्पर्क समिति की बैठकों का विवरण, उत्तर-बुनियादी शिक्षण समिति का कार्य-कलाप और प्रान्तीय स्तर पर नई तालीम संगठन बनाने की कोशिश आदि के बारे में उन्होंने जानकारी दी। मध्य-प्रदेश और पंजाब के शिक्षा मंत्रियों ने अपने प्रान्त में नई तालीम की परिस्थिति और प्रगति के बारे में बताया। मध्य प्रदेश के मंत्री डा० शंकरदयाल शर्मा ने यह चेतावनी दी कि नई तालीम लोक-प्रिय बनी है,इसकी जांच तभी होगी जब हमारी शालाओं में गांव के सब बच्चे बिना किसी जबरदस्ती के आवें और गांव के लोग बच्चों के लिये कम से-कम अेक समय के भोजन की व्यवस्था कर दें। मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री डा. काटजूने अपने भाषण में शिक्षण की मौलिक बातों पर प्रकाश डाला।

ग्यारह तारीख की सुबह पूज्य विनोबाजी के जन्म दिन के निमित्त उसके स्मरण से कार्या-रंभ हुआ। सम्मेलन ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की कि आज विनोबाजी का मार्गदर्शन हम सबको उपलब्ध है। श्री कारण भाई ने सर्व सेवा संघ की साहित्य-प्रचार योजना की जानकारी दी और प्रार्थना की कि अिस काम में देश भर के शिक्षक योग दें। जो लोग नई तालीम की कुछ आम समस्याओं के बारे में चर्चा करना चाहते थे उनको खुले अधिवेशन में भी समय दिया गया। १५-२६ भाई बहनों ने अिस चर्चा में भाग लिया।

सम्मेलन के मुख्य तीन प्रस्ताव श्री श्रीमन्नारायण ने रखे। उन्होंने सुझाया कि स्वतंत्र रूप से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को आपसी विचार विनिमय के लिये मौका मिल सके, इसके लिये सम्मेलन की तरफ से एक अध्य-यन मण्डल बनाया जावे। यह मण्डल साल में दो बार मिले, कार्यकर्ताओं का आपसी परिचय बढ़े, काम की चर्चाएं तथा विचारों का आदान-प्रदान हो। इससे काम में तेजी आवेगी और समस्याओं का हल ढूढने में सुविधा होगी। इस मण्डल की एक बैठक पूज्य विनोबाजी के सान्निध्य में हो ताकि कार्यकर्ताओं से उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क हो तथा मार्गदर्शन मिलता रहे। श्री श्रीमन्नारायण ने तीसरी पंचवर्षीय योजना का जिक्र किया और उसमें उत्तर बुनियादी तालीम की प्रगति के बारे में जो कहा गया है वह सब के ध्यान में लाया। उन्होंने कहा कि आज हमारे बीच कतई निराशा का वातावरण नहीं होना चाहिये। सरकार, स्वतंत्र कार्यकर्ता और जनता सब मिलकर इस काम को आगे बढ़ावे। नई तालीम के भविष्य के लिये शक्ति और श्रद्धा के साथ हम सब काम में हाथ बटावे। सम्मेलन के सामने अध्ययन मण्डलियों के निष्कर्ष रखे गये और स्वीकृत हुए।

अेक आशादायी और उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्मेलन का काम पूरा हुआ। सब प्रति-निधियों को सम्मेलन का बहुत आनन्द रहा और आगे के काम के बारे में तीव्रता महसूस हुई। जब जामिया मिलिया इस्लामिया के जनाब सईद अन्सारी ने मध्य-प्रदेश के कार्यकर्ताओं को अच्छे इंतजाम के लिये अभिनन्दन किया तो उसमें सब की भावना प्रकट हुई। श्रद्धा और संतोष के साथ सम्मेलन का क •

१७ सितंबर, रविवार को एक सौ की कमिटी ने ब्रिटन में अणुशस्त्रों के विरुद्ध जो प्रदर्शन आयोजित किया था वह अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गया। एक सरकारी हुकुम से अधिकारियों ने ट्राफल्गर स्क्वयर में प्रदर्शन करने पर प्रतिबन्ध लगाया था, उस आज्ञा का भंग करते हुए करीब पन्द्रह हजार लोग वहां इकट्ठे हुए। उनमें से अधिकतर ने अनुशासनयुक्त और शान्तिपूर्ण तरीके से इस आज्ञा के प्रति अपना प्रतिरोध व्यक्त किया। एक हजार तीन सौ चौदह प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया गया। कमिटी के ज्यादातर सदस्य गिरफ्तार हुए, इसलिये एक नयी समिति बनायी गयी।

इसके पहले, प्रतिबन्ध की अवहेलना करने हैल्पार्क में प्रदर्शन करने के लिये बर्ट्रेन्ड रसल को एक हफ्ते के कारावास की सजा दी गयी थी। इस बन्द सताने कारावास से निकले एक वक्तव्य में आणविक युद्ध की तैयारियों की भयंकर विपत्तियों के बारे में फिर से लोगों को चेतावनी दी।

बर्ट्रेन्ड रसल, मैकेल स्काट और डा० अलसिस कामफर्ट आदि सज्जनों की गिरफ्तारी ने देश विदेशों में मानवीय सहानुभूति को जागृत किया और आणविक अस्त्रसज्जा के परिणामों के बारे में सोचने के लिये लोगों को बाध्य किया है। यह प्रदर्शन ठीक समय पर हो हुआ, क्यों कि सोवियत संघ व अमरिका के संयुक्तराष्ट्र संघ के द्वारा फिर से परीक्षण शुरू किये जाने के फलस्वरूप दुनियाभर में एक चिन्ता व तनाव का वातावरण निर्मित हुआ है।

प्रसिद्ध चिन्तक अल्बर्ट श्विट्जर ने रसल को एक पत्र में लिखा है "ऐसे विरोध प्रदर्शनों का आयोजन करके आपका यह काम बहुत ठीक है, ऐसा मैं मानता हूं। दुनिया उससे विचलित होने लगी है। मैं इस संग्राम में आपके साथ हूं"।

× × ×

स्काटलैन्ड में मौसिम की प्रतिकूलता के बावजूद होलिलाँच के पनडुब्बी अड्डे के स्थान पर बैठे रह सत्याग्रह कर के दो सौ इक्यासी प्रदर्शनकारियों ने गिरफ्तारी का वरण किया।

× × × ×

सितम्बर १४, १५, १६ को लंदन में निःशस्त्रीकरण के बारे में जो गैरसरकारी सम्मेलन हुआ, उसमें सोवियत प्रतिनिधियों ने यह पहले दफा फिर से परमाणु परीक्षण शुरू करने के अपनी सरकार के काम पर दुःख व्यक्त किया। सम्मेलन में सोवियत संघ तथा अन्य पूर्वयूरोपीय देशों व, पश्चिम के विश्वशान्ति समिति (वर्ल्ड पीस कमिटी) के एवं कई तटस्थ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन ने परमाणु परीक्षण तुरन्त बंद करने के लिए उक्त सरकारों को आह्वान किया।

× × ×

अन्तर्भूखण्ड पदयात्री दल अब पोलण्ड में है और सोवियत भूमि की तरफ पूरब की ओर चल रहा है। पोलण्ड की पीस कमिटी ने इनके साथ बहुत सद्भावना युक्त व्यवहार किया।

(शेषांश पृष्ठ १२३ पर)

सम्पादकीय

नई दिल्ली में इन दिनो राष्ट्रीय एकीकरण के ऊपर विचार करने के लिये जो सम्मेलन बुलाया गया, उसमें राष्ट्रीय एकता के लिये ही नही, राष्ट्र का सारा भावी स्वरूप निश्चित करने में ही शिक्षा का स्थान और महत्व पहचाना गया, उस पर विचार करने के लिए एक विशेष समिति नियुक्त की गयी, यह एक बडी आशापर्वक बात हुई। डॉ. जाकिर हुसैन ने सम्मेलन में अपने भाषण में जैसे कहा, "अगर हमारे लडके लडकियां अपनी शिक्षा समाप्त करके समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध और भविष्य के बारे में एक दृष्टि ले कर नही निकलती तो शायद भौतिक समृद्धि तो प्राप्त होगी, लेकिन राष्ट्र का सच्चा कल्याण नही होगा"। "शिक्षा के सामाजिक लक्ष्य और राष्ट्रीय एकता के सवन्ध" के बारे में अन्य सज्जनो ने भी अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया। जब उच्च स्तरो में इस विषय की तीव्रता का बोध जग गया है तो आशा है देश के शिक्षाक्षेत्र में नया चैतन्य और स्फूर्ति प्रगट होगी।

एक समय था जब शिक्षा याने साक्षरता के प्रसार से ही लोकतन्त्र-'डेमाक्रसी'-सुरक्षित होगा, ऐसी मान्यता थी। यह विचार अनुभव से गलत साबित हुआ है। शिक्षा साक्षरता मात्र नही, और भी कुछ है। शिक्षा का काम चन्द किताबें पढ कर उनका अर्थ समझने की योग्यता प्राप्त कराने से भी ज्यादा व्यक्ति में कुछ वृत्तियो व मूल्यो का निर्माण करना है। भारत के स्वतन्त्रता सग्राम में उस समय की तरुण पीढी में जो उत्साह और त्याग की सन्नद्धता थी, स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद राष्ट्र निर्माण या समाजपुनर्निर्माण के काम में आज की तरुणपीढी में वह उत्साह और अपने सकुचित स्वार्थो से ऊपर उठने की क्षमता नही दिखाई दे रही है, यह शिकायत सर्वत्र सुनाई देती है। ऐसा क्यो? आज शिक्षाजगत् के सामने यह सब से बडा सवाल और चुनौती है। देश की शिक्षा व्यवस्था की बागडोर जिनके हाथ में है, क्या वे इसका सफलतापूर्वक सामना कर सकेंगे?

(पृष्ठ १२२ का शेषाश)

मद्रास के मधुरा जिले के मुत्तिरुल-डीपट्टी गाव मे किसानो के अपनी भूमि पर से निकाल दिये जाने के विरोध में किये शान्तिपूर्वक सत्याग्रह का विजय हुआ है। यह एक ग्रामदानी गाव है। यहा जो २०१ एकड सिंचित भूमि है उसमे से १५१ एकड कुछ जमीनदारो के पास हैं जिनको ग्रामदान का विचार स्वीकार्य नही था। पिछले तीन साल मे इस भूमि पर से ग्रामदान मे शामिल होने के कारण कई परिवारो को निकाल दिया था। अगस्त महीने मे इनमे से कुछ लोगो ने शान्तिपूर्वक और सगठित तरीके से खेतों मे जा कर काम करना शुरू किया। ३२४ व्यक्ति इसके लिये गिरफतार किये गये। छ दिन के सघर्ष के बाद एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार जमीनदार ने यह जमीन ग्रामदान समिति को काश्त के लिये देना मजूर किया और सब कानूनी कार्रवाई बद कर दी गई।

समग्र विश्व को प्रभावित किया जा सकता है। उसके लिये पूर्ण हृदय शुद्धि चाहिये। आपको और हमें ऐसी शुद्धी दें यही हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

हम दुनिया के एक कोने में है, भारत के भी एक कोने में हैं। लेकिन हमें यह भास नही होता है कि हम निजस्थान से दूर हैं, अपने लोगो से दूर हैं। ऐसा एक क्षण के लिए भी भास नही होता है। बल्कि विश्व मानवभाव मेरे मन में आता है और जाता है। लेकिन कभी आता है तो उसमें ये राष्ट्र भेद, प्रान्त भेद नही रहता है। बल्कि ये सब मानव हैं, यही भान रहता है। और एक भाव आता है जो जाता नही है। वह यह कि ये सब ईश्वर हैं। यह भावना खास कर के हाथ पकड के चलता हू तब तो . "बालबीसी हाती धरनिया"–मेरा हाथ पकड के तू मुझे चला रहा है, यही एक भाव होता है। और कई क्षण ऐसे होते हैं जब आखें सब सृष्टि ईश्वरमय देखती हैं और वह नही हो तब तो मानव भाव होता ही है।

हमारी ६६ साल की उम्र में हम ईश्वर से यह नही कह सकते कि तूने हमें दु.ख का दर्शन कराया। सर्वत्र सुख हमने पाया। जितना प्रेम हमने पाया उसका एक अश मात्र भी हम नही चुका रहे हैं। प्राचीनो से, अर्वाचीनो से, दूरवालो से, नजदीक वालो से (शरीर के ख्याल से) इस तरह कश्मीर से कन्याकुमारी तक–यहा असम तक हमें जो मिला है उसका वर्णन हम नही कर सकते हैं। हमें जो मिला वह इतना अत्यधिक मिला है कि हम प्रेम दे रहे हैं, ऋण चुका रहे हैं ऐसा भास हमें नही होता है। माधवदेव ने गुरु के लिये जो लिखा है वही हम जनता के लिये कहते हैं।

"वाही अजलीन परे"

नमस्कार करने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नही है। सब को हम भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं।

ग्राम भारती अध्ययन गोप्ठी

सेवाग्राम सर्वोदय सम्मेलन के बाद श्री धीरेन्द्र मजुमदार बिहार के बलिया ग्राम मे बैठकर जनाधारित रूप से समग्र नई तालीम का एक विशेष प्रयोग करने मे लगे हैं। समय समय पर उनके विचार 'नई तालीम' तथा 'भूदान यज्ञ' मे प्रकाशित होते आये हैं। उनका मानना है कि हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने अपनी जनवरी, १९५७ की बैठक में जो प्रस्ताव किया था उसके प्रयोग आरम्भ करने चाहिये, चाहे वह कार्य ग्रामदानी गांवों मे चले या दूसरे गावों मे। इस दिशा मे प्रयोग करने से ही ग्राम्य जीवन की बदलती परिस्थिति मे नित्य नई तालीम का स्वरूप प्रकट होगा और नई तालीम द्वारा सामाजिक क्रान्ति का दर्शन हो सकेगा।

नई तालीम के सब कार्यकर्ता–खासकर जिस नये पर्व में जो दिलचस्पी रखते हैं–मिलकर एक गोष्ठी के रूप मे इस विषय का अध्ययन एव सह चिंतन करें ऐसा सोचा गया था। यह सितबर में होनेवाली थी, उसकी सूचना "नई तालीम" के अगस्त अक में दी भी गयी थी। लेकिन वह हो नहीं सकी। अब यह अध्ययन गोष्ठी सेवाग्राम में दिनाक ७ से ११ नवम्बर तक बुलायी जा रही है। श्री धीरेन्द्र भाई जिसमें उपस्थित रहेंगे।

जो मित्र इस विषय मे दिलचस्पी रखते हैं तथा चर्चाओं में भाग लेना चाहते हैं, उनको सादर निमंत्रण है। अधिक जानकारी के लिये सहमत्री, सर्व सेवा सघ, सेवाग्राम से पत्र व्यवहार करें।

२ अक्टूबर '६१ से ३० जनवरी १९६२ तक नई तालीम साहित्य बिक्री पर

विशेष रियायत

नई तालीम के संबंध में साहित्य प्रत्येक विद्यालय में उपलब्ध हो सके, इस दृष्टि से अक्टूबर महीने से चार माह तक याने जनवरी ३० तक नई तालीम साहित्य की फुटकर बिक्री के अतिरिक्त एक संपूर्ण सेंट के रूप में ग्राहकों को किताबें देने का सोचा गया है। हिंदी में नई तालीम साहित्य का पूरा सेट-जिसमें डॉ जाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट, पिछले नई तालीम सम्मेलनों की रिपोर्टस्, "शिक्षा में अहिंसक क्रांति", पूर्व बुनियादी, बुनियादी, उत्तर बुनियादी, और प्रौढ शिक्षा के विषयो में किताबें, विनोबाजी का "शिक्षण विचार" धीरेंद्र मजुमदार, शाता नारुलकर, चारुचन्द्र भंडारी, इनकी रचनायें और अन्य भी शिक्षा व उद्योग संबन्धी किताबें, जैसे खेती शिक्षा, बुनाई, तकली, कताई गणित और "बच्चों की कला और शिक्षा" सम्मिलित है। कुल ४५ रुपये के मूल्य की किताबों का यह सेट मात्र तीस रुपये में उपलब्ध हो सकेगा।

अंग्रजी साहित्य-जिसमें गांधी जी की शिक्षा में अहिंसक क्रांति, पूर्व बुनियादी, बुनियादी, उत्तर बुनियादी आदि के पाठ्यक्रम और उनके विवरण, डॉ आर्थर ई मार्गन का "भविष्य समाज रचना" आदि साहित्य है-इसका कुल मूल्य २५ रुपया है, परंतु वह सेट भी मात्र १५ रुपय में उपलब्ध किया जा सकेगा।

डाक और पॅकींग व्यय अतिरिक्त होगा। जो विद्यालय, शिक्षक और विद्यार्थी नई तालीम का पूरा साहित्य अपने पास रखना चाहते हो, उनके लिये यह एक विशेष अवसर है।

यह रियायत केवल २ अक्टूबर से ३० जनवरी, '६२ तक मिलेगी। अधिक जानकारी संचालक, अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन विभाग, सेवाग्राम, वर्धा (महाराष्ट्र) से प्राप्त करे।

Regd. No N.-106

छात्र और अध्यापक का संबन्ध

बचपन से अब तक मैं सदा विद्यार्थी रहा हूं और अध्यापक भी। कह नहीं सकता कि मैं विद्यार्थी अधिक हूं या अध्यापक। कारण, विद्यार्थी और अध्यापक दोनों एक दूसरे के अध्यापक हुआ करते हैं। बाप और बेटे के बीच ऐसा सम्बन्ध नहीं होता। बाप, बाप ही रहेगा और बेटा, बेटा ही। किन्तु मित्रों के बीच ऐसा सम्बन्ध हो सकता है। भाइयों के बीच भी ऐसा संबध हो सकता है। दोनों में परस्पर मित्र-मित्र और भाई-भाई का सम्बन्ध हो सकता है। इसी तरह विद्यार्थी और शिक्षक के बीच भी परस्पर गुरु-शिष्य-सम्बन्ध हो सकता है। यह एक मूलभूत विचार है। शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर एक समाज बनता है और दोनों एक दूसरे के मददगार बनते हैं। विद्यार्थी के बिना शिक्षक का नहीं चल सकता है और न शिक्षक के बिना विद्यार्थी का ही। दोनों मिल कर ही एक समाज बनता है।

--विनोबा

नई तालीम

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

नवम्बर १९६१

वर्ष १० : अंक ५

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ भा सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

नवम्बर १९६१

वर्ष १० अंक ५.

अनुक्रम

''नई तालीम'' हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है । असका वार्षिक चंदा चार रुपय और अक प्रति का ३७ न पै है । चन्दा पेशगी लिया जाता है । वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है । चन्दा भजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें । पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें ।
नई तालीम में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं । इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करन के लिए कोई विशप अनुमति की आवश्यकता नही है किन्तु उसे प्रकाशित करते समय नई तालीम का उल्लेख करना आवश्यक है । पत्र व्यवहार सम्पादक "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय ।

दिसंबर १९६१

वर्ष १० · अंक ६

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ भा सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

दिसंबर १९६१

वर्ष १० अंक ६.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। अिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ५ ★ नवम्बर १९६१

शिक्षा के योग से चित्त की ऐक्यरक्षा

कोई-कोई ग्रह-उपग्रह ऐसे हैं, जिनका एक आधे के साथ अन्य आधेका चिरस्थायी विच्छेद है, वह विच्छेद प्रकाश और अन्धकार का विच्छेद है। उनका आधा हिस्सा सूर्य की तरफ है और आधा सूर्य से विमुख। उसी तरह जिस समाज के एक अंश पर शिक्षा का प्रकाश पडता है और बाकी का बडा अंश शिक्षा से शून्य है, वह समाज आत्म-विच्छेद के अभिशाप से अभिशप्त है। वहां शिक्षित और अशिक्षित के बीच में असूर्यम्पश्य अन्धकार का व्यवधान है। दो भिन्नजातीय मनुष्यों की अपेक्षा इनके चित्त की भिन्नता और भी अधिक प्रबल है। एक ही नदी के एक किनारे का स्रोत भीतर ही भीतर दूसरे किनारे के स्रोत के विरुद्ध दिशा में चल रहा है; और इन दोनों की परस्पर विरुद्ध नजदीकपन ही उनकी दूरी को और भी गहराई के साथ प्रमाणित कर रहा है।

शिक्षा की एकता के योग से चित्त की ऐक्य-रक्षा को सभ्यसमाज मात्र ही अपरिहार्य समझता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दादा धर्माधिकारी

शिक्षक का कर्त्तव्य *

हम लोगो को सिखाया जाता था—"कुलीनै सह सपर्क पडितै सह मित्रता, ज्ञातिभिश्च सम मेल कुर्वाणो न विनश्यति।" कुलीनो के साथ जो सम्पर्क करता है, पडितो के साथ मैत्री करता है और बिरादरीवालो के साथ मिलता जुलता है उसका नाश नही होता। यहां मुझे तीनो तरह का लाभ प्राप्त है। कुलीनो का सपर्क है, पडितो की मैत्री है और मैं स्कूल मास्टर रहा हू, इसलिये आप मेरे बिरादरीवाले भी है। इसलिये कुछ निर्भय होकर आप लोगो के बीच आ गया हू। आज जिन बातो का विचार हमें करना है, उन सारी बातो में अगर मुख्य कोई चीज है, तो वह शिक्षक है। ये सारे शिक्षण का केन्द्र है और हुआ यह है कि केन्द्र ही खिसक गया। वह कही का नही रह गया।

पुजारियो की भगवान में जितनी तीव्र अनिष्ठा है, उतनी ही विद्या में शिक्षकों की है। आज के शिक्षण की क्षतियो के बारे म मुझसे कहा गया है कि मैं कहू। यह सब से महान् क्षति है। शिक्षक अगर सिपाही बन सके, तो बनना चाहता है, साहूकार बन सके, तो बनना चाहता है, सत बन सके बनना चाहता है, और राजा बन सके, तो अब और उसे कुछ नहीं चाहिये। फिर शिक्षक क्यो है? इसलिये है कि और कुछ नही बन सका। अब मुझे बतलाइए अनन्य गतिक होकर विवशता के कारण जिस व्यवसाय और वृत्ति का स्वीकार किया गया हो, उसमें से कौनसा सामाजिक तेज पैदा हो सकता है? और मैंने अपने आपको पहले ही शामिल कर लिया है। यह जो कुछ मैं कह रहा हू, *यह आत्मसमालोचना है, निंदा* नही है। समालोचना विधायक होती है। उसमें से सहविचार होता है। सहविचार के लिये हमारे सामने जो सबसे प्रधान समस्या है वह शिक्षक की है। एक सम्मेलन में एक बहुत बडे शिक्षण के शास्त्री ने, जो मुख्य वक्ता थे, अपना भाषण समाप्त करते हुए कहा, "लॉंग लिव द टीचर्स"—ये शिक्षक चिरायु हो। प्रवचन के बाद प्रश्न होते है, तो पहला प्रश्न हुआ "लॉंग लिव ऑन व्हाट?" शिक्षक युग युग जीयें, लेकिन किस चीज पर? ऐसी कोनसी चीज है जिस पर वह जीयें?

शिक्षक आत्मनिर्भर हो :

इसका जवाब एक ही हो सकता है। शिक्षक विद्याजीवी नही होगा, बुद्धिजीवि नही होगा, श्रमजीवी नही होगा, कलाजीवी नही होगा, *आत्मनिर्भर होगा। लोकनिर्भर भी नही।* और मैं यह नही कह सकता कि दुनियां भर के शिक्षक सब ऐसे होगे, लेकिन इतना आप लोगों से कह देना चाहता हू कि मुट्ठीभर भी शिक्षक ऐसे होंगे, तो दुनिया का रूप बदल जायगा। एक शिक्षक के नाते मेरा यह प्रत्यय और विश्वास रहा है कि दुनिया को बदलने की ताकत सिपाही

* सर्वोदय शिक्षण मडल शिबिर, विलेपार्ले में दिये गये भाषण से।

में नही है, शिक्षक में है। सिपाही जबरदस्ती से कुछ काम करा सकता है। लेकिन सिपाही दुनिया की शक्ल नही बदल सकता। दुनिया की शक्ल बदलने की ताकत, यह सामर्थ्य शिक्षक का है, उसका यह विशेष अधिकार है, ईश्वर दत्त अधिकार है—ईश्वर दत्त तो है ही, समाज दत्त भी है। क्यो कि समाज के हर पालक ने अपना बेटा उसे सौंपा है, अपनी बेटी उसे सौपी है। इतना भरोसा और किसी का समाज ने नही किया है, जितना शिक्षक का किया है। जितना विश्वास उस पर है, उतना ही दायित्व है। लेकिन शिक्षक को न तो इस विश्वास का भान है, न इस दायित्व की पहचान है। वह इन दोनो चीजों को बिल्कुल नही जानता है।

अभी आज के अखबार में निकला है कि भारत वर्ष के शिक्षण मत्री श्रीमालीजी ने कहा है कि आज के शिक्षण में सतुलन नही है। राजेंद्र बबू कहते है, सतुलन नही है, श्रीमालीजी कहते है सतुलन नही है, मै कहता हू सतुलन नही है, आप कहते हैं सतुलन नही है। अब सतुलन की खोज कहा हो ?

यतियो ने, योगियो ने, साधु सतो ने शाति की खोज करने के लिये हिमालया की कदराओ का सहारा लिया। क्या यह बैलेन्स–सतुलन–भी हिमाचल की कदरा में छिपा हुआ होगा ? या आपके और मेरे दिमाग में होगा ? आज हमारे समाज में केवल सयोजन और नव निर्माण से काम नही होनेवाला है। प्लेनिंग एन्ड रिकन्स्ट्रक्शन–ये दो आज के नारे हैं। लेकिन प्लेनिंग और रिकन्स्ट्रक्शन से अब काम नही होनेवाला है। क्राति की आवश्यकता है और वह क्राति नैतिक क्राति होगी, जिसे आप सास्कृतिक क्राति कहते हैं। उस सास्कृतिक और नैतिक क्राति की आवश्यकता है। इस नैतिक क्राति के कौन मूल पुरुष होगे ? केन्द्रीय व्यक्ति कौनसे होगे ? मेरा अपना विश्वास है कि शिक्षकों के सिवाय और दूसरे हो सकते हैं लेकिन इसके अग्रदूत शिक्षक होगे। शिक्षकों को यह काम अपने ऊपर ले लेना चाहिये। उनके सिवाय दूसरा कोई नही है, जो इस काम को कर सके।

काम प्रिय है कि दाम प्रिय है :

मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत प्रामाणिकता का प्रतिबिंब सामाजिक एकता है। समाज में जितनी एकता, सौहार्द और सवादित्व होता है वह मनुष्य की अपनी प्रामाणिकता का प्रतिबिंब है। स्वतत्रता पहले होगी या बधुत्व पहले होगा ? बधुत्व पहले होगा या समत्व पहले होगा ? ये सारी पहेलियाँ है। वो यह फुरसत के वक्त करने की चीज है। फुरसत याने निठल्लापन। जब आदमी को यह समझ में नही आता है कि अब समय के साथ वह क्या करे ? उस वक्त की बात मै कह रहा हू। असल में व्यक्तिगत प्रामाणिकता और सामाजिक बधुत्व दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आज किसी व्यवसाय में प्रामाणिकता नही है। क्या शिक्षक को है ? अगर शिक्षा के व्यवसाय में प्रामाणिकता होती तो उसको अपने काम से छुट्टी ज्यादा प्यारी नहीं होती है। यह उसकी परख है, पहचान है। मेरा काम मुझे प्रिय है अप्रिय है ? इसकी पहचान क्या ? इस काम से छूटने की अगर मैं राह देख रहा हू, तो काम प्रिय नही है, दाम प्रिय है। घडी की तरफ लगातार देख रहा हू, कि कब पाच बजते हैं ? भगवान दिनभर पाच क्यो नही बजाते ?

व्यवसाय में अगर तन्मयता होती है, तो समय का ध्यान नही रहता, तब वह समय जीवन का उपादान बनकर आता है। आखिर क्षण क्षण का ही जीवन बना है। लेकिन यह किस क्षण का ? जिस क्षण का ज्ञान नही रहता। थोरो ने वोल्डन में एक कारीगर का किस्सा लिखा है। एक छोटी सी चीज बनाना चाहता था। लोगोने पूछा कब पूरी होगी ? उसने कहा कि कला में कोई कब होता है ? कला में सिर्फ चीज पूरी होगी, इतना ही होता है। कला में कब कैसे आया ? कब कहा से आया ? कला में कब नही है। या तो फिर तुम कब इसको पूरा करोग ? इस क्षण पूरा करूगा। वह इस क्षण कौन सा क्षण होगा ? मै नही जानता। पूरी अभी होगी, इस क्षण होगी, वह क्षण बन जायेगा, कैलेंडर में नही जानता। उसने समय के साथ कोई समझौता नही किया, इसलिए समय उसके रास्ते में कभी रुकावट करने नही आया। आज हम लोग जो छोटे दिमाग के और छोटे दिल के आदमी है, उनका और विनोबा का फासला बढता जा रहा है। हमारा ध्यान कैलेंडर पर है और वह आदमी कैलेंडर भूल गया है। वह तन्मय हो गया है कलाकार की तरह। हमारा अपना फासला बढता चला जा रहा है और हर रोज हम से कहता है कि हम अकेले हैं। और हम भी कहते है कि आप अकेले ही आये हैं।

हम लोगो का ध्यान समय की तरफ होता है। टाईम टेबल् की तरफ अगर हमारा ध्यान है, तो मैं आपसे यह नही कहता कि आप सब के सब फरिश्ते या देवदूत बन जाइए। लेकिन इतना अवश्य कहता हू कि अपने आपसे इतना कह दीजिये कि शिक्षण से तुझे प्रेम नही है। इतना हरेक शिक्षक अपने आपसे कह दे। तुझे किस चीज से प्रेम है ? तो दक्षिणा और नैवेद्य से है। तू विद्या के मदिर में बैठा है। लेकिन तेरा दिल और कही है। इसलिए शिक्षण में क्राति नही हो रही है। यह क्राति शिक्षण मत्री करेगा ? कोई शिक्षण मत्री कभी क्राति नही कर सकता है। आज तक दुनिया में किसी शिक्षण मत्री ने क्राति नही की है। गाधी कभी शिक्षण मत्री होता तो तत्री ही हो जाता। विनोबा कोई शिक्षण मत्री नही है। इस तरह से क्राति नही होती, और आवश्यकता तो क्राति की है। आरभ शिक्षक को अपने से करना होगा।

मनुष्य का व्यवसाय अलग है और उसका शौक–सजीवन के लिए, वह जिन व्यापारो का, जिन क्रियाओ का आधार खोजता है, वह अलग है। तो एक द्वैत आ गया समाज में। मनुष्य के व्यक्तित्व में और समाज में दो अलग अलग चीजें हो गयी। यह काम है, यह खेल है। यह वाकेशन है, यह मेरा व्यवसाय है, यह रिक्रिएशन है, यह सजीवन है। यह मेरा उद्योग है, यह मेरी कला है। इस प्रकार से एक डायकाटामी एक भेद, एक व्यवच्छेद समाज में पैदा हो गया है। इसे इनबेलेन्स कहते हैं। खेल में हम कहते है कि मनुष्य में खिलाडीपन आता है, स्पोर्ट्समैनशिप आती है, एक टीम स्पिरिट आती है, एक चमू की मनोवृत्ति आती है, एक पलटन की, सेना की वृत्ति आती है। यह हम कहते है। लेकिन एक निवेदन कर देना चाहता हू कि आज समाज में यह भी केवल औपचारिक शिष्टाचार है। इसमें भी कोई सचाई, वास्तविकता नही रह गयी है। औपचारिकता आज के समाज का मुख्य दोष है।

जहा भी आप जाइए, वहा पर आज के जीवन के दोष आप सोचेंगे,तो अंत में उनको जो शीर्षक देना पडेगा वह है औपचारिकता और निर्जीवन। इसलिए जीवन में कोई जायका नही। किसी प्रकार का मजा नही। फीका फीका सा जीवन हो गया। हर किसी को अपने जीवन में मजा नही आता, तो शिक्षक को भी नहीं आता। अब आपको यह मालूम है न, कि जिस चीज में मजा नही आता, उसे हम दूसरे से करवाना चाहते है।

भावनात्मक परितृप्ति :

आज इन्डस्ट्रीस में जितने उद्योग है, उन उद्योगों में जो कारीगर होता है, जो कलाकार है, उसका इमोशनल सैटिस्फेक्शन कही नही है। कलाकार की कलाकृति में एक भावनात्मक समाधान होता है। एक परितृप्ति। मेरी वस्तु के क्या दाम आयेंगे? यह तो खैर, बाजार के सबब से सोचना पडता था, लेकिन यह ताज महल की मीनार है। कैसे बनी है? यह चर्च का डोमा–यह आकाश की तरफ भगवान् की तरफ कैसे ऊपर ऊपर जा रहा है। बस। अपनी कलाकृति देखकर कृतार्थता होती थी। यह जो कृतार्थता है, यह यत्रनिर्मिति में नही है, यत्रद्वारा निर्मित में नही है। यात्रिक उत्पादन में वह भावनात्मक कृतार्थता और धन्यता नहीं है, जो धन्यता और कृतार्थता कारीगर के जीवन में होती थी। मै आपसे लौटने के लिए नही कह रहा हूं। लौटकर कभी कोई सभ्यता, कोई संस्कृति आगे नही बढ सकती। कदम पीछे को मोडिये, मुह फेर लीजिये, यह कहने मै नही आया हू। लेकिन मै आपसे यह कहने आया हू, क्या यात्रिक उत्पादन में उस कारीगर की भावनात्मक कृतार्थता आ सकती है? और अगर नही आ सकती, तो यंत्र को सांस्कृतिक दृष्टि से मर्यादित करना होगा। उपकरण को उपकरण रहना होगा। सास्कृतिक दृष्टि से यह टेक्नालाजी का विकास है। यत्र सांस्कृतिक साधन बनना चाहिए। वह सांस्कृतिक साधन कब बनता है? जब उसमें मुझे इमोशनल सैटिस्फैक्शन मिलता है। एक भावनात्मक कृतार्थता। यह हृदय की कृतार्थता जब मै उसमें से प्राप्त करता हू, तब वह यत्र संस्कृति का साधन बनता है। हमारे यहा बहुत बडा विवाद हुआ था। कुमारप्पा, भारतानंदजी सब लोग यह कहते थे कि शिक्षण का साधन सास्कृतिक होना चाहिए। शिक्षण का साधन केवल उत्पादक नही हो सकता। शिक्षण का जो उपकरण होगा, वह सास्कृतिक उपकरण होना चाहिए। मुझ से पूछा तब मैंने कहा कि यह शिक्षण है और यह उत्पादन है। दो भिन्न सत्ताए जीवन में नही हो सकती। जीवन में सत्ता एक ही होनी चाहिए, नही तो शिक्षण जीवनविमुख हो जायेगा और जीवन शिक्षण-विमुख हो जायगा। दोनों में एक पार्थक्य, एक विच्छेद पैदा होगा और फिर उसको बाटने की दोनो कोशिश करेगे। पहले से ही यह हमको निश्चय कर लेना चाहिए कि सयोजन के उपकरण और शिक्षण के साधन, परस्पर पूरक और पोषक हो सकते हैं, विरोधी नही हो सकते। यह अगर विरोधी है, तो शिक्षण में से सयोजन कभी नही आयेगा और सयोजन शिक्षण प्रवण नही बनेगा। उसका मुह शिक्षण की तरफ कभी नही रहेगा। ये कुछ आज के जीवन की प्रधान समस्याए हे, जिनके कारण हमारे जीवन से में सवादित्व, सतुलन समाप्त हो रहा है। ये

समस्याए बहुत महान् समस्याए है। लेकिन आप यह न समझिये कि इतनी महान् हैं कि मनुष्य इनको नही सुलझा सकता।

शिक्षक दुनिया को बदल सकता है :

मेरे मित्रो, हमारे लिए एक बहुत गौरव का विषय यह है कि इस देश में और ससार में जितने महान् कर्तृत्वशाली पुरुष हुए हैं, उनमें से अधिकाश अपने जीवन में कभी-न-कभी स्कूल मास्टर रहे हैं। हमारे प्रायः सभी बडे बडे नेताओ में प्रमुख नेता अपने जीवन में कभी न कभी या तो कालेज में या स्कूल में प्रोफेसर और स्कूल मास्टर थे। ये वुडरो विलसन थे, वह प्रोफेसर था। तो आप यह न समझिये कि स्कूल का मास्टर कुछ नही कर सकता। यह कोई मुनीम नही है कान पर कलम रखकर चलनेवाला। यह बहुत कुछ कर सकता है। यह दुनिया को बदल सकता है। लेकिन इसको अपने व्यवसाय में प्रेम होना चाहिए। आज उसको अपने व्यवसाय से प्रेम नही है और जहा अपना अप्रेम से व्यवसाय होता है, वह खाली समय है और खाली समय से ही बुरा समय है। जिसमें से शैतानियत पैदा होती है, शरारत पैदा होती है। उत्पात पैदा होता है। स्ट्रीट कार्नर सोसायटी पैदा होती है। स्ट्रीट कार्नर सोसायटी मुझ में से और आप में से पैदा होती है; क्योंकि आप में और मुझ में अपने काम के प्रति किसी प्रकार का स्नेह और आस्था नही है। विद्यार्थी के मन में पढाई के लिए आस्था नही है। वहां से यह सारा का सारा पैदा होता है। इसका उपाय क्या है? रिक्तता, सूनापन जहा है, वहां अगर अभिरुचि हो, काम में दिलचस्पी हो, तो आरभ वहा से होता है। फिर तो आज हजारो बल्यू प्रिंट्स बना सकेगे और हजारों योजनाए। कोई कहेगे प्रोग्रेम दो शिक्षको के लिए, शिक्षणसुधार के लिए। यो आप दे देंगे। लेकिन आरभ कहा से होगा? आरभ अपने से होगा। और अपने से आरभ इस सकल्प से होगा कि मेरे काम में ईमान होना चाहिए।

शिक्षा में विश्वव्यापक दृष्टि

शिक्षा की दृष्टि विश्वव्यापक होनी चाहिये। पहली, दूसरी, तीसरी कक्षा में आजकल जिस क्रम के अनुसार इतिहास और भूगोल सिखाते हैं, उस तरह न सिखा कर सारे विश्व के इतिहास और भूगोल का मोटा ज्ञान प्रथम वर्गों मे देना चाहिये। छात्र जैसे आगे बढते हैं, वैसे ज्ञान बारीकी से देना चाहिये। ऐसे न सिखा कर किसी एक स्थान के भूगोल और इतिहास पर ज्यादा ध्यान दिया जाय तो बच्चों का मन सकीर्ण होगा। विज्ञान के युग मे विश्व का दर्शन होना चाहिये और इसलिये शिक्षा में व्यापक बुद्धि की आवश्यकता है।

—विनोबा

शिक्षा में स्वावलम्बन

धीरेन्द्र मजुमदार

दुनिया में आज जो समाज चलता है उसका ढांचा ऐसा है कि उस ढांचे को कायम रखते हुये अहिंसक समाज की बुनियाद डालना कठिन है। जनता के सम्पूर्ण जीवन को संचालित करने वाली राज्यशक्ति तेजी से बढ़ रही है और उसके कृत्यों का दायरा इतना बढ़ता जा रहा है कि जनता की अपनी स्वतंत्र आकांक्षा जैसे रह ही नहीं गयी है। उसकी स्वतंत्रता दिन प्रति दिन घटते घटते आज शून्यप्राय हो रही है। राज्यशक्ति का मूल आधार सैनिक शक्ति है। अतः राज्यशक्ति के विस्तार का अर्थ है सैनिक शक्ति का विस्तार यानी वृद्धि। स्पष्ट है कि अगर एक ओर हिंसा की शक्ति बढे तो दूसरी ओर अहिंसा की शक्ति नहीं बढेगी। राज्य हिंसक होगा तो जनता अहिंसक नहीं होगी, बल्कि प्रतिक्रिया में हिंसा फैलेगी। अतः अहिंसक समाज रचना के लिये आवश्यक है कि समाज की व्यवस्था दंडनिरपेक्ष हो तथा अधिक से अधिक के विचार से चलने वाली हो। विचार-शक्ति का विकास जनता की स्वतःप्रेरित तथा सर्वांगीण प्रगति से ही हो सकता है और यह तभी संभव है जब समाज का बहुमुखी जीवन स्वयं शिक्षा का माध्यम बन जाय। अगर ऐसा नहीं होगा तो उत्पादन में लगे हुये लोग शिक्षा से वंचित रह जायेंगे और जबतक कुछ लोग शिक्षित और कुछ लोग अशिक्षित रहेंगे तबतक सहकारी समाज व्यवस्था के नाम पर कुछ लोग शासन ही करते रहेंगे। अहिंसा की बुनियाद डालने के लिए यह आवश्यक है कि आज सामाजिक विषमता के कारण जो आर्थिक शोषण हो रहा है उसका पूर्ण निराकरण हो ताकि मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध मनुष्यता के स्तर पर हो। यह समता से ही हो सकेगा। यह उसी स्थिति में संभव है जब सभी मनुष्यों को आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक आदि शक्तियों के विकास का समान अवसर मिले। करोड़ों की भूमिका में समान अवसर का अर्थ ही यह है कि जीविका के लिए व्यक्ति जो काम करता है तथा उसके कारण वह जिस सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण में रहता है वह काम तथा वह वातावरण उसकी शिक्षा का माध्यम बने। अलग हटाकर जो शिक्षा दी जायगी वह जीवनशिक्षा नहीं होगी, उससे मानवीय सम्बन्ध नहीं पैदा होंगे, इसलिए वह नये समाज की बुनियादी तालीम नहीं होगी। यही कारण है कि स्वराज्य की झलक दिखाई देते ही गांधीजी ने नई शिक्षा की बात की।

१९३७ के सम्मेलन में देश के बड़े बड़े शिक्षा शास्त्री उपस्थित थे। शिक्षकों ने उद्योग के माध्यम से शिक्षा का स्वागत किया, क्योंकि शास्त्रीय दृष्टि से भी यह पद्धति अत्यन्त आधुनिक थी। लेकिन नई तालीम के उद्योग के विचार को मानते हुए भी उसके स्वावलम्बन के पहलू को करीब करीब सब ने अस्वीकार किया। उनको डर था कि इससे बच्चों की गुलामी बढ़ेगी। और उन्हें उत्पादन के बोझ से

लाद दिया जायगा । देश गरीब है, गरीबी के होते हुए भी सार्वजनिक शिक्षण आवश्यक है, इत्यादि दलीलो को वे मानते थे । लेकिन गरीबी का समाधान बच्चा के उत्पादन से न किया जाय, ऐसा आग्रह था । जो लोग स्वावलम्बन के विरोधी थे, वह यह कहते थे कि बच्चो के मुफ्त शिक्षण के लिए सरकार जिम्मेदार है । उन्हे पढाई के साथ कमाई करने की जरूरत नही है ।

तालीम अहिंसक सहकार शक्ति का वाहन :

गाधीजी शिक्षा शास्त्रियो के विरोध के बावजूद शिक्षा में स्वावलम्बन के विचार पर दृढ रहे । उन्होंने स्वावलम्बन को नई तालीम की कसौटी के रूप में माना । गाधीजी के लिए ऐसा मानना जरूरी था । नि शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा सरकार दे, यह वे कैसे मान सकते थे ? वह सरकार का इस्तेमाल सभवत क्रांति के लिए भले ही कर लेते, लेकिन सरकार को अपनी कल्पना की समाजरचना का अधिकारी आधार कैसे मान सकते थ ? अत अहिसक समाज के स्वप्न द्रष्टा ने तालीम को राज्य आधारित करन के प्रस्ताव को दृढता के साथ अस्वीकार किया क्योकि उनकी मान्यता में अहिसक समाज में राज्यसस्था का क्रमश लोप होना चाहिए क्योकि उनका विश्वास सहकारी समाज में था, न कि दण्ड-सचालित समाज में। वह तालीम के द्वारा अहिसा की शक्ति को प्रकट करना चाहते थे । अत जिस तालीम के विकास की परिस्थिति अहिसक समाजरचना अर्थात् राज्यसस्था का क्रमिक विघटन है उस तालीम के लिए राज्यसस्था की सहायता भले ही मिले, किन्तु वह राज्य आधारित कैसे हो सकती है ?

जिस तालीम को राज्य सस्था का क्रमिक विघटन करके जनता को अहिसक सहकार शक्ति का वाहन बनना है उसे सरकार आधारित नही करना है, यह स्पष्ट है । लेकिन तालीम सरकार आधारित न हो, इसका यही एक मात्र कारण नहीं है । जो लोग शासन मुक्त समाज की कल्पना नही भी करते है और लोकतान्त्रिक राज्यवाद का विचार ही रखते है उन्हे भी शिक्षा को सरकार के अधीन रखने की बात सोचनी होगी । लोकतान्त्रिक राज्यवाद का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्यक मनुष्य स्वतत्र है । उसका विचार भी स्वतत्र है । स्वतत्र रूप से विचार कर उसे व्यवस्थापक या प्रतिनिधि चुनना चाहिए । लोकतत्र में सरकार शासक नही होती है, व्यवस्थापक होती है । वास्तविक शासक जनता खुद होती है । लेकिन व्यवस्था सुसगठित तथा अनुशासित हो, इसलिए जनता अपने व्यवस्थापक के हाथ में दमनशक्ति भी दे सकती है । फलत व्यवस्थापक को अधिकार मिल जाता है । मनुष्य में अधिकार न छोडने की वृत्ति अत्यन्त प्रबल है । इसलिए जिस पक्ष के हाथ म अधिकार आयेगा, वह जनता के विचार को अपने पक्ष में करन के लिए प्रयत्नशील होगा ताकि हमेशा उसी के पक्ष का शासन कायम रहे । अगर शिक्षा सरकार आधारित होगी तो बचपन से ही बच्चो के विचारो में एसा मोड लाया जायगा जिससे बालिग होते होते एक विशिष्ट दिशा में ही उनका दिमाग चलने लगे । फलस्वरूप देश में लोकतान्त्रिक राज्य के बदले में एक दलीय सत्ता का विकास होगा । इसलिए जनाधारित स्वावलम्बी शिक्षा पद्धति की खोज वर्तमान लोकतत्र की भी समस्या है ।

इस प्रकार अक्तूबर १९३७ ई० के प्रथम सम्मेलन के अवसर पर गाधीजी ने देश के सामने स्वावलम्बी तथा उत्पादनमूलक नयी तालीम का विचार रखा। वस्तुत. गाधी जी के लिए इस प्रकार की शिक्षण प्रकिया नयी चीज नही थी। उन्होंने पहले ही दक्षिण अफ्रिका में टालस्टाय फार्म के नाम से जो आश्रम खोला था वहा इस शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया था। उन्होंने अपने बच्चो को उद्योग के ही द्वारा शिक्षित किया था। लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के सदर्भ में उन्होंने इसे एक नये ढग से रखा ताकि देश के लोग समझ सके। उन्होने कहा कि आजाद भारत में शिक्षण प्रणाली का निर्माण पहला काम होना चाहिए। वे मानते थे कि यह प्रणाली न केवल प्रारभिक श्रेणियो के लिए है, बल्कि अन्तिम श्रेणी के लिए भी यानी विश्वविद्यालय की शिक्षा भी इसी प्रणाली से दी जानी चाहिए।

देश के बहुत से लोग जो गाधीजी की नयी तालीम को स्वीकार करते हैं, वे प्रारम्भिक शिक्षा के लिए तो उसे उपयोगी मानते हैं, लेकिन उच्च शिक्षा के लिए प्रचलित पुस्तकीय पद्धति का ही ठीक समझते है। उनमें से कई लोगों की ऐसी मान्यता है कि तालीम के प्रश्न पर गाधीजी ने केवल प्रारम्भिक शिक्षा का ही विचार किया था। ऐसा सोचना गाधीजी के साथ अन्याय है। शुरू से ही उन्होने नयी तालीम का क्षेत्र समाज के हर स्तर में है, ऐसा माना था। वह कहते थे कि नयी तालीम का क्षेत्र जन्म से मृत्यु तक है। उनके लिए शिक्षा जीवन का पर्याय थी। लेकिन प्रथम सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने प्रकट किया था कि यह शिक्षा पद्धति ऊचे स्तर के लिए भी है, फिर भी फिलहाल ७ से १५ वर्ष की उम्र के स्तर की ही चर्चा करेगे। एक व्यावहारिक सघटक के नाते उनको यह मर्यादा बाधनी जरूरी लगी क्योकि शिक्षा के लिए कोई नयी पद्धति एकाएक ऊपर के स्तरो में नही लागू की जा सकती। एक विचार के आधार पर दिशानिर्देश होता है। उस दिशा में चलकर अनुभव की बुनियाद पर पद्धति तथा कार्यक्रम बनता है और इस तरह क्रमश नीचे से ऊपर तक ढाचा खडा होता है। यही कारण है कि गाधीजी ने उस समय राष्ट्र का ध्यान केवल बुनियादी कक्षाओ पर ही आकृष्ट किया।

शिक्षण—शास्त्र का विकास ;

केवल भारत में ही नही बल्कि सारे सभ्य जगत् में शिक्षण की प्रारम्भिक प्रक्रिया दर्शन शास्त्रो की आवृत्ति तक ही मर्यादित थी। हमारे देश में यह कहावत थी कि "आवृत्तिः सर्वशास्त्राणाम् बोधादपि गरीयसी"—यानी सभी शास्त्रो की आवृत्ति उन्हे समझने से भी अधिक श्रेष्ठ है। भारत के गुरुकुलो में, यूरोप के मोनास्ट्रीस में, या पश्चिम एशिया के मकतबो में शिक्षा की यही धारणा चलती थी। द्रष्टा जिसे ज्ञात कर दर्शन करते, पुरोहित उसे कठस्थ कर फैलाते थे।

धीरे-धीरे मनुष्य का बौद्धिक स्तर, चिंतन तथा ज्ञान की आकाक्षा बढने लगी। इस प्रकार शास्त्रो को कठस्थ करने से ही वे सतुष्ट नही रहे, आगे बढना चाहते थे। समझने लगे थे कि इस प्रक्रिया से शास्त्रो की जानकारी भले ही हो जाय, बौद्धिक विकास नही हो पाता था। बुद्धि और विद्या में कौन श्रेष्ठ है इसको भी चर्चा चल पडी थी। श्रेष्ठ कौन है इसके प्रमाण में अनेक कथायें बनी।

समाज की आकांक्षा के अनुसार शिक्षा शास्त्र का चिंतन भी आगे बढ़ा। उन्होंने शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किया। बिना समझे आवृत्ति करने के स्थान पर समझ बूझ कर ग्रंथों के अध्ययन की प्रणाली चलायी। उसके अनुसार देश भर में शिक्षा का विस्तार हुआ। गुरुकुलों के अलावा पाठशालाएं बनी। नाना प्रकार के विषयों पर पुस्तकें लिखी गयीं। उससे समाज के असंख्य छात्र शिक्षित होने लगे।

मनुष्य की बुद्धि कहीं स्थिर नहीं रह सकती है। वह निरन्तर आगे ही बढ़ती है। ज्ञान विज्ञान की प्रगति के साथ साथ शिक्षा शास्त्र की भी प्रगति होने लगी। किताबों के माध्यम से बौद्धिक विकास की प्रक्रिया पर्याप्त नहीं है, ऐसा भी महसूस होने लगा। मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र के पंडित यह मानने लगे कि मनन इन्द्रिय से श्रवण इन्द्रिय अधिक तेजी से चीजों को ग्रहण करती है और श्रवणेन्द्रिय की अपेक्षा दर्शनेन्द्रिय चीजों को और अधिक जल्दी समझती है। पुस्तक पढ़कर समझने के बजाय बात सुनकर समझना अधिक आसान होता है, इसका अनुभव शिक्षण कला के क्षेत्र में पहले ही हो चुका था। अब श्रवणेन्द्रिय से आगे बढ़कर दर्शनेन्द्रिय को शिक्षण कला में इस्तेमाल करने की बात सूझी। फिर चित्रों द्वारा शिक्षण की पद्धति निकली। बच्चों की पुस्तकों में नाना प्रकार के चित्रों के सकलन की पद्धति बनी। चित्रों द्वारा शिक्षण के लिए नाना प्रकार के चार्टस बने। धीरे धीरे यह प्रणाली दुनिया के सभी मुल्कों में फैली।

इससे भी आगे बढ़कर मनुष्य ने कुछ वास्तविक वस्तुओं का दर्शन कराकर शिक्षण प्रणाली का विचार सोचा। उसके लिए अनेक प्रकार की पद्धतियां निकाली। उनमें मुख्य हिस्सा चीजों को माडेल बनाकर बच्चों के सामने रखने का था। पहले जहां पेड़ों, फलों, पशु, पक्षियों, पहाड़ और नदियों आदि के चित्र बनाये जाते थे वहां अब उनके माडेल रखे जाने लगे। इस तरह माडेल दिखाकर बौद्धिक विकास की प्रक्रिया चली, निस्सदेह इस प्रक्रिया से बच्चों की बुद्धि बढ़ी। इतना ही नहीं, बल्कि दिलचस्पी बढ़ने के कारण जिज्ञासावृत्ति का भी विकास होने लगा। धीरे-धीरे इन माडेलों तथा हू-ब हू प्रकार की मूर्तियां बनी। घर द्वार के बड़े बड़े माडेल बने ताकि शिक्षार्थियों को वास्तविक वस्तुओं की धारणा ठीक ठीक हो जिससे उनकी बुद्धि अधिक प्रखर हो सके। इस चेष्टा में विद्यालयों के अहाते में छोटे-छोटे नकली कारखाने तथा देहात भी बनने लगे। बाद को सिनेमा के अविष्कार के कारण इस जरिये को अधिक पुष्टि मिली।

वास्तविक जीवन पर आधारित शिक्षण पध्दति:

इस प्रकार शिक्षा शास्त्र ने एक आधार से दूसरे आधार पर चढ़ते हुए वास्तविक जीवन के साथ शिक्षण पद्धति को आगे बढ़ाया। मनोविज्ञान के मूलतत्व वास्तविकता के माध्यम से सिद्धान्तों का ज्ञान हासिल करने का विचार दिन-ब-दिन परिपुष्ट हुआ। गांधीजी की नई तालीम की पद्धति इसी वास्तविकता की प्राप्ति की प्रगति को आगे बढ़ाने की थी। अगर यह सही है कि पुस्तक पढ़ने की अपेक्षा उसका चित्र-दर्शन ज्ञान-प्राप्ति के अधिक अनुकूल है तथा चित्र-दर्शन की अपेक्षा माडेल-दर्शन और

भी आकार और प्रकार में अधिक वास्तविक हो, ऐसे दर्शन से बुद्धि तथा ज्ञान का विकास अधिक स्पष्ट तथा स्थायी होता है तो क्या जीवन की उन वस्तुओ के प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिलने पर उसकी परिपुष्टि, माडेल आदि की अपेक्षा अधिक नही होगी? अतएव शिक्षा शास्त्रियो ने जब देखा कि गाधी-जी दर्शन से प्राप्त ज्ञान से भी आगे बढकर प्रत्यक्ष कर्म के अनुभवलब्ध ज्ञान की ओर जा रहे है तो उनको इस चीज ने प्रत्यक्ष आकर्षित किया। मनुष्य की सबसे बडी वास्तविकता जिन्दा रहने की चेष्टा है। इसलिए गाधीजी ने उत्पादन की प्रक्रिया तथा समाज को शिक्षण का माध्यम बनाया और उस उत्पादन को भी उन्होने जिन्दा रहने की चेष्टा के साथ जोड दिया, याने उन्होने ऐसा उद्योग चुना जो बच्चो तथा पालको की तात्कालिक आवश्यकताओ से जुडा हो। इसलिए बुनियादी तालीम का प्रथम माध्यम बागवानी और कताई रखा।

हमने कहा है कि गाधीजी ने जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञान प्राप्ति का तरीका सर्वोत्तम माना है। केवल शिक्षाशास्त्री ही इसे उत्कृष्ट तालीम कहते है, ऐसी बात नही है। परन्तु प्राचीन काल में विद्याभ्यास का चाहे जो तरीका हो, कर्म में से ही ज्ञान की उत्पत्ति है, ऐसा पुराने जमाने में भी माना गया है। भारत के सबसे बडे शिक्षक ने गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति का क्रम बताया है। क्योकि जो ज्ञान कर्म के अनुभव से प्राप्त होता है, वही निस्सदेह तथा स्थिर ज्ञान होता है। इस हेतु उस पर आस्था तथा भक्ति होना भी स्वाभाविक है। लेकिन क्या हर प्रकार का कर्म ज्ञान का जनक है? ज्ञानप्राप्ति के लिए कर्म ऐसा होना चाहिए जिसके लिए कर्ता सचेतन रहे और जिसमें उसका दिल लगा रहे क्योकि उत्साह पूर्वक दिलचस्प तथा सचेतन कर्म के बिना जिज्ञासा पैदा नही हो सकती। जिज्ञासा के बिना प्राप्ति की प्रेरणा नही है, तो उनके दिल में उस कर्म से कोई प्रश्न नही उठेगा। उदाहरण के लिए दो प्रकार की खेती के काम पर विचार करना चाहिए। कुछ किसान खुद खेती न करके मजदूरो से खेती कराते और कुछ अपने हाथ से खेती करते है। मजदूर को मजदूरी में दिलचस्पी है और किसान को पैदावार में। दोनो ही खेतो में अगर अनाज की बाढ नही होती है तो मजदूर को उसका कारण जानने की चिन्ता नही होगी, जब कि किसान पौधे न बढने का कारण जानकर उसका उपाय करने के लिये फिक्रमन्द होगा। इस प्रकार यद्यपि दोनो का कर्म एक ही है, दोनो के पास समान उद्योग है, फिर भी *उस प्रक्रिया में से एक को ज्ञान प्राप्ति होगी,* दूसरे को नही होगी। कुछ लोग कहते है कि यह स्थिति तब होती है जब दोनो खेतो को देखने के लिए कोई शिक्षक न हो। लेकिन अगर उस गाव में कोई शिक्षक होगा तो वह फसल न बढने की स्थिति के समवाय से दोनो को ज्ञान दे सकता है। परन्तु गहराई से विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि यह सभव नही है। अगर मजदूर को दिलचस्पी नही है तो वह हजार बार बता देने पर भी भूल जायगा, जब कि किसान दिलचस्पी के कारण शिक्षक के एक बार बताने पर उनसे चर्चा करके पचास और बाते जानने की कोशिश करेगा।

अतएव चित्र, माडेल आदि के माध्यम से ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया की अपेक्षा समाज के वास्तविक कार्यक्रम से ज्ञान प्राप्ति अधिक

श्रेष्ठ है। इसी तथ्य पर रुक जाने से शिक्षण प्रगति की समस्या हल नहीं होगी। सामाजिक कर्म तथा उत्पादन की प्रक्रिया ज्ञानप्राप्ति का उत्तम जरिया होने पर भी वह सचेतन हो— यानी उसमें शिक्षार्थी की दिलचस्पी हो, यह देखना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में मुख्य आकांक्षा शिक्षार्थी की होती है। अतएव गांधीजी ने जो तालीम के लिए स्वावलम्बन आवश्यक है, ऐसा कहा, वह केवल भारतीय गरीबी को ही ध्यान में रखकर नहीं कहा था और न केवल शासन-निरपेक्ष शिक्षा की आवश्यकता के कारण ही; बल्कि उसके साथ-साथ शिक्षामनोविज्ञान को सामने रखकर ऐसा कहा था।

स्वावलम्बन का लक्ष्य शिक्षक, शिक्षार्थी तथा समाज के सभी लोगों की दिलचस्पी शिक्षण की ओर ले जायगा। ऐसी हालत में शिक्षा समाज से अलग सुदूर गुरुकुल की चहारदीवारी के अंदर या गांव के एक कोने के स्कूलों में बैठे हुए कतिपय शिक्षक या शिक्षण शास्त्री के विचार का विषय न होकर समस्त समाज के चिन्तन का विषय हो जायगी।

इस बात को समझने के लिए स्वावलम्बन के व्यावहारिक पहलू को समझना होगा। समाज के प्रत्येक बच्चे को बालिग अवस्था पर पहुंचने तक अगर स्वालम्बी शिक्षा देनी है तो अलग से विद्यालय के आहातों में पूरे साधन जुटाना संभव नहीं है। गांव के पूरे साधनों को ही शिक्षा का माध्यम मानकर चलना होगा। ऐसी हालत में पूरे समाज की तरक्की की योजना बनाकर ही व्यवस्थित शिक्षाक्रम बनाना होगा। पूरे समाज की योजना सिर्फ शिक्षकों की दिलचस्पी की वस्तु नहीं होगी, वरन् पूरे समाज को इसके लिए सोचना होगा और जब समाज का चिन्तन इस दिशा में शुरू होगा तो स्वभावतः उसकी बुद्धि की भी कसरत होगी और जिस काम में पूरे समाज की बुद्धि लगेगी उसका बौद्धिक विकास अधिक होगा। स्पष्ट है कि इस तरह की ज्ञान प्राप्ति ज्ञानी को अधिक तेजस्वी बनायेगी, इतना ही नहीं है, परन्तु उन्हें समाज के साथ एकरस कर समाज की सांस्कृतिक तथा बौद्धिक उन्नति का सक्रिय उपादान बनायेगी। इस प्रकार गांधी जी ने नई तालीम द्वारा क्रम-विकासवान् शिक्षा शास्त्र की पद्धति को एक कदम आगे बढ़ाया, इतना ही नहीं, बल्कि उसमें सामाजिक लक्ष्य को जोड़कर उसे अधिक तेजस्वी भी बना दिया।

मानव को स्वभावतः दुष्ट मानने में निखिल मानव जाति का अपमान तो है ही, निराशावाद भी इसमें कमाल का है। मानव मूलतः दुष्ट हो, तो शिक्षा की कोई आशा नहीं रह जाती। चूंकि तार्किक दृष्टि से किसी वस्तु से उसका स्वभाव सदा के लिये अलग कर देना असंभव है, इसलिये यदि मानव-स्वभाव मूलतः दुष्ट हो, तो उसके सुधार के सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो कर निराशावाद का और साथ ही पाशविक वृत्ति का साम्राज्य शुरू हो जायगा। कारण, शिक्षण की आशा समाप्त होने का अर्थ ही है, दण्डराज्य की स्थापना।

—विनोबा

उत्तर बुनियादी में कृषि-शिक्षा

प्रिय सुमन बहन,

सादर वंदे ।

यह जानकर मुझे हर्ष है कि सेवाग्राम में फिर से उत्तर बुनियादी भवन आरंभ हुआ है और आपने उसकी जिम्मेवारी ली है। आपने नई तालीम में प्रकाशित कृषि का पाठ्यक्रम पालन करने का निश्चय किया है जानकर आनन्द हुआ। पाठ्यक्रम का स्तर एक रूप में कृषि स्नातक के शिक्षाक्रम की बराबरी का है परन्तु उसका व्यवहारी रूप बहुत भिन्न है। हमें ध्यान पुस्तकीय ज्ञान की ओर नहीं वरन् कृषि की वैज्ञानिक दृष्टि को व्यवहारी और उपयोगी रूप से समझाने पर देना होगा। कुछ अंश में हमें अविद्या का भी आसरा लेना होगा, अर्थात् निरर्थक ज्ञान को छोड़ना होगा। इस पाठ्यक्रम को पूरा करने में दूसरी महत्व की बात क्रिया द्वारा–खेती के प्रत्यक्ष कार्य और समस्याओं द्वारा ही सम्बद्ध विषयों का तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान देना है। इन दोनों के अनुसार शिक्षा की योजना बनाने से जिस क्रम में विषयों का पाठ्यक्रम में प्रतिपादन किया है वह क्रम आप नहीं रख पावेंगी। सामयिक स्थिति और उपस्थित समस्या के अनुसार उसमें प्रतिवर्ष परिवर्तन होंगे। ध्येय एक वर्ष या सत्र में कितना पाठ्यक्रम पूरा किया यह न होकर पूरी शिक्षा अवधि में विद्यार्थी ने क्या योग्यता हासिल की है, यह होना चाहिए।

सामान्य उच्च माध्यमिक शालाओं की अपेक्षा हमारी शिक्षा की रीति की खास भिन्नता शिक्षक विद्यार्थी को क्या पढ़ाता है, कैसा पढ़ाता है, यह नहीं, वरन् विद्यार्थी शिक्षक की सहायता से स्वयं शिक्षा प्राप्त कर सकने की कितनी योग्यता हासिल करता है यह होना चाहिये। उदाहरणार्थ विद्यार्थी को हिज्जे बताना और रटाने के बजाय शिक्षक उन्हें शब्दकोष का उपयोग करना बताकर विद्यार्थियों को सही हिज्जे कैसे जान लेना यह सिखायेगा। शिक्षक पढ़ायेगा नहीं वरन् विद्यार्थी शिक्षक के द्वारा अध्ययन करने की कला सीख लेगा।

कृषि विषय न केवल एक विज्ञान है वरन् एक उत्तम कला है। इस विषय का जीवन के, राष्ट्र के सब पहलुओं पर असर है एवं अन्य कई विषयों से इसका सम्बन्ध है। इसका लाभ विभिन्न विषयों का समवाय करने में उठाना होगा। श्री सी. पी. दत्त और बी. एम. प्यू ने इसे इस प्रकार एक पेड़ के रूप में दर्शाया है कि विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, साहित्य, गणित, नागरिकता, मनोरंजन आदि विषय इस पर से स्वाभाविक शाखाएं जैसे निकलते हैं।

उत्तर बुनियादी स्तर के विद्यार्थियों में प्रयोग करने की भावना और आदत डालना चाहिये। विभिन्न विषयों और समस्याओं को समझने और हल हासिल करने की दृष्टि से प्रयोग किये जावें। कृषि का आधार मिट्टी (भूमि) है। इसलिए मिट्टी के गुण,

प्रकार और धर्म समझने के छोटे छोटे प्रयोग किये जावे। कुछ उदाहरण दे रहा हू।

मिट्टी के प्रकार :

किसान की दृष्टि से मिट्टी तीन प्रकार की होती है। १. हलकी, २ मध्यम और ३ भारी। विद्यार्थियो को खेतो पर ले जाकर ये मिटिटया बताई जावे। उन्हे पहचानना सिखाया जाय और उनके स्थानीय नाम बताये जावे। अब उनका इस रूप का वैज्ञानिक वर्गीकरण बताया जाय। हलकी मिट्टी याने वह मिट्टी जिसमें रेत का अनुपात अधिक है। कितना है? इसकी जाच करना चाहिये। वैज्ञानिक परिभाषा द्वारा निम्नलिखित अनुपात माने गये हैं।

१ रेतीली (अति हलकी) मिट्टी –	८० % से अधिक	रेत
२ रेतीली मटियार	६०–८० %	रेत
३ मटियार (लोम)	४०–६० %	रेत
४ भारी मटियार	२०–४० %	रेत
५ चिकनी	२० % से कम	

इस आधार पर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भूमि वर्गीकरण का एक प्रमाणिक रूप बनाया है। वह आगे बताया हू। विद्यार्थियो को यह जानना चाहिये।

	कपा और चिक्कन का प्रतिशत	चिक्कन का प्रतिशत
१ रताड (सान्डी)	१५ से कम	२० से कम
२ मटियारी रताड (लोमी सेन्ड)	१५ से २०	२० से कम
३ रेतीली मटियार (सेन्डी लोम)	२० से ५०	२० से कम
४ मटियार और कपा	मटियार ५० से ऊपर	२० से कम
५. चिक्कन मटियार		२० से ३०
६ चिक्कन		३० से ऊपर

इसका अर्थ है कि हम मिट्टी में रेत कपा और चिक्कन का अनुपात जानकर मिट्टी का वर्गीकरण कर सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से ये क्या है? रेत, कपा और चिक्कन एक ही हैं। इनका खास अतर इनके कणो का आकार है, जो आगे बताया हू।

दरदरी (मोटी रेत) रेत कणो का व्यास २ मिलीमीटर से ० २ मी मी

रेत ० २ मि मी से ०.०२ मि मी

कपा (सिल्ट) ० ०२ मि मी से ० ००२ मि मी

चिक्कन ० ००२ मि मी से ० ०००२ मि मी

विद्यार्थियो से मिट्टी में इनका अनुपात निकलवाना चाहिये। इसकी एक व्यवहारी हालाकि दोषरहित नही परन्तु सरल रीति इनको निश्चित नापो की छलनियो द्वारा पानी से धो धो कर अलग-अलग छान लेना है।

मिटटी की परीक्षा द्वारा ही विद्यार्थियो को आम्लता और क्षारता का ज्ञान कराया जा सकता है। मिट्टी का पानी में घोल बनाकर उसमें लाल और नीला लिटमस कागज डाला जाय और उनका रग परिवर्तन नोट किया जाय। समवाय और तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से चूने का पानी, नीबू का रस, गोमूत्र, मानव मूत्र और दूध का लिटमस कागज से

रगो पर परिणाम नोद किया जाय और इनका आम्ल और क्षार में वर्गीकरण किया जाय। *ताजे दूध पर परिणाम सबसे भिन्न होगा।* उसमें नीला लिटमस कागज लाल और लाल रग नीला बदल जायगा। अर्थात् उसमें एक साथ आम्ल और क्षार के गुण पाये जाते हैं। इस रसायनिक गुण को 'एम्फोटेनिक्' गुण कहते है।

मिट्टी में चूने का परिमाण बहुत महत्व का है। मिट्टी में चूने की कमी फसल के लिये हानिकारी होती है। विद्यार्थी सरल प्रयोग कर यह जाच करे कि मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में चूना है या नही। इसकी जाच मिट्टी के घोल में गधक का तेजाब डालकर की जाती है। मिट्टी में चूने की मात्रा कम रही तो कम और अधिक रही तो अधिक जोर से सुनसुनाहट होगी। इसे प्रबुब्दन किया कहते हैं।

मिट्टी में पानी (आर्द्रता) रहता है। भिन्न-भिन्न मिट्टी में भिन्न-भिन्न अनुपात में आर्द्रता होती है। कृषि विद्यार्थियों को इसका सामान्य ज्ञान होना चाहिये, अभ्यास के लिये ५,७ खेतो की एव विभिन्न प्रकार की मिट्टी की आर्द्रता का अनुपात निकालना चाहिये। इसके लिये कन्दु (अवन) आवश्यक होगी। कटोरी में खेत की मिट्टी लीजिये, फिर उसे कटोरी सहित कन्दु में रखकर १०५.० सेन्टी ग्रे० पर १२ घण्टे तक गरम कीजिये। फिर वजन लीजिये। वजन ठण्डा होने पर लेना चाहिये। ठण्डा होने में मिट्टी फिर वायुमण्डल से आर्द्रता ले लेगी। इससे बचना चाहिये। इसका उपाय है—काच की मझोले आकार की बरनी में एक *छटाक कली का चूना रख दिया जाय।* ढक्कन लगा कर इसे ३,४ घण्टा रख देना चाहिये जिससे बरनी की सब आर्द्रता सोख ली जाय। फिर बरनी में एक छोटी सी लोहे के तार की तिपाई रख उस पर मिट्टी भरी कटोरी रख ढक्कन लगा दिया जाय। ठण्डा होने तक कटोरी इसी में रहे। इस कार्य हेतु एक यत्र (डेसीकेटर) शोपित्र मिलता है।

सूखने पर मिट्टी सिकुडती है। सिकुडने का अनुपात भिन्न-भिन्न मिट्टी का अलग-अलग होता है। किसका कितना है यह परीक्षा की जाय। इसके लिये ईंट बनाने के एक नापके साचे लिये जावे। टेबल पर विभिन्न मिट्टियों से इनमें ईंट बना दी जाय। इन्हे छाया में ही सूखने दिया जाय और विद्यार्थी प्रतिदिन अवलोकन करे कितने और किस गति से उनमें मिट्टी सिकुडती है। सिकुडना बद हो जाने पर नाप कर सिकुडने का अनुपात निकाला जाय।

इस तरह के छोटे, सरल परन्तु वैज्ञानिक, प्रयोग उत्तर बुनियादी में आवश्यक हैं। इन प्रयोगो में काम में ली गयी मिट्टियो के नमूने सग्रहालय में रख लेना चाहिये। उनकी बोतलो पर प्रयोगो द्वारा प्राप्त फल लिखे रहे।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी विषयो पर अगले पत्र में और प्रकाश डालने का प्रयत्न करूगा।

आपका भाई
बनवारीलाल चौधरी

देवलाल अंबुलकर

बादलों का निरीक्षण

बादलों का निरीक्षण करने का अभ्यास इस माह में अच्छा हुआ। इसका समय मेरी कल्पना के अनुसार ३५ मिनिट से ज्यादा नही होगा। हमारा यह वर्ग उद्योग के समय या भोजन के बाद होता था। उसका निश्चित समय नही बताया जा सकता। उसको काफी बार दोहराया गया और निरीक्षण चलता ही रहा।

प्रश्न और उसके उत्तर निम्न प्रकार थे।

प्रश्न १. यह जो सफेद बादल दिखाई देते हैं, वे कैसे है? उनका नाम क्या है? कितने ऊंचाई पर होंगे?

उत्तर. यह बादल कपास के गट्ठे के जैसे दिखाई देते हैं। इसलिये इनका नाम है 'कुजर' (cumulus) बादल। वे साधारणतया १० से १२ हजार फीट ऊंचाई पर होते हैं। अभी लगातार वर्षा हुई और आज हम यह देख रहे हैं, इसका मतलब है वातावरण साफ हो रहा है।

प्रश्न २. सूर्यास्त के समय जो बादल दिखाई देते हैं जिनमें लाल किनारा सा दिखाई देता है, वे कौन से प्रकार के बादल हैं?

उत्तर: वे हैं (stratus) या पिच्छ बादल। वे जमीन के पास ही रहते हैं। इसलिये हरदम हम क्षितिज के पास ही उन्हे देख सकेंगे। उनसे ही कोहरा या पाला पडता है। जमीन से उनकी ऊंचाई बहुत कम है। ये वातावरण की स्थिरता बताते है। जलवायु ज्यों की त्यो रहेगी।

प्रश्न ३. वे तो वर्षा के बादल जैसे ही हैं? उनमें और वर्षा के बादल में क्या फरक है?

उत्तर: वर्षा के बादल (nimbus) हमारे ऊपर भी रहते हैं। वर्षा के बादलो की ऊंचाई पिच्छ बादल से कुछ ज्यादा होती है। वर्षा के बादल बहुत घने होते हैं। और उनकी ऊंचाई आधा मील तक रहती है। वह बादल जब जब हम देखेंगे तब हमारा अंदाज होगा कि निकट भविष्य में वर्षा होगी।

प्रश्न ४. देखिये, वह छोटा बादल, जो ऊपर है। कितना अच्छा है? वह कुजर बादल है न?

उत्तर नहीं। उसका अलग नाम है। उसे 'वितान' या (cirrus clouds) कहते हैं। वे तो पाच पाच मील तक या ज्यादा भी ऊँचाई पर हो सकते हैं। उनसे वर्षा होने का कोई डर नहीं।

प्रश्न ५. कुजर और इसमें क्या फरक है?

उत्तर: कुजर कुछ नीचे रहते हैं और वितान बहुत ऊपर के वातावरण मे रहते हैं। कुजर बादल सफेद घने और कपास के गट्ठे जैसे एक के ऊपर एक रखे हैं, इस प्रकार दिखाई पडते हैं। लेकिन यह वितान बहुत छोटे,

धुनाई के बाद जब कपास के कुछ तंतू बिखर जाते हैं; उस प्रकार दिखाई पडते हैं।

प्रश्न ६. इस बादल को क्या नाम देंगे? कुछ काला है और कुछ सफेद है। न तो इसे कुंजर कह सकते हैं न तो वर्षा के बादल?

उत्तर : यह तो संयुक्त बादल है। वर्षा, वितान, कुंजर, पिच्छ यह चार मुख्य प्रकार मिलकर संयुक्त बादल बन सकते हैं।

प्रश्न ७. ये कुछ बादल अपना आकार या स्वरूप इतनी जल्दी बदल देते हैं कि हम आश्चर्य में पड जाते हैं। ऐसा कैसे होता है?

उत्तर : ये जो बदल होते हैं उसका कारण है तूफान। इन बादलों में जोर से तूफान चलता है। इस तूफान की गति कभी १०० मील प्रति घंटा रहती है। इसमें से वायुयान यदि जायेंगे तो टूट जायेंगे। कभी-कभी यह गति बहुत कम भी रहती है। हवा भी बहती है। बादल को अपने साथ ले जाती है। यह भी एक कारण आकार बदलने का हो सकता है।

प्रश्न ८. बिजली कैसे पैदा होती है? कैसे गिरती है?

उत्तर : इसका तो स्वतंत्र वर्ग लेना चाहिये। यह प्रश्न मुझे वर्ग में याद दिलाना, फिर समझाऊंगा। अभी इतना ख्याल में रखो कि एक बादल दूसरे पर घिसता है तब बिजली चमकती है।

विद्यार्थी कार्य

विद्यार्थी निम्न प्रकार का लेखा अपने-अपने पास रखेंगे तो उससे बादलों के निरीक्षण का अभ्यास पक्का होने में सुविधा होगी। जैसेः–

आकाश की स्थिति

दिनांक	साफ या बादल मुक्त	बादल का प्रकार	वर्षा	तूफान	अंदाजा
१७.१०.६१	बादल मुक्त	कुंजर, शामको दिखाई पडे दिनभर साफ	. .	. .	बदल रहा है। रात में वर्षा होने की संभावना नहीं

इस लेखाको बढाया भी जा सकता है। हवा की दिशा भी देखने का अभ्यास हो सकता है। इसके लिये विद्यार्थी अपना-अपना पवन दिशा दर्शक यंत्र भी बना सकते हैं।

इसी लेखा के साथ बडे विद्यार्थी टेम्प्रेचर चार्ट्स् भी रख सकते है। दोनों लेखा देखकर 'अंदाजा' कुछ निश्चित कर सकते हैं। क्लोबाल्ट क्लोराईड नामक पदार्थ के विलयन में शोषक कागज़ भिगोकर उसे सुखानेपर उसका उपयोग भी वर्षा का अंदाजा लगाने में हो सकता है।

यह सब करने से विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति और अभिरुचि बढेगी।

कई भाषायें पढने पढाने का आसान ढंग

कुमारी रमारानी शर्मा

भारत में अनेक भाषायें है। प्रमुख १४ भाषायें तो शासनविधान में स्वीकार की गई है। इस समय की बहती हुई हवा से तो ऐसा लगता है कि प्रत्येक भारतीय को दो तीन भारतीय भाषायें सीखना अनिवार्य होगा। सिकुडती हुई दुनिया से सम्पर्क बनाये रखने के लिये दो एक विदेशी भाषायें भी जानना आवश्यक होगा। इस प्रकार प्रत्येक शिक्षित भारतीय को–शिक्षा भी शीघ्र ही अनिवार्य होगी–४,५ भाषायें सीखने को मजबूर होना पडेगा।

कई भाषाओ का सीखना हमें अभी अजीब सा लग रहा है, पर विदेशो में ऐसा हो रहा है और इस ढग से किया जा रहा है कि विद्यार्थियो को बोझ नही लगता तथा वह आसानी से उनमें निपुणता प्राप्त कर लेते है। पूर्वी योरोप के एक छोटे देश हगरी में भी कई विदेशी भाषायें सिखाने का कार्य हाल ही में शुरू किया गया है। वहा के रग ढग से-जिसे इस लेख में बताया गया है–पाठको को इस की अधिक जानकारी मिल सकेगी।

"जितनी भाषायें आप जानते है, उतनी ही अधिक आपकी कीमत है" यह हगरी में प्राय. कहा जाता है। यह बात सन् १९५० ई. से कही जाने लगी जब वहा के चुने हुये प्राईमरी स्कूलो के चार ऊचे दरजो में विदेशी भाषाओ का पढाना चालू किया गया। तब से कई भाषाओ का ज्ञान सभी सुसस्कृत स्त्री पुरुष के लिये आवश्यक हो गया है।

१० वर्ष से १४ वर्ष की आयु वाले बालको को विदेशी भाषायें पढाई जाती है और इन्हे पढाने के लिये काफी अध्यापक चाहिये होते है। हजारो अध्यापको ने विभिन्न भाषायें पढाने का ढग सीखना प्रारम्भ किया। विदेशी भाषाओं के अध्यापको की कमी को दूर करने के लिये अवकाशप्राप्त अध्यापक अेक बार फिर काम पर आ गये। रूस व जनवादी जर्मन गणतत्र से अनेक अध्यापक हगरी में विदेशी भाषाओ को पढाने का ढग अध्यापको को सिखाने के लिये आ गये और कितने ही हगेरियन अध्यापक विदेशी भाषाओ के अपने ज्ञान को सुधारने के लिये विदेश गये। इन जोरदार प्रयत्नो का फल यह हुआ कि इस समय ६,५०,००० विद्यार्थी रूसी भाषा सीख रहे है, जो अनिवार्य कर दी गई है। अन्य ७०,००० विद्यार्थी अग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषायें सीख रहे है।

सप्ताह में दो घन्टे अग्रेजी पढाई जाती है और तीन घन्टे रूसी भाषा। प्राइमरी स्कूलो में ४ वर्ष तक विदेशी भाषायें पढाने से बच्चे ५०० शब्द सीख जाते है (रूसी भाषा के १,०००)। इनके आधार पर यह उनको बोलने

वर्ष १० अंक ६ ★ दिसंबर १९६१

ज्ञान और तपस्या का संयोग

हमारे देश में समाज राजबल और तपोबल इन दो ही बलों को पहचानता है, और खास कर तपोबल की प्रतिष्ठा को वह विशेष मानता है। यह हमारे समाज की विशेषता है। मनुष्य जितना ही वासना के कम अधीन हो, उसका जीवन जितना सादा और संयत हो, उतनी ही उसकी तपस्या भी श्रेष्ठ है। स्वार्थ और विलास के मोहजाल से मनुष्य जितना ही मुक्त हो, उतना ही वह तपस्वी होता है। हमारे समाज की यही मान्यता है।

ज्ञान और तपस्या इन दोनों का संयोग ही ऐश्वर्य है। यह ऐश्वर्य हरेक शिक्षक के पास होना जरूरी है। पुरानी सामाजिक व्यवस्था, पुरानी आर्थिक व्यवस्था और पुरानी राजनीति अब काम नहीं दे सकती। इन तीनों विषयों मे समाज को नया रास्ता बतलाना ही होगा।······

भविष्य शिक्षकों के हाथ में है।

'वर्णानां ब्राम्हणो गुरु :'

इस पुराने स्मृति-वाक्य को नये सिरे से लिखो और कहो,

'प्रजानां शिक्षको गुरु :'

—काका कालेलकर

आचार्य विनोबा

शिक्षा के विषय में कुछ विचार*

आपसे मिलने का अवसर मिला, जिससे आनंद होता है। बुनियादी तालीम के विषय में कुछ बाते कहूगा, पर वह बाद में। अभी तो असम में जो देखा उससे जो सूझता है, कहूगा। छः महीने से ज्यादा असम में घूम रहा हू। अक्सर हाई-स्कूल में मेरा पडाव रहता है, नही तो डाक बगला या कही नामघर में भी और कभी किसी के खानगी घर में। तीनो चारो प्रकार से हमें तो लाभ ही लाभ मिला, जिससे असम का दर्शन हुआ। जब हाईस्कूल में पडाव रहा तब शिक्षको के साथ हमने चर्चा की। वे क्या पढाते है, बच्चो को कितना ग्रहण होता है, बच्चे कौन-सी चीज पसद करते हैं, यह सब सवाल उस चर्चा में आया। हम मानते हैं कि *जितना स्पष्ट और खुला जवाब हमें मिला* इतना किसी को नही मिलता होगा। आखिर शिक्षक तो नौकर होते हैं, इस वास्ते अपनी बात कुछ दबी जबान से कहने के आदी होते हैं, लेकिन यह अभ्यास मेरे लिये उन्होंने छोड दिया। उन्होंने समझा कि एक इनोसेन्ट' मनुष्य है, इसलिये कोई हर्ज नही। यह मेरा हमेशा अनुभव रहा कि सबने मुझे इनोसेन्ट माना। सिर्फ शिक्षक ने नही। पार्टी के बडे-बडे लोगो ने यह माना कि मेरे सामने कोई बात छिपती नही। मै पैदल घूमता हू तो रास्ते में वॉकिंग सेमिनार होते है। रोज कुछ न कुछ चर्चा चलती है और वह तो विश्व ज्ञान की चर्चा चलती है। शायद ही कोई विषय बाकी रहता है। हरेक को सवाल पूछने की आजादी मिलती है। समय की कैद नही होती, खुली हवा होती है और आकाश के नीचे उपनिषद् चर्चा चलती है। यह अपने देश की भाषा है, 'लेक्चर' यह आधुनिक भाषा है। उपनिषद् का अर्थ है नजदीक जाके बैठना और खुली हवा में चर्चा करना। ज्ञानी और जिज्ञासु इकट्ठा बैठते और बिना पर्दा रखे चर्चा चलती है। उसी को उपनिषद् कहते हैं। वॉकिंग के साथ टॉकिंग भी होता है। तो इन्स्पिरेशन रहता है, सुस्ती नही रहती। रुधि-राभिसरण चलता है। इसलिये दिमाग ताजा रहता है और आकाश के सपर्क से जो विचार सूझते हैं और किसी के सपर्क से नही सूझते। *इसलिये हमारी भाषा में यह शब्द है जो दूसरी* भाषा में नही है। वह है सुख—"सुखेन ख" जहा आकाश है वहा सुख है, ख याने आकाश। जहा सुखमय सुलभ आकाश है, वहां सुख है और जहां आकाश खुला नही वहा दु:ख है। इसलिये जितना शिक्षण हमने बच्चो को दिया वह सब का सब आकाश के नीचे दिया, हमने तीस साल यह काम किया। अभी तो लगातार मेहनत चल रहा है, काम तो हम कर चुके। उस वक्त तो छुट्टी नही ली थी, अब तो छुट्टी का सवाल ही नही है। यह आनन्द विहार है। उसमें कौन छुट्टी लेगा ? यह नित्यानन्द है, इसमें

*ता. २२-९-'६१ को असम बेसिक एजुकेशन कान्फरेन्स में दिये भाषण से।

दुहरा लाभ हमें मिलता है। एक तो बैठे-बैठे शिक्षको के साथ चर्चा होती है और रास्ते में घूमते समय चर्चा होती है। दोनो मिलकर काफी अच्छा ज्ञान मिलता है। कहना पडेगा कि देश का जितना सूक्ष्म ज्ञान अनुभव किया, वह ध्यान में रखकर कुछ बाते हम कहेंगे।

एक बात मैं कह दू। विदेशी भाषाओ का मैं आदर करता हू। हाई स्कूल में और कालेज में अंग्रेजी के साथ मैंने फ्रेंच भाषा सीखी। भूदान-यात्रा में एक जर्मन लडकी हमारे साथ थी, उससे मैंने जर्मन भाषा सीखी। जब पजाब में घूमते थे तब एसपेरेन्टो सिखाने के लिये युगोस्लाविया से एक भाई आये थे। जापान के भिक्षु दो महीने हमारी यात्रा में रहे थे। उनसे मैंने जापानी भाषा सीखी। यह इसलिये कह रहा हू कि मैं विदेशी भाषाओ की कदर करता हू। मैं मानता हू कि हिन्दुस्तान के शिक्षित लोगो को एक विदेशी भाषा सीखनी चाहिये। अभी मुझ से पूछा गया कि क्या आप अंग्रेजी में बोलेंगे तो मैंने ना कहा, लेकिन आपके मन में यह न रहे कि बाबा अंग्रेजी नही चाहता। हर चीज की मर्यादा होती है। आपके सामने में असमिया में बोल सकता तो मुझे बहुत खुशी होती। मैं रोज पढता हू कीर्तन घोषा, नाम-घोषा, बहुल व्याकरण, नूतन असमिया और डिक्शनरी भी जतुवा ठास भी पढता हू। फिर भी भाषण नही दे सकता, इसलिये मेरे हर वाक्य का अनुवाद अमलप्रभा करती है। तो उसका हिन्दी का क्लास होता है। और मेरे हर वाक्य का तर्जुमा मैं सुनता हू तो मेरा असमिया का क्लास होता है। इसमें थोडा समय जायेगा। लेकिन शिक्षक के नाते इतनी शिक्षा दी तो खाने का अधिकार मुझे मिलेगा।

अपना बहुत बडा देश है। उसमें अनेक भाषाएँ है। हमारे देश का यह भाग्य है कि अपने बच्चो को एक से अधिक भाषा सीखनी पडेगी। इसे हम दुर्भाग्य न माने, बल्कि यह हमारा गौरव है। दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जहा चौदह पद्रह विकसित भाषाएं है। इतना बडा चीन देश है। उसमें एक ही भाषा है। थोडा प्रातिक फर्क उसमें है। जैसे कामरूप और शिवसागर की असमिया कुछ तिब्बती भाषा है, लेकिन वह अविकसित है। रूस बहुत बडा देश है, लेकिन वहा मुख्य भाषा रूसी है और अन्य भाषाए गौण है। योरोप में हिंदुस्तान के समान विकसित भाषाएं है, लेकिन वहाँ एक भाषा का एक राष्ट्र बना है, जैसे डेनमार्क, नारवे। इन भाषाओं की लिपि एक है, इसलिये तो मैंने आसानी से जर्मन सीखा। योरोप के लोग तो एक दूसरे की भाषा पन्द्रह दिन में सीख सकेगे। हिंदुस्तान में भाषा के बारे में दगे हुए। एक विदेशी भाई के साथ मेरी बात हो रही थी। उन्होने कहा कि भाषा के लिये यहा जो दगे हुए उसका उन्हे दु ख है। मैंने कहा मुझे दुःख तो हुआ, लेकिन मेरे लिये यह अभिमान की चीज भी है। उसने पूछा क्यो? मैंने कहा यहा चौदह-पद्रह भाषाए हैं। १४–१५ भाषाए एक देश में रखने का प्रयोग हमने किया। उसमें झगडा हुआ तो क्या हुआ? आपके तो एक भाषा के राष्ट्र हैं। आपकी भाषाओ में झगडा होगा तो वह इटर नेशनल वॉर होगी। दो देशो के बीच दीवाल भी नही है। दो-दो महायुद्ध उसमें से निकले। आलसास और लोरान्स दो जिले, जर्मनी दावा करता था कि हमारे हैं और फ्रान्स भी दावा करता था कि हमारे हैं। इस-

लिये दो-दो महायुद्ध हुए। फ्रान्स और जर्मनी की लिपि और धर्म एक ही है। १५ दिन में जर्मन मनुष्य फ्रेन्च सीख सकता है और फ्रेन्च मनुष्य जर्मन। मैने फ्रेंच दस दिन में सीखी। फिर भी वहा की भाषाओ के लिये झगडे होगे तो उन्हे इंटरनेशनल वार कहा जायगा। हमारे यहा भाषाओ के लिये हुए झगडे को दगे कहते हैं। यह हमारा भाग्य है। उतनी अलग-अलग भाषाए हमारे साथ रही हैं, यह हमारा गौरव है। उसका अनुभव जब योरप को आयेगा, तब योरप का फेडरेशन बनेगा। तब मास्को से वोल्गा नदी का पानी घडे में भरके वेस्ट मिनिस्टर को नहलाने के लिये ले जायेंगे या तमसा नदी (टेम्स) का पानी लेकर लेनिन के स्मारक पर उसका अभिषेक करेगे। जैसे काशी की गगा का पानी लेकर रामेश्वर को अभिषेक करते हैं और रामेश्वर का पानी लेकर काशी में विश्वेश्वर को अभिषेक करते है। भारत की एकता के लिये यह सब किया जाता है।

मलबार के शकराचार्य ने कन्याकुमारी में जन्म पाया। अखिल भारत में यात्रा की। वे यहा भी आये थे, कामाक्षा के दर्शन के लिये। उन्होने यहा के वैष्णवो से चर्चा भी की थी। वे श्रीनगर में भी गये थे। उनकी समाधि कैलाश में है। उतना बडा अखिल भारत व्यक्तित्व था। असम के महाप्रभु शकरदेव बारह वर्ष भारत में घूमें व भारत दर्शन के लिये घूमें। जिसे आज (इमोशनल इंटीग्रेशन) भावात्मक एकता कहते हैं। उन्होने सस्कृत में एक भक्तिरत्नाकर नाम का ग्रथ लिखा है। उसमें भारतभाग्यप्रशसा नामक एक अध्याय है, उसमें सस्कृत के उद्धरण दिये हैं।

गायन्ति देवा: किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतजन्मभूमि।

इसका अर्थ है कि "आकाश में देवता गीत गाते हैं। धन्य हैं वे जो भारत में जन्म पाये हैं"। यह शकरदेव लिखते हैं, जो भारत के कोने में रहकर भारतभाग्यवर्णन करते हैं। भारत को अग्रेजो ने एक बनाया, इससे बडा कोई भ्रम नही है। हिन्दुस्तान एक नही होता तो अग्रेज उसके टुकडे कैसे करते? मैं अग्रेजो का द्वेष नही करता हूँ। लेकिन उनकी नीति थी टुकडे करने की-पाकिस्तान, हिंदुस्तान, ब्रह्मदेश जितने कर सकते, उतने टुकडे किये। राजा महाराजाओ को भी अलग रहने की सहूलियत दो, लेकिन यह भारत की महिमा है कि आजादी के बाद राजा-महाराजा अलग नही रहे। उसमें सरकार की कुशलता भी है। उनकी कितनी भी कुशलता हो, कोई राजा खडा हो सकता था, जो अलग रहने की कोशिश करता। अग्रेजो के कारण भारत एक होता तो यह नाटक कैसे होता? आज दुनिया में हम वही देखते है। कोरिया के दो टुकडे हुए हैं, जर्मनी के दो टुकडे हुए हैं। कटागा कट ही रहा है, और कोई समस्या हल नही हो रही है। जगह जगह ऐसी ही राजनीति चल रही है। शाति के लिए दो टुकडे किये जा रहे हैं। फिर दो के चार-चार के आठ और आठ के सोलह भी हो सकते हैं। ऐसा पराक्रम आज की राजनीति में हो रहा है। इसलिये यह भ्रम ही है कि भारत को अग्रेजो ने एक बनाया।

यह अलग बात है कि उन्होने हमें अग्रेजी सिखाई, उससे हमें आपस आपस में बात करने की सहूलियत होती है। भलाई के साथ बुराई और बुराई के साथ भलाई होती है। अन्मिक्सड

ईवल् नही होती है। लेकिन जब अंग्रेज आये तो उन्होंने इतिहास में यह लिखा कि उस वक्त हैदर और निजाम के बीच, सिन्धिया और भोसला के बीच, मराठे और हैदर के बीच सिविल वार (गृहयुद्ध) चल रहा था। अगर देश एक नही था तो सिविल वार क्यो कहा? उसे इंटरनेशनल वार (अतर्राष्ट्रीय युद्ध) क्यो नही कहा? मराठी और कन्नड, फ्रेन्च और जर्मन उन दोनो के बीच क्या फर्क है? यह फर्क है कि कोई भी मराठी कन्नड नही पढ सकता। फ्रेन्च और जर्मन की लिपि एक ही है, मराठी और कन्नड की लिपि अलग है। मराठी का मूल सस्कृत में है और कन्नड का द्राविड में। लेकिन जर्मनी और फ्रान्स दोनो के बीच लडाई होगी तो वह इटरनेशनल वार मानी जायेगी। कन्नड और मराठो के बीच लडाई हुई तो वह सिविल वार मानी जायेगी। उसमें मैं गौरव महसूस करता हू क्योंकि सारे देश को एक माना था। इसलिये हिंदुस्तान के शिक्षण में एक से अधिक भाषा सीखना हमारे लिये जरूरी है। यह भारत का भावनात्मक ऐक्य है।

एक नहीं, अनेक विदेशी भाषाएँ सीखें :

एक हाई स्कूल में हमने लडको से पूछा कि कौनसा विषय आपको प्रिय है, तो उन्होंने कहा असमिया। और कौनसा विषय अप्रिय है, यह पूछा तो कहा अंग्रेजी। सौ डेढ सौ विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्होंने यह जवाब दिया। एक दो ऐसे थे जिन्होने बताया कि हमें अंग्रेजी अच्छी लगती है। अब यह सोचने की बात है कि क्या हम बच्चो पर विदेश की भाषा लाद सकते हैं? यह बात ठीक है कि कुछ बच्चे विदेशी भाषा सीखते हैं, अच्छा है। अगर वह अंग्रेजी ही हो तो आप जाने अनजाने, इगलिश ब्लाक में रहेंगे और सदा सर्वदा अंग्रेजी पेपर और ग्रथ पढेंगे, तो हमारा दर्शन एकांगी होगा। इसलिये कुछ लोगो को अंग्रेजी सीखनी चाहिए, कुछ लोगो को फ्रेन्च भी सीखनी चाहिए। कुछ लोगो को चीनी और कुछ लोगो को जर्मन भी सीखनी चाहिये। ऐसा करेंगे तो दुनिया का सर्वांग दर्शन होगा। और आप केवल अंग्रेजी ही पढेंगे तो, अंग्रेजी के चश्में से ही दुनिया का ज्ञान आपको मिलेगा। इसलिये आप एक नही अनेक विदेशी भाषायें सीखें। अब यह ठीक है कि अनेक कारणो से अंग्रेजी ही ज्यादा पढी जायेगी। क्योंकि विदेश में भी ज्यादा लोग अंग्रेजी जानते हैं और यहा आज तक अंग्रेजी चली आई है। तो ज्यादा लोग अंग्रेजी ही पढेंगे लेकिन मेरा आग्रह है कि कुछ प्रतिशत दूसरी भाषा का भी होना चाहिए।

हमने माना है कि बेसिक स्कूल आठ साल का होगा। अब आठ वर्ष तालीम पाने के बाद कितने बच्चे उपर की तालीम लेगे? और आठ साल में खास अच्छी अंग्रजी तो नही आवेगी। इसके अलावा अंग्रेजी पर ज्यादा जोर देने के कारण असमिया कच्ची रहेगी। उसे पूरा समय नही दे पायेंगे। असमिया के लिये हफ्ते में छ पीरियड होते हैं और अंग्रेजी के आठ-दस होते है। हिन्दी के तीन या चार पीरियड रहते हैं। सस्कृत के चार या पाच होते हैं। कुछ बच्चे अरबी लेते हैं। सस्कृत के बदले अरबी के पीरियड होते है। अब आजाद भारत का लडका, जिसे ज्यादा उच्च शिक्षण नही लेना है, वह आठ साल के बाद गाव में काम में लग जायेगा। ऐसे बच्चे के सिर पर आपने नाहक अंग्रेजी लादी है। वह तो उसे भूल ही जायगा, न भूले

तो आश्चर्य है। हमने अच्छी अंग्रेजी सीखी क्योंकि जब हम हाई स्कूल में पढते थे, तो हमें अंग्रेजी में ही शिक्षण मिला। हमारे गुरुजी की और हमारी मातृभाषा एक ही थी–मराठी। लेकिन कक्षा में प्रवेश करते समय "मे आई कम इन, सर"–क्या में अन्दर आ सकता हूं–इस तरह अंग्रेजी में पूछना पडता था, मराठी में नही पूछ सकते थे। हाई स्कूल में कदम रखने के बाद अंग्रेजी न बोलना पाप था, चाहे भूगोल सीखना हो, चाहे गणित, कोई शंका पूछनी हो तो सवाल अंग्रेजी में बनाकर पूछना पडता था। अंग्रेजी में नही बना सके तो शंका मन की मन में ही रही। इतना जहा अंग्रेजी का जोर था वहां खाना–पीना, सोना, यहा तक कि स्वप्न भी अंग्रेजी ही में आते थे। साइन पोस्ट अंग्रेजी में, माइल स्टोन अंग्रेजी में। ऐसे जहा तहा परब्रह्म होता है वैसी अंग्रेजी थी, इतना अंग्रेजी का वातावरण उस वक्त था। अब हम आजाद भारत में हैं, तो अंग्रेजी का वातावरण वैसे ही बना रखना है तो क्विट इंडिया–भारत-छोडो–के बदले रिटर्न इंडिया भारत में लौट आओ कहना होगा। आप गलत फहमी न होने दीजिये। मैं चाहता हूं कि लडके अंग्रेजी सीखें और खूब अच्छी तरह सीखें। या तो बिलकुल न सीखें या खूब अच्छी तरह सीखें। हरेक को अंग्रेजी का "डोज" कोई काम का नही है। इसलिये मैं कहूंगा कि पहले सात आठ साल में बेसिक शिक्षा सारे भारत में चले तो उसमें अंग्रेजी न सिखावें।

अमेरिका के एक मानस-शास्त्रज्ञ ने कहा है कि बचपन म मनुष्य ज्यादा जल्दी सीखता है। चार-पाच भाषायें सीख लेता। मुझे भी अनुभव है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मेरी विशेषता यह है कि जिन विषयों का मुझे ज्ञान नही है, इसका भान मुझे रहता है। याने मेरे अज्ञान का ज्ञान मुझे है। मैं हर विषय में नही बोलता हूं, क्योंकि मैं अखबार का एडिटर नही हू, इसलिये हर विषय का ज्ञान नही रखता। लेकिन मैं जानता हूं कि बचपन में मेरी स्मरणशक्ति अच्छी थी। आज भी अच्छी ही है। मेरी मां तारीफ करती थी कि तीन दिन में विन्या संस्कृत सध्या सीखा। और पडोसियो को मेरी मा बार-बार यह बताती थी कि हमारा विन्या तीन दिन में सस्कृत सध्या सीखा। मैंने एक दिन उससे पूछा कि तू एक बात जानती है, कि मैं तीन दिन में सस्कृत सध्या सीखा, लेकिन तुम यह नही जानती हो कि चार दिन में मैं वह भूल भी गया। यह दूसरी बात वह नही जानती थी। यह बच्चो की बात है कि वह तीन दिन में सीखता है और चार दिन में भूल सकता है।

उस मानसशास्त्री से पूछना चाहिये कि आठ नौ साल में अंग्रेजी सीखी, लेकिन वह कीप–अप कैसे करेंगे ? मनुष्य को सतत आदत रहती है तो मनुष्य भूलता नही, आदत नही रही तो मनुष्य भूल जाता है। जैसे वड्सवर्थ ने लिखा है कि "गेटिंग एण्ड स्पेंडिंग वी ले वेस्ट अवर पावर"। बचपन में बच्चे भाषा सीखते हैं, तो वह प्रत्यक्ष सवाद से सीखते हैं। मा से बात करते हुए मां की मुखाकृति देख कर वह कैसे बोलती है, एकाग्रचित्त से देखकर उसी पद्धति से बच्चे सीखते है।

अंग्रेजी भाषा इंग्लैंड के बच्चे व्याकरण पूर्वक नही सीखते हैं। वे डायरेक्ट पद्धति से सीखते है। लेकिन वह वातावरण यहां कैसे होगा ?

इसलिये यहां तो बच्चों को व्याकरण द्वारा सीखना होगा। इसके लिये पहले मातृभाषा के व्याकरण का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। मैंने असमिया व्याकरण तीन दिन में सीखा। उसका कुछ भाग मराठी व्याकरण के नजदीक है। वह जल्दी हजम हो जायेगा। वह सीखते समय मराठी व्याकरण मुझे याद आता था। ख्याल कीजिये मैं अभी असमिया सीख रहा हूं। उसी के साथ-साथ संस्कृत,हिन्दी सीखू और हर जगह कर्ता, कर्म, क्रियापद आयेगा और मैं न अपनी भाषा का व्याकरण जानू, न दूसरी भाषा तो मेरा ज्ञान कच्चा ही रहेगा, ऐसा कच्चा ज्ञानवान लडका कोई भी भाषा अच्छी तरह कैसे लिखेगा? इस वास्ते अच्छी अंग्रेजी सीखना चाहते है तो आठ साल के बाद सिखाइये और तब तक मातृभाषा अच्छी सिखाइये तो बच्चे दो तीन साल में अंग्रेजी सीखेंगे। मातृभाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा भी सीखनी चाहिए।

यहां जो विभाग पड गया है कि कुछ लडके लेते है संस्कृत और कुछ अरबी यह योग्य नही है, ऐसा मैं मानता हूं। जो लडके संस्कृत और अरबी सीखेंगे क्या वे भागवत और कुरान पढनेवाले है? उसके लिए तो काफी अध्ययन करना होगा। आज कल तो ये दो टुकडे होते है, एक टुकडा संस्कृत और दूसरा अरबी क्योंकि सेक्यूलर स्टेट में इन भाषाओ की तरफ रिलीजन की दृष्टि से देखते है। इसका नतीजा क्या होता है? बच्चे संस्कृत अच्छी तरह से तो नही जानते है तो भागवत नही पढ सकेंगे। अलावा जो संस्कृत नही जानेंगे वे असमी में कमजोर रहेंगे। कुछ ऐसे शब्द होते है जो संस्कृत जाने बगैर नही समझेंगे। कृतप्रकरण, समासप्रकरण अगर यह ज्ञान लडकों को नही होगा तो विषमता आयेगी, याने वे संस्कृत नही जानेगें और जो संस्कृत लेंगें वे उत्तम संस्कृत तो नही सीखेंगे, पर संस्कृत नही सीखेंगे तो असमी में कमजोर रहेंगे। संस्कृत रचना असम में कैसे आती है, यह समझना होगा। जैसे "योग" धातु से प्रयोग, सयोग, वियोग, अभियोग, उद्योग, यह शब्द कैसे बनते है? उसी तरह से "युक्त" से प्रयुक्त, संयुक्त, वियुक्त, अभियुक्त, उद्युक्त ऐसे बहुत शब्द है। यह सब संस्कृत के बिना नहीं समझ सकेगें। इसलिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। और हिन्दी का तो है ही। इसलिए शिक्षण क्रम में इनको अधिक पीरीयड्स देने चाहिए।

गणित का महत्व :

भाषा के विषय में मुझे इतना ही कहना है। एक बात मैंने देखी। यहां बच्चे ज्यादातर गणित पसद नही करते। उनकी अरुचि के ये दो विषय है। गणित अप्रिय है, यह मैं सोचता हूं कि खतरनाक है। गणित के बिना सायन्स में प्रवेश नहीं होगा, व्यापार नही कर सकेंगे, और गणित के बिना कोआपरेटिव भी नही हो सकेगा। भारत का मेरा जो निरीक्षण है, उस पर से मै यह कह सकता हू कि भारत में साहित्यिकता महत्व का नही है जितना गणित महत्व का है। गणित के बिना हिसाब नही आयेगी और फिर कोआपरेटिव चलेगा तो मन में यह शका रहेगी कि न मालूम मैनेजर कुछ खाता भी होगा। इसलिए यह आज की न्यूनतम आवश्यकता है कि सबको गणित सिखाया जाय। गणित से मनुष्य का दिमाग साफ रहता है। हिसाब अव्यवस्थित नही होता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि बच्चों

गणित सिखाया ही जाय। तो असम की बहुत बडी समस्या हल होगी।

साक्षरता बढी तो बेकारी भी बढी :

समस्या हल के लिए ही गाधीजी ने बेसिक अेज्युकेशन निकाली। समस्या क्या है? साक्षरता बढी तो साथ-साथ बेकारी भी बढी। इसलिए बापू ने ज्ञान के साथ-साथ कर्म को जोड दिया था। बेसिक अेज्यूकेशन में सूत कातने के उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योग जोडे थे। कर्म ज्ञान से ओतप्रोत हो, तो बेकारी नही रहेगी, यह उनका कहना था। सिर्फ साक्षरता बढेगी तो लोग बेकार होगें और साक्षरता नही होगी तो लोग अज्ञान रहेगें। आज ऐसी भयानक अवस्था है। इसलिए लडके और लडकियो के जीवन में उद्योग और ज्ञान का मिश्रण होना चाहिए। सिर्फ उद्योग सीखें और ज्ञान न हो तो कर्म जड होगा। कर्म के बिना केवल ज्ञान निष्क्रिय, निर्जीव बनेगा। इसलिए दोनो एक दूसरे में ओत-प्रोत होने चाहिए। ऐसा नही हुआ तो जितनी साक्षरता बढेगी उतनी बेकारी बढेगी, समस्या बढेगी। कल आपके मन्त्री ने बताया कि लिटरेसो में असम का चौथा नबर है। लेकिन जितने शिक्षित बढेगें उतनी ही बेकारी बढेगी, समस्या भयानक होगी। इसका इलाज क्या होगा? जैसे भगवान कृष्ण ने एक बाजू हाथ में रथ के घोडे की लगाम पकडी थी और दूसरी और गीता का बोध दिया। उसी तरह ज्ञान और कर्म का समवाय होना चाहिये।

शिक्षक अचेतन के शिक्षक :

आजकल क्या होता है। शिक्षक बच्चो के शिक्षक नही होते, विषयो के शिक्षक होते है। गणित भूगोल के शिक्षक होते हैं, अचेतन के शिक्षक होते हैं। सामने जो चेतन खडा है उसकी ओर ध्यान नही जाता है। रोज रोज कॉल लेते हैं। फलाना लडका गैर-हाजिर है तो "सिक" लिख दिया। उससे ज्यादा अपना कोई कर्तव्य है, यह वे नही मानते हैं। अगर आपको मालूम हो गया कि बच्चा क्यो गैरहाजिर है–आपको पूछना चाहिये, अगर वह बीमार है तो आपको बच्चे के घर जाना चाहिये, पूछना चाहिये, क्या बीमारी है, क्या इलाज कर रहा है, क्या खा रहा है, इलाज की कोई योजना है या नही? अगर नही है तो गाव के जरिये वह करानी चाहिये। हम समझते है कि यह शिक्षको का कर्तव्य है, अन्यथा शिक्षक भूगोल इतिहास के ही शिक्षक होगे। इतना ही नही, क्लास में बच्चो को वह बताना चाहिये। उनकी सहानुभूति उसके लिये हासिल करनी चाहिये, इतना भी काफी नही, क्लास में उस बीमारी का विषय सिखाना चाहिये, उसका भी एक सायन्स है। वह बीमारी कैसे होती है? यह चर्चा क्लास में होनी चाहिये, तो ऐसी अद्भुत तालीम होगी कि लडके की बीमारी भी ज्ञान का साधन होगी। और आरोग्य की चर्चा उससे होगी। अगर यह हुआ तो हम समझेंगे कि यह बेसिक एजूकेशन है। लेकिन शिक्षक बिलकुल अलिप्त होते हैं। भगवान इतने अलिप्त थे लेकिन जब मौका आया, तब अर्जुन की रक्षा के लिये उन्होने हाथ में चक्र उठाया.... इतनी उनकी आसक्ति थी। वे सिखाते थे अनासक्ति, पर उनमें भी इतनी आसक्ति थी।

हजार-हजार लडके शिक्षको के हाथो से शिक्षा पाकर जाते है। लेकिन कोई व्यक्तिगत

समस्या होती है तो वे बाप की, मां की या मित्र की, यहां तक कि नेता की भी सलाह लेते हैं। कहते हैं कि मीराबाई पर कोई प्रसंग आया, तो उन्होंने तुलसीदासजी की सलाह ली थी। लेकिन आपने कभी यह नहीं देखा होगा कि आज विद्यार्थी ऐसी सलाह के लिये जीवन का कोई प्रश्न लेकर शिक्षक के पास पहुंचता है। वे सिर्फ गणित और भूगोल या दूसरे विषय की कठिनाई पूछते हैं। गुरु भी कैसे होते हैं? एक दफा एक शिक्षक रास्ते से जा रहे थे। किसी ने उनसे पूछा "स्टेशन कहां है"? शिक्षक ने जबाब दिया "मैं गणित का शिक्षक हूं, भूगोल मेरा विषय नहीं है"। इस तरह से शिक्षक या प्रोफेसर एकांगी होता है–एकांगी, एकाग्र इतना एकांत भक्त होता है। जरा यह एकांगी भक्ति कम करो, सर्वांगीण भक्ति करो, बच्चों के जीवन के साथ अपने जीवन का संपर्क करो। शिक्षा में यह कमी है, उसका विचार होना चाहिए।

आज तक हमने साइन्स पर जोर नहीं दिया। इसलिये हम खतरे में हैं, बहुत बड़े-बड़े यंत्र उद्योग हमें खड़े नहीं करने हैं, लेकिन सृष्टि-विद्या का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। इसलिये वह विषय ऐसी कुशलता से सीखना चाहिये। भाषा का प्रेम पैदा होगा तब साहित्य बढ़ेगा। कुशल साहित्य बच्चे पढ़ेंगे लेकिन साइन्स पढ़ाना होगा और साइंटिफिक वृत्ति बढ़ानी होगी।

धर्म और आध्यात्मिकता :

हमारी है सेक्यूलर स्टेट। उसके अर्थ को हम ठीक समझते नहीं। परिणाम यह होता है कि जिन महापुरुषों का असर प्रत्येक भारतीय के मन पर होता है और आज भी गांव गांव के लोगों को जिनके जीवन प्रेरित करते हैं, उनके विचारों से हम बच्चों को वंचित रखते हैं, वह ऐसे डर से कि यह धार्मिक शिक्षा है। आपको इसका ख्याल रखना होगा कि हमारे बेसिक एजूकेशन में आध्यात्मिक किताबें हों। आप तुलसी रामायण, कबीर, नानक को छोड़ेंगे तो क्या होगा? इनके साहित्य में अध्यात्म ज्यादा है। इनका साहित्य पढ़ने से हमारी भाषा भी संपन्न होगी। इसलिए सेक्यूलर स्टेट का भय रखने की जरूरत नहीं। यह आवश्यक है।

एक जमाने में रिलीजन की आवश्यकता थी। व्यक्तिगत स्थैर्य के लिये, लोगों को जोड़ने के लिये, उनको इकट्ठा करने का काम रिलीजन ने किया, लेकिन आज जो रिलीजन है वह तोड़ता है, एक जमाने में उसने जोड़ने का काम किया। इसलिये हमने यह निश्चित रूप से जाहिर किया है कि रिलीजन को जाना है–उसकी जगह स्प्रीचुएलिटी लेगी। वह गायडिंग फेक्टर होगा। विज्ञान और अध्यात्म दोनों मिलकर पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा।

धर्म और आध्यात्मिकता एक है यह ध्यान में लाना होगा। "नामघोषा" में रिलीजन का अंश कम है, स्प्रीचुएलिटी ज्यादा है। इसी तरह से गीता, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति में भी रिलीजन का अंश कम है और स्प्रीचुएलिटी का अंश ज्यादा है। इसलिये हमें विवेक करना होगा। आध्यात्मिक साहित्य लेना होगा। रिलीजन जायेगा। स्प्रीचुएलिटी रहेगी। राजनीति भी एक जमाने में जोड़ने का काम करती थी, वह आज तोड़ने का काम कर रही है। वह भी जायेगी और उसकी जगह साइन्स याने विज्ञान लेगा।

शिक्षण में ये बातें आनी चाहिये।

दादा धर्माधिकारी

शिक्षक की भूमिका*

"पोथी पंडित"

आज इस अवसर पर आप लोगों से शिक्षक की भूमिका के विषय में कहना चाहता हूं। विनोबा ने एक दफा शिक्षकों से भाषण करते हुए कहा कि अंग्रेजी में पढ़ने के लिए एक शब्द है और पढ़ाने के लिए दूसरा। पढ़ने के लिऐ "लेर्न" शब्द है, पढाने के लिए "टीच" है। लेकिन इस देश की भाषाओं में सीखना और सिखाना एक ही धातु से आया है। शिक्षण लेना और पाना, अध्ययन और अध्यापन एक ही धातु से आया है। यह एक ही प्रक्रिया है। जो सीखता है, सिखाता भी है। आज अलग-अलग प्रक्रिया है। जब तक विद्यार्थी है, सीखता है। जब शिक्षक बन जाता है, सीखना बन्द कर देता है।

आज शिक्षक का ज्ञान किताब से बाहर नहीं गया है। पुराने जमाने का पंडित उतनी ही बात जानता था जितनी किताब में थी, किताब में प्रमाण मिलता था, वह व्यवस्था देता था। पुराने जमाने का शास्त्री "पोथी पंडित" होता था। आज का शिक्षक पुराने पोथी-पंचांग वाले ज्योतिषी या जोशी की तरह हो गया है। इसका परिणाम यह हो गया है कि काम तो उसका सब से महत्वपूर्ण है, पर प्रतिष्ठा सब से कम है। जैसे पुराने जमाने के मंदिर का पुजारी है, उसी प्रकार विद्या के मंदिर में बैठा हुआ शिक्षक भी है। राजा से लेकर रंक तक के बेटे जिसके पास जाते है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा सबसे कम है।

इस परिस्थिति को कौन बदलेगा? मजदूरों ने कह दिया है कि अपनी परिस्थिति को हम बदलेंगे। किसानो ने भी यही कह दिया है। परन्तु शिक्षक यह नही कह पाया है कि अपनी परिस्थिति को मैं बदलूंगा। जहां कहीं भी है, वहा उसने किसान और मजदूर का अनुकरण किया है। अपने साधनों से अपनी परिस्थिति बदलने की बात नही कही।

स्कूल बनाम जेलखाना :

विद्या के क्षेत्र में साधन क्या है? निशानी क्या हो? मनुष्यों के पेशो की भी निशानियां होती है। राजा की निशानी राजदण्ड है। सिपाही की निशानी तलवार है। पंडित की पोथी है। साहूकार की तिजोरी और व्यापारी की तराजू है। इसी प्रकार शिक्षक की निशानी क्या है? किसी स्कूल के लड़के से पूछा जावे तो वह बतावेगा कि पहले छड़ी थी, अब दण्ड है। तो पुलिस के सिपाही की निशानी में और शिक्षक में क्या फर्क है?

रस्किन का एक वाक्य है कि 'दो जेलखाने बन्द करने हो तो एक स्कूल खोलो'। अगर आज रस्किन दुनिया में आ जावे तो वह कहेगा, चार जेलखाने चलाने हो तो दो स्कूल

* गोचर (उत्तराखण्ड) में १-१०-'६१ को दीक्षण विद्यालय के छात्राध्यापकों के बीच दिया गया प्रवचन।

खोलो। यह क्यों कहेगा? जब मैं संविधान परिषद् का मेंबर था तो मैंने इस पक्ष में वोट दिया कि हर बालिग को वोट देने का अधिकार हो। मेरे एक साथी ने कहा, इस देश में जहां अधिकांश लोग निरक्षर हैं उस अधिकार का दुरुपयोग भी हो सकता है। परन्तु हम आज पूछते हैं कि स्कूल और कालेज के लड़कों के यूनियन के चुनावों में, यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर के चुनावों में ज्यादा भ्रष्टाचार होते हैं या किसानों के चुनाव में? जितने भ्रष्टाचार और चालबाजियां लड़कों की परीक्षा में होती उतनी काले बाजार में भी नहीं होती। स्कूलों का आरंभ इस लिए हुआ था कि जेलखाने बंद हो जावें पर अब स्कूल ही जेलखाने बन गये हैं।

जब साधारण मनुष्य मुझसे बाजार में कहता है कि इसके लिए सरकार जिम्मेदार है, मैं मान लेता हूं। पर जब शिक्षक कहता है तो मैं हैरान रह जाता हूं। इसलिए तू तो बैठा है जिसके हाथ में सारी अगली पीढ़ी है। परन्तु शिक्षक में यह कहने की हिम्मत नहीं कि वह पुरुषार्थ मैं कर सकता हूं, सत्ताधारी और सिपाही नहीं। शिक्षक जो कहेगा, लड़का मानेगा। सनातनी मनुष्य वेद को जितना प्रमाण मानता है, उतना लड़का शिक्षक को मानता है। इतनी प्रमाण बुद्धि शिक्षक के लिए है। वह पिता है, दार्शनिक है, तत्वज्ञ है, अभिभावक है, पालक है और अंत में आज तो प्रहरी पुलिस मेन भी है। इतनी सारी हैसियतें एक ही व्यक्ति में पुंजीभूत हो गई हों, वह सिवाय शिक्षक के किसी में नहीं है। अब यह शिक्षक अपने को मजदूर मानता है, क्योंकि उसने विद्या को व्यवसाय माना है, व्यसन नहीं। व्यसन का दूसरा अर्थ है शौक की चीज। विद्या का अध्ययन शिक्षक के लिए व्यसन नहीं है। इसलिए जिसका जो पेशा हो जाता है, उससे वह हमेशा छुट्टी चाहता है। हमारे पिताजी जज थे। इतवार के दिन हमेशा भोजन बनाते थे। मैंने पूछा "क्यों बनाते हैं"? उत्तर मिला "शौक का काम है। छः दिन लिखते हैं। एक दिन शौक का काम कर लेता हूं।" और मां जो रोज रसोई बनाती थी, उसके लिये वह छुट्टी का दिन होता था। माता जी चिट्ठियां लिखने बैठ जाती थी। यह उनका मनोरंजन का कार्यक्रम होता था।

आप किसी विद्यार्थी से पूछिए, वह क्या करता है? विद्या के सिवा सब कुछ करता है। वह उसका पेशा हो जाता है, उसकी अभिरुचि का विषय नहीं रह जाता। एक दिन किसी ने मुझसे पूछा कि ताज महल देखने लड़के न जावें, इसके लिए क्या करें? मैंने कहा "इसको स्कूल बना दो। कोई इसे देखने नहीं जावेगा। कभी जला भी देंगे"

शिक्षण और शासन :

शिक्षण और शासन में अंतर है। शिक्षण में शासन का जितना प्रवेश होता है, उतना ही शिक्षण कलुषित होता है। शासन में जितना शिक्षण का प्रवेश होगा, वह उतना उन्नत होगा? यह कौन करेगा? आप करेंगे। शिक्षा में जितना दण्ड का प्रवेश होगा, उतना विद्या-देवी के मंदिर में विद्या का प्रवेश कम होता जाता है। आज सारे शिक्षक और सारे विद्यापीठ सत्ताभिमुख होते जा रहे हैं। सत्ता-भिमुख का मतलब है डंडाभिमुख। शिक्षण हुकूमत की तरफ जितना देखता जावेगा, वह सजा और शासन को बढ़ावेगा।

कम होता जावेगा। फिर हम सोचते रहेंगे समस्याओं को कि विद्यार्थिओं में क्यों उच्छृंखलता आई? शिक्षक क्यों अपने पैरों को ठीक नहीं समझता?

सुकरात ने अपने अंतिम भाषण में एथेंस के नागरिकों से पूछा कि अगर तुमने ५०० रु का घोड़ा खरीदा है और उसे सिखाने के लिए एक सईस रखना है तो क्या करोगे? किसी ऐरे गैरे को तो सईस नहीं रखोगे न। जो अश्वविद्या में प्रवीण हो उसे रखोगे। बालक के पहले शिक्षक उसके मा-बाप हैं, परन्तु उन्हें बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का भान नहीं। "दे हैव बिकम पैरेन्ट्स इन फिट आफ माइंड"। पालक की जहां यह स्थिति है, वहां जब हम शिक्षण की भूमिका का विचार करते हैं तो इस नतीजे पर आते हैं कि शिक्षण को शिक्षक बदलेंगे। राज्य उसे राज्यानुकूल बनावेगा। जिस पार्टी का राज्य होगा, उसी पार्टी के अनुकूल शिक्षण होगा। यदि सफेद टोपी वालों का होगा, तो सब के सिर पर सफद टोपी होगी। लाल टोपी वाला का होगा, लाल ही लाल टोपियां दिखाई देंगी और अगर किसी टोपी वाले का नहीं होगा तो सबके सिर में भूसा ही रहेगा।

शिक्षक में आत्मप्रत्यय होना चाहिए, वह सिपाही से ज्यादा हो, ख्रुश्चेव, आइक, माओ से भी ज्यादा होना चाहिए। राजनीतिज्ञ के लिए शिक्षण प्रचार का साधन है, मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास का साधन नहीं है।

शिक्षक की संस्कृति :

हम सबके पेट है तो क्या शिक्षकों के पेट नहीं है? लेकिन पेट भरने और भूख प्रकट करने का हरएक का तरीका उसकी संस्कृति के अनुकूल होता है। एक गंवार पति को भूख लगती है तो स्त्री को गाली देता है। थोड़ी देर से भोजन मिला तो थाली पटक देता है। हमारे पिता जी दफ्तर से आये। बहुत भूखे हैं, तो क्या थाली पटक थोड़े ही देंगे? भूख प्रकट करने का दोनों का तरीका अपने अनुकूल है। क्या शिक्षकों का कोई अपना तरीका है?

इन मूल्यों को कौन बदलेगा? शिक्षक अगर समझता है कि सामाजिक मूल्यों का परिवर्तन राजा, सिपाही और संत करेगा, तो नहीं होगा। सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा शिक्षक करेगा, संत नहीं। संत चमत्कार कर सकता है। शिक्षक चमत्कार नहीं कर सकता है। कौन सा विद्या-प्रेमी मनुष्य चमत्कार को स्वीकार करेगा? विद्या चमत्कार को सह नहीं सकती, जैसे दण्ड और शासन को नहीं सह सकती है। विद्या इन सब से श्रेष्ठ है, इसलिए उसमें गवेषणा है, खोज है, अनुसंधान है और उसमें अखण्ड आनंद है। इसलिए मैंने इसे व्यसन कहा है। इसकी आज आवश्यकता है शिक्षकों के जीवन में, और सबसे बड़ी है आप गांव के शिक्षकों के जीवन में-क्योंकि आप बुनियाद हैं।

आज तक गांवों में तीन पापग्रह रहे हैं- शिक्षक पटवारी और पटेल और चौथा रहा है ग्राम जोशी। जितने जाली दस्तावेज तैयार करने होते थे, यह चौकड़ी मिलकर करती थी। लेकिन इसमें एक आशा का स्थान है। क्योंकि जो बुराई कर सकता है, वह भलाई भी कर सकता है। शिक्षक में अपार शक्ति है। वह बिगाड़ सकता है तो बना भी सकता है। यह सब से बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम है।

आपको तनख्वाहों के लिए झगड़ा करना है, संविधान लेना है, शौक से कीजिए। लेकिन

शिक्षकों की शान समाज में समाप्त हो, इस तरह की किसी मर्यादा का भंग आपसे नहीं होना चाहिए। कुलीन स्त्री और गणिका दोनों संघर्ष कर सकती हैं, पर दोनों के तरीके भिन्न हैं, शिक्षक की एक मर्यादा है, उसके विकार में भी संस्कृति प्रकट होती है। गुस्से में उसकी संस्कृति पहिचानी जाती है।

शिक्षक कलाकार होता है, उसके हृदय में एक सुन्दरता होती है। जिसने ताजमहल बनाया होगा, उसने जिस धन्यता का अनुभव किया होगा, वह शाहजहां नहीं कर सकता था, क्योंकि उसने तो ताज मुमताजमहल के लिए बनाया था। कारीगर ने अपने संतोष के लिए बनाया था। जो कारीगर होता हैं, उसका एक आत्मसमाधान होता है। आत्मा का प्रसाद मनुष्य को अपनी वृत्ति में स मिलता है। विद्या शिक्षक का व्यसन भी है, वृत्ति भी है। जो व्यवसाय होता है, उससे वृत्ति बनती है। आज शिक्षक को वृत्ति का उसके व्यवसाय के साथ कोई अनुभव नहीं। मैं एक वैज्ञानिक सत्य आपके सामने रख रहा हूं। जो व्यवसाय हो, उसके अनुकूल वृत्ति होनी चाहिए, तब उसमें से आत्म प्रसाद मिलता है।

गुणों का विकास करे:

यह विज्ञान का युग है और लोग यह कहते हैं कि आज अणुयुग है। अणु युग का अर्थ यह मानता हूं कि आकार में शक्ति नहीं है, मात्रा में है। दवा जितनी गुणकारी होगी, मात्रा में उतनी कम होगी। गुण जितना अधिक होता है, परिमाण उतना कम होता है। अणु में जितनी शक्ति होगी, आकार में उतना कम होगा। विद्या की श्रद्धा गुण में होती है, आकार में नहीं। इसलिए मुझे इस बात की चिंता नहीं है कि कितने शिक्षक ऐसे होंगे? दो चार ही ऐसे निकलें। आपको इतिहास में यह देख कर गौरव महसूस होगा कि दुनियां में और इस देश में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्ति अपने जीवन के आरंभ में शिक्षक रहे हैं और उन विभूतियों ने सारे देश की शक्ल बदल दी।

पेट है, पर पेट के लिए झुकेंगे नहीं। यह तय करें। रोहिताश्व की कहानी आपने सुनी होगी। हरिश्चन्द्र डोम के नौकर थे। तारामती साहूकार के यहां नौकरी करती थी, पर रोटी साहूकार की नहीं खाती थी। हरिश्चन्द्र की कमाई ही खाती थी। हरिश्चन्द्र को दो रोटियां मिलती थी। इनमें से एक रोहिताश्व को देते, आधा स्वयं खाते और आधा तारामती को देते। एक दिन ऐसी नौबत आई कि दो रोटियों के लिए भी जवाब मिल गया। अंतिम दो रोटियाँ भी समाप्त हो गई। अपने आप तो रह सकते थे, पर रोहिताश्व का क्या हो? रोहित ने सुना तो कहने लगा "पिता जी, जिस रोहिताश्व का पेट आपकी सत्यनिष्ठा को डावांडोल कर सकता है, उस पेट को फेंक रहा हूं।"

मित्रों, वह देश स्वतंत्र रहता है, जिस देश के नवयुवकों में पेट फेंक देने की ताकत होती है। देश में हरएक को रोजगार चाहिए, यह संयोजन सबको मिलकर करना है। अवसर आने पर हरएक को पेट फेंक देना है। सती का बाना हर प्रतिष्ठित नागरिक का बाना है। शिक्षक की यह मर्यादा हो कि इज्जत के लिए पेट फेंक देंगे। शिक्षकों में मुट्ठी भर शिक्षक भी ऐसे निकल जावे, तो इस देश में शिक्षण के सुधार के लिए कोई सत्याग्रह नहीं करना पड़ेगा। शिक्षण के क्षेत्र में क्रान्ति करने वाला कौन होगा? शिक्षण के क्षेत्र में क्रान्ति की विभूति शिक्षक होगा।

सर्वोदय बालआश्रम, शिमला

भवानी प्रकाश

इस बालआश्रम की नीव १५ अगस्त, १९४६ को ६ बच्चो को लेकर रखी गई थी। बच्चे ही राष्ट्र की निधि है। आज के बालको पर ही भारत का भविष्य निर्भर है।

इस समय आश्रम में १०० बालक तथा बालिकायें (बालक-५१ बालिकायें-४९) शिक्षा ग्रहण कर रहे है, जिन में से औसत दैनिक उपस्थिति ८२ रही है। इन में स्थानीय तथा हिमाचल प्रदेश (किन्नर) के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते है। दूर के बच्चो के लिये आश्रम में ही रहने आदि की उचित व्यवस्था की गई है। इस समय छात्रावास में ३५ बच्चे है। दैनिक बच्चो में शिशु वर्ग के बच्चो को भी प्रवेश दिया जाता है। विशेषकर उन बच्चो को, जिनकी मातायें मजदूरी या अन्य प्रकार का कार्य करती है। ३ से १५ वर्ष की आयु तक के बालक बालिकायें आश्रम में रहते हैं।

उद्देश्य : इस बालआश्रम को चलाने में हमारा उद्देश्य न केवल निर्धन बच्चो को सेवा करना ही रहा है, बल्कि इनको देश के सच्चे नागरिक बनाने की हमारी चेष्टा रही है। हरिजन तथा कम आय वाले वर्ग के बच्चो की, जिन के माता पिता अपने व्यवसाय में लगे रहने के कारण काफी समय बच्चो की देख रेख में नही दे सकते और जिसका परिणाम यह होता है कि वह शिक्षा से वचित रहते है और बुरे व्यसनो में भी फस जाते हैं, उनको समुचित शिक्षा देने तथा सर्वतोमुख विकास करने का प्रयत्न हम कर रहे है।

यह बालआश्रम उस बुनयादी तालीमी ढग से चलाया जा रहा है, जो पूज्य बापू जी की देन है। यहा पर सफाई, भोजन और हर प्रकार की शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाता है जिसके फलस्वरूप बच्चो के स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ है। और इन पर स्वच्छता तथा सदाचारी जीवन के सस्कार इन्ही बच्चो के माता पिता के रहनसहन में भी क्राति का कारण हो रहे है। बच्चे इस शुद्ध वातावरण में रहते हुए, प्राकृतिक मातृपितृप्रेम से वचित न हो तथा उनकी पारिवारिक प्रसन्नता में कोई कमी न आवे, इसका भी पूरा ख्याल किया जाता है। इस प्रकार इस छोटे से समाज का उद्देश्य वर्गविहीन समाज का नवनिर्माण करना है।

विशेषता - इस बाल आश्रम की विशेषता यह है कि यहा पर बच्चो को सामाजिक जीवन व्यतीत करना तथा स्वावलम्बी बनना सिखाया जाता है। छोटी सी सस्था में छोटे बडे सभी बच्चे अपनी शक्ति के अनुसार उत्साह और शौक से काम की जिम्मेदारी लेते हैं। बच्चे हर मास अपना मत्रिमण्डल स्वय निर्वाचित करते है और निजी कार्य को पूर्ण करते है। इस योजना से बच्चो के काम करने की सूझ तथा शक्ति बढती है और वे आत्मनिर्भरता सीखते है। यहां का कार्यक्रम प्रातः प्रार्थना के साथ आरम्भ

होता है, जिस में बच्चो को सुकुचित भावनाओ से ऊपर उठा कर व्यापक तथा उदार दृष्टि दे कर मानवता के नाम पर पवित्रता, प्रेम, भक्ति की भावनायें उत्पन्न की जाती है।

दैनिक कार्यक्रम : यहां का कार्यक्रम प्रातः ५-१५ से आरम्भ होता है । जिस में केवल छात्रावास में रहनेवाले तथा कार्यकर्ता भाग लेते है। व्यक्तिगत सफाई के बाद सूत्रयज्ञ और फिर सफाई के काम में लग जाते है । इस कार्य को पूरा करने के पश्चात् बच्चे नाश्ता करते हैं । इस के पश्चात् बालक और शिक्षक मिल कर सामूहिक सफाई करते है । इसी बीच में बच्चो को निजी कपडे धोना, स्नान करना तथा स्वय कघी आदि करना भी सिखाया जाता है । बाहर से आने वाले बच्चो के स्नान तथा कपडे धोने आदि का प्रबध भी आश्रम में ही किया जाता है । ठण्डा प्रदेश होने के कारण गरीब बच्चो को स्नान करने की एव कपडे धोने की आदत नही रहती । महीनो या जीवन पर्यंत यह काम वे नही करते । यह सिखाना उनके जीवन में क्रांति करना सरीखा है ।

भोजन : शारीरिक विकास के लिये पौष्टिक भोजन का प्रबध भी किया गया है । यहां पर शुद्ध घी का ही उपयोग किया जाता है । भोजन तैयार करने में स्वाद को दृष्टि में न रख कर स्वास्थ्य की दृष्टि रखी जाती है । प्रतिदिन ताजा दूध और कभी कभी फल आदि भी दिये जाते है ।

उद्योग : मुख्य उद्योग कताई है । हस्त कौशल बढाने के लिये कताई के साधनो से उद्योग सिखाया जाता है । उद्योग से हाथ की कला का विकास तथा हाथ और ज्ञानेन्द्रियों का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है । इस में कपास सफाई से लेकर ओटाई, तुनाई, धुनाई, कताई, दुबटा तथा बुनाई करने की सभी क्रियाएँ सिखाई जाती हैं । प्रथम और द्वितीय वर्ग के बच्चे तकलियो पर और बडे वर्ग के बच्चे चर्खे पर कताई करते हैं । इसके अतिरिक्त ऊन और पश्म का काम भी चलाया जा रहा है । अपने परिश्रम के फलस्वरूप इन बच्चो ने इस वर्ष साढे अठारह सेर सूत काता है । और ६४ गज कपडा बुना गया । इस के अतिरिक्त एक शाल ऊनी तथा एक पश्म की बुनी गई है । अब ऊन की पट्टी बुनने का काम भी चालू कर दिया गया । बच्चो को कपडा धुलाई, छपाई, कटाई, सिलाई तथा बुनाई आदि का काम भी सिखाया जाता है । एक अम्बर चरखा रखने की व्यवस्था भी की गई है जिस पर बडे बच्चों को जानकारी दी जाती है । इस वर्ष चार बालको ने अम्बरचर्खे पर प्रशिक्षण पाया । आश्रम में वस्त्र स्वावलम्बन का पूरा कार्यक्रम चल रहा है ।

आश्रम के आसपास ५००० वर्ग फुट खाली भूमि में बागबानी का काम बच्चे माली की सहायता से करते हैं । खेती में इस वर्ष फ्रेंचबीन दो मन बारह सेर, खीरा पन्द्रह सेर, गाजर आठ सेर, आलू एक मन दस सेर, शलजम ग्यारह सेर, कद्दू चौबीस सेर, मूली दो मन चार सेर, अरबी सात सेर, मटर पाच सेर और पालक तीन सेर–इतनी सब्जियो का उत्पादन किया गया । इस का उपयोग आश्रम में ही किया जाता है । इस उद्योग में बच्चो की पर्याप्त रुचि रही ।

बौद्धिक : शिक्षा पजाब सरकार के पाठ्यक्रमानुसार दी जाती है । शिक्षा की पद्धति बुनियादी

तालीम की है। हमारा अनुभव है कि शासन द्वारा मान्य पाठ्यक्रम इस पद्धति से सरलता से पूरा किया जा सकता है। कताई सम्बंधित ज्ञान भी बच्चों को दिया जाता है। पूज्य गौरा बहन जो सामाजिक जीवन का महत्व तथा भूदान सम्बंधी विषयों पर समय समय पर वार्ता देती रहती हैं। बड़े वर्गों की डायरी एक विशेषता है। इस में प्रति दिन वर्ग में तथा छात्रावास में बताये जाने-वाले विषयों का विवरण बच्चे स्वयं लिखते हैं। छोटे बच्चों को व्यावहारिक शब्दों द्वारा अक्षर ज्ञान करवाया जाता है। कार्य बढ़ जाने के कारण शिक्षक वर्ग में भी बढ़ोतरी की गई। इस समय आश्रम में माली और अकॉउन्टन्ट को मिला कर कुल आठ कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। बच्चों को शासकीय शैक्षणिक मान्यता प्राप्त हो और वे सामान्य शालाओं में आगे जा सकें इस दृष्टि से माध्यमिक परीक्षा बच्चे प्राइवेट रूप से देते हैं। बुनियादी तरीकों से तालीम पाये बच्चों को इन परीक्षाओं में सफल होना सरल है। हमारी पद्धति में हम कुछ भी परिवर्तन नहीं करते। परीक्षा के दो माह पूर्व हम उन्हें परीक्षा की दृष्टि से शिक्षा मिले, यह कार्य पूरा कर लेते हैं। केवल परीक्षा हमें बुनियादी तालीम में बाधक नहीं जची।

शिक्षण प्रवास २४ अप्रैल, १९५९ को अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन में बच्चों को राजपुरा (पंजाब) ले जाया गया। वहां पर जाकर बच्चों ने पूज्य विनोबा जी के दर्शन भी किये और नई तालीम के विषय पर प्रवचन भी सुना। भूदान ग्रामदान आदि के बारे में भी जानकारी मिली।

प्रगति : केन्द्र का आरम्भ एक छोटे शिशु-गृह–जिसे पूर्व बुनियादी प्रशिक्षण कहना उपयुक्त होगा–से आरम्भ हुआ था। अब बुनियादी के आठों वर्ग–अर्थात् १४-१५ वर्ष की अवस्था के बालक बालिकाओं के शिक्षण की यहां पूर्ण व्यवस्था है। जमीन बहुत कम थी फिर भी घरेलू उद्यान के गहरे प्रयोग कर काफी मात्रा में साग भाजी, फलफूल आदि लेने का प्रयत्न रहा।

हरिजन और पिछड़े वर्ग के बालकों में हीनता की भावना भरी रहती है। अन्य वर्ग के बालकों के साथ रहकर सामाजिक जिम्मेदारी और अधिकारों का बराबरी से पालन कर और निभाकर इन बालकों की यह भावना नष्ट हुई है। ये बालक अन्य बालकों के समकक्ष और कभी कभी उनसे अच्छे भी साबित हुये हैं। स्वाभिमान, स्वावलंबन और सेवा की भावना एवं पड़ोसी धर्म पालन करने की प्रवृत्ति इनमें जाग्रत हुई है।

उपसंहार इस प्रकार दिन प्रति दिन आश्रम का काम भी बढ़ता जा रहा है, उसी प्रकार दैनिक खर्च में भी वृद्धि हो रही है। परन्तु जितनी चादर हो उतने ही पांव फैलाने चाहिये वाली लोकोक्ति को ध्यान में रखते हुए अभी तक आश्रम की आर्थिक संबंधी कोई भी कठिनाई नहीं आई। यदि ऐसा हो भी गया तो कहीं-न-कहीं से यथा समय धन आता ही गया। इस समय आश्रम का मासिक खर्च १५५० रुपये है। हम शिमला की उदार जनता, गांधी स्मारक निधि, समाज कल्याण बोर्ड, म्युनिसिपल कमेटी, तथा शिमला और हिमाचल प्रशासन के बड़े आभारी हैं जिन की सहायता से यह दैनिक खर्च पूरा होता जाता है। और यही आशा तथा कामना है कि यह आश्रम दिन-प्रति-दिन बढ़ता जावे और यह बच्चों की सेवा के लिये अधिकाधिक योग्य स्थान बने।

तापमान लेखा

देवलाल अंबुलकर

बडे विद्यार्थियों के लिये यह लेखा काम में लाया गया। साधारण रूप से १० वी कक्षा के विद्यार्थी यह काम कर सकते हैं। इस विद्यालय में यह काम चल रहा है।

जलवायु का अदाजा निश्चित करने के लिये इस लेखा का उपयोग होता है। निम्नलिखित चार यंत्र एक पटिया पर लगाकर आफिस में रखे गये है। यंत्रों की ओर लेखा भरने की जिम्मेदारी विद्यार्थिओं पर ही है, शिक्षक केवल मार्गदर्शन करता है। यंत्र इस प्रकार है :–
१. साधारण तापमान दर्शक २. महत्तम, नीचतम तापमान दर्शक ३. मॅसॉन का आर्द्रतामान दर्शक। ४. निर्द्रव वायुभार मापक।

इन यंत्रोको देखकर ही विद्यार्थी का पहला प्रश्न उठता है–उनका उपयोग किस तरह करना चाहिये ? मैने एक-एक यंत्र लेकर, उसके कार्य के बारे में समझाया।

साधारण तापमान दर्शक के बारे में निम्नलिखित प्रश्न आये। इनके विभागों के क्या नाम हैं ? पारा क्यो उपयोग किया जाता है ? ज्यादा तापमान कैसे मालूम कर सकते हैं ? सूर्य या दूर के सितारो का तापमान किस तरह मालूम कर सकते हैं ?

उत्तर: साधारण तापमान यंत्र में दो हिस्से होते हैं। एक नीचे का सिरा बल्ब और दूसरा उसकी नली, जिसमें पारा भरा रहता है। कभी कभी इस साधारण तापमान यंत्र में अल्कोहोल का भी उपयोग करते हैं, जो लाल रंग का होता है। पारा चमकदार, शीघ्र-वाहक, न चिपकनेवाला एक धातु है। उसका प्रसरण भी समान और प्रमाणबद्ध होता है। पानी या अन्य पदार्थों का प्रसरण भिन्न भिन्न तापमान पर भिन्न भिन्न होता है। पारा –३९° से. पर ठोस बनता है और +३५७° से. पर उसकी भाप बनती है। इस दरम्यान का तापमान देखने के लिये पारे का अच्छा उपयोग होता है। साधारण तापमान इसके दरम्यान ही होता है। इसलिये पारे का ही उपयोग करना अच्छा है। –३९° से. के नीचे यदि तापमान देखना हो तो अल्कोहोल का कुछ हद तक अच्छा उपयोग होगा। सूर्य और अन्य सितारों का तापमान देखने के लिये इसका उपयोग नही हो सकता। उसका जिक्र तारो के अभ्यास में किया गया।

दूसरे यंत्र के बारे में (महत्तम–नीचतम तापमापक) ये प्रश्न थे। अल्कोहोल के बल्ब का क्या कार्य है ? दर्शक (डम्बेल) नीचे ऊपर क्यो और कैसे खिसकता है ? उससे तापमान कैसे समझा जाता है ? वह पारे में क्यों नही घुसता ?

उत्तर : इसमें U आकार की नली है, जिसमें चमकीला पारा भरा रहता है। उसके दो सिरे पर दो बल्ब होते हैं। एक में अल्कोहोल पूरा भरा हुआ रहता है, दूसरे में करीब आधा और उसी की भाप। उसमें हवा नही है। अल्कोहोल

में जब सकोच या प्रसरण होता है तब उसका परिणाम पारे पर होता है। उसके अक किस तरह लिखे है, यह भी देखना चाहिये । एक बाजू में ऊपर से नीचे, और दूसरे में नीचे से ऊपर, ऐसा उनका क्रम है। जिस सिरे के बल्ब में अल्कोहोल पूरा भरा रहता है, उस बाजू पर अक ऊपर से नीचे और अुससे विरुद्ध-क्रम दूसरे पर है। दोनो बाजू नली में पारे के ऊपर दो डम्बेल या दर्शक दिखाई देते है। जब तापमान कम होता है तब पूरा भरा हुआ अल्कोहोल का सकोच होता है। इसलिये इस बाजू में पारा ऊपर चढता है। उसी के साथ डम्बेल भी उपर चढता है। डम्बेल फौलाद का बना हुआ है, और उसकी घनता ७ ८ है। पारे की घनता १३ ६ है और अल्कोहोल की घनता १ से भी कम है। इसलिय वह (डम्बल) पारे पर तैरता है, उसमें घुस नही सकता। लेकिन अल्कोहोल में वह घुस सकता है। इसी कारण से जब पारा ऊपर चढता है तब दर्शक भी ऊपर खिसकाया जायगा। जब तापमान बढने लगता है, तब अल्कोहोल प्रसरण पावेगा और वह पारे को नीचे ढकेल देगा। लेकिन वह दर्शक को नीचे नही ढकेल सकता। इसलिय दर्शक उसी स्थान पर स्थिर रहेगा। दूसरे बाजू में पारा ऊपर चढने लगगा। चूकि उस सिरेवाले बल्ब में आधा ही अल्कोहोल भरा है पारा ऊपर चढ सकता है। उसके साथ उस बाजू का डम्बल भी ऊपर चढेगा। इस प्रकार पहले बाजू से कम से कम तापमान और दूसरे बाजू से ज्यादा से ज्यादा तापमान डम्बल के नीचे सिरे का अक देखकर मालूम हो सकता है।

मसॉन के यत्र के बारे में प्रश्न इस प्रकार रहे। उसकी रचना कैसी है? दोनो तापमान में फर्क क्यो पडता है? उससे हम आर्द्रता का मान कैसे जान सकते है?

उत्तर इस यत्र में एक साधारण तापमान दर्शक होता है और दूसरे तापमान दर्शक का बल्ब कपडे से लिपटा हुआ रहता है, जिसका एक सिरा पानी में रखते है। कपडे से पानी ऊपर चढता है और सब कपडा गीला रहता है। जब हवा बहती है, तब कपडे पर के पानी की भाप उत्प्लवन से होती है। उसके लिये बल्ब में जो कुछ गर्मी होगा वह खर्च होती है। परिणामवश बल्ब का तापमान कम होगा और उस तापमानदर्शक में साधारण तापमानदर्शक से कम तापमान दिखाई देगा। शुष्क हवा में उत्प्लवन की गति आर्द्रतायुक्त हवा में उत्प्लवन को गति की अपेक्षा ज्यादा रहेगी। इस परिस्थिति में बल्ब का तापमान बहुत कम होगा और साधारण तापमान में और इस तापमान में बहुत ज्यादा फर्क पडगा। इस फर्क से हम हवा में आर्द्रता का प्रमाण कितना है, यह जान सकते है। वर्षा ऋतु में यह फर्क कम रहता है और अन्य समय यह फर्क बढता जाता है।

आर्द्रता का मान निश्चित करने के लिये विशेष टेबल का उपयोग करना चाहिये। इसका उपयोग भी विद्यार्थियो को समझना चाहिय। (यहा विद्यार्थियो के पूछन पर यह भी बताया गया था।)

चौथे यत्र के बारे में प्रश्न ये थे। इसकी रचना कैसी है? वायुभार कैसे मालूम पडता है? *वायुभार क्या है?* डिब्बी में से हवा निकाली गयी तो उसकी दोनों बाजू एक दूसरी से चिपकी क्यो नही? डायल पर तूफान, वर्षा,

साफ आकाश, आदि लिखा है; उसका क्या मतलब है ? वायुभार और इनका क्या सम्बंध है ?

उत्तर : यंत्र की रचना स्पष्ट होने के लिये मैंने पूरा यंत्र उनके सामने खोलकर उसकी रचना का निरीक्षण करवाया । अर्धनिर्वात डिब्बी, उसपर लगे हुअे लीवर, स्प्रिंग आदि का कार्य समझाया । डिब्बी पर दबाव देकर कांटा किस तरह आगे पीछे घूमता है, यह भी बताया गया ।

वायुभार का अर्थ है हवा का वजन । यह वातावरण २००" उंचा है । एक वर्ग सेंटीमीटर के क्षेत्रपर उसका जो वजन होता है उसे वायुभार (एटमोस्फियरिक प्रेसर) कहते है । डायल पर जो अंक लिखे हैं, वे इंचों में है । हवा के समतोल १ वर्ग सेंटिमीटर पर पारे के स्तंभ की जो ऊँचाई होगी वह ही इंचो में वायुभार बताया जाता है । २९" वायुभार का मतलब है एक वर्ग सें. मी. क्षेत्र पर पारे का खडा स्तंभ १ वर्ग सें. मी. क्षेत्रपर खडे २०० मील ऊंचे वायुस्तंभ के तोल में बराबर है । इसको समझने के लिये एक साधारण प्रयोग कर सकते हैं, जिसको हम बाद में देखेंगे ।

डिब्बी अर्धनिर्वात्त है । पूरी हवा उसमें से निकालने की जरूरत नहीं है । पूरी हवा निकाली जाती तो जरूर वह चिपक जाती ।

डायल पर जो तूफान, बारिश आदि लिखा है, उसका मतलब लेखा रखकर ही समझ सकते हैं । इसलिये उसको भी बाद में समझाया जायगा । इतना ही अब समझना है कि जब वायुभार एकदम कम हाता है तब तूफान होने की संभावना है । उसी समय वर्षा होने की भी संभावना है लेकिन आर्द्रमान ज्यादा रहेगा तब । वायुभार जब ज्यादा बढता है तब वातावरण साफ हो रहा है, अैसा अर्थ होगा ।

लेखा

दिनांक		साधारण तापमान				हैग्रामीटर				वायु-भार इंच	आकाश की स्थिति			जलवायु का अंदाजा
		से.	मि.	महत्तम	नीचतम	ड्राय	वेट	फरक	आर्द्रता		बादल	वायु की दिशा	वायु की गति	
	सुबह शाम													

जब विद्यार्थी यह लेखा रखने लगे तब उनके सामने बहुत सी कठिनाइयां और प्रश्न खडे हुअे । उसको समझाने के लिये प्रयोगशाला में कुछ प्रयोग भी करने पडे ।

अखबार में जो जलवायु के अहवाल छपते है, उनसे भी तुलना की गयी ।

इस चार्ट के साथ उपयोग के लिये, विद्यार्थियों से तैयार किया हुआ सेंटिग्रेड, फरनहीट सम्बन्ध स्पष्ट करनेवाला आलेख और आर्द्रता के आलेख भी लगाये गये ।

कृषि और सामान्य विज्ञान

प्रिय सुमन बहन,

सादर वन्दे।

मेरे पहले पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर बुनियादी के स्तर तक विद्यार्थियों को कृषि विज्ञान समझने की और कृषि समस्याओं पर वैज्ञानिक ढंग से सोचने, हल ढूंढने की योग्यता हासिल हो जानी चाहिये। इस हेतु विद्यार्थियों को सामान्य विज्ञान के कुछ एक सिद्धान्तों को अवश्य जानना चाहिये, उनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख कर रहा हूं।

१. वायु मंडल का भार होता है : इस सिद्धान्त का समझाने के लिये आप आनंद निकेतन में लगे हाथ पम्प का समवाय पाठ के लिये उपयोग कर सकती हैं। पीपा से मिट्टी का तेल निकालने के पम्प का भी उपयोग किया जाय। वायु मण्डल का भार होता है, यह समझने का एक सरल प्रयोग–स्टाप डाट वाले काच के पतले फ्लास्क की हवा मुंह से खींच लो। हवा खींचने के पहले और बाद के वजन में अंतर होगा। हवा खिंच जाने पर फ्लास्क हलका हो जावेगा। सामान्यतः ५ ग्रैं वायु का वजन १ औंस होगा। ७० फीट लम्बे, ५० फीट चौड़े और १० फीट उंचे मकान की वायु का वजन १ टन होता है। अर्थात् २८,००० घन फुट वायु का वजन १ टन होगा।

वायुमण्डल के भार को नापने के यंत्र को बेरोमीटर कहते हैं। बेरोमीटर आप वर्ग में विद्यार्थियों से बनवाइये। एक ३६ इंच लम्बी मोटे कांच की नली लीजिये। नली एक ओर से बंद होनी चाहिये। इस नली को पारा से भर दीजिये, फिर उसके मुंह को एक अंगुली से अच्छी तरह से बंद कर उसे पारा से आधा भरे एक बर्तन में उतार दीजिये। नली का मुंह पारा में डूब जाने के बाद अंगुली हटा दीजिये। नली का कुछ पारा खिसक जावेगा पर नली पूरी खाली न होगी। समुद्र सतह पर पारा लगभग ३० इंच की ऊंचाई पर बना रहेगा, यह वायुमण्डल के भार के कारण है। यदि नली के उपर के बंद हिस्से में सुराख कर दिया जाय तो पारा एकदम नीचे खिसक जावेगा। संभव हो तो यह प्रयोग भी कर दिखाइये। एक इंच और स–चोरस और ३० इंच ऊंचे पारा के खम्ब का वजन १४.७५ पौंड होता है। वायुमण्डल का दबाव ३० इंच पारा को उठाये रहता है, अर्थात् प्रति वर्ग इंच वायुमण्डल का भार १४.७५ पौंड है।

पारा पानी की तुलना में १३.६ गुणा भारी है, इसलिये ३० इंच पारा के खम्ब के समान ३४ फीट का पानी का खम्ब भी वायुमण्डल के दबाव से खड़ा रहेगा। इसका ही लाभ हाथ पम्प बनाने में उठाया गया है। कई परिस्थितियों के कारण ३५ फीट ऊंचाई सामान्यतः संभव नहीं है, २५-३० फीट सरलता से प्राप्त हो जाती है। सिद्धान्त यह हुआ कि नली को पानी में डाल उसकी हवा यदि खींचते जावें तो पानी ऊपर चढ़ता जावेगा। एक हाथ

पम्प खोलकर विद्यार्थियो को उसके विभिन्न अंग और उसके कार्य समझायिये ।

साइफन (निनाल) का भी इसी भार का लाभ ले निर्माण किया गया है । मोटर की टकी से पेट्रोल इस युक्ति से निकाल लिया जाता है । साइफन चलने के लिये दो बाते आवश्यक हैं । एक नली (ट्यूब) द्रव्य से भर जानी चाहिये, दूसरा नली का आखिरी (निकास) सिरा का धरातल तरल पदार्थ के बर्तन से नीचा हो । मोटर से पेट्रोल निकालने वाले नली को पेट्रोल की टकी में डाल नली की हवा खीच लेते है जिससे नली में पेट्रोल भर जाता है, फिर जल्दी से उसका सिरा बद कर नीचे धरातल पर रखे बर्तन में कर खोल देते हैं । चाहे तो इस क्रिया से टकी पूरी खाली की जा सकती है । सिचाई के निमित्त बने तालाबो का पानी का सतह निश्चित ऊचाई से अधिक न बढने देने के लिये उस ऊचाई पर पहुच पानो कम होने लगे, इस हेतु साइफन लगाते हैं । कृष्ण-जमुना खिलौना जिसमें पानी भरने से उसकी सतह कृष्ण का पैर छूते तक बढती है फिर कटोरा खाली होना आरभ हो जाता है, इसी सिद्धात के आधार पर बनाया गया है ।

सेंट्रिफ्यूगल शक्ति (केन्द्रापग बल) :

जब हम किन्ही चीजो को या चीज को गोल चक्र में तेजी से घुमाते हैं, तब उसमें एक शक्ति जागृत होती है, जो भारी चीजो को दूर परिधि की ओर फेंकती है, हलकी चीजें केन्द्र की ओर रहती है । इसका लाभ ले कई यत्र बने हैं । आप लोग इस प्रकार के तीन यत्रो का उपयोग कर रहे हैं (१) सिचाई के पम्प (२) दूध से मलाई अलग करने की मशीन और (३) दूध में घृताश जानने की गरबॅर मशीन । विद्यार्थियो को इन तीनो यत्रो को खोल कर समझाइये । सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प में वायुभार और सैन्ट्रीफ्यूगल शक्ति का सहारा लिया गया है । समवाय पाठ द्वारा, सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प को खोल कर उसके विभिन्न भागो को समझाकर उसकी ठीक देख रेख, चलने के सिद्धात, उत्पन्न होने *वाली खराबिया और उन्हें ठीक करना* इत्यादि का अभ्यास कराना चाहिये । विद्यार्थी यदि इसे ठीक समझ गये हो तो उन्हें निम्न बाते सहजता से मालूम हो जानी चाहिये ।

(१) पम्प शुरू करने के पहले उसमें पानी क्यो भरते हैं ?

(२) पम्प पानी को सतह से कितनी ऊचाई पर जमाया जाय ?

(३) पम्प में पानी न आने के क्या कारण हो सकते हैं ?

(४) पानी खीचने वाली नली में फुट वाल्व क्यो लगाते हैं ?

ये बाते शिक्षक विद्यार्थियो को नही बतायें । उन्हे प्रयोग कर एव सैन्ट्रीफ्यूगल और वायुभार के सिद्धान्त के आधार पर इनका उत्तर मालूम करना चाहिये ।

(आक्सीडेशन) जारण : वायुमण्डल में ओसजन प्राणप्रद वायु लगभग २०% होती है । यह अनिश्चित रूप में होती है । यह जब अन्य तत्वो से मिलती है तब उसका (आक्सा-इड) जारेय बन जाता है । जारेय के लिये उष्णता आवश्यक है । जारेय की रासायनिक क्रिया से भी उष्णता पैदा होती है । खाद बनने की क्रिया में गरमी पैदा होने का यही

कारण है। खाद के गड्ढे में खाद बनते समय होने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियायें समझाई जावे। प्रयोग शाला में ये क्रियाएँ की जावें और उनके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जावे। खाद का रासायनिक विश्लेषण समझाया जाय।

पदार्थ (द्रव्य अथवा मेटर)

भौतिक विज्ञान के दो प्रधान सत्य है-एक पदार्थ (द्रव्य) और दूसरा शक्ति-ये एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में ही मानी जाती हैं।

द्रव्य का निश्चित आकार और रूप होता है। इसका अस्तित्व होता है और एक ही बिंदु पर इसके दो कण नही रह सकते, अर्थात् इसे जगह चाहिये। द्रव्य पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पडता है, उसमें स्वयं में भी खिचाव रहता है, यानी द्रव्य में वजन होता है। यह इसका निश्चित गुण है। यह न निर्माण और न ही नष्ट किया जा सकता। हां इसका रूपान्तर अवश्य होता। परन्तु इस क्रिया में न कुछ नष्ट ही होता है और न कम हो। एक प्रकार के द्रव्य का जब एक या विभिन्न प्रकार में रूपान्तर होता है तब रूपान्तरित द्रव्य या द्रव्यों का वजन मूल द्रव्य या द्रव्यो के बराबर ही होता है। द्रव्य के अस्तित्व का छोटा से छोटा रूप व्यूहाणु है। द्रव्य व्यूहाणु से निर्मित होता है, द्रव्य का लघुतम रूप व्यूहाणु होता है। द्रव्य के अस्तित्व का छोटे से छोटा रूप व्यूहाणु है। व्यूहाणु कभी एक दूसरो को छूते हुये नही रहते, उनके आपस में संधि रहती है। जब यह बहुत कम होती है तब द्रव्य का रूप दृढ होता है। इसके दूर-दूर होने पर यह तरल रूप में होता है और जब व्यूहाणु न केवल एक दूसरो से दूर है, वरन् एक दूसरो से और भी दूर होने की वृत्ति पा जाते है तब वायु रूप में होता है।

इस विषय को और भी विस्तृत रूप से प्रयोग किये जावे। पदार्थ (द्रव्य) पर ताप का असर, रूपान्तरण दोनो प्रकार का अर्थात् भौतिक और रसायनिक समझाया जाय। दानों में क्या अंतर है, वह विद्यार्थी अच्छी तरह से समझ लेवें।

शक्ति: क्रिया की क्षमता को शक्ति कहते है। शक्ति में वजन नही होता। घूमते हुये चाक में शक्ति है पर उसका स्थिर और घूमती हुई अवस्था में एक ही वजन रहता है। ताप भी एक शक्ति है। शक्ति भी न निर्मित की जो सकती और न नष्ट ही होती है। उसका परिवर्तन होता है। ताप एक प्रकार की शक्ति है, परन्तु पदार्थ (द्रव्य) के बिना इसका अस्तित्व नही है। सब द्रव्यो में कम अधिक परिमाण मे ताप होता है। ताप शक्ति का विद्यार्थियो को पूरा ज्ञान कराया जाय। प्रयोगशाला, कृषि कार्य, भोजनालय इत्यादि में होनेवाले विभिन्न कार्यो को माध्यम बना कर ताप शक्ति, उसका स्वभाव और द्रव्यो पर असर समझाया जाय। आरम्भ में Absolute zero, sensible, heat, latent Heat और ताप का प्रवाह के रूप समझाये जावे। थरमास बोतल की बनावट समझायी जावे।

शक्ति का परिवर्तन भौतिक और रासायनिक दोनो रूपो में होता है। कृषि या वनस्पति जगत् में इसको उत्तम उदाहरण भा-सश्लेषण है। इस क्रिया में कार्बन डायआक्साइड और पानी से मंड का निर्माण होता है। मंड में रासायनिक शक्ति है, अर्थात् भा-सश्लेषण में प्रकाश शक्ति का रासायनिक शक्ति में

परिवर्तन हो गया। दहन और श्वसन क्रियाओं में रासायनिक शक्ति ताप शक्ति में परिवर्तित हो जाती है।

परमाणु : व्यूहाणु अतिसूक्ष्म परमाणु से बना होता है। यदि द्रव्य के व्यूहाणु के परमाणु एक ही प्रकार के हों तो वह मूलतत्व (एलिमेन्ट) माना जाता है। विभिन्न प्रकार के तत्वों से बना द्रव्य सयोगी तत्व माना जाता है। उदाहरणार्थ पानी सयोगी तत्व है, वह आक्सीजन और हाइड्रजन दो *मूल तत्वों का सयोगी* है। रसायनशास्त्रियों को ९० मूलतत्वों का ज्ञान है। परमाणु की मूल विशेषता यह है कि उनका रूपान्तर या परिवर्तन नहीं होता, यानी एक प्रकार के परमाणु को दूसरे प्रकार के परमाणु में नहीं बदला जा सकता।

रासायनिक सांकेतिक अक्षर : रासायनिकों ने सहूलियत के हेतु विभिन्न मूल तत्वों के सांकेतिक अक्षर तय कर लिये है। उदाहरणार्थ.—

हाइड्रोजन . . .	H	नाइट्रोजन . . .	N
सोडीयम . . .	Na	कार्बन	C
आक्सीजन . . .	O	लोहा	Fe

इनको आधार मान प्रत्येक द्रव्य का सांकेतिक रूप लिखा जा सकता है, जैसे पानी H-O-H=H_2O, कार्बन डायआक्साइड (O=C=O) CO_2। इससे रासायनिक क्रियाएँ भी दर्शायी जाती हैं। उदाहरण के लिये भा-संश्लेषण का सांकेतिक गुर बता रहा हूं। $6CO_2+5H_2O=C_6H_{10}O_5+6O_2$ दहन और श्वसन का गुर होगा $6O_2+C_6H_{10}O_5=5H_2O+6CO_2$। इससे विद्यार्थियों को आप समझा सकती हैं कि वायुमण्डल में ओसजन का सतत स्रोत क्या है और पौधों को किस प्रकार कारबन डायआक्साइड प्राप्त होती रहती है। अर्थात् प्रकृति में पशु और वनस्पति जगत् का किस प्रकार एक दूसरों पर अवलम्बन है।

उत्तर बुनियादी के विद्यार्थियों को भौतिक और रासायनिक शास्त्र का ज्ञान उच्च माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों से अधिक नहीं तो कम भी न होना चाहिये। परन्तु दोनों की प्रयोग शाला भिन्न होगी। सामान्य शाला की प्रयोग शाला पाठ्य पुस्तक के पाठ और प्रयोग शाला-भवन की चार दीवारों में बंधी होगी। आपको व्यवहारी दैनिक समस्याओं के क्षेत्र में कूदना होगा। आपके प्रयोगो को आपके कार्यो के विभिन्न पहलुओं को वैज्ञानिक दिग्दर्शन कराना होगा, सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करना होगा। आपके प्रयोगों के काम में आनेवाले पदार्थ विद्यार्थियो द्वारा लिये उद्योग इत्यादि के दैनिक उपयोगी पदार्थ ही प्रधानतः होगे। इसके लिये *उत्तर बुनियादी के प्रत्येक शिक्षक में वैज्ञानिक* दृष्टि होनी चाहिये और उनका एवं विज्ञान शिक्षक का और विज्ञान शिक्षक एव कृषि कार्य या अन्य उद्योग कार्य का पूर्ण रूप से समन्वय होना चाहिये। उत्तर बुनियादी का विज्ञान शिक्षक केवल प्रयोग नली हिलाने वाला व्यक्ति नहीं, वरन् हल चलाने वाला और भूपरिक्षण वैज्ञानिक वृत्ति का किसान होगा। आशा है आप इस दृष्टि से कृषि का वैज्ञानिक पहलू और वैज्ञानिक ज्ञान अपने विद्यार्थियों को देंगी।

मार्जरी साईक्स

आदर, निर्भयता, प्रेम

पिछले साल (१९६०) इग्लैण्ड में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जो सब शिक्षको के लिये बहुत ही दिलचस्पी की होगी। वह डेविड विल्स् नाम के एक क्वेकर मित्र ने लिखी है और उसका नाम है "आपका डडा फेंक दो।" डेविड विल्स् एक आवासीय विद्यालय के प्रधानाध्यापक है। यह विद्यालय खास उन बच्चो के लिये है जिनका व्यवहार समस्यापूर्ण है (साधारणतया पारिवारिक सबन्धो की असन्तोषजनक स्थिति के कारण) या जो बच्चे अपने मा बाप के नियत्रण के बाहर हो गये है। अधिकतर बच्चे आठ और तेरह साल की उम्र के बीच के है—उनकी औसत वय दस साढे दस होगी। डेविड विल्स् विद्यालय के पारिवारिक जीवन के जरिये इन बच्चो को एक अच्छा घर देने के महत्व पर बहुत जोर देते है, ताकि उससे उनके अपने घरो की कमजोरियो तथा उससे हुए नुकसान का निवारण हो सके। उनका कहना है कि इस तरह के एक गृहविद्यालयपरिवार की कसौटी इसमें है कि बच्चे उसमें तीन बातो को महसूस करे, जैसे वे अच्छे घरो के बारे में महसूस करते है

१ 'यह मेरा है, मै यहा का हू"।

२ "यह स्थायी है हमेशा मेरे लिये तैयार है।"

"यह ऐसी जगह है जहा मै बिलकुल सुरक्षित हू"।

हम नई तालीम के शिक्षक भी अकसर ऐसी बाते करते है कि हमारे विद्यालयो को बच्चो के लिये घर जैसे होने चाहिये, खास कर जब ये आवासीय है। और जहा ये आवासीय न हो तो भी हम चाहते है कि वे सच्चे प्रेमपूर्ण परिवार बनें जहा बच्चे अपने अपने कुटुम्ब के बाहर भी एक ज्यादा व्यापक वृत्त में पारिवारिक भावना महसूस करे। इसलिये ऊपर कहे तीन मुद्दो पर पहुचने के मार्गों के बारे में विचार करना हमारे लिये भी लाभप्रद होगा।

एक चीज स्पष्ट है। बच्चे अपनापन महसूस करे, विश्वास्यता और सुरक्षितता का उन्हे बोध हो—यह बडो की वृत्ति और व्यवहार पर निर्भर करता है, वे बडे जो विद्यालय परिवार के अग है और उसके स्वाभाविक और जिम्मेदार नेता है। शिक्षक और विद्यार्थियो के सबन्ध के बारे में डेविड् विल्स् कई दिलचस्प बाते कहते है।

वह इन साधारण बातो से शुरू करते है कि शिक्षको और बच्चो को एक दूसरे का आदर करना चाहिये, इत्यादि। आगे वे पूछते है कि असल में 'आदर' का मतलब क्या है? मुझे लगता है कि भारत में (इग्लैण्ड में भी) जब हम किसी व्यक्ति के प्रति 'समुचित सम्मान' दिखाने की बात करते है तो हम सोचते हैं कि उनके साथ विनीत भाव से बर्त्ताव करे, भद्रता के बाह्य आचारो का पालन करे और उनकी

सन्निधि में गंभीरता और नम्रता दिखावें। लेकिन यह केवल बाह्य आचार है और अपने में कोई विशेष महत्व का नहीं। हमें आदर का असली अर्थ समझना चाहिये। अंग्रेजी में "रेस्पेक्ट" का अर्थ है-फिर से देखना। और जब हम किसी के व्यक्तित्व को, उनकी प्रवृत्तियों को पुनः पुनः देखने, सुनने के उत्सुक रहते हैं तब हम उनका सचमुच आदर करते हैं। हम किसी का आदर करते हैं जब हमें लगता है कि वह हमारे पूरे ध्यान के योग्य हैं-इसलिये नहीं कि वह किसी अधिकृत स्थान पर प्रतिष्ठित हैं, बल्कि वह जैसा है उसी के लिये। आदर और भय का कोई सम्बन्ध नहीं, आदर का यह भी अर्थ नहीं कि हर बात में हमारी भी वही राय है या उस व्यक्ति की इच्छा के अनुसार ही हम चलेंगे। लेकिन उसका यह अर्थ जरूर है कि वह व्यक्ति जिसको ठीक समझता है, उसके बारे में 'देखने', सुनने और विचार करने के लिये हम हमेशा तैयार हैं। शिक्षक को विद्यार्थी के प्रति हमेशा ऐसा आदर दिखाना चाहिये और विद्यार्थी को शिक्षक के प्रति सहज ही ऐसा आदर होना चाहिये, अगर ऐसा नहीं होता तो उसमें शिक्षक का पराजय है।

बाद में डेविड् विल्स् यह विचार व्यक्त करते हैं कि कई शिक्षक इसलिये नाकामयाब होते हैं क्योंकि वे विद्यार्थियों को अपना असल रूप दिखाने से डरते हैं। अपनी अज्ञता, अपनी अलसता और अपनी चिन्ताओं को कहीं विद्यार्थी देख न लें, इस डर से वे एक तरह का कृत्रिम वेश पहने रहते हैं और विद्यालय में ऐसा व्यवहार करने का प्रयत्न करते हैं जैसे कि उनका कोई निजी व्यक्तिगत जीवन ही न हो। लेकिन बच्चा ऐसे आदमी का सचमुच कद्र कैसे कर सकता, जिसे वह जानता ही न हो। शिक्षक के लिये पहला नियम यह है कि वह बच्चों के सामने एक साधारण आदमी के जैसा पेश आये, जैसा वह है, वैसा उन्हें जानने दे।

दूसरा नियम इस पहले नियम से ही निकलता है-वह यह कि बच्चों के डर से वह अपने आपको मुक्त करे और यह डर भी छोड दे कि बच्चे उसे उससे कहीं कम ज्ञानी और श्रेष्ठ न समझें जितना कि उसे होना चाहिये। बच्चे नकलीपन को तुरन्त पहचानते हैं और उससे नफरत करते हैं। और शिक्षक को जल्दी ही अनुशासनहीनता का सामना करना पडता है-क्योंकि बच्चे इस नकलीपन के बुलबुले को तोडने के मजे से अपने आपको रोक नहीं सकते हैं। लेकिन "जो नम्र है उसको गिरने का डर नहीं।"

तीसरा नियम है कि शिक्षक को बच्चों के प्रति प्रेम होना चाहिये-हर एक बच्चे के प्रति व्यक्तिगत तौर पर। हम सब अपने ही अनुभव से जानते हैं कि जो लोग हमें प्यार करते हैं और वह प्यार दिखाते भी हैं उनके प्रति हमारी वृत्ति क्या होती है। ऐसे लोगों पर हम विश्वास रखते हैं, उनकी तारीफ करते हैं, और अपनी तरफ से उन पर प्रेम व आदर करने के लिये तैयार ही नहीं, उत्सुक रहते हैं। बच्चे भी हमारे जैसे ही हैं। जब एक शिक्षक अपने वर्ग के सब बच्चों को प्यार करता है, उनमें से हरएक की देखभाल और चिन्ता करता है और बच्चे यह जानते हैं तब उनको भी उस पर विश्वास, श्रद्धा, प्रेम और आदर करने की स्वाभाविक वृत्ति होती है।

(शेषांश पृष्ठ १९० पर

जान रे

बच्चों पर युद्ध का प्रभाव

[आज जब कि प्रादेशिक सेना में भर्ती होने के लिये हमारे प्रधानमंत्री देश के नवयुवकों को बार बार आह्वान कर रहे हैं और अनिवार्य सैनिक शिक्षा की बातें चली हैं, हर विचारशील नागरिक को इस लेखक के द्वारा बताये गये अनुभवो को पढना और उनपर मनन करना आवश्यक है। इस विचारोत्तेजक लेख के लिये हम "द पेसिफिस्ट" पत्रिका के आभारी हैं। स.]

एक युद्ध समाप्त होने पर साधारणतया उसका हिसाब लगाया जाता है : इतने आदमी मारे गये, और इतना पैसा खर्च हो गया। लेकिन जिन लोगो पर वह बीता उन पर उसका क्या परिणाम हुआ, उसका हिसाब नही लगाया जाता, न ही वह लगाया जा सकता। मेरी पीढी के इंग्लैण्ड के सब बच्चे, एक अर्थ में, युद्ध से घायल हो गये थे।

अगस्त १९४५ का वह दिन मुझे याद है। बहुत गर्मी थी और हम लोग समुद्रतट पर थे। अखबारो में बहुत बडे-बडे अक्षरो में एक शीर्षक आया था और सारा देश उसके लिये राष्ट्रीय पैमाने पर खुशी मना रहा था। शीर्षक था, "हिरोशिमा पर अणुबम गिरता है"। अगर हमको तब यह मालूम भी होता कि १६०,००० पुरुष, स्त्रिया और बच्चे उससे मारे गये या घायल हो गये तो वह जानकारी हमारी खुशी में बाधक नही होती, उल्टा, शायद इस कृत्य की तब हम और भी तारीफ करते। जापान के लोग तो बडे खराब थे और उनकी मृत्यु कोई शोचनीय बात नही हो सकती थी। और हम ? हम कोई बर्बर नही, अच्छे अंग्रेज लडके थे।

एक बहुमुखी व्यवसाय :

युद्ध एक बहुमुखी व्यवसाय है, जिसके मुख्य उद्देश्य के अलावा भी कई छोटे मोटे परिणाम होते हैं और उनमें से एक, मेरे विचार में, बच्चों में होनेवाली विकृति है। क्यो कि वे छोटे हैं और अपनी विवेक बुद्धि से भले बुरे की पहचान नही कर सकते, बच्चे गलत मूल्यों को जल्दी स्वीकार करते हैं; जैसे कि मारना कोई पाप नही, जब तक मारा जानेवाला हमारा शत्रु है। इग्लैण्ड के बच्चे, फ्रान्स या हालेण्ड के बच्चो के बनिस्बत इस विकृत धारणा के ज्यादा अधीन थे, क्योकि हमको युद्ध को प्रत्यक्ष देखने की नौबत नही आई थी। जिन बच्चो ने अपने मा बाप के शरीरो को मशीनगन की गोलियो से बिंधे हुए देखा था, उन पर युद्ध की "माहात्म्य कथाए" कोई असर नही डाल पाती थी, अपने अनुभव ने उनको अदम्य बनाया था। परन्तु, हालाकि हमने जर्मन विमानो को देखा था और लंबी लंबी ठण्डी रातें पेड़ के नीचे के कन्क्रीट 'शेल्टर' में बिताई थी, फिर भी हम जर्मन बम को गभीरता से नही ले सकते थे, वे हमेशा और किसी के ऊपर गिरते थे।

तीन सब से खतरनाक धारणाए ये थी, पहला : हिंसा न्याय्य ही नही, बल्कि सराहनीय भी है, दूसरा : युद्ध तमाशा है, एक बडा खेल, और तीसरा : कायिक वीरता सब से श्रेष्ठ गुण है तथा नैतिक वीरता—जो अपने विश्वासो के कारण युद्ध में भाग नही लेनेवाले दिखाते हैं, निन्दनीय है। मेरी पीढी के बच्चे इन्ही तीन धारणाओ पर पले थे। जो प्रत्यक्ष लडाई के मैदान में थे उन्होने इन धारणाओ का निर्माण और प्रचार जरूर नही किया था, जिसने भी युद्ध का साक्षात्कार किया हो, वह उसे खेल नही बता सकता। यह अधिकृत प्रचार और मनुष्य की अन्धता का विशिष्ट कार्य था।

पहली धारणा : युद्ध न्याय्य ही नही, सराहनीय है– उस समय अधिकतर लोगो ने यह नही सोचा था कि युद्ध अपने में कोई गलत काम है। हा, कोई कोई असुखकर घटनाए होती हैं, यहा तक कि कभी कभी कुछ भयकर दुष्कृत्य भी होते हैं, लेकिन ये हमेशा शत्रु से ही किये जाते हैं। याने, वे जर्मन या जपानी लोगो की दुष्टबुद्धि के परिणाम है, युद्ध का कोई स्वाभाविक हिस्सा नही। खराबी शत्रुओ की है, युद्ध की नहीं। और हम बच्चे इस भयकर विश्वास में पले कि युद्ध कोई खराब काम नही। यह हमने अखबारो में पढा, सडको पर लोगो से सुना और सब से खास बात यह कि चर्च (गिरजाघर) और सिनेमा के एक विचित्र सहयोग से हमें यह सिखाया भी गया।

मैंने युद्ध के वे साल लदन के नजदीक एक छोटे शहर में बिताये थे। खुदा जाने कितने शाम हम उन सिनेमाघरों के अधेरे में, सामने के चित्र की सब कल्पित कथाओ को अपने बालमन में परम सत्य के रूप में ग्रहण करते बैठे रहे थे। प्रचारार्थ बने हुए फिल्मो के बारे में कभी शका भी हो सकती थी, लेकिन वे डाकुमेन्टरी फिल्मस् तो परमप्रमाण ही थे। क्योकि इनमें हम अच्छे साधारण आदमियो को युद्ध का काम करते देखते थे, और अगर वे बिना हिचकिचाहट के किसी को मार सकते थे–या यो कहना चाहिये कि अच्छी तरह किये गये किसी काम से उत्पन्न स्वाभाविक सन्तोष के साथ मार सकते थे–तो कोई कारण नही था कि हम उनके उद्देश्यों के या नैतिकता के बारे में शका करे। और जब एक सुन्दर, तरुण वैमानिक विजय की खुशी में मुस्कुराता हुआ सभा को सलामी देता था तो उस समय हमारे मन में उसके जर्मन प्रतिद्वन्दी का ख्याल तक नही आ सकता या जो कई हजार फीट ऊँचाई से पृथ्वी पर गिर रहा था और गिरते गिरते आग में पक भी रहा था।

ईश्वर का आशीर्वाद :

विशेष प्रार्थना के लिये मुकर्रर किये रविवार के दिनो में हम लोग गिरजाघर में बैठ कर विजय के लिये प्रार्थना करते थे। झण्डो और तोरणो और मरे हुए वीरो की स्मृति शिलाओ के बीच बैठे हमें पूरा विश्वास था कि इस युद्ध के लिये भगवान् का आशीर्वाद है। फिल्मो में भी हर एक सैनिक टुकडी के साथ एक पादरी भी जरूर दिखाई देता था। ऐसे भी समय मुझे याद है जब हर कोई इस विश्वास से इतने प्रभावित दिखाई देते थे कि इस युद्ध में भगवान् हमारे साथ हैं–मानो ईश्वर ब्रिटिश सेना में किसी विशेष सम्मान का पद सभाल रहे हो।

दूसरी कल्पना: जो हमने हजम कर ली थी, यह थी कि युद्ध एक बडा तमाशा है। हम बच्चे

थे, इसलिये एक खेल के रूप में युद्ध की कल्पना हमें अच्छी लगती थी। दूसरे किसी भी खेल के जैसे ही युद्ध के भी अपने नियम थे; हां, प्रतिपक्ष अवश्य धोखा देता था। नियम ये थे कि शत्रु को जला सकते हैं, बेयनेट से मार सकते हैं, उन पर गोलियां चला सकते हैं; लेकिन अधार्मिक तरीके से नही। और अगर आपने शत्रुसेना के अफसरों को कैद कर लिया तो उनके साथ इज्जत का व्यवहार करना चाहिये। शायद आप शहरों वस्तियों पर, जहा निर्दोष लोग रहते हैं, एटम बम भी डाल सकते थे, लेकिन इस मुद्दे पर नियम बहुत स्पष्ट नही था। बच्चे अधिकारियो से घृणा करते हैं लेकिन आचरण के कड़े नियमो में उनको मजा आता है। जैसे हम क्रिकेट के नियम जानते थे, वैसे युद्ध के भी जानते थे और हम वे अलिखित नियम भी जानते थे, तरीको आचारों के, जो युद्ध को एक रहस्यमय गौरव प्रदान करते हैं-जैसे जहाज डूबा तो कप्तान को भी उसके साथ डूबना है, और जर्मन मुर्दों को सम्मान के साथ दफनाना चाहिये।

प्रचार के हर माध्यम से युद्ध एक बहुत बड़े खेल के तौर पर हमारे सामने पेश किया गया। हमारी कल्पनाएँ निरपवाद रूप से युद्ध के मैदान में ही विचरती रही। हमारी सब से बडी ख्वाहिश वायुसेना के वैमानिक योद्धा या सेनानायक बनने की थी, (किसी करण से नौसेना इतनी *आकर्षक नही लगती थी)* हमने अपने आपको विक्टोरिया क्रास की पदवी हासिल करते हुए देखा-घायल, लेकिन बहुत ज्यादा पीडा नहीं, अपने देशवासियों की वीर-पूजा के पात्र, शत्रुओ से भी नाम से पहचाने जानेवाला। हमने इसको कितना बड़ा मजा समझा, और जब तक अपनी बारी के लिये रुकना पड़ता था, पत्थरो, कांच के टुकड़ों व नकली गोलियों से युद्ध और वीरता के खेल खेलते रहे-जिसमें एक मात्र सवाल था, "मैं कितना वीर हूं।"

कायरता सब से बडा अपमान :

युद्ध को खेल समझने की इस धारण के साथ सबद्ध दूसरी धारण यह थी कि कायिक वीरता मनुष्य का श्रेष्ठतम गुण है और कायरता सबसे बडा अपमान। उन दिनों की हमारी स्कूल की पत्रिका में एक समाचार दिया था, "विद्यालय की चर्चा सभा। यह सभा फेसिज्म को शान्तिवाद से अच्छा मानती है। प्रस्ताव बाईस के विरोध में चोबीस मत से स्वीकृत हुआ।" कैसा भयकर प्रस्ताव है! फिर भी मुझे याद है कि मैंने उसके पक्ष में मत दिया था। यह तो असभव था कि १३ साल की उम्र में, जिसको मैं कायरता समझता था, उसके पक्ष में मत दूं। फेसिज्म खराब *था जरूर, लेकिन जर्मन सिपाहियों में, लोगों* में, कम से कम शूरता तो थी।

कोई नही कह सकता कि कायिक वीरता अपने में कोई नुकसानदेह चीज है; लेकिन युद्ध के समय जिस रूप में उसकी तारीफ होती थी, वह हमेशा हिंसा के साथ सबधित थी। वह सिपाही, जिसने अकेले एक जर्मन चोकी को पकडा, *बड़ा बहादुर था, लेकिन वे छः मृत जर्मन* आदमी भी उसकी बहादुरी के हिस्से थे, वैसे ही उसके फेंके अस्त्र, गोलिया, उसके घाव और अगर वह मरा तो उसकी मृत्यु भी। इसमें हिंसा और बहादुरी अभिन्न थी, और क्योंकि

लड़के बहादुरी की तारीफ करते हैं, हिंसा की भी तारीफ होती थी। युद्ध खतम होते होते हम हिंसा को मनुष्य का एक श्रेष्ठ गुण मानने लगे थे, जिसके बगैर युद्ध जीता नहीं जा सकता था, उसने हमारे मन को अपने काबू में कर लिया—वे बम जो जर्मन शहरो पर झुण्ड के झुण्ड गिरे, सिनेमा में उसके दृश्य ने हमें मोहित किया, उन विस्फोटो के अभ्रभेदी शब्दो को और उसके साथ दल की जो भावना होती थी, उस को हमने प्यार किया। युवको में हिंसा वृत्ति को रोकना क्या कभी सभव है? जब युद्ध के रूप में हिंसा को अधिकृत रूप से उत्तेजना मिलती है।

हिंसा की स्तुति :

युद्ध के समय की पीढी ऐसी एक दुनिया में पला जो हिंसा की स्तुति करती थी। यह अपरिहार्य ही था कि उनमें से कई हिंसक वृत्ति के बन। जहा बन्दूक नही मिली, वहाँ उन्होंने रेजर और चाकू से काम चलाया, लेकिन परिणाम एक ही था। आज भी समस्याओ के निराकण के लिये मारना एक मानी हुई पद्धति है। आपको कुछ पैसा चाहिये तो आपन किसी बूढी को सर पर मार दिया, आपको व्यवस्था और कानून बनाये रखना है तो कुछ हत्यारों को फासी की सजा दी, स्वेज केनाल के बारे में झगडा हुआ तो ईजिप्त के लोगो पर गोली चलायी, आपको राष्ट्रीय स्वतत्रता चाहिये तो आप एक बम डालने के लिये तैयार है, जो आधे लाख लोगो का खात्मा कर देगा। मुझे नही लगता कि आप सरकारी या गैरसरकारी, निजी या सार्वजनिक हत्याओ में फर्क कर सकते है। जहा एक पनपता है तो दूसरा भी पनपेगा ही। हिंसा हिंसा को जन्म देती है।

युद्ध के बाद के सालो में, जब हम किशोरावस्था को पार कर पूर्ण मनुष्यत्व पर पहुच गये, हम में से कुछ लोगो ने इन कल्पनाओ का अतिक्रमण किया। मैं स्वय एक डाक्टर के परिवार का हू और जो घावो की सेवाशुश्रूषा, मरहमपट्टी करते है वे घाव पहुचा नही सकते है। मेरा यह सौभाग्य रहा कि मै ऐसे अध्यापको के सपर्क में आया जो सस्कारसपन्न और मानवीय थे। उन्होंने हमें कोई धर्मोपदेश तो नही दिया, बल्कि अपनी वृत्तियो व आचरणो से सिखाया। मैं इन कल्पनाओ को शका के साथ देखने लगा। मुझे कुछ ऐसा साहित्य भी उपलब्ध हुआ, जिसने मेरी आखें खोल दी।

लेकिन मेरी पीढी के अधिकाश लोग इन कल्पनाओ का अतिक्रमण नही कर सके। युद्ध ने उनकी मानसिक परिपक्वता का रोक दिया, अपने बालिश विचारो को पार करने की शिक्षा मिलने के बदले हत्या को जिन्दगी के एक सामान्य तथा स्वीकार्य हिस्से के तौर पर मानने के लिये वे प्रोत्साहित किये गये।

इस वस्तुस्थिति से दो प्रश्न उठते हैं : क्या यह सच नहीं कि शान्तिकाल में भी, जब ज्यादातर लोग युद्ध को पागलपन मानते है, दुनियाभर में बच्चों को यह नहीं सिखाया जाता कि युद्ध —यानें मानवप्राणियो द्वारा मानवप्राणियों का सगठित तरीके से मारा जाना-एक स्वाभाविक ही नहीं, बल्कि शायद उत्कृष्ट मानवीय अनुभव है? अगर ऐसा है तो बडों के शान्ति कायम रखने के लिये सुविचार पूर्वक बडी बडी योजनाएँ बनाने से क्या लाभ है? जब कि उसी समय आगामी पीढी को युद्ध को स्वीकार करने की शिक्षा दी जा रही है।

निरन्तर प्रचार :

पहले प्रश्न का उत्तर तुरन्त ही मिल जाता है। आज इस राष्ट्र (इंग्लेण्ड) का लडका युद्ध के लिये सतत प्रचार से घिरा हुआ है। थोडे दिन पहले मैं एक वर्ग कमरे क बाहर स्वाध्याय की वेला में घूम रहा था। चौदह-पन्द्रह साल के लडके अपनी किताबो में इतने तल्लीन थे कि जब मै उनके पास से गुजरा तो किसी ने सिर उठा कर देखा भी नही। पच्चीस में से अठारह लडके जो किताबें पढ रहे थे, वे युद्ध के सबध में थी। अगर ये किताबें युद्ध की खराबियो को बताती, तो कोई दोष नही था, लेकिन वे सब की सब उन 'अच्छे पुराने दिनो" की स्तुतियो से भरी हुई थी जब रोमाचकारी वीरकृत्यो से जिन्दगी रुचिकर और उद्देश्य पूर्ण थी। ऐसा लगता है जैसे कि सिनेमा और टेलिविशन भी पिछले युद्ध के वर्णनो से अपने आपको छुडा नही सकते। और आज के बच्चे भी यही समझेंगे-जैसे बीस साल पहले हम समझते थे-कि युद्ध के लिये शासनाध्यक्षो का अनुमोदन है, युद्ध सम्मान्य है, उसे पादरियो का आशीर्वाद प्राप्त है, और प्रादेशिक सेनाओ में वर्दी, रगबिरगी पताकाए और ठाठ-बाट के साथ कवायद करना और इधर से उधर 'मार्च' करना बडा शानदार काम है।

दूसरे प्रश्न का-कि जब अगली पीढी युद्ध को स्वीकार करने के लिये तैयार की जा रही है, हमारी शान्ति की योजनाओ का कोई प्रयोजन है ?-उत्तर है, 'नहीं"। मै यह मानता हू क्योंकि मेरा विश्वास है कि युद्ध अधिकार-प्रमत्त एकाधिपतियो या धर्मान्ध नेताओ या मूर्ख राजनितिज्ञो या अन्धराष्ट्रवादियो के कारण नही होता है, बल्कि वह विश्वभर के अधिकतर लोग युद्ध को एक साधारण घटना मानने के आदी हो गये है, इसलिये सभव होता है।

बच्चो को यह नही बताया जाता कि मनुष्यमास खाना कोई सम्मान्य काम है। कोई बच्चा अपने वर्ग में खडा होकर गर्व के साथ यह कहता नही सुनाई देता कि "मेरे पिताजी आदमियो को खाता है"। *क्या मनुष्य को खाना* निन्दनीय है और मारना स्तुति के योग्य है? बात यह है कि हमारे पालन पोषण और शिक्षा के कारण हमारे मानस हत्या को स्वीकार करने के लिये तैयार हुए है। इससे यही सिद्ध होता है कि युद्ध को रोकने का सब से अच्छा उपाय बच्चो को ऐसी शिक्षा देना है जिससे वे मारना गलत ही नही, असभ्य भी समझें-ऐसा काम जिसे वे स्वय किसी हालत में भी कर नही सकते। इसका मतलब यह नही कि सब बच्चो को शान्तिवादी बनाये जावे, मैं खुद भी शान्तिवादी नही हू। लेकिन मै चाहता हू कि मारने के बारे में आज की हमारी मानसिक वृत्ति को असभ्य समझने की उन्हें शिक्षा मिले; उन्हे सिखाया जाय कि इस स्थिति का कायम रहना कोई जरूरी नही, मनुष्य मारने की अवस्था को भी पार कर सकता है, जैसे उसने मनुष्यमास-भक्षण को पार किया। मै चाहता हू कि बच्चे ऐसी एक दुनिया के दर्शन से प्रेरित हो, जहा समझबूझ कर किसी को मारना पुराना ढग माना जायगा जिसे बीसवी सदी के असस्कृत मनुष्य प्रयोग में लाते थे।

इस कल्पना का-वह कितना भी अव्यावहारिक क्यो न प्रतीत हो-व्यवहार्य रूप दिया जा सकता है। एक स्कूल मास्टर के नाते मैं जानता हू कि जिन्दगी के प्रति एक लडके की वृत्ति उसके मा-बाप और शिक्षको से किस हद

(शेषाश पृष्ठ १९० पर)

पुस्तक परिचय :

आफ् द बीटन ट्रैक

लेखक–विल्फ्रेड वेलॉक, प्रकाशक–सर्वोदय प्रचुरालय, टंजोर, मूल्य तीन रु.

भाई विल्फ्रेड वेलॉक सर्वोदय जगत् के लिये अपरिचित नही। भारत और खास कर गाधीजी की विचार धारा के प्रति उनका बडा आकर्षण है, वे यहा आये थे, १९४९ के विश्वशान्ति सम्मेलन में उन्होने भाग लिया था। योरोप के शान्तिवादियो में उनका नाम प्रमुख रूप से आता है।

प्रस्तुत पुस्तक उनकी आत्मकथा है। ऐसे व्यक्तियो की जीवनी में कतिपय घटनाओ का इतना महत्व नही, जितना कि उनके विचारो के विकास का है। विल्फ्रेड वेलॉक महात्मा ईशु के उन अनन्य भक्तो में हैं, जिन्होने उनके उपदेशा व शिक्षा को अपने जीवन में उतारने का निरन्तर प्रयत्न किया है। उनके विश्वासो की आधारशिला तथा उनकी बहुमुखी प्रवृत्तियो का उद्गमस्थान ईसाई धर्म पर उनकी अविचल श्रद्धा है। इसी कारण से वे अपने जीवन को, गाधाजी क जैसे ही, "सत्य के एक सतत अनुसन्धान" के रूप में देखते हैं। उन्होंने अपने धर्म विश्वास का निचोड दो वाक्यों में पाया "जो अपनी जान खो देते हैं, वही उसको पाते हैं" और "तुम अपनी पूरी आत्मा स और सारी शक्ति स अपने प्रभु को प्यार करो और अपने पडोसी पर अपना जैसा ही प्रेम करो"। इन्ही विचारो से प्रेरणा पा कर उन्होने मानवसमाज की सेवा को ही अपना परम कर्त्तव्य माना और सादगी में जीवन की सच्ची समृद्धि पायी।

विल्फ्रेड वेलॉक का बाल्यकाल ब्रिटेन के एक औद्योगिक केन्द्र में बीता, फिर भी उन्होने बहुत छोटी उम्र में ही निरकुश औद्योगीकरण के दुष्परिणामो को समझा, खास कर उन्होने देखा कि यह तथाकथित समृद्धि मानवीय मूल्यो और सच्ची आध्यात्मिक तृप्ति की अवहेलना करती है। उन्होंने विचारपूर्वक उस समृद्धि का त्याग किया।

शिक्षा के बारे में उनकी मान्यता है कि "सृजनात्मक आत्मप्रगटन से विछिन्न पढाई" काम की नही है, जैसे एडिन्बरॉ के विश्वविद्यालय में उन्हे अनुभव आया। आगे वे लिखते हैं–"चालीस साल बाद जब मैंने इस सिद्धान्त को गाधीजी की बुनियादी तालीम में सुचारुता के साथ रूप दिया हुआ पाया तो मेरे आनन्द की सीमा नही रही। उसका ध्येय मानव के ग्रहण तथा प्रगटन करने की शक्तियों के सुसमंजस प्रवर्तन से समग्र मानव व्यक्तित्व का विकास है। मेरी आशा है कि गाधीजी के बुनियादी तालीम का विचार और पद्धति जो आज भारत में कार्यान्वित की जा रही है, पृथ्वी के कोने कोने में फैल जायगी।" इस प्रसग में स्मरणीय है कि नई तालीम का समाजपरिवर्त्तन के एक कारगर

साधन के रूप में प्रतिपादन करते हुए एक छोटी सी पुस्तिका प्रस्तुत लेखक ने १९५० में लिखी थी जो हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा प्रकाशित हुई है।

भाई विल्फ्रेड की आत्मकथा की यह पुस्तक रोचक तथा शिक्षाप्रद है। जीवन के विविध पहलुओं के बारे में मनन की सामग्री उसमें प्रस्तुत है। जैसे अपनी प्रस्तावना में श्री जयप्रकाशनारायणजी ने लिखा है "हमारी आशा है कि यह पुस्तक इस देश के हरएक विद्यार्थी के हाथ में होगी"।

श्री रामस्वामी और सर्वोदय प्रचुरालय भारत में इसका प्रकाशन कर के हमारी सब की कृतज्ञता के पात्र बने हैं। जा.

(पृष्ठ १८३ का शेषांश)

को दोस्ती का बर्ताव बहुत पसन्द होता है, खास कर उन बडो के साथ जिन पर उनकी श्रद्धा और आदर है। फिर भी कितनी दफा तरुण शिक्षकों से कहा जाता है कि अगर वे अपने गौरव और प्रतिष्ठा का नकली रूप उतार देंगे और अपने असल व्यक्तित्व को प्रकट होने देंगे तो बच्चे उनका आदर नही करेंगे।

यह सोचना गलत होगा कि यह कोई सरल मार्ग है। सच्चे प्रेम का अर्थ है अपने आपको देना और वह एक महंगा व्यापार है। लेकिन आदर का वही मूल्य है और सच्चे गुरु-शिष्य संबंध की वही पवित्रता है। पुराने ग्रीस के तत्वचिन्तकों ने यह सत्य पहचाना था। उन्होंने कहा कि प्रेमियों के बीच ही विद्याध्ययन होता है, दूसरों का अभ्यास ही हो सकता।

(पृष्ठ १८८ का शेषांश)

तक प्रभावित होता है। और मेरा दृढ विश्वास है कि अपनी वृत्ति में बुनियादी परिवर्तन करने से हम युद्ध की विभीषिका को खतम कर सकते हैं। यह प्रक्रिया शुरू करने की शक्ति हमारे हाथ में है, अलबत्ता उसको पूरा करने में कई पीढियां क्यों न लग जाय।

और यह शिक्षा आरंभ करने के लिए आज से ज्यादा अनुकूल परिस्थिति कभी नही थी। आणविक अस्त्रों के जमाने में कोई युद्ध को खेल नही समझ सकता है—प्रश्न आज उत्कट रूप से सामने आया है। इसके अलावा आज सार्वजनिक शिक्षा है जिससे यह शिक्षा भी हर किसी के पास पहुंच सकती है। हम इस समय का और मौके का उपयोग कैसे करें? जो बच्चे मार्गदर्शन के लिये हमारी तरफ देखते है, उन सबको हम यह बताने से आरंभ कर सकते हैं कि मारना ऐसी एक अभद्रता और ऐसा एक पाप है जिसका मनुष्यजाति को त्याग करना चाहिये।

पठनीय पत्रिकाएं

भूदान यज्ञ (हिन्दी साप्ताहिक),
भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक
सम्पादक–सिद्धराज ढड्डा,
पता . अखिल भारत सर्व सेवा सघ,
राजघाट, काशी ।
वार्षिक शुल्क–छ. रुपये

भूमिक्रांति
(सुरुचिपूर्ण सचित्र साप्ताहिक सर्वोदयपत्र)
सम्पादक–देवेन्द्रकुमार गुप्त
पता :–गाधी भवन, यशवत रोड
इन्दौर, म० प्र० ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

साम्ययोग (मराठी साप्ताहिक)
सम्पादक–गो. न. काले
पता : साम्ययोग कार्यालय,
सेवाग्राम [वर्धा] ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

ग्रामराज
सपादक–गोकुलभाई भट्ट
पता : किशोर निवास,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

सर्वोदय (अग्रेजी मासिक)
सपादक–एन् रामस्वामी
सर्वोदय प्रचुरालय, तचावूर

खादी पत्रिका (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–ध्वजाप्रसाद साहु,
जवाहरलाल जैन
पता :–राजस्थान खादी सघ,
पो० खादी बाग (जयपुर) राजस्थान ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

सर्वोदय सन्देश (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–हेमनाथ सिंह
पता :–सर्वोदय साहित्य चौक बाजार,
मुगेर, बिहार ।
वार्षिक शुल्क–एक रुपया

गाधी मार्ग (हिन्दी त्रैमासिक),
सम्पादक–श्रीमन्नारायण
पता :–गाधी निधी,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

मंगल प्रभात (हिन्दी पाक्षिक),
सम्पादक–काका कालेलकर
पता हिन्दुस्तानी साहित्य सभा,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

भूदान (अग्रेजी साप्ताहिक)
सपादक–सिद्धराज ढड्डा
अ. भा. सर्व सेवा सघ, राजघाट, काशी ।

Regd. No. N.-106

आचिनोति च शास्त्रार्थ-
माचारे स्थापयत्यपि
स्वयमाचरते यस्मा-
दाचार्यस्तेन चोच्यते ।

' शास्त्रार्थ का सकलन करता है, लोकाचरण में उसका स्थापन करता है, स्वय भी उसका आचरण करता है, इसलिये आचार्य कहलाता है ।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ
सेवाग्राम, वर्धा
विजया दशमी, १९-११-'६१

सविनय निवेदन--

सन् १९५९ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ और सर्व सेवा संघ का संगम हुआ। उस समय नई तालीम के आगे के कार्यक्रम के लिये मार्गदर्शक उद्देश्यों का कुछ स्पष्टीकरण विनोबाजी ने किया था। उन्होंने कहा कि अब समय आया

१. नई तालीम एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बने।

२. ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य की भूमिका में नई तालीम का नया विकास हो।

३. सर्वोदय का काम करनेवाली संस्थाओं की सब प्रवृत्तियों को नई तालीम का रंग हो।

नई तालीम का नया स्वरूप

नमूना पेश करें, इसकी देश को आवश्यकता है। हमारा कुल काम नई तालीम का काम है, यो समझ कर हम उसे उठावें तो एक बहुत बड़ी जमात हमारे अनुकूल होगी। अपनी सारी संस्थाओं को नई तालीम का रूप देना होगा। शांति-सेना के लिये नई तालीम जरूरी है और ग्राम-स्वराज्य के लिये भी जरूरी है। इसलिये सर्व सेवा संघ की पूरी ताकत उसमें लगे।" इस पृष्ठभूमि में आगे के कार्यक्रम के लिये सप्तविध उद्देश्य सोचे गये, उनमें से ये तीन बहुत महत्व के हैं :--

ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति विनोबाजी ने आरम्भ की उसके सन्दर्भ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने १९५७ में निर्णय किया :--

"पूज्य विनोबाजी के भूदान कार्य ने अब जो ग्रामदान का रूप पकड लिया है, उससे अहिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति का काम प्रत्यक्ष रूप से अमल में लाने के दिन आ गये हैं। अहिंसात्मक क्रान्ति राज्यसत्ता के द्वारा नहीं, किन्तु शिक्षा के द्वारा ही हो सकती है। इसलिये हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का कर्तव्य होता है कि इस क्रांति में यथासंभव सहयोग दे।

पूर्व बुनियादी, बुनियादी और उत्तर बुनियादी तक का अनुभव लेने के बाद और उसकी आवश्यकता राष्ट्र के सामने सिद्ध करने के बाद अब सघ का कर्तव्य है कि इस अहिंसक क्रान्ति में वह श्रद्धा के साथ प्रवेश करे। इसलिये हिन्दुस्तानी तालीमी सघ का भारत भर के सब *नई तालीम के कार्यकर्ताओ से अनुरोध है कि* भूदान यज्ञ मूलक इस अहिंसक सामाजिक क्रांति में इस कार्य का भार जहा-जहा सर्वोदय-मण्डलों ने अपने हाथ में लिया है उनके साथ पूरा पूरा सहयोग दें।"

पिछले दो साल से खादी ग्रामोद्योग के क्षेत्र में भी समग्र दृष्टि से ग्राम आर्थिक सयोजन कैसे किया जाय इसके लिये काफी चिन्तन हुआ है। उस चिन्तन के परिणामस्वरूप ग्राम-इकाई में नयामोड का कार्यक्रम आरम्भ किया जा रहा है। साथ साथ जिसके बारे में भी तीव्र विचार चल रहा है कि हमारे काम में जो कारीगर काम करते है (कत्तिनें, बुनकर आदि) उनका *प्रशिक्षण* कैसे हो और तमाम कार्यक्रम उनके द्वारा कैसे चलाये जावे। स्पष्ट है कि पिछले डेढ दो साल में एक अनुकूल वातावरण तैयार हुआ है जिसमें इस विषय के बारे में आगे गहराई से सोचा जा सकेगा कि सर्वोदय प्रवृत्ति के सब काम नई तालीम के रूप में कैसे चले और रचनात्मक कार्य सकुचित न होकर समग्रता की ओर कैसे बढें।

इस सम्बन्ध में विचार करने के लिये कुछ चुने हुये कार्यकर्ताओ का एक परिसवाद दिसम्बर माह के तीसरे सप्ताह में पूसा रोड, बिहार में बुलाने का सोचा गया है। जाहिर है कि इस परिसवाद में नई तालीम के सब कार्यकर्ता प्रत्यक्ष रूप से भाग नही ले सकेंगे। फिर भी हम चाहते हैं कि इस परिसवाद की चर्चाओ में सब का विचार उपलब्ध हो। इसलिये यह पूर्व सूचना आपके पास भेजी जा रही है। हम चाहते है कि इस सबध में आपका विचार और चिंतन हमको मिले। हमें विश्वास है कि परिसवाद में जो भी चर्चायें होगी और निर्णय लिये जायेंगे उनमें आपका वैचारिक योगदान बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। आपको चिंतन में मदद हो इस दृष्टि से १९५९ के दिसबर में हुए परिसवाद की रिपोर्ट भेज रहा हू। आपके प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में,

आपका

राधाकृष्ण

सह मत्री सर्व सेवा सघ

नई तालीम परिसंवाद

(दिनांक ३ दिसम्बर से ६ दिसम्बर १९५९ तक)

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का सर्व सेवा संघ के साथ संगम होने के पश्चात् १९५९ के अगस्त माह में सर्व सेवा संघ की प्रबंध समिति की जो बैठक सेवाग्राम में हुई, उसमें निर्णय हुआ कि नई तालीम के भविष्य का कार्यक्रम निर्धारित करने के लिये देश भर के कार्यकर्ताओं का एक परिसंवाद सेवाग्राम में बुलाया जाय। यह सोचा गया कि उस परिसंवाद में पिछले २२ सालों के काम का पुनरवलोकन हो और पिछले अनुभव के आधार पर अगले काम का स्वरूप निश्चित करे। उपरोक्त निर्णय के अनुसार दिसंबर तारीख ३ से ६ तक सेवाग्राम में परिसंवाद संपन्न हुआ। परिसंवाद के लिये दोनों संस्थाओं के संगम के प्रस्ताव में उल्लिखित सप्तविध कार्यक्रम चर्चा का मुख्य विषय रहा। सप्तविध कार्यक्रम इस प्रकार है :—

१. नई तालीम एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बने।

२. ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य की भूमिका में नई तालीम का नया विकास हो।

३. केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा नई तालीम का जो काम हो रहा है उसका समुचित मार्गदर्शन।

४. नई तालीम की शिक्षण पद्धति और शिक्षण-शास्त्र का वैज्ञानिक विकास करना।

५. सर्वोदय काम करनेवाली संस्थाओं की सब प्रवृत्तियों को नई तालीम का रंग हो।

६. देश की समग्र जनता को शान्ति की स्थापना के लिए और शांति कायम रखने के लिए तैयार करना।

७. जीवन में मूलभूत आध्यात्मिक श्रद्धा का विकास करना।

परिसंवाद श्री आर्यनायकम्‌जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। मौन प्रार्थना के पश्चात् पूज्य विनोबाजी का संदेश पढ़ा गया :—

"मुझे जो सुनाना था, वह मैं सुना चुका हूं और वही आप लोगों के परिसंवाद का चर्चा विषय है। अब मुझे ही आप लोगों से सुनना है। चित्र साथ है।"

श्री राधाकृष्ण ने परिसंवाद में सम्मिलित होनेवाले कार्यकर्ताओं का स्वागत किया।

पिछले बीस-बाईस सालों में सेवाग्राम में तथा सारे देश में नई तालीम का जो काम चला उसका सिंहावलोकन करते हुए परिसंवाद के अध्यक्ष श्री आर्यनायकम्‌जी ने अपने प्रास्तविक भाषण में कहा, "आज देश के सामने सब से

बडी चुनौती हिंसा की है । ऐसी परिस्थिति में हम नई तालीम के काम पर यहा गहराई से विचार करे क्योंकि देश में अहिंसा का वातावरण स्थापित करने की ताकत नई तालीम के द्वारा ही पैदा हो सकती है और होनी चाहिए।"

नई तालीम का आगे का स्वरूप क्या हो, इस बारे में अपने विचार रखते हुये श्री धीरेन्द्र मजुमदार ने कहा कि नई तालीम का काम इतने सालो तक करने के बाद आज हमें इस बात की जरूरत महसूस होती है कि हम नई तालीम के लिए जनता की सम्मति प्राप्त करे । हम जनसम्मति प्राप्त करेग तभी हमारे काम के पीछे लोगो का आदर रहेगा । हमें चाहिये कि हम नई तालीम को जनता की समस्याओं के साथ अनुबंधित करे । यह भी हमें सोचना होगा कि जो बच्चे आज स्कूल के बाहर है, उन तक हमारी शिक्षा कैसे पहुचे और उन बच्चों को माता–पिता की मदद के काम से हटाये बिना कैसे शिक्षित करे ।

परिसवाद के प्रथम दो दिनो में इस बात पर चर्चा हुई कि देश में आज जो नई तालीम की सस्थाये है, उनके स्वरूप और कार्यक्रम में हम क्या परिवर्तन करे, जिससे कि उन सस्थाओ द्वारा नई तालीम का राष्ट्रव्यापी काम हो । सेवाग्राम नई तालीम के स्रोत का उद्गमस्थान रहा । भविष्य में सेवाग्राम के काम को क्या रूप दिया जाय ताकि यहा नई तालीम के सभी पहलुओ और स्तरो की शिक्षा का एक नमूना खडा हो सके । प्रथम दो दिनों की चर्चा का यह भी विषय रहा ।

चर्चा के प्रारभ में अण्णासाहब ने सेवाग्राम तथा आसपास के गावो के लिये अपनी योजना रखी ।

तारीख ४ दिसबर को सवेरे सेवाग्राम के भावी स्वरूप के सबध में श्री रामचद्रनजी ने चर्चा आरभ की । अुन्होने कहा कि सेवाग्राम में सारे राष्ट्र की शैक्षणिक आवश्यकता को मद्देनजर रखकर बुनियादी शिक्षा का चित्र बड़े पैमाने पर खडा करना है । पूर्व बुनियादी से लेकर अुत्तम बुनियादी तक के कार्यक्रम का जो प्रयोग पिछले बाओस सालो में सेवाग्राम में चला, अुसकी कमियो को समझते हुअे वैज्ञानिक और शैक्षणिक दृष्टि से अुसे परिपुष्ट करना सेवाग्राम के काम का महत्वपूर्ण अग होगा । सेवाग्राम में आज जो प्रवृत्तिया चलती है, अुनको किंचित् भी घटाने की दृष्टि से न सोचा जाय, बल्कि प्रवृत्तियो में समग्रता लाने के लिये अुनमें और कार्यक्रमो का समावेश जरूर किया जाय ।

अिस सबध में अण्णासाहब की योजना का जिक्र करते हुअे अुन्होने कहा कि यह योजना सेवाग्राम में नई तालीम के काम में पूरक रूप में अेक महत्वपूर्ण चीज साबित हो सकती है । लेकिन अुसी को नई तालीम समझना गलत होगा । नई तालीम आन्दोलन व्यापक रूप से चले अिसलिये यह जरूरी है कि सरकार के द्वारा बुनियादी शिक्षा का जो काम चलता है, अुस काम में हर एक पूरा पूरा सहकार दें । अिस पर विचार किया जाय । राजपुरा में यह राय प्रकट की गई थी कि अेक अुच्च स्तर की समिति नियुक्त की जाय जो समय समय पर मिले और देश में नई तालीम के काम की प्रगति का विचार करे तथा नई तालीम का काम ठीक ढग से तथा व्यापक रूप में चले इसके लिये योग्य सुझाव शिक्षक, समाज, जनता और सरकार के सामने पेश करे । श्री जी रामचद्रनजी का यह विचार

रहा कि सर्व सेवा संघ को अब इस विचार पर अमल करना चाहिये।

इसके पश्चात् श्रीमती शान्ता नारुलकर ने नई तालीम के आगे के काम के लिये सुझाव देते हुये कहा, तालीम जीवन का शिक्षण होना चाहिये। गांव में तालीम देने के लिये बाहर से आर्थिक मदद न ली जाय। बाहर से मदद लेने पर गांव उस बंधन से बंध जायेंगे। हमारी योजना अैसी होनी चाहिये जिससे भारत के लाखों गांव प्रेरणा पा सके। शिक्षा में नैतिकता और स्वावलंबन हो, यह जरूरी है।

इसी चर्चा के सिलसिले में श्री नवबाबू ने कहा-सेवाग्राम में नई तालीम के शिक्षण का जो पूरा चित्र रहा है, उसको कायम रखने की जरूरत है। प्रौढ शिक्षा उसके पूरक के रूप में जरूर चलाई जाय, लेकिन वह नई तालीम का पर्याय न मानी जाय। अक्सर हम यह आलोचना करते हैं कि सरकार हमारे साथ सहकार नही कर रही है। हम यह भी चाहते हैं कि हमारी शिक्षा सरकार के नियत्रण से मुक्त हो। हमारे ये विचार आपस में मेल नही खाते। इस विचारसंघर्ष से हमें अपने आपको बचाना है। आज के पढे-लिखे समाज को अपने काम के प्रति आकर्षित करना भी हमारा एक महत्वपूर्ण काम है। शिक्षा का काम करने का अधिकार वैधानिक तौर पर राज्यों का है। राज्य सरकारों को हम अपनी विचारधारा समझा सकें, इसलिये हमें शिक्षित वर्ग में अपने शिक्षण की मान्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। यह तो जरूरी है कि सभी रचनात्मक कार्यों में नई तालीम का रंग चढे, लेकिन इससे अैसा नही सोचना चाहिये कि क्रमबद्ध संस्थागत शिक्षा समाप्त हो जाती है। शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जीवन में कुछ कर डालने का अरमान बचपन में ही पैदा होता है। इसका पूरा उपयोग करने के लिये यह जरूरी है कि देश में पूर्व बुनियादी तालीम को बडे पैमाने पर चलाया जाय।

इस चर्चा में श्री प्रफुल्ल घोष, श्रीमती सुशीला नैयर, श्री श्रीमन्नारायण और श्री जुगतराम भाई ने भाग लिया। श्रीमती सुशीला नैयर ने कहा,-ग्राम के विकास की दृष्टि से अण्णासहब की योजना ठीक है। इस योजना के द्वारा आसपास के गांवों के लिये कार्यकर्ता तैयार होते हैं। उत्पादन के द्वारा शिक्षण का स्तर बढे, यह हमारा लक्ष्य होना चाहिये। भाषा की कोई मुख्य समस्या उन्हें नही लगी। शैक्षणिक शास्त्र का हवाला देते उन्होंने कहा कि अनुकूल और पोषक वातावरण में छोटी उम्र के बच्चे भी दो-तीन भाषायें बिना किसी प्रयास के सीख लेते हैं। यहां भी बच्चों को प्रादेशिक भाषा-मराठी, और आन्तर प्रांतीय भाषा-हिंदी सीखने में कोई कठिनाई नही होगी। उन्होंने मुख्य दो समस्यायें रखी, :-

१. यहां के विद्यार्थी जो बाहर जाना चाहें उन्हें विश्वविद्यालयों में अपना शिक्षण जारी रखने की सुविधा मिलनी चाहिये।

२. कार्यकर्ताओं को सुरक्षितता प्रतीत होनी चाहिये। सवाल पैसे का नही, आज तो शहरों में गांव का पैसा शोषण करके संग्रह किया है।

श्री जुगतरामभाई ने कहा—"सेवाग्राम में आज तक जो चला वह आगे भी चलना चाहिये। यहां के काम में कोअी खामी दीखती है तो अवश्य सुधार किया जा सकता है। जिस

काम को समृद्ध और विस्तृत भी करना चाहिए। आसपास के गावो का भी विकास किया जा सकता है। ऐसी योजना बने जिससे कि सार्वदेशिक स्तर पर काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को यहा से प्रेरणा मिले। अण्णासाहब की योजना में बडे पैमाने में प्रौढ शिक्षा देने की बात का समावेश हुआ है, प्रौढ शिक्षा को ही हम नई तालीम का सर्वस्व न मानें। वह नई तालीम का आधार मात्र बनें।"

श्री श्रीमन्नारायणजी ने कहा—"सेवाग्राम में आज तक जो काम चला उसमें सुधार करने की गुजाइश हो सकती है, लेकिन पिछले काम को अयोग्य मानकर रोक देना ठीक नही है। आज तक जो धारा चली, उसको आगे बढाना चाहिए। हम महसूस करते है कि नई तालीम का प्रचार देश में उतना नही हुआ जितनी कि हम अपेक्षा करते हैं। सब लोग प्रचलित शिक्षा पद्धति से नाराज तो जरूर है लेकिन ऐसा देखने में कम आता है कि लोग बुनियादी शिक्षा का स्वागत करने के लिए तैयार होते हैं। बुनियादी शिक्षा का विकास जो कुठित हुआ है, उसके मुख्य चार कारण है।

१ जैसे कि राष्ट्र-निर्माण के अन्य क्षेत्रो में देखते है, उसमें भी शासन की खामिया है। ठीक तरह से योजनायें बनाई नही जाती। योजनायें बनती है तो उन पर अमल नही होता, प्रशिक्षण केन्द्रो का सचालन अच्छा नही होता। इन सब वजहो से नई तालीम लोकप्रिय नही बन सकी है।

२ प्रात रचना के बाद भी शिक्षण का माध्यम मातृभाषा नही है। कॉलिजो में अग्रेजी माध्यम से ही शिक्षा दी जाती है। गुजरात जैसे प्रात इसके लिये अपवाद हो सकते है, लेकिन अधिकतर प्रातो में अग्रेजी माध्यम का सिलसिला ही चलना है।

३ जो विद्यार्थी बुनियादी शिक्षा सस्थाओ से निकलते है अगर वे किसी विश्वविद्यालय में में भरती होना चाहें तो उनके लिये विश्वविद्यालय के दरवाजे बद हैं। बुनियादी तालीम पाये हुए विद्यार्थी इस वजह से अपनी आगे की शिक्षा के सबध में निराश हो जाते है। बुनियादी शिक्षा के प्रति आकर्षण इसीलिये कम हो जाता है।

४ आम लोगो में बुनियादी शिक्षा के प्रति यह भय है कि बुनियादी शिक्षा में शारीरिक परिश्रम को ही महत्व दिया जाता है। विद्यार्थियो का बौद्धिक स्तर बिल्कुल घटा हुआ होता है। लोगो का यह भी ख्याल है कि यह गरीबो की ही शिक्षा है।"

श्री श्रीमन्जी ने आगे कहा, "सेवाग्राम के काम का कोओी विकल्प हमें नही सोचना है। अिसमें किसी को सदेह नही होना चाहिये कि सेवाग्राम में आजतक जो चलता रहा, उसको आगे बढाना है, और अच्छी तरह बढाना है। बुनियादी तालीम का एक नमूना और एक सर्वांगीण रूप देश के सामने रखने की जिम्मेदारी सेवाग्राम की है। अण्णासाहब की योजना सेवाग्राम के अिस काम के लिये मददगार साबित हो सकती है। बुनियादी तालीम की सस्थाओ का सरकार के साथ जहा सम्पर्क आता है, वहा कुछ बाधायें आती हैं। अिन बाधाओ को दूर करने के लिये अच्छा यह होगा कि सस्थाओ के तथा सरकार के पाच प्रतिनिधियो की एक कमिटी बनें। वह कमिटी तीन महिने में एक बार मिले। बुनियादी तालीम के क्षेत्र में होने-

वाली समस्याओ पर बार-बार विचार करे और उनका समाधान करे ।

"सेवाग्राम के काम को एक अखिल भारतीय स्वरूप हो। जहातक अण्णासाहब के विचारो का सवाल है वह आज की परिस्थिति में आवश्यक और उपयोगी है । वह हमारी बुनियादी शिक्षा की भूमिका तैयार करने में नि सदेह सहायक सिद्ध हो सकती है । वह हमारा एक्स्टेंशन काम सिद्ध हो सकता है "।

ता ४ को, दोपहर में नई तालीम का काम राष्ट्रव्यापी कैसे बने और आज सर्वोदय का काम करनेवाली सस्थाओ पर नई तालीम का रग कैसे चढे, इस पर चर्चा हुई। श्री देवेन्द्र गुप्ता ने चर्चा का आरभ किया । चर्चा के दौरान में सेवाग्राम के बारे में भी जिक्र चली। वल्लभस्वामी ने सदस्यो को याद दिलाई कि विनोबाजी ने यहाँ क्या न हो इस बारे में अपने कुछ विचार व्यक्त किये थे और प्रबध समिति ने अण्णासाहब को यहा का काम विनोबाजी के मार्गदर्शन में करने के लिये सौंपा है। पहले के प्रयोग को सिर्फ दुहराने से काम नही बनेगा । सेवाग्राम के बारे में यह आवश्यक है कि वह आसपास के जिले का क्षेत्र हो। देश के लिये एक आश्वासन का स्थान सिद्ध हो और विश्व के लिये एक श्रद्धा का स्थान बना रहे। श्री लक्ष्मीन्द्रप्रकाश ने मगरौठ के अपने अनुभव बताते हुए कार्यकर्ताओ के सामने नई तालीम की दृष्टि पर जोर दिया। श्री सैयद अन्सारी ने सेवाग्राम की योजना के बारे में विचार प्रकट किया कि वह प्रौढ शिक्षा पर विशेष जोर देनेवाला और सस्था की शिक्षा पर कम जोर देनेवाला ऐसा प्रतीत होता है । दोनो को सतुलित करने की आवश्यकता है। श्री मुनियाडी और श्री हरिहर थत्ते ने ऐग्रो-इडस्ट्रीयल पैटर्न का स्वागत किया कि वह आज के आर्थिक जीवन में एक आवश्यक अग है। श्री रवीन्द्र उपाध्याय ने कहा कि नई तालीम अब उस दिशा में बढें जिससे गाव में तालीम की व्यवस्था कैसी हो इस बारे में गाववाले ही बतायें और उससे शाति और स्वावलबन की क्षमता पैदा हो सके। श्री धीरेन्द्र मजुमदार ने पूसा रोड के प्रयोग का विवरण सुनाया और दुहराया कि आज पाच प्रतिशत जो बच्चे शाला में नही जाते हैं उनकी उपेक्षा नही करनी चाहिए । उनके लिये भी कुछ कार्यक्रम बनना चाहिए। श्री आर. के. पाटील और श्री राधाकृष्णन् ने भी चर्चा में भाग लिया। श्री मनमोहन चौधरी ने सेवाग्राम की योजना पर विचार, शोध और अनुसधान की आवश्यकता बताई । उन्होने कहा नई तालीम का आत्म-प्रकटन का पहलू विकसित करना है। सेवाग्राम एक राष्ट्रीय स्तर की सस्था और सेवा के लिये एक प्रशिक्षण स्थान बनाना चाहिए । वह तो प्रौढ शिक्षा की बात हुई। यह सारी योजना यहा की चर्चाओ की निचोड के साथ विनोबाजी के पास रखने के बाद ही एक अतिम चित्र तैयार हो सकेगा ।

तीसरे दिन प्रात. श्री आर्यनायकम्जी ने पिछले बीस बाईस सालो का सेवाग्राम का इतिहास सबके सामने रखा। देश के अलग अलग कोने से कार्यकर्ता अिस काम के लिये जुटे। दुनिया के अलग-अलग देशो से लोग अिस ऐतिहासिक जगह को देखने आये और कुछ लोगों ने काम में हाथ भी बटाया। दो हजार तक विद्यार्थी भी यहा तैयार हुए। सेवाग्राम के

के काम के लिये इन सब की सम्मति मिलनी चाहिये। सब की राय पूछ लेनी चाहिये।

सर्वोदय का काम करने वाली सस्थाओ पर --खासकर खादी ग्रामोद्योग की सस्थाओ पर-- नई तालीम का रग कैसे चढे अिस विषय का आरभ श्री धोनेजी ने किया। सारे रचनात्मक कार्यक्रम की चर्चा को शुरू करने के बाद उन्होने कहा--बापू को ऐसा लगा कि इन सब कार्यक्रम के बीच एक कडी होनी चाहिये। वह कडी नई तालीम ही है। वह उनकी आखिरी देन है। नई तालीम के कार्यक्रम के पीछे सत्य और अहिसा की भावना और बुनियाद रखी थी। वह हमारे सामने मुख्य दृष्टि होनी चाहिये। इस जड की बात यदि न भूले तो सभी रचनात्मक संस्थाओ में नई तालीम का स्वाभाविक रूप में प्रवेश होगा। मूल दृष्टि आर्थिक और सामाजिक नही, नैतिक हो ऐसा उन्होने कहा।

श्री करणभाई ने रचनात्मक कार्यक्रम को नया मोड देने के बारे में पूसा रोड के काम का हवाला दिया और कहा--अब ग्राम और क्षत्रीय स्तर पर नई तालीम की दृष्टि से सयोजन करना चाहिये। श्री प्रकाश भाई ने भी नये मोड के बारे में अपने विचार प्रकट किये। श्रीमती मालती देवी ने आग्रह पूर्वक कहा कि सेवाग्राम एक विशाल हृदय और उदार भावना की सस्था बनी रहे। डॉ लक्ष्मीपति ने वनस्पति वनम् की आवश्यकता बताओ और गाधी सेना और आरोग्य सेवा बनाने पर जो दिया।

चर्चा के अंत में श्री प्रफुल्ल बाबू ने कहा-- अिन सब चर्चाओ का अंतिम निर्णय देने का दायित्व यदि विनोबाजी का है तो यह परिसवाद भी उनके सामने ही होना चाहिये था।

श्री बनवारीलाल चौधरी ने कहा कि गरीब तभी शिक्षा ले सकेगा जब नई तालीम शिक्षा का माता-पिता पर आर्थिक भार न पड़े। उलटा बच्चे मा बाप के काम में सहायक हो। प्रचलित तालीम में जो अच्छी बाते है वह तो हमें लेनी ही है लेकिन नई तालीम को वैज्ञानिक साधनयुक्त बनाना है, जिससे स्वावलबन सध सके। इसके लिए केवल खेती के द्वारा काम सगठित करने से पर्याप्त नही होगा और उपयोगी वस्तुओ के निर्माण का काम भी हाथ में लेना पडेगा। आज नई तालीम के सामने वर्तमान पद्धति की शालाओ में शामिल होन की या शासकीय सेवा के लिए रास्ता खोलने की भरसक कोशिश होनी चाहिये।

श्री पाटणकर और श्रीमती सरला बहन ने प्रातो में दो-एक विद्यालय ऊचे स्तर पर चलाने पर जोर दिया। सरकार को यदि हम नमूना देते है तो उस से मान्यता मिलती है और व्यापकता आ सकती है।

श्री धीरूभाई देसाई ने कहा कि प्रशिक्षण विद्यालयो को नई तालीम का रग डालने के लिये हमें अच्छे रगरेज देने चाहिये। बुनियादी विद्यालयो का शिक्षण बहुत ही सावधानी से चुना जाय। व्यापक बनाना हो तो सरकार के उच्च अधिकारियो से बातचीत करके एक राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। श्रीमती रमा रुओीया ने कहा कि बुनियादी विद्यालयों को सरकारी मान्यता मिलनी चाहियें। श्री अण्णासाहब ने याद दिलाओ कि सरकार तो अपनी दिशा में योजनायें बना रही है। तृतीय पंच-वर्षीय योजना में शिक्षा को अनिवार्य करती जा रही है। सवाल हमारी अपनी राय और दिशा का ढग स्पष्ट करने का है।

चौथे दिन श्री आर्यनायकम्जी ने बुनियादी शिक्षा का क्रमिक विकास जैसे-जैसे हिंदुस्तानी तालीमी सघ में हुआ वह बताया। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि अभी तक के काम के मूल्याकन के लिए, खास करके उत्तर बुनियादी तालीम के आकडो को लेकर फिर परिसवाद करना चाहिये। हम अपने काम का लेखा जोखा ठीक नही रखते इसलिए उसकी ठीक समीक्षा करने में दिक्कत होती है। नई तालीम का उद्देश्य शिक्षा की पद्धति नही, एक वर्ग रहित समाज की स्थापना करना है और उसके लिए पहली जरूरत यह है कि शिक्षको में उस ढग की वृत्ति और श्रद्धा होनी चाहिए।

श्री राममूर्तिजी ने ग्रामदानी क्षेत्र में ग्राम-स्वराज्य नअी तालीम का विकास कैसे हो सकता है, अुसका चित्र सबके सामने रखा। अपना अनुभव खास करके मुगेर जिले का सब को सुनाया। नअी तालीम के सामने गभीर सवाल सघर्ष का विकल्प ढूढने का है। ग्राम-चेतना, ग्राम-भावना का विकास करने के लिये गाव के स्तर पर सेवा सेना का सगठन करना चाहिये। लोगो को सहकारी शक्ति पर भरोसा बढ़ना चाहिये, एक एक गाव की सेवा सेना बने। शिक्षण, उद्योग, श्रम, मत्रणा और न्याय इन सब से सहकार बढे। सपत्तिवालो को भी सुधार और अभयदान मिले। ट्रस्टीशिप के आधार पर गाव के भूमि-स्वामियो और सपत्तिवालो का दूसरो के साथ समझौता रहे जिसमें लाभ अगर कुछ हो तो पूरे गाव का हो। ग्राम-चेतना, ग्राम-भावना, शक्ति और सगठन से ग्राम-स्वराज्य की दिशा में विकास करना सभव हो सके। यह स्वामित्व विसर्जन की सैवधणिक प्रक्रिया होगी।

श्री करणभाई ने नये मोड की दिशा में पूसा रोड में जो ग्राम-स्वराज्य का काम हो रहा है, उस का उदाहरण दिया। श्रीमती अमलप्रभा दास, श्री नीमाई भाई, श्री दादा भाई नाअिक, श्री पाटणकर और श्री प्रभाकरजी ने अपने-अपने प्रात के ग्रामदानी क्षेत्रो की समस्यायें बताई।

श्री पाटील साहब ने ग्रामदानी गावो की समस्याओ पर चर्चा की और कहा कि वहा एकागी वृत्ति से काम नही होगा। सामुदायिक शक्ति को जागृत करना चाहिये और वह तभी होगा जब कि ग्रामदान में जो मूल विचार है वह लोग समझ ले। इस पर श्री जुगतराम भाई ने राष्ट्रभाषा के विषय में परिसवाद का ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि सर्व सेवा सघ को चाहिए कि वह अग्रेजी का व्यवहार हटाने के लिए देशव्यापी आदोलन चलाये। गुजरात नई तालीम सघ ने अपना एक प्रस्ताव पास किया है। सभी प्रातो को अपना काम मातृभाषा में और केद्रीय सरकार के साथ राष्ट्रभाषा में चलाने के लिए सघ ऊचे अधिकारियो से अपील करे और जनमानस को बदलने की कोशिश करे। एक राज्य में अग्रेजी चले और दूसरे में न चले इससे प्रान्तो में आपसी हीनता की भावना बढती है। श्री अण्णासाहब ने इस सदर्भ में कहा, उत्तर वालों को दक्षिण की एक भाषा सीख लेनी चाहिये। इससे अग्रेजी का सवाल हटाने में मदद होगी।

श्री आर्यनायकम्जी ने परिसवाद का समापन करते हुए विदेशो में अपना अनुभव सुनाते हुए कहा, "मानव जीवन के प्रति हमारे मन में आदर भावना का विकास बहुत आवश्यक है। आज यूरोप में उस विचार से

(शेषाश पृष्ठ १० पर)

परिशिष्ट–१

नअी तालीम परिसंवाद

(दिसंबर १९५९)

चर्चा के निष्कर्ष

१ नई तालीम राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बने तथा शिक्षण पद्धति एवं शास्त्र का वैज्ञानिक विकास हो इस दिशा में आज की नई तालीम सस्थाओ का क्या कदम हो ?

भूदान, ग्रामदान तथा शातिसेना का आरोहण जिस चरण में पहुचा है, वहा अब यह आवश्यक हो गया है कि आन्दोलन की पुष्टि तथा उसमें समग्रता लाने की दृष्टि से नई तालीम को राष्ट्र व्यापी बनने के आदोलन के कार्यक्रम को हाथ में लिया जावे । नई तालीम कार्यकर्ताओं का यह परिसवाद महसूस करता है कि *अब समय आ गया है* कि जब हम नई तालीम के गत बाअीस वर्षों के काम का सिंहावलोकन करे तथा उस अनुभव के आधार पर आगे का कार्यक्रम तय करे ।

अिस दिशा में लोक-समति प्राप्त करना जरूरी है । यह पूरा करने के लिये लोक-शिक्षण का व्यापक कार्यक्रम हाथ में लेना होगा । इसके लिये हमारी रचनात्मक संस्थायें, सर्व सेवा संघ, लोक-सेवक, सर्वोदय मंडल आदि महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकते है ।

सेवाग्राम को इस सदर्भ में एक अति महत्व का हिस्सा लेना है । यह स्थान क्षेत्र के लिये *आशा केंद्र*, देश के लिए प्रेरणा श्रोत एव विश्व के लिये श्रद्धा-स्थल बने ।

विकास :

नई तालीम के विकास के लिये हमें निम्न कार्यक्रम अपनाने होगे ।

जीवन-शिक्षा (प्रौढ-शिक्षा) नई तालीम हमारी आज की सस्थाओ का हल प्रस्तुत करती है । अिस दृष्टि से यह जीवन शिक्षा का रूप ले । तदनुसार नई तालीम का आयोजन क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय आवश्यकताओ को ध्यान में लेकर किया जाये ।

(पृष्ठ ९ का शेषाश)

शिक्षण की व्यवस्था की गयी है । यूरोप, चीन और उसके सभी लोग यह मानते हैं कि समाज के हर व्यक्ति को खाने को मिलना चाहिए चाहे वह श्रम करे या न करे । पारिवारिक भावना का पहला कदम यह है । आज उन देशो में युद्ध का भय है, इसलिये शिक्षा भी भय से प्रेरित होती है । हम को अपनी अहिंसक पद्धति पर डटे रहना चाहिए । अंत में श्री अण्णासाहब ने अपनी ओर से यहा हुई चर्चाओ का स्वागत किया और सब को धन्यवाद देकर सभा की समाप्ति हुई ।

जिस लक्ष तक पहुँचने के लिये कृषि एव समाज की दैनिक माग पूरी करनेवाले उद्योगो के समन्वय के आधार पर समाज के आर्थिक ढाचे का निर्माण हो। जिसमें कृषि और उद्योगो की क्षमता का ऐसा विकास हो कि उसके द्वारा सर्वोदय योजना द्वारा निर्धारित मान प्राप्त हो सके और वह शिक्षा का माध्यम बने।

नई तालीम में सामुदायिक जीवन की स्थापना और उसका विकास करने की क्षमता है। यह नई तालीम समुदाय तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को पूर्ण रूप से साधते हुए जन तांत्रिक मूल्यो को अपनावे।

शिक्षा की व्यवस्था ऐसी हो कि वह वर्ग विशेष की न बने बल्कि समाज के सब स्तरो तक और विशेष कर समाज के गरीब से गरीब व्यक्ति तक पहुचे। यानी वह अन्त्योदय करनेवाली हो।

शैक्षणिक स्तर अथवा मान उच्चतम हो। इसके निमित्त शिक्षणशास्त्र और पद्धति का विकास करने के लिये वैज्ञानिक एव शैक्षणिक उपलब्ध वर्तमान् साधनो का मुक्त उपयोग किया जाय। अहिंसा और विज्ञान का समन्वय साधने की दृष्टि से यह अनिवार्य है।

उपरोक्त बातो को ध्यान में रखकर देश में अलग-अलग स्थानो में शिक्षा के अच्छे-से-अच्छ नमूने पेश करने का सतत प्रयत्न हो। देशव्यापी पैमाने पर ऐसे माडल विद्यालयो की स्थापना की जावे।

सेवाग्राम :

सेवाग्राम में नई तालीम का जो काम गत इक्कीस वर्षो में हुआ है, उसे आवश्यक सशोधनो और पूर्ति के साथ यहा चलाया जावे ताकि पूर्व बुनियादी से उत्तम बुनियादी तक की शिक्षा का पूरा चित्र सेवाग्राम में देश को मिले।

वर्तमान चालू प्रणाली की शालाओ में सब स्तरों पर नई तालीम के आम तौर पर मान्य सिद्धातो को प्रयोग में लेने का प्रयास हो।

राष्ट्रव्यापी :

इस आदोलन को राष्ट्रव्यापी रूप देने के लिये निम्नप्रकार कार्यक्रम अपनाया जाय

समाज के सभी स्तरो तथा शिक्षा शास्त्री, बुद्धिवादी अभिभावको इत्यादि को नई तालीम के लक्षो से अवगत करने का सतत प्रयत्न हो। इस हेतु विचार-गोष्ठी, परिसवाद, सभा-समेलन इत्यादि का आयोजय किया जावे।

अभिभवाको एव आम-जनता का ध्यान नई तालीम की ओर आकर्षित करने एव इसका दर्शन समझाने के लिये व्यापक रूप से नई तालीम की अच्छी बालवाडिया स्थापित की जावे।

अपने बच्चो के लिये नई तालीम का जो स्वरूप हम अपनाते हैं, विश्वास पूर्वक उसे ही हम आम जनता के लिय मानें और उपलब्ध करे।

शासकीय अपेक्षायें :

गणतात्रिक शासन व्यवस्था के सदर्भ में नई तालीम को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए शासन से हमारी निम्न अपेक्षायें हैं -

१ नई तालीम के विद्यार्थियो के लिये उच्च शिक्षा की वर्तमान चालू सस्थाओ में प्रवेश प्राप्त करने के मार्ग खुले हो।

२ गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं को शैक्षणिक प्रयोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहे।

३ नई तालीम से निकले हुए विद्यार्थियों को न केवल शासकीय, बल्कि सेवा के हर क्षेत्र में जाने की कोई रोक न हो।

नई तालीम व्यापक दृष्टि से चले और उस पर समय समय पर विचार विनिमय करके मार्गदर्शन करने के लिए सर्व सेवा संघ की ओर से एक उच्च-स्तरीय समिति का निर्माण हो।

भाषा :

आज देश में राष्ट्रीय शिक्षा और शासकीय मामलों में अंग्रेजी के स्थान और राष्ट्रभाषा के महत्व के बारे में कई समस्यायें आ रही है, इस पर सर्व सेवा संघ की ओर से हमारी नीति क्या हो इसका स्पष्टीकरण किया जाय।

परिशिष्ट २.

(२) सर्वोदय काम करनेवालो संस्थाओं की सब प्रवृत्तियों को नई तालीम का रंग हो।

१. ध्येय की स्पष्टता : हर रचनात्मक प्रवृत्ति का रूप *ऐसा हो कि कार्यकर्ताओं में* काम के पीछे जो सत्य और अहिंसा की दृष्टि है वह उत्तरोत्तर स्पष्ट होती जाय। जो भी रचनात्मक काम है, वे अहिंसक समाज रचना के स्वरूप है, यह बात उनके दिलों में उतरती जाय। इस प्रकार काम करते-करते कार्यकर्ता *के मन में ध्येय की स्पष्टता जागृत होती जाय।*

२. व्यक्ति का शिक्षण : रचनात्मक कार्य का स्वरूप ऐसा हो कि वह व्यक्ति के सतत शिक्षण और विकास का साधन सिद्ध हो। कार्यकर्ताओं का अपने कार्य की पद्धति में विकास होता जाय और उसके पीछे के जीवन-मूल्य भी स्पष्ट होते जाय। इसलिये कार्य जडरूप न होकर करने वालों की सचेतना को बढानेवाला हो और वे उनमें जागरूकता से *अपने में परिवर्तन करने की तैयारी करे।*

३. लोक-शिक्षण : रचनात्मक कार्य का स्वरूप ऐसा हो कि वह लोक-शिक्षण का भी वाहक बने। उसके द्वारा प्रौढ़ों के विचारों का परिवर्तन हो। समाज के मूल्य बदलने चाहिए तथा बालकों की जिज्ञासा जागृत करके उसकी पूर्ति करने का क्रम भी चलना चाहिए। इसके हेतु हमारे कार्यक्रम का संबंध बालकों की शालाओं तथा आम समाज के लोक शिक्षण से आना ही चाहिये। संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के बालक तो नई तालीम की संस्थाओं में जायें *ही यह प्रयास होना चाहिए।*

४ लोकाभिक्रमण की जागृति जागृति के द्वारा लोक-शिक्षण होता जाय और लोक-*सम्मति सारे कार्य को मिलती जाय। इतना ही* नहीं, बल्कि सारा कार्य ही लोकाभिक्रमण से चले।

५ समग्रता की ओर रचनात्मक कार्य ऐसा हो कि वह संकुचित न होकर समग्रतता की ओर बढने का स्वरूप ले। उसमें समाज के सभी पहलुओं का स्पर्श होने की क्षमता पैदा हो सके। उदाहरणार्थ खादी का काम केवल आर्थिक क्षेत्र में सेवा का न रहकर समाज और व्यक्ति की सब समस्याओं को हल करनेवाला बने। चालीसगाव का प्रस्ताव ग्रामभिकाई की ओर बढने का है। उसकी ओर सभी रचनात्मक संस्थायें बढें तथा सर्व सेवा संघ की *प्रबंध समिति ने जो रचनात्मक संस्थाओं को*

प्रारभिक कार्य सुझाये है वे कार्यान्वित करने का पूरा प्रयास चले।

परिशिष्ट ३

३ माह दिसबर में हुअे "नई तालीम" परिसवाद के अवसर पर श्री जुगतरामभाओी द्वारा रखा हुआ मन्तव्य

अंग्रेजी के बारे में नीति :

१ नई तालीम के अनेक तत्व राष्ट्र में श्रद्धा के साथ स्वीकारने योग्य हैं। अग्रेजी का महत्व शिक्षा में से हटाना अुनमें से अक है।

२ लोगो का शासन से अेव विश्वविद्यालयो से यह मागने का पूरा अधिकार है कि नीचे से अूपर तक का सब विषयो का शिक्षण मातृभाषा में ही दिया जाय और राज्य कार्यो के सचालन के लिये और न्यायालयो में मातृभाषाओ का ही अुपयोग हो। शासन की नौकरियो के लिय जो परीक्षाअें ली जायें, वे मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा में ही ली जाय।

३ यह सुधार जो राष्ट्र के विधान में स्वीकार किया गया है और जिसे डॉ० राधाकृष्णन् व युनिवर्सिटी कमीशन जैसे अधिकारी मडल ने भी दुहराया है, अमल में नही लाया जा रहा है। अिसी से जनता की अपन बच्चो के भावी जीवन के सबध में चिता रहना और अग्रजी भाषा अुन्हे सिखाई जाय अैसी अिच्छा रखना स्वाभाविक हो गया है। शासन तथा विश्वविद्यालयो की अुलटी नीति से जन्मी हुओ अिस लोक अिच्छा को लोकमत बताकर सत्ताधिकारी वर्ग शिक्षा में अग्रेजो को कायम रख रहा है। यह दुश्चक्र दिन प्रतिदिन आगे बढ रहा है और अग्रेजी को पक्का बनाने के लिये उसे छोटे बच्चा के शिक्षण की प्राथमिक कक्षाआ तक भी ले जाने का आदोलन किया जा रहा है और उसे लोकमत का नाम दिया जाता है। लेकिन यह सही लोकमत नही है। उपर बताये हुए दुश्चक्र को छेदने से ही सही लोकमत प्रकट हो सकेगा।

४ अग्रेजी को बनाये रखने की इच्छा आजकल दाक्षिणात्य प्रदेशो में व्यक्त की जा रही है, इसका कुछ समाधान शासनो और विश्वविद्यालयो का कार्य मातृ-भाषा में करने से ही हो सकेगा। लेकिन पूरा समाधान तो दाक्षिणात्य भाषाओ को उत्तरी प्रदेशों में आदर के साथ सीखने का भरसक प्रयत्न करने से ही हो सकेगा। महात्मा गाधीजी ने जिस धर्मबुद्धि के साथ हिंदी का प्रचार चलाया था उसी धर्मबुद्धि के साथ दक्षिणी भाषाओं का प्रेम उत्तर में बढाने का कार्य अविलम्ब हाथ में लेना चाहिये।

५ अग्रजी का आश्रय बनाये रखने के कारण देश में विभिन्न विद्याओ की परिभाषा और पाठ्य पुस्तके तैयार करन का प्रयत्न बहुत ही कम मात्रा में चल रहा है। यह प्रयत्न शीघ्रता के साथ हाथ में लेकर खोये हुअे समय का बदला प्राप्त कर लेना चाहिये।

आज तक यह विचार सिर्फ स्थानिक सदर्भ में और राजकीय कारणा को आगे करके निकलता रहा है। राष्ट्रीय दृष्टि से और विशेषत शिक्षा और सस्कृति की दृष्टि से अिसका प्रतिपादन कम हुआ है। अिसका फल कलुषित राष्ट्र-जीवन के स्वरूप में हम भुगत रहे हैं।

सर्व सेवा सघ के द्वारा, जिसने अब नई तालीम का सचालन अपने हाथ में लिया है, राष्ट्रीय स्तर पर अिसका शीघ्र आदोलन शुरू कर दिया जाय अैसी ।

परिशिष्ट–४

(४) नअी तालीम परिसंवाद में

श्री आर्यनायकम्‌जी का

प्रास्ताविक भाषण

इस सिलसिले में नई तालीम का प्रारभ से लेकर अब तक बाईस सालो का सक्षिप्त इतिहास आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूगा। मै यह भी बता दू कि नई तालीम का बीज मेरे मन में कैसे पैदा हुआ। सन् १९१९ में जब मै अिंग्लैंड में पढता था, असहयोग आदोलन पर बापू के लेख पढा करता था। मेरे मन में देश के लिए कुछ करने के विचार अक्सर उठते थे। लदन में जब अर्थशास्त्र के विद्यालय में (स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स) में पढता था तो कई देशो के विद्यार्थी मेरे सहपाठी थे। अध्ययन क बाद परीक्षा का जब मौका आया तो विद्यार्थियो ने परीक्षा की फीस भरी लेकिन चीन के विद्यार्थियो ने परीक्षा की फीस नही भरो। हमें आश्चर्य हुआ। हमारे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि हम तो यहा अनुभव जानकारी और शिक्षण पाने के लिये आय है। स्कूल में हमें वह मिला है। हमें परीक्षा से क्या मतलब अगर हम परीक्षा म शामिल होना चाहे तो ३० पौंड फीस भरनी पडगी। *हमारी दृष्टि में परीक्षा की कोई उपयोगिता नही।* अब हम परीक्षा के वास्ते अपने देश के ३० पौड इग्लैंड को क्यो द? इस घटना का मेरे ऊपर बडा असर पडा और मेरे दिल में नई तालीम की उत्पत्ति यही से हुई।

१९२१ में पेरिस में रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट हुई। अध्ययन के पश्चात् शाति-निकेतन में आकर काम करने का निमत्रण उन्होने मुझे दिया। शाति–निकेतन में काम करने की सलाह दीनबधु अैन्ड्रोज ने भी मुझे दी थी। इग्लैंड से आने पर मै शाति निकेतन पहुच गया। वहा चद बच्चो के शिक्षण की जिम्मेवारी मुझ पर थी। बच्चो के शिक्षण का भार सभालते हुए राष्ट्रीय शिक्षा की कल्पना मेरे दिल में अक्सर उठा करती थी।

उन दिनो बापू ने हरिजन आदोलन शुरू किया। देश में इस आदोलन की खूब चर्चा होती थी। इन्ही दिनो मेरे मन में राष्ट्रीय शिक्षा के विचार जोरो से उठे थे। गुरुदेव ने बापू के पास जाने की सलाह दी। पर ठाकुर ने विदेश प्रवास में जाने का निश्चय किया था। चूकि विदेशो का मुझ अनुभव था, मै भी उनके साथ विदेश प्रवास में गया।

विदेश से लौटन पर गुरुदेव की सलाह के अनुसार मै बापू से पटना में मिला। उसने बाद उनकी लखनऊ कांग्रेस में श्री जमनालालजी से बात हुई और मेरा वर्धा आना तय हुआ। उस समय सेवाग्राम में विद्यालय की कोई रूपरेखा नही थी। इसलिये मारवाडी विद्यालय वर्धा को चलाने की बात आई। तब मारवाडी विद्यालय नवभारत विद्यालय के नाम

से चलाया गया, जिसका मैं कर्ता था। कुछ दिनों के बाद सेवाग्राम आया और नई तालीम के बारे में सोचना विचारना शुरू किया। वर्धा में पहला राष्ट्रीय शिक्षा समेलन हुआ। बुनियादी तालीम के सबध में हरिपुरा में काग्रेस का प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव के अनुसार अखिल भारतीय सस्था के रूप में हिंदुस्तानी तालीमी सघ की स्थापना हुई। यह सस्था बापू के मार्गदर्शन में नयी तालीम का काम तथा प्रचार करती रही। बुनियादी तालीम का पहला ट्रेनिंग स्कूल वर्धा में खुला। विद्यालय को विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त था। जिस वर्धा में बुनियादी तालीम का उगम हुआ, आज उस में एक भी बुनियादी शाला नही है। आज जब यह पूछा जाता है कि बाईस सालो के आस्तित्व में हिंदुस्तानी तालीमी सघने सेवाग्राम मे क्या काम किया? इसके उत्तर में मैं इतना ही कहना चाहूगा कि हिंदुस्तान के विभिन्न प्रातो के शिक्षको को प्रशिक्षण देने का बहुत काम हिंदुस्तानी तालीमी सघ ने किया है। आज हिंदुस्तान भर में १२५ ट्रेनिंग स्कूल हैं, उनका सचालन अधिक तर इन प्रतिक्षित शिक्षको के द्वारा ही हो रहा है। हिंदुस्तानी तालीमी सघ ने इन शिक्षका को बुनियादी तालीम की दिशा दिखाई है। सेवाग्राम में पूर्व बुनियादी से लेकर उत्तर बुनियादी तक का तालीम का ढाचा तैयार किया जो अपने ढग का है। इसके सदध में अवसर कहा जाता है कि क्या ऐसी तालीम अमेरिका, रूस और चीन आदि देशो में है? ऐसी शिक्षा पद्धति अन्य देशो में कतई नही है। हरएक देश का वातावरण, परिस्थिति, आवश्यकताएँ भिन्न भिन्न होती हैं, उनके मुताबिक शिक्षण-पद्धति तैयार होती है। समय-समय पर सुधार सशोधन और परिवर्तन होते हैं। बापू ने भारतीय परिस्थिति को खूब देखा था। यहा की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये उन्होने बुनियादी शिक्षा की देन दी थी। बापू के आदेश के अनुसार बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तीन वार सशोधन हुआ। आज तक सेवाग्राम के बुनियादी विद्यालय से एक सौ ब्यालीस विद्यार्थी शिक्षण पा चुके हैं तथा उत्तर बुनियादी और उत्तम बुनियादी से क्रमश ७० और २८ विद्यार्थी तैयार होकर निकले हैं।

बुनियादी विद्यालयो में रोजाना काम प्रार्थना से शुरू होता है। बापू के जीवन में प्रार्थना और सफाई का विशेष महत्व था। इस वजह से बुनियादी तालीम में दिनो दिन मुख्य चीजो पर खूब ध्यान देने की प्रेरणा उनसे हासिल हुई। हम अपने विद्यालयो में नौकर नही रखते हैं, अपने काम को खुद करके हमने एक नये मूल्य को कायम किया है और बढाया है। जहा तक उत्पादक कामो का सवाल है, खेतीवाडी तथा अन्य उद्योगो का शिक्षण इसके साथ जुडा हुआ है। उन्ही उद्योगो के माध्यम से बच्चो की शिक्षा का आयोजन होता है।

हिंदुस्तानी तालीमी सघ ने प्रत्येक राज्य को समय समय पर प्रशिक्षित शिक्षक प्रदान करके उन राज्यो के साथ शासकीय सपर्क स्थापित किया है। किसी-किसी बुनियादी शिक्षा के स्टॅट्यूटरी बोर्ड भी बने। जैसे बिहार, ओरिसा, बबई और मद्रास। यह सब बापू के जीवन काल तक हुआ। बापू के इशारो पर हमें राज्य सरकारा का सहयोग प्राप्त रहा। विशेषकर बिहार से हमारा बहुत नजदीक का सबध

रहा । लेकिन बापू के जाने बाद हवा का रूख बिलकुल ही बदल गया । तालीम ही नही अन्य रचनात्मक कार्यक्रमो के प्रति भी सरकार की तरफ से हम स्पष्ट अुपेक्षा देखते है । सरकार का सारा काम यान्त्रिक होता जा रहा है । अुसकी सारी योजनाअें नई तालीम के खिलाफ चल रही है । अिस परिस्थिति की ओर मैंने राजपुरा नई तालीम समेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में सकेत किया है । अगर सरकार का यह रूख हो तो जनता नई तालीम को कैसे अपनायेगी ? और जनता नई तालीम के विद्यालयो में अपने बच्चो को भेजेगी अैसी अपेक्षा भी कैसे रखें ?

हमने अिस बात की चिंता नही की है कि सरकार बुनियादी तालीम को किस प्रकार चला रही है । सरकारो की माग के अनुसार हमने शिक्षको को प्रशिक्षण दिया और अिसमें से सतोष माना । इससे अधिक सपर्क सरकार के साथ हुआ नही ।

भूदान–आदोलन की शुरूआत, उसके प्रचार और प्रसार के साथ साथ नई तालीम का क्षेत्र बढता गया । प्रचलित शिक्षा पद्धति को हटाने के सबध में विचार का प्रचार अिस सस्था द्वारा, अन्य सस्थाओ से तथा विनोबाजी से काफी हुआ लेकिन अिसमें हम को सफलता मिली अैसा नही कहा जा सकता ।

बाअीस वर्षो तक नई तालीम का काम करने के बाद आज अुसमें सुधार और शोध का समय आया है, वह विश्वविद्यालय के स्तर पर आयी है । अुसको बढाने और मजबूत करने का समय अब आया है । अिस सदर्भ में हमें याद रखना है कि अब तक जो काम चला, अुसका खतम करने का अिरादा हम न रखें । आज बढाने के लिये जिनकी ताकत है, अुनको यह मौका दें कि अिस काम को वे आगे बढायें । हमारे काम में अिस संस्था को बनाने में अगर असफलतायें मिली तो निराश होने की जरूरत नही दीखती । किसी विश्वविद्यालय को बनाने में सैकडो वर्ष लगते है । शिक्षा–शास्त्रियो का कहना है कि नये ढग के शिक्षण के पूरे तौर पर कायम होने में बीसा वर्ष लगते है । आज आक्सफर्ड,कैम्ब्रिज आदि विश्वविद्यालयो की जो हस्ती है, वह चद वर्षो के परिश्रम से नही बनी है, बल्कि उसके पीछे सैकडो वर्षो की साधना है ।

यहा नई तालीम का काम करने के लिये मैं आया । मेरे कई साथी आये । हमने बुनियादी तालीम का शिक्षण चलाया । अपनी सारी ताकत हमने लगायी । अपनी सारी श्रद्धा और मेहनत के बावजूद भी हममें यह कमी रही कि हम सब पुराने शिक्षण से निकले हुए थे और उस पुराने शिक्षण के सस्कार से मजबूर थे । जहाँ तक बना हमने काम किया, सस्था को चलाया । कई साथी इन दिनो बातचीत के दौरान में सस्था की सफलता का जिक्र करते है, उनका सोचना कि सस्था टूटी लेकिन हमारा यह मानना है कि भले ही हमारा काम कुछ हद तक परिस्थितिवश टूटा हो, अिस काम के प्रति हमारी श्रद्धा और विश्वास टूटा नही है, बल्कि और दृढ हुआ है ।

हिंदुस्तानी तालीमी सघ की बैठक में जो १३ दिसबर १९४७ को दिल्ली में हुअी थी, बापू भी अुपस्थित थे । सस्थाओ के सबध में जब बातचीत हुई तब मैंने बापू से बिदा मागी । मैंने कहा कि आप विस्थापितो को बसाने में लगे है मैं आपका समय लेना नही चाहता । बापू ने कहा तुम मेरा समय लेना नही चाहते

हो लेकिन मैं तुम्हारा समय लेना चाहता हूं। बापू ने मुझे दूसरे दिन ९ बजे बिड़ला भवन में बुलाया। दूसरे दिन नौ बजे ठीक समय पर मैं बापू के पास पहुंचा। बापू ने बड़ी देर तक मुझसे बातचीत की। बापू ने कहा मैं ऐसा नहीं सोचता था कि विनोबा भी नई तालीम के काम से अलग हो जायेंगे। इससे तुमको जानना चाहिए कि नई तालीम अभी जो चल रही है, उसके बारे में पूरा विश्वास और मान्यता मैं अकेला देता हूं। अभी फिल हाल कांग्रेस के मेरे साथी मेरे लिए इस काम को मान्यता दे रहे हैं। इस तालीम पर उनका पूरा विश्वास है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। मेरी गैर-हाजरी में नई तालीम की पूरी जिम्मेवारी तुम और आशा देवी पर ही रहेगी, यह समझकर ही विचार करना है। क्या तुम लोगों में इस काम की पूरी जिम्मेवारी उठाने का विश्वास है? तुम दोनों ने अपनी ताकत लगाकर श्रद्धा से अच्छा काम किया है। अच्छे कार्यकर्ता को कांग्रेस सरकार में अच्छी पदवी दी जा रही है। तुम दोनों को भी यह मौका मिल सकेगा अगर तुम दोनों की इच्छा हो तो इसका प्रबंध किया जा सकेगा।

मैंने कहा कि बापू अपना अध्ययन पूरा करने के बाद मैं गुरुदेव के पास गया। मेरी पसंद का काम मुझे मिला। गुरुदेव के पास से हम दोनों आपकी सेवा में आये। राष्ट्रीय शिक्षा की एक योजना बनाकर उसका काम करने के लिये आपने हमें मौका दिया। आपने हम को प्रेम से निभाया। इस काम के लिये आपका मार्गदर्शन भी मिला। इस काम को हमने जीवन भर के लिये स्वीकार किया है। यह हमारे लिये सौभाग्य की बात है। हमें पदवी का लोभ नहीं है।

तब बापू ने कहा अगर तुम लोगों का ऐसा विचार है तो सेवाग्राम में नई तालीम का काम चलाने के संबंध में मैं कुछ सुझाव देना चाहूंगा। नई तालीम के काम में सरकार तुम से जो भी मदद चाहे जहां तक संभव हो वह मदद सरकार को देना, लेकिन सेवाग्राम के काम के लिये सरकार से आर्थिक सहायता नहीं लेनी चाहिये। आज सरकार अपनी ही होने पर भी सरकार के साथ पैसे का संपर्क रखने पर उसका नियंत्रण मानना पड़ेगा। संस्था को अपना काम चलाने में आज़ादी नहीं रहेगी। संस्था स्वावलंबी हो इसकी खूब कोशिश करना। तुम्हारी कोशिश से जिस दिन संस्था स्वावलंबी हो जायगी उस दिन तुम खुशी से नाचोगे। सरकार का तत्व सैनिक शक्ति पर है। धीरे धीरे सरकार अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की कोशिश करेगी। यह भी संभव है कि सैनिक प्रशिक्षण हर एक शाला में लाजिमी हो जाय। अगर सेवाग्राम की शाला में भी सैनिक प्रशिक्षण देने का सुझाव और अनिवार्यता आ जाय तो शाला को बंद कर देना। शाला में एक भी विद्यार्थी न रहे। ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि सभी कार्यकर्ता भी तुम्हारा साथ छोड़कर चले जाना चाहेंगे। ऐसे वक्त पर गुरुदेव का— "एकला चलो रे" को याद करना और सेवाग्राम में रहते हुए अपनी आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाना। बापू ने फिर कहा सभी रचनात्मक संस्थाओं के एक होने के संबंध में मैं कोई आग्रह नहीं रखता। यह मैं संस्थाओं की इच्छा पर छोड़ देता हूं। लेकिन मेरी राय है कि आश्रम और तालीमी संघ एक हो। इसकी व्यवस्था के लिये मैं २ फरवरी के दिन सेवाग्राम आ रहा हूं। बापू को यह कहते सुनकर मैंने आश्चर्य से पूछा कि अगर आप सेवाग्राम आ

रहे हैं तो हम विस्तार से बातचीत सेवाग्राम में भी कर सकते हैं। यह प्रश्न सुनकर बापू जरा सहम गये। बापू के चेहरे पर ऐसी करुणा और ऐसी दीप्ति मैंने देखी जो शायद ही मैंने इसके पहले देखी थी। मुझे ऐसा लगा कि पिता अपने पुत्र से आखिरी वचन बोल रहा है। बापू ने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा कौन जाने कल क्या होगा। इसीलिये मैंने अभी तुम से विस्तार से बातचीत की।

११ बज चुके थे। बापू ने कहा–नायकम् मैंने इन दिनो लम्बे समय तक बातचीत करना छोड दिया है। लेकिन नई तालीम के काम के प्रति मेरी बडी श्रद्धा है इसीलिये मैंने इस बातचीत के लिए इतना समय देना जरूरी समझा।

बापू को मैंने प्रणाम किया। उनसे आशीर्वाद लेकर बाहर आया। बापू के साथ यह मेरा आखिरी दर्शन था।

आज देश के सामने सब से बडी चुनौती अहिंसा की है। देश में अहिंसा का वातावरण बनाने और कायम करने की ताकत नई तालीम के द्वारा पैदा होनी चाहिये। आज हम देखते है कि सरकार दिन ब दिन सैन्य शक्ति की ओर बढ रही है, स्कूल और कॉलेजो में सैन्य शिक्षण बढता जा रहा है। कही कही तो वह अनिवार्य बन गया है। सरकार की तृतीय पचवर्षीय योजना में सेना के ऊपर बहुत बडा खर्चा होगा। ऐसी स्थिति में हम नई तालीम के काम पर गहराई से विचार करे और उसको मजबूत बनाने में अपनी शक्ति लगायें ऐसी मेरी आप लोगो से विनय है।

परिशिष्ट ५.

श्री धीरेन्द्रभाई मजूमदार का भाषण

श्री राधाकृष्णनजी ने अिस परिसवाद की आवश्यकता के बारे में अभी बताया है। श्री आर्यनायकमजी ने पिछले २२ सालो का अितिहास हमारे सामने रखा है। अुसमें अब तक के काम के बारे में काफी जानकारी हुअी। काँग्रेस का प्रस्ताव पास हुआ। केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारो ने बुनियादी शिक्षा को मान्यता दी, सरकार ने शिक्षा में अुत्पादक श्रम को स्वीकार किया। अिस तरह हमें सरकार की सम्मति मिली। श्री आर्यनायकमजी ने बताया कि सरकारी मान्यता तो मिली है-पर आज जो अुनका काम चल रहा है अुससे लोगो को सतोष नही है। कुछ राज्यो में अच्छा काम भी चला है। लेकिन मूल बात यह है कि आज जनता में अिस तालीम के प्रति रूचि जाग्रत *नही हुअी है। सर्व सेवा सघ और तालीमी* सघ के सगम के समय अिस बात पर जोर दिया गया कि नई तालीम एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बने। उसके लिये उस प्रस्ताव में सप्तविध कार्यक्रम की एक मोटी रूपरेखा भी बतायी गई है।

सरकार ने नई तालीम के सिद्धात को मान्य किया है। वह सही है, लेकिन साथ यह भी सही है कि जनता ने इसे मान्य नही किया है। कोई भी चीज राष्ट्रव्यापी तभी बन सकती है जब व्यापक लोक–समति मिले। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि हमारे काम की दिशा पहले लोक–समति प्राप्त करने की ओर हो। अर्थात हमारी तालीम की पद्धति, योजना तथा आयोजन लोगों के लिये उपयोगी

है ऐसा वे महसूस करें। शिक्षा-शास्त्री चाहे जितना इस तालीम को उच्च-कोटि का मानें जब तक लोग इसे अपने समृद्ध जीवन की आकांक्षा पूर्ति के माध्यम के रूप में नहीं देखेंगे, तब तक इसके लिये व्यापक लोक-समति नहीं मिल सकेगी।

अतएव बापूजी ने जो कहा था कि पांचों अुंगलियों में शिक्षण की पूरी संभावना भरी है। व्यापक जनता के जीवनक्रम को ऊपर उठाने के लिए इस तत्व को जनता के बीच सिद्ध करना होगा।

खादीग्राम में काम करते समय अेक बार वहां बिहार के बुजुर्ग नेता स्वर्गीय श्री अनुग्रह नारायण आये थे। वहां के काम से खुश होकर वे पुरानी तालीम की आलोचना करने लगे। मैंने कहा—बाबूजी राष्ट्रपति से लेकर सभी लोग और आप लोग जो राज्य सरकारें चला रहे हैं, वे भी अिस शिक्षा को बुरा कहते हैं। फिर अिसे चला कौन रहा है? अुन्होंने मुसकरा कर अेक महत्व की बात कही। अुन्होंने कहा कोअी चला नहीं रहा है बल्कि चल रही है। मैंने तुरत अुनका इशारा समझ लिया। अुसका मतलब था कि चूंकि सारी जनता अिसे चाहती है, अिसलिये चल रही है।

सवाल यह है कि जनता क्यों चाहती है? अिसलिये कि अुन्हें पढ़ने से नौकरी मिलती है और परिवार में आमदनी बढ़ती है। अर्थात् समृद्ध जीवन की आकांक्षा की पूर्ति होती है। तो स्पष्ट है कि यद्यपि हमें काफी शिक्षा शास्त्रियों की मान्यता है फिर भी देश की जनता की समति नई तालीम के लिये नहीं है।

हम खेती, ग्रामोद्योग आदि की मार्फत शिक्षा देना चाहते हैं। नौकरी के लिये कुदाल और चरखे का क्या स्थान है। तो अगर नई तालीम की नौकरी के पक्ष में लोक-समति नहीं मिल सकती है, अत: सोचना होगा कि क्या नई तालीम आज जनता जितनी मेहनत करके पैदा करती है अुससे कम मेहनत में अधिक पैदावार दिला सकती है? अगर हमारी तालीम यह सिद्ध कर सके तो वह जनता की आकांक्षा की पूर्ति की दिशा में प्रत्यक्ष प्रदर्शन होगा। लेकिन आज हम अपनी तालीम में से जनता को यह विश्वास दिलाने में कामयाब नहीं हुअे हैं। अिसके लिये हमें अपना पुरुषार्थ बढ़ाना होगा—अपने हाथ से पैदावार बढ़ानी होगी और फिर गांव-गांव में जनता के नित्य कार्य में शामिल होकर अुसमें से शिक्षा निकालनी होगी।

अबतक २२ वर्षों से जो काम हुआ है वह अेक अध्याय हुआ। अुससे हमने सरकार तथा शिक्षा शास्त्री के मानस पर शिक्षा में श्रम तथा प्रत्यक्ष कार्य के विचार को प्रविष्ट कराया। अब हमें जन-जन में प्रविष्ट होकर पूरे जीवन क्रम में शिक्षण के विचार तथा पद्धति को दाखिल करना है।

वस्तुत अब तक हमने जो शिक्षण का काम किया है, चाहे वह पुरानी तालीम हो, चाहे नई तालीम कुल मिलाकर वह एक विशिष्ट वर्ग का शिक्षण रहा है। अभी श्री *आर्यनायकम्जी ने कांग्रेस के प्रारंभिक प्रस्ताव* को सुनाया। नई तालीम के उद्देश्य को बताते हुए प्रस्ताव में कहा गया है कि कांग्रेस जनता के लिये शिक्षण चाहती है। उसमें मास एज्यूकेशन कहा गया है, क्लास एज्यूकेशन नहीं। बताइये, १४ साल तक के कितने बच्चे आज पढ़ते हैं। मुश्किल से ५ प्रतिशत होंगे। तो इस नये अध्याय में ९५ प्रतिशत

लोगों की फिक्र करनी होगी। इसका क्या कार्यक्रम होगा, क्या पाठ्यक्रम होगा, कैसी पद्धती होगी यह सब सोचना होगा।

यह ठीक है कि शुरु करने के लिये एक घटे की पाठशाला और एक घटे के महाविद्यालय की बात हम करते हैं लेकिन क्या इतनी ही हमारी नीति और शिक्षा पद्धति होगी। आज हम समान अवसर तथा सामाजिक न्याय की बात करते हैं। उसकी क्या पद्धति होगी। क्या ५ प्रतिशत के लिये ६ घटे की पाठशाला और ९५ प्रतिशत के लिये अेक घटे की पाठशाला चलाने पर ये भावनायें प्रकट हो सकेगी। अगर हमें वास्तविक समान अवसर तथा सामाजिक न्याय पर आना है तो अिस ९५ प्रतिशत जनता को जो अपने जीवन सघर्षो के दैनिक कार्यक्रम से फुरसत लेकर पाठशाला में बैठने की परिस्थिति में नहीं है, अुनका ८ घटे का शिक्षाक्रम कैसे चलेगा, अुसकी पद्धति निकालनी होगी और राष्ट्र की ९५ प्रतिशत जनता का ध्यान और साधन इस चेष्टा में लगाने होंगे। अगर भैंस चरानेवाला लड़का भैंस की पीठ पर से अुतर कर पाठशाला में जाने में असमर्थ है तो हमें अैसा अुपाय ढूढना होगा जिससे भैंस की पीठ पर से भी हमारी पाठशाला दिखाई दे। अर्थात् बच्चो को अपने काम पर रहते हुअे शिक्षा प्राप्त हो सके। हम अिस परिस्थिति का मुकाबिला कर सकेंगे तभी नई तालीम को लोक-समति मिल सकेगी। मुझे अुम्मीद है कि अिन चार दिनो के परिसवाद में इन तमाम प्रश्नो पर कुछ-न-कुछ स्पष्ट दिशा निकाल सकेंगे।

लगते हैं और सेकन्डरी स्कूलो में अपनी पढाई जारी रख सकते हैं। विदेशी भाषा का पढना मनोरंजक बनाने के लिये कई साधन इस्तेमाल किये जाते है, जिनमें दिखानेवाली व यान्त्रिक चीजें भी होती है। अनेको स्कूलो में टेप रेकार्डर होते हैं जो पाठो को विद्यार्थियो के सामने सुनाते हैं। शुद्ध बोलनेवाले विशेषज्ञ ही बोलते हैं। शब्दो, वाक्यो आदि को बार-बार कहने से–जिनका बिलकुल शुद्ध तरीके से उच्चारण किया जाता है–बच्चो को शुद्ध उच्चारण करने को प्रेरित करते हैं। बच्चो के लिये उपयुक्त कहानिया, कवितायें, जो शुद्ध तरीके से बोलना सिखाती हैं, उनके सामने सुनाई जाती है। अध्यापक नये शब्दो और वाक्यो का अर्थ समझाता जाता है।

बुडापेस्ट के अेक स्कूल में अध्यापकों और विद्यार्थियो ने मिलकर अेक इलेक्ट्रोमेगनेटिक बोर्ड बनाया है, जिसमें अनेको बल्व लगे हैं जो बटन दबाने से जलते हैं। अध्यापक अेक शब्द को छोडकर एक जुमला लिखता है और छूटे शब्द को विद्यार्थी बताते हैं। जो बच्चा ठीक शब्द बता देता है, वह दबाने का हक प्राप्त करता है। जो नही बता पाता उसे खेल से हटना पडता है। अंग्रेजी के विद्यार्थी पहेलिया याद कर लेते हैं, गुब्बारे ले लेते हैं और पाठ के समय अंग्रेजी खेल खेलते हैं। वह आस्ट्रेलिया के भौगोलिक बातें पढ़ते है, इग्लैण्ड के रीति रिवाजो या महापुरुषो के जीवन से परिचय प्राप्त करते हैं, जैसे अब्राहम लिंकन। क्लास में सारी कार्यवाही अंग्रेजी में होती है। इनमें हगेरियन भाषा का इस्तेमाल नही होता।

हगरी की सरकार का शिक्षा विभाग भाषायें सिखानेवाला एक सचित्र मासिक पत्र अंग्रेजी, रूसी, जर्मन तथा फ्रेंच मे प्रकाशित करता है। यह विद्यार्थियो में अत्यधिक लोकप्रिय है। प्रसिद्ध महाग्रन्थो का सरल रूप, कहानियाँ, हास्यचित्र आदि जो इसमें प्रकाशित किये जाते हैं, स्कूलो में विदेशी भाषायें सीखने को प्रोत्साहन देते हैं। यह पत्र इतना लोकप्रिय है कि इस समय वह ८०,००० प्रतियो में छपता है।

अगले वर्ष यहा विद्यार्थियो के लिये विशेष प्रकार से तैयार किये हुये अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि के कोष प्रकाशित किये जायेंगे। जो विद्यार्थी विदेशो में पत्रव्यवहार के द्वारा मित्र कायम करने के लिये उत्सुक हैं, उनके लिये अलग से छोटी छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित की गई हैं। इनमें आम प्रचलित वाक्यो को दिया गया है। जिनसे हजारो विद्यार्थियो को सहायता मिलती हैं, जब वह अपने कलम के दोस्तो को लन्दन, पैरिस, बर्लिन, मोस्को आदि में पत्र लिखते हैं।

इस प्रकार बच्चो के लिये विदेशी भाषायें सीखने का कार्य सरल हो जाता है और उन्हे उसमें रुचि उत्पन्न हो जाती है, जो उन्हें उनका अच्छा ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करता है। जो कई भाषायें जानते हैं उनको वेतन आदि अच्छा मिलता है और तरक्की की सुविधायें भी अधिक होती हैं।

क्या भारत में भी इस प्रकार के ढग अपनाकर हम यह अति कठिन मालूम पडनेवाले कार्य को आसान और व्यावहारिक रूप नही दे सकेंगे?

नई तालीम जगत्

उन दिनो श्रम भारती के निकट लालमटिया गाव में सस्था की शिक्षिकाओ द्वारा बालमदिर चलाया जा रहा था। गाव के बच्चो के साथ सस्था के कार्यकर्त्ताओ के बच्चे भी शरीक होते थे। भयकर अभाव की जिन्दगी और शून्य चेतना के कारण लालमटिया गाव के बच्चों और श्रम भारती के बच्चो के बौद्धिक स्तर, जिज्ञासा वृत्ति, निर्भयता आदि गुणो में असमानता स्वाभाविक थी। लेकिन सबसे बडी जो समस्या थी वह यह कि इन नादान बच्चो में वर्ग भेद की भावना गहरी थी। इसी कारण कुछ दिनो बाद दोनो क बच्चो के शिक्षण की अलग-अलग व्यवस्था करनी पडी। सभवत माना गया कि हमारे (कार्यकर्ताओ के) बच्चो का संस्कार मध्यम वर्ग का है, निम्न वर्ग के साथ रखने पर इनका व्यक्तित्व विच्छिन्न होगा।

वर्ग निराकरण के लिए जब हम नई तालीम के क्रातिकारी स्वरूप की कल्पना करते है तो मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या हम अनुत्पादक वर्ग के क्रातिकारी शोषण मुक्त जीवन के अभ्यास के बिना परिस्थिति की वास्तविकता तक जा पाते है?

गाधीजी ने कहा था कि जीवन परिवर्तन के लिए उत्पादन के साधनो को विकेन्द्रित होना चाहिए। और इसी दिशा में चर्खा हमारे सामने प्रतीक के रूप में आया। चूकि हम शिक्षण द्वारा क्राति की कल्पना करते है इसलिए विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति नई तालीम की मूल पृष्ठ भूमि है। इस मूल मान्यता के आधार पर आज हम उस जगह पहुच गए है जहा से नई तालीम में प्राण भरने के लिए विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति दवारा स्वावलम्बी उत्पादक जीवन अनिवार्य है। क्योकि इसके अभाव में हम अपनी वह विशिष्टता कायम रखते है जिसके आधार पर एक अलग वर्ग के रूप में हमारा अस्तित्व सुरक्षित है। इस प्रकार एक सामान्य और दूसरा विशिष्ट जन का भेद बराबर बना रहता है।

सामान्य नागरिक जीवन के अभाव में जीवन शिक्षण नही हो सकता और अपनी विशिष्टता के मूल्य के रूप में बिना उत्पादन किए भी समाज से निश्चित जीविका प्राप्त करने वाले (अपवादो को छोडकर) विशिष्ट व्यक्ति सामाजिक क्राति की शक्ति नही पैदा कर सकते।

क्या वर्ग निराकरण के हमारे सारे प्रयासो के बावजूद चूकि जीविका का आधार उत्पादक श्रम नही था, ललमटिया गाव के बालमदिर में हमारी असफलता का उपर्युक्त उदाहरण उक्त कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नही है?

आज जब हमें सर्वोदय आन्दोलन में लगे नई तालीम को मानन (क्यो कि सर्वोदय

कार्यकर्ता नई तालीम का विचार नही मानता, यह सोचना ही गलत होगा) वाले साथियो, कभी कभी बुजुर्गों से भी नई तालीम के प्रति असतोप की बात सुनने को मिलती है तो कुछ आश्चर्य के साथ उलझनें भी वढ जाती हैं। अक्सर ये विचार दुहराये जाते हैं :—

चूकि सस्थाए बच्चो के लिए स्वाभाविक *स्थान नही होती*, इसलिए *सस्था की* चहार दिवारी में जीवन शिक्षण नही हो सकता।... नई तालीम के अस्पष्ट स्वरूप के कारण बच्चे की प्रगति रुक जाती है। ... नई तालीम गाव में ही हो सकती है जहा बच्चे की स्वाभाविक जिन्दगी है।

अभी हम कार्यकर्त्ता और उनके बच्चो को सामने रखकर सोच रहे हैं। निश्चित रूप से बच्चो के माता .पिता की स्वाभाविक जगह सस्था नही है इसलिए बच्चों की भी नही हो सकती। तो फिर बच्चो की स्वाभाविक जगह कहा हो सकती है? पारम्परिक स्कूल और कालेज? जहा हम नई तालीम से निराश होकर अपने बच्चो को भेजते हैं। क्या इस प्रकार हम अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होते हैं? जीविका की तलाश में आज लगभग हर पढालिखा आदमी अपने स्वाभाविक स्थल को छोडकर नई जगह, नई परिस्थिति को स्वीकार करता है। और उनके बच्चो को कथित अस्वाभाविक स्थल में ही रहना पडता है। ऐसी हालत में उस अस्वाभाविक परिस्थिति को स्वाभाविक बनाने और उसमें से जीवन शिक्षण की खोज की जिम्मेदारी क्यो हमारे ऊपर नही आती? और अगर फिर से इस पर सोचे तो क्या यह 'अस्वाभाविक' स्थल की समस्या हमारी अपनी (सरक्षक के) समस्या पहले और बच्चा की समस्या वाद में नही है? क्या वास्तव में यह जीवन परिवर्तन की समस्या नही है? और इस समस्या का हल करने की यानी नई तालीम के स्वरूप को स्पष्ट कर बच्चो को प्रगति के पथ पर लाने की जिम्मेदारी हमारी अपनी नही है? यह तो रही कार्यकर्त्ताओ के बच्चो के शिक्षण की समस्या, जिनकी जिन्दगी ही वास्तव में अस्वाभाविक है।

अब हम लोक शिक्षण या सामान्य नागरिक के बच्चो, प्रौढो की समस्या पर सोचे। निश्चल रूप से गाव-नगर यानी सामान्य समाज में ही स्वाभाविक परिस्थितियो के बीच इसका हल निकल सकता। तभी आन्दोलन जन आन्दोलन का रूप ले सकता है। प्रश्न यह उठता है कि इस समस्या का हल ढूढने वाला कौन हो? हम सामान्य कार्यकर्त्ता क्या करे? सस्था की सीमा के बाहर गाव में भी अगर हमारी जीविका कही बाहर से आती है, किसी भी निधि से मदद लेते हैं, तो बावजूद सस्था की सीमा से बाहर होने के, हम गाव के सामान्य नागरिक न होकर कुछ विशिष्ट जन होते हैं। क्योकि हमारो जीविका का स्रोत वह नही होता जो गाव के सामान्य नागरिक का है। और परिणाम स्वरूप हम गाव में भी अपने अस्तित्व से जुडी सस्था की चहार दिवारी से मुक्त नही हो पाते। हमारे लिये वह गाव भी 'अस्वाभाविक स्थल' हो जाने की वजह से जीवन शिक्षण का स्वरूप नही निकल पाता।

ऐसा लगता है कि जिन समस्याओ का और जिनकी समस्याओ का हल हम ढूढना चाहते हैं, जिस *समाज* को और *जिनके जीवन* को हम बदलना चाहते हैं उनके जीवन के साथ

समरस होने के लिए और अपने जीवन और स्थल को स्वाभाविक बनाने के लिए हमें उन्ही की जीविका के आधारो को अपनाना पडेगा।

अब तक के अनुत्पादक जीवन को एकाएक गाव में जाकर स्वावलम्बी बनाना सभव नही जान पडता। उसके लिए अनुकूल परिस्थिति और साधनो की आवश्यकता होगी, जहा और जिसके द्वारा हम खुद अपने को इस योग्य बना सके। क्या सर्वोदय विचार की सस्थाओ से इस प्रकार की अपेक्षा की जा सकती है? जहा की एक मात्र प्रवृत्ति उत्पादक जीवन की साधना हो और जो बाहरी सहायता (सबसीडी) से मुक्त हो। जिसे हम अन्य सभी सामान्य जीवन की समस्याओ से युक्त सिर्फ विशेष उत्पादन के साधनो के अतिरिक्त विचार की शक्ति वाले उत्पादको का गाव कह सके। जहा बाहर के भी कुछ बच्चे आकर उसे अधिक-से-अधिक अपना स्वाभाविक स्थल महसूस करे और उस जीवन से दीक्षित व्यक्ति अपनी जीविका अपनी उत्पादन क्षमता से प्राप्त कर गाव में सामान्य लोगो के बीच रहकर क्राति की आकाक्षा पैदा कर सके।

ऐसे कुछ प्रयोग देश भर में हो सकते है। अवश्य ही इनका आकार लघु होगा, कार्यकर्त्ताओ की सख्या कम होगी और इसलिए हम इन्हे आत्यन्तिक साधना भी कह सकते है। लेकिन क्या क्राति के इतिहास में ऐसी कठोर साधना के बिना ही सफलता का कोई उदाहरण मिलता है?

विगत मई, ६१ से इस प्रकार का कुछ प्रयास हम श्रम भारती में कर रहे है, यद्यपि यहा की एक मात्र प्रवृत्ति यह नही है। अन्यत्र कहा क्या हो रहा है, हम यह जानने को उत्सुक है। उससे हमें सहारा मिलेगा।

रामचद्र
श्रमभारती,
पोस्ट खादीग्राम,

(पृष्ठ १५० का शेषाश)

जनता की दृष्टि में सार्थक होगा और जनता इस विद्यालय से नया जीवन प्राप्त करेगी। यह मेरी समझ में प्रशिक्षण के क्षेत्र मे नई तालीम के तत्व लागू करने की दिशा में एक ठोस कदम होगा। मूल तत्व को सामने रखकर उत्पादन और सेवा के माध्यम से प्रशिक्षण की योजना तफसील के साथ बनाई जा सकती है।

सुधार के तात्कालिक सुझाव

हमारा निश्चित मत है कि जब तक हम लोग नई तालीम की प्रक्रिया से प्रशिक्षण नही चलायेंगे तब तक हमें ग्रामीण समस्याओ का मुकाबला करनेवाले तेजस्वी युवक नहीं मिलेगे। लेकिन हम यह जानते हैं कि तत्काल हम उस स्थिति में नही पहुच सकते, इसलिए हमें धैर्य के साथ मौजूदा स्थिति को अपेक्षित दिशा में मोडने के दृष्टि से कुछ आवश्यक सुधार तुरत करने चाहिए।

अभी जो अभ्यासक्रम चल रहा है उसके तीन मुख्य अग है, (क) तात्विक ज्ञान (ख) उद्योगों का प्रशिक्षण (ग) क्षेत्र में प्रत्यक्ष कार्य। प्रत्यक्ष कार्य की कल्पना अभी जोडी ही गई है, उसका कोई अनुभव हाथ नही आया है। लेकिन जहा तक योजना का सम्बन्ध है तीनों अगो को मिलाकर काफी सपूर्ण चित्र बन जाता है।

कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण का सवाल

राममूर्ति

आज की परिस्थिति में गांवों में कार्यकर्त्ता को समाज परिवर्तन और मनुष्य निर्माण का काम एक साथ करना होता है जो कि सामान्य कार्यकर्त्ताओं के वश के बाहर की बात है। कम-से कम उनसे नेतृत्व की अपेक्षा नहीं रखी जा सकती। वास्तव में स्थिति ऐसी है कि जिस व्यक्ति को हम सामान्यत: कार्यकर्त्ता की संज्ञा देते हैं, वह अपने काम के लिए उपयुक्त नहीं सिद्ध हो रहा है। और जब से नये मोड में ग्राम इकाइयों के समग्र विकास की बात चली है तब से यह बात और अधिक स्पष्टता के साथ सामने आ रही है कि समग्र कार्यक्रम के लिए समग्र कार्यकर्त्ता चाहिये।

उस समग्र कार्यकर्त्ता की अर्हताएं क्या होंगी ? क्या वह व्यक्ति ऐसा नही होगा जो (क) अपने नायकत्व के गुण से जनता में आशा और उत्साह का संचार कर सके, (ख) जिसमें लोक शक्ति को जगाने और सगठित करने की शक्ति हो, (ग) जो अपने सक्षम उत्पादक श्रम द्वारा जीवन के नये मूल्यों का उदाहरण पेश कर सकें और (घ) जो अपनी कार्य पद्धति से लोकशिक्षण की प्रक्रिया को बडे पैमाने पर लागू कर सकें ताकि जनता को यह प्रतीति हो कि विकास का काम शासन और आदेश का नही है बल्कि शिक्षण और सहकार है।

आज हमारे विद्यालयों से जो कार्यकर्ता निकल रहे हैं उनका ऐसा समग्र समन्वित, व्यक्तित्व नही है। हमलोग जो शिक्षक हैं उनका भी नहीं है। हमारे विद्यालयों में चलने-वाले अभ्यासक्रम में भी शायद समग्र समन्वित व्यक्तित्व की कल्पना नही की गई है। इसलिए श्रमभारती में हमलोग इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अब अभ्यासक्रम में इधर उधर कुछ पैवन्द जोडने से काम नही चलेगा। जरूरत इस बात बात को है कि प्रशिक्षण के सम्बन्ध में बुनियादी परिवर्तन की बात सोची जाय। अगर हम व्यापक बनने के मोह में घटिया माल तैयार करेंगे तो बहुत शीघ्र बाजार में हमारी बची खुची साख भी समाप्त हो जायगी। काम थोडा भले ही हो, लेकिन गहरा हो। चूंकि हम पैसा खर्च करते हैं इसलिए केवल यह न देखें कि हमने कितने कार्यकर्ता तैयार किये, बल्कि यह देखें कि कैसे कार्यकर्त्ता तैयार किए।

क्षमता और व्यक्तित्व विकसित करने के लिये उपयुक्त विद्यार्थी, उपयुक्त शिक्षक, उपयुक्त अभ्यासक्रम तथा अन्य कई अनुकूलताओं को जिस हद तक हम किसी विद्यालय में एक साथ इकट्ठा कर सकेंगे उस हद तक हम समग्र, समन्वित व्यक्तित्व के लोक शिक्षक तैयार कर सकेंगे। यह सही है कि किसी को ठोक पीटकर क्रान्तिकारी नहीं बनाया जा सकता, लेकिन इतना तो हो ही सकता है कि जिसके अन्दर भावना है उसमें कुछ पुरुषार्थ जगाया जा सकता है। और उसे काम करने की कला सिखाई जा सकती है। अब गांव का काम केवल सेवक कहलानेवाले कार्यकर्ता से नही

चलेगा। अब आवश्यकता है क्रान्ति निष्ठ लोक शिक्षक की।

अभी तक श्रमभारती, खादीग्राम में ग्राम-स्वराज्य सहायक अभ्यासक्रम चलता है जिसमें कुछ तात्त्विक विषय और कुछ उद्योगो का व्यावहारिक ज्ञान रखा गया है। प्रशिक्षण की अवधि के अन्त में परीक्षा द्वारा प्रशिक्षार्थियो की क्षमता आकने का नियम है। इस प्रशिक्षण का हमारा यह अनुभव है कि हमारा वह विद्यार्थी भी जो अच्छे अक पाकर पास होता है एक दीन हीन, पराश्रित, जीवन से भयभीत व्यक्ति होता है। उसकी कुल अच्छाई इतनी ही है कि उसने जोविका के लिए ग्राम सेवा का मार्ग अपनाया है, न कि उसने सेवा को मुख्य मानकर उसके निमित्त से मिलनेवाली आजीविका ग्रहण करने का निश्चय किया है।

अब प्रश्न यह है कि अगर हमें मौजूदा प्रशिक्षण से असमाधान है तो विकल्प क्या है? कहा से हम अपनी कल्पना के विद्यार्थी लाए? कहा से मजे हुए शिक्षक जुटाए और और अत में प्रचलित अभ्यासक्रम के स्थान पर दूसरा कौन सा अभ्यासक्रम चलाए? मेरे सामने देश भर म चलनेवाले प्रशिक्षण का चित्र नही है। मैं केवल श्रमभारती, खादीग्राम को सामने रखकर लिख रहा हू।

सबसे पहले हम अभ्यासक्रम को ले। यह मान्य है कि जीवन को जीने की प्रक्रिया द्वारा जो शिक्षण होता है वही तेजस्वी होता है। क्या हम ऐसा विद्यालय चला सकते है जहा जीवन को जीने की प्रक्रिया चले, यानी जहा शिक्षक अपने सहकारी उत्पादक श्रम के द्वारा अपनी आजीविका का कोई ठोस अश कमा ले और जो विद्यार्थी आए वे ऐसे कर्मठ और निष्ठावान् शिक्षको के जीवन में शरीक हो जाय और इस तरह परस्पर पूरक बनकर दोनो खेती और उद्योग के माध्यम से सहजीवन की प्रक्रिया द्वारा जीवन के नये मूल्यो का अभ्यास करे और ऐसा करते करते अपने पडोसी क्षेत्र में एक नई जीवनी शक्ति पैदा करे।

पूर्ण स्वावलबन तत्काल भले ही न सब कर सके, फिर भी उत्पादक श्रम स्वय शिक्षण की बहुत बडी प्रक्रिया है। पाच घन्टे के उत्पादक श्रम और उद्योग के अलावा दो घटे की तात्त्विक चर्चा, और एक घटे का स्वाध्याय सतुलित बौद्धिक विकास के लिए पर्याप्त है। लेकिन इस बात का ध्यान रखना होगा कि विद्यार्थियो की कुल सख्या इतनी ही हो कि एक शिक्षक के साथ पाच से अधिक विद्यार्थी न जोडे जायें। यह व्यक्तिगत सपर्क शिक्षक और विद्यार्थी के बीच सह अध्ययन और सहचिन्तन का आधार बनगा। सह उत्पादन, सह अध्ययन और सह चिन्तन यानी सहजीवन की प्रक्रिया के बिना क्या बौद्धिक, और क्या नैतिक, किसी प्रकार का विकास दु साध्य दिखाई देता है।

इस तरह का अभ्यास दो वर्षो तक चलना चाहिए, दो वर्ष स कम नही। इसका यह अर्थ नही है कि दो वर्षो तक विद्यार्थी विद्यालय की परिधि तक ही सीमित रहे, विद्यालय की जो ग्राम इकाइया होगी उसमें विद्यार्थी और शिक्षक सघन काम करेगे। वे अपने उत्पादक कार्य से बचे समय में बारी-बारी से पूरा समय क्षत्र में बिताएगे, क्षेत्र की समस्याए विद्यालय क लिए अध्ययन और शोध का विषय बनेगी। वहा जन शक्ति के आधार पर विद्यालय रक्षण शिक्षण और पापण के विविध सेवा कार्य करगा। इस तरह विद्यालय

(शेषाश पृष्ठ १४८ पर)

अन्तभूखण्ड पदयात्रा समाप्त :

अन्तर्भूखण्ड पदयात्री अक्टूबर के ३ ता को मास्को पहुच गये। १५ सितंबर को वे रूस की सीमा पर पहुच गये थे, वहा से मास्को तक के ६६० मील उनको अठारह दिन मे चलने पडे। इसलिये ६ दिन दल को टोलियो मे बाट दिया और एक टोली चलती थी जब बाकी सदस्य वाहनो मे जाकर आराम करते थे और फिर दूसरी टोली पदयात्रा करती थी। इस प्रकार प्रतिदिन औसत ४० मील का रास्ता उन्होने तय किया। सोवियत जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। भाषा की रुकावट के कारण आम जनता के साथ कोई बातचीत तो नही हो सकती थी, लेकिन जो थोडे से लोग अग्रेजी समझते थे, कहते हैं, उनके ऊपर यात्रियो के भाषणो और विचारो का अच्छा प्रभाव पडा। अस्सी हजार के ऊपर इश्तहार वितरित किये गये। महत्व की बात यह है कि रूस मे कुछ लोगो को इदप्रथम यह सुनने को मिला कि विश्व की आज की परिस्थिति के लिये केवल पश्चिमी देश ही जिम्मेदार नहीं, उनके देश की सरकार की भी इसके लिये उतनी ही जिम्मेदारी है।

मास्को के रेड स्क्वायर में यात्रियो ने युद्ध की तैयारियो के प्रतिषेध मे दो घटे का मौन प्रदर्शन और 'पिकेटिङ्' किया, लेनिन स्टालिन समाधियो के सामने भी मौन 'पिकेटिङ्' हुआ।

श्री ख्रुश्चेव की पत्नी ने यात्रियो को अपने घर चाय के लिये आमंत्रित किया था। जब अतिथियों ने अत्यन्त नम्रता के साथ सोवियत रूस की शस्त्र सज्जा के बारे मे अपना विरोध व्यक्त किया तो वे चुप रही, लेकिन कहा कि अणुशस्त्रो के विघटन की आवश्यकता के बारे मे वे अपने पति से सहमत हैं।

१० महीने की लबी यात्रा समाप्त करके यात्रीदल १३ अक्टूबर को लदन पहुचा। लदन के फ्रेन्ड्स् हाउस में ८०० लोगों ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। उनका स्वागत करते हुए जेम्स केमेरन ने कहा :—

"हमारे इन मित्रों ने जिन्होंने अभी यह अनोखी यात्रा समाप्त की है—जो इस युग की एक विशेष यात्रा मानी जायगी, अपनी श्रद्धा और विश्वास एक एक पदचिह्न से व्यक्त किया है। कई देशो की तनावपूर्ण परिस्थितियो के बीच मे से उन्होंने शस्त्रो की निरर्थक भाषा का त्याग करने का हमारा निश्चय और सन्देश पहुंचाया है।"

× × × ×

अणुपरीक्षणों के विरोध में

रूस के पचास मेगाटन अणुबम फोडने के निश्चय के खिलाफ एक सौ की समिति के पाच सदस्यो ने लदन के सोवियत दूतावास मे जा कर अपना प्रतिषेध व्यक्त किया। उन्होने दूतावास के कर्मचारियों के साथ बात की और अन्त मे अपना यह निश्चय व्यक्त किया कि वे तब तक वही बैठे रहेगे जब तक सोवियत सरकार बम फोडने का निर्णय वापस नही लेती या उन्हें जबरदस्ती वहा से हटाया नही जाता। अन्त मे रात को १२ बजे चार पुलीस के कर्मचारी उन्हे उठा कर दूतावास के बाहर ले आये। उन पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की गयी।

डेनमार्क की राजधानी कोपन्हेगन और स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम मे भी शान्तिवादियो ने सोवियत दूतावासो में जा कर रूस के पचास मेगाटन बम फोडने के निश्चय के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित किया। वे अणुबम की विरोधसूचक मुद्रायें पहने हुए,

दूतावास के सामने बैठे रहे, जब तक पुलीस अधिकारी उन्हें वहा से उठा कर नही ले गये ।

× × × ×

इटली में शांति के लिये पदयात्रा :

गत सितंबर ४ को इटली के पच्चीस हजार नागरिकों ने पेरिजिया से असीसी तक शान्तिपूर्ण पदयात्रा करके शान्ति के लिये एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत किया । इटली के शान्तिनेता और अहिंसा केन्द्र के निर्देशक 'आल्डो केपिटिनि' ने इस पदयात्रा का आयोजन किया था । इसमें साम्यवादी तथा अन्य वामपक्षीय दलों के नेता भी शामिल थे ।

पुलीस की सेना पूरी तैयारी के साथ शस्त्रो से सुसज्जित आयी थी,लेकिन यात्रा के शान्तिपूर्ण स्वभाव से वे स्वयं आश्चर्यचकित हो गये । यह इटली के आधुनिक इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी ।

यात्रा एक सभा के साथ समाप्त हुई जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि सभी देशों की जनता को निर्भय होकर शान्ति के लिये अपना मत व्यक्त करना चाहिये, अब यह जिम्मेदारी चन्द सरकारी पदाधिकारियो के ऊपर छोड़ी नही जा सकती ।

× × × ×

अहिंसक आन्दोलन की पद्धतियो का अध्ययन :

इंगलैण्ड में ट्रफलगर स्क्वायर मे सितंबर १६, १७ ता को जो प्रदर्शन हुए, उसके फलस्वरूप आज के सन्दर्भ मे ऐसे आन्दोलनों के स्थान और स्वरूप के बारे मे काफी पुनर्विचार हो रहा है । कई दफे ऐसे आन्दोलनों को सर्वथा शान्तिपूर्ण रखना असंभव सा होता है, उसमें कुछ अवाञ्छनीय तत्वों का प्रवेश हो जाता है । इसलिये अब ऐसे प्रदर्शनों के आयोजन, उनके उद्देश्य, पद्धतियों व परिणामो के बारे में पिछले अनुभवो के आधार पर चिन्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है । एक सो की समिति इस विषय पर व्यवस्थित अध्ययन करने के लिये विपुल योजनायें बना रही है । आशा की जाती है कि इस अध्ययन से यह व्यक्त होगा कि अहिंसा जीवन का कोई एक भाग मात्र नहीं, बल्कि हमारे बच्चों के पालन पोषण का तरीका, हमारी आजिविका का काम, अन्तर्राष्ट्रीय मामलो को सुलझाने के लिये हम जो उपाय अख्तियार कर रहे हैं, इन सब विषयों से उसका वास्ता है । संघर्ष और अहिंसा के समाजशास्त्रीय पहलू पर भी अध्ययन होगा । शान्तिवादी शिक्षाशास्त्री एन्थनी वीवर अध्ययनमण्डलों का आयोजन व निर्देशन कर रहे हैं ।

× × × ×

विश्वशान्ति सेना के बारे में पूर्व चर्चा सभा :

विश्व शान्ति सेना की स्थापना के बारे मे विचार करने के लिये बेरूत मे होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की तैयारी के लिये भारत मे एक पूर्व चर्चा सभा ता ३१ अक्टूबर और १ ली नवबर को साधना केन्द्र, काशी में बुलायी गयी है । विश्व शान्ति सेना के व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक पहलुओं तथा समस्याओं पर विचार विनिमय होगा ।

शान्ति प्रतिज्ञा और शिक्षा का पुनर्गठन

विनोबा

दिल्ली में हुई राष्ट्रीय ऐक्य परिषद् ने जो सूचनायें दी हैं, उनमें एक महत्व की सूचना है जिसकी ओर में आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। वह सूचना परिषद् ने सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव के अनुसार की है।

अहिंसा एक क्रान्तिकारी वस्तु है। यह विचार तो पुराना है, लेकिन सामूहिक तौर पर सामाजिक क्षेत्र में उसका प्रयोग करने की कोशिश उन दिनों नही हुई। गांधीजी ने उसका एक प्रयोग हिन्दुस्तान में किया, राजनैतिक क्षेत्र में। अब वह चीज कुल दुनिया ने सामूहिक काम के लिए मान्य की है। इसका मतलब यह नही है कि दुनिया में हिंसा कम हुई है। फिर भी दुनिया ने अहिंसा को सामाजिक क्षेत्र में एक कारगर उपाय के रूप में मान्यता दी है। सामाजिक समस्याओं का परिहार अहिंसा के जरिये करना चाहिए, किया जा सकता है, उसके प्रयोग करने चाहिए, ऐसा विचार दुनिया ने मान्य किया है। अभी-अभी की बात है, आणविक शस्त्रों के खिलाफ इंग्लैण्ड में हजारों लोगों ने जुलूस निकाले और आणविक शस्त्रों के प्रयोग का विरोध किया। बर्ट्रेन्ड रसल जैसे वृद्ध, ज्ञानी, विद्वान् मनुष्य को भी पकड़ के सरकार ने सजा दी। यह एक विशेष घटना है।

दिल्ली की परिषद् में हिन्दुस्तान के बहुत नेता इकट्ठा हुए थे। राष्ट्रीय ऐक्य और शान्ति के लिए कुछ सुझाव परिषद् ने दिये; उसमें एक सुझाव यह है कि हिन्दुस्तान के हर नागरिक को शान्ति की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। कोई भी सामाजिक या और कोई भी मसले के हल के लिए हम हिंसा का आसरा नहीं लेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा हर नागरिक ले। यह बिल्कुल सादी प्रतिज्ञा है। मां ने बच्चे को पीटा तो इस प्रतिज्ञा में बाधा नही। यह कोई महात्मा गांधी ने जो हमें अहिंसा सिखाई उसकी प्रतिज्ञा नही है, गौतम बुद्ध ने जो अहिंसा सिखाई उसकी भी यह प्रतिज्ञा नहीं है। कोई भी मसला गांव का, शहर का, जातीय, धार्मिक, पान्थिक, या आर्थिक कोई भी हो, उसके हल के लिए हम हिंसा का उपयोग नही करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा हर नागरिक करे। शान्तिवादी लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि हम कभी लड़ाई में भाग नहीं लेंगे, यह इस प्रकार की प्रतिज्ञा नही है। सादी और सभ्यता की प्रतिज्ञा है। यह सभ्य समाज में मानी हुई बात है।

हिन्दुस्तान एक अहिंसा में विश्वास रखने वाला देश माना जाता है। १४ साल में यहां कितने दंगे हुए, कितने लोगों की हत्या हुई कितनी दफा पत्थर चले, कितनी बार गोली चली, कितने घर जलाये गये? इंग्लैण्ड के साथ तुलना करो। यह सभ्य समाज का उदाहरण नही है। इंग्लैण्ड में आर्मी है, नेवी है, एयर फोर्स (जल, स्थल तथा हवाई सेना)

है। वहां शस्त्र विद्या सिखाई जाती है, गांधी और बुद्ध की अहिंसा का व्रत उन्होंने नहीं लिया है, 'लेकिन सभ्यता का व्रत लिया है। तो समाज में जो समस्यायें होंगी उनके हल के लिए हिंसा का उपयोग नहीं करेंगे, यह प्रतिज्ञा हिन्दुस्तान के सब नागरिक ले, ऐसा प्रस्ताव सर्व सेवा संघ ने किया था। उसे मान्य करके राष्ट्रीय ऐक्य परिषद् ने वह देश के सामने रखा है।

"भारत का नागरिक होने के नाते मैं सभ्य समाज के इस सार्वभौम सिद्धान्त में अपनी निष्ठा जाहिर करता हूं कि नागरिकों, या उनके समूहों, संस्थाओं व संगठनों के बीच उत्पन्न विवाद शान्तिमय उपायों से ही निपटाये जाने चाहिये; और राष्ट्र की एकता व एकात्मता के लिये बढ़ते हुए खतरे को ध्यान में रखते हुए यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मेरे आसपास या भारत के और किसी हिस्से में किसी झगडे के सिलसिले में मैं स्वयं प्रत्यक्ष हिंसा का सहारा नहीं लूंगा।"

शिक्षा की ओर भी राष्ट्रीय ऐक्य परिषद् ने ध्यान खींचा है और सुझाव रखा है कि "एजूकेशन" का "रि-ओरियेन्टेशन" होना चाहिए, अंग्रेजी में शब्दों की कमी तो है नहीं। लेकिन आशा है कि इस सुझाव के अनुसार शिक्षा की ओर ध्यान दिया जायेगा। आश्चर्य की बात है १४,१५ साल के बाद अब एजूकेशन का रि-ओरियेन्टेशन सूझ रहा है। इतने में तो दूसरे राष्ट्रों ने क्या-क्या कर डाला, इतनी सादी बात हम नहीं कर सके हैं।

हरेक विद्यार्थी को हाथ का काम मिलना चाहिए, उसके हृदय को पोषण मिलना चाहिए उसकी बुद्धि का विकास होना चाहिये, ये तीन ही बातें ध्यान में रखनी हैं, चौथी नहीं। हमने क्या कहा? साक्षरता बढाओ, ४०,५० साल के बूढे को क, का, कि, की सिखाओ। रात में पढते हैं, क्या पढकर मोक्ष पाने वाले हैं? पर यह इसीलिये है कि सरकार यह कहे कि इतने लोग शिक्षित हो गये हैं। मुझे ऐसे लोग मालूम हैं जो मैट्रिक तक पढे हैं और कुल का मूल भूल गये हैं। ए. बी. सी. डी. याने स्वर्ग की सीढी है, इतना ही याद रहा है। बाकी सब भूल गये, क्योंकि उस विद्या का कोई काम ही नहीं पड़ा।

जो ज्ञान है वह कभी नहीं भूला जाता। ज्ञान या तो होगा या तो नहीं होगा। आज तो काल्पनिक और सांकेतिक विद्या सिखाई जाती है। "हार्स" याने घोडा, यह शब्द है, विद्या नहीं। शब्द मनुष्य भूलता है, ज्ञान को मनुष्य नहीं भूलता है। गुड को गुड कहते हैं यह भूल सकते हैं, गुड खाया और वह मीठा लगा इस ज्ञान को हम कभी भूलेंगे? किसी ने आज गुड खाया, उसे वह मीठा लगा। बीच में चार महीने खाने को नहीं मिला तो क्या भूल जायेंगे कि गुड कैसा होता है? यह ज्ञान का लक्षण है। ज्ञान मनुष्य नहीं भूलता, आत्मज्ञान को मूर्छा और निद्रा में भी नहीं भूलता। दूसरे ज्ञान को जागृति में भी भूल जाता है। इस तरह ज्ञान और ज्ञान में फर्क होता है। जिस विद्या में नैतिक विकास नहीं होता, पुरुषार्थ नहीं सिखाया जाता ऐसी विद्या में बच्चों का बेकार समय जाता है। इस तरह राष्ट्रीय ऐक्य परिषद ने दो सुझाव रखे हैं-एक का संबंध सभ्यता से है, दूसरे का शिक्षा से।

कितनी मेहनत से हमने भारत को एक बनाया है। हजारो वर्षों से तपस्या इसके लिए हुई है। वाल्मीकि ने एक श्लोक में राम का वर्णन किया है, उसी एक श्लोक में सारे भारत का वर्णन आता है। राम एक राष्ट्रपुरुष थे, उनके गुण कैसे थे

"समुद्र इव गाम्भीर्ये, स्थैर्ये च हिमवानिव'।

गम्भीरता में वे समुद्र जैसे हैं और स्थिरता में हिमालय जैसे। आधे श्लोक में पूरा भारत खडा कर दिया। समुद्र से हिमालय–आसेतु हिमाचल–तक हमने एक देश माना और बनाया। इसके ये दो बडे गुण "सिम्बालिक"–साकेतिक हैं। समुद्र की गभीरता व हिमालय की स्थिरता दोनो मिलकर भारतीयता होती है। परमेश्वर हम में ये दो गुण स्थिर करे। इसीलिए हम घूम रहे हैं, गाव गाव में समझा रहे हैं, "तुम एक बनो और नेक बनो"। दस साल पहले किसी ने मुझ से संदेश मागा था तो मैंने यही दो शब्द कहे थे, एक बनो और नेक बनो।

हमारे सारे नेता इसलिये चिंतित है, चिंतित होने जैसी परिस्थिति भी है, वैसा ही काम हुआ। थोडे दिन पहले जबलपुर में एक घटना हुई, परिणामस्वरूप क्षोभ हुआ, उसका परिणाम पाकिस्तान पर हुआ। अब यह अलीगढ की घटना हुई है। इस तरह हम बरतेंगे तो भारत का भविष्य क्या होगा, कह नही सकते, लेकिन हमारे अदर विश्वास है कि इस देश में पुण्य की और सत्य की विजय होगी। यहा की हवा के कण कण में ऋषि और सन्तो की की तपस्या है, यह सन्त सत्पुरुषो की भूमि है. यही श्रद्धा लेकर हम चलते जा रहे हैं।

एक मां की प्रार्थना

नॉर्वे की एक मां ने देवीभाई के नाम पत्र लिखा है कि वे रूस के परमाणुपरीक्षणो के विरोध मे सोवियत दूतावास के सामने अनशन करेंगी। माना यह जाता है कि उनको वहा से पुलीस के द्वारा हटाया जायगा, तो उन्होंने फिर से वहा जा कर बैठने और अनशन चालू रखने का निश्चय किया है। वे चाहती हैं कि विश्वभर मे और भी माताएं अपने बच्चों के भविष्य के लिये इन परमाणुपरीक्षणो द्वारा जो गभीर विपत्ति का खतरा उपस्थित हुआ है, उसको रोकने के लिये कोई सक्रिय कदम उठायें। हम आशा करते हैं कि दुनिया की अनेकानेक मॉंएं इस बहादुर बहन का आह्वान सुन कर उठ खडी हो जायगी और उनकी सम्मिलित शक्ति मानवजाति को इस भयकर विनाश से बचाने में समर्थ हो जायगी। बहन का नाम है 'एस्ट्रिड वोलनिक'। नई तालीम परिवार की हार्दिक सवेदना और शुभकामनाए उनके साथ हैं।

पुस्तक-परिचय

आर्थिक और औद्योगिक जीवन

लेखक : गाधीजी

नवजीवन प्रकाशन . मूल्य चार रुपये ।

सूत्र सागर जैसा ही, गान्धीजी ने जो कुछ लिखा, वह भी सागर जैसा विस्तृत है, विविध है। उन लेखो में स्व-साधना के आधार पर जीवन के भौतिक तथा आध्यात्मिक पहलुओ पर गान्धीजी ने पुराने विचारो को नये ढग से पेश किया। आध्यात्मिक बातो को तो किसी तरह जनता अपना सकती थी, लेकिन भौतिक समस्याओ पर मतभेद रहा और रहेगा भी। गान्धीजी के विचारो को स्पष्ट समझने का प्रयत्न करनेवाले जिज्ञासु के लिये गान्धीजी के सारे के सारे लेखो को पढना अशक्य है, असाध्य है, । जिज्ञासुओ की मदद करने की दृष्टि से कइयो ने उस सागर में से चुने हुए कई सग्रह बनाये, जिनका प्रकाशन नवजीवन अपना धर्मकार्य समझकर कर रहा है। ऐसे सग्राहको और सपादको में श्री वी वी खेर का खास स्थान रहेगा। उन्होने जटिल तथा विवाद-ग्रस्त विषयो के बारे में भगीरथ प्रयत्न करके विशद सामग्री तैयार की है जिससे मनुष्य के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर गाधीजी के विचार सुलभ हो सकते है। पहले यह सग्रह-एक उपसागर--तीन भागो में अग्रेजी में प्रकाशित हुआ। उन में से पहला भाग अब हिन्दी में पाठको के सामने आ रहा है।

इस पहले भाग के अन्तर्गत चार विभाग है :- १. स्वराज्य, समाजवाद, और साम्यवाद (२) शरीरश्रम (३) आर्थिक समानता और (४) सरक्षकता । इन विभागो से सबधित गाधीजी के लेख इकट्ठे किये गये है। गाधीजी अपनी स्वराज्य कल्पना के साथ सामाजिक और औद्योगिक ढाचे का भी साफ चित्र खीचा है। उन सारे विवेचनो को प्रार्थना के साथ नये व्रतो के रूप में शामिल कर दिया, जैसा अस्तेय, शरीर-श्रम, स्वदेशी, स्पर्श भावना आदि ।

जब दुनिया में साम्यवाद, समाजवाद, प्रजातन्त्र राज्य आदि चलते है, गान्धीजी ने ग्रामराज्य, स्वराज्य, रामराज्य ऐसे शब्द रूढ किये। जहाँ मशीनो द्वारा समय और श्रम को बचाने की तारीफ होती है, वहा गान्धीजी ने शरीर-श्रम, स्वदेशी आदि की नयी व्याख्या की है। खास कर आज औद्योगीकरण की दौडधूप के सदर्भ में इस तरह के सग्रह बहुत उपयोगी सिद्ध होते है। सग्राहक महाशयने एक सौ पच्चीस पन्ने की एक विस्तृत भूमिका भी दी है जो महत्व-पूर्ण है। नवजीवन की छपाई, जिल्द आदि के बारे में कहना ही क्या ? इस प्रकाशन द्वारा सग्राहक तथा प्रकाशक ने हमारा बडा उपकार किया। आशा है दूसरे तथा तीसरे भाग भी यथाशीघ्र प्रकाशित हो जायगे।

--रा० शकरन्

ईवल बिहाइन्ड द बार्स्

लेखक काका कालेलकर

नव जीवन प्रकाशन : मूल्य रु. १-२५

यह काका साहेब के जेल जीवन के कई चुने हुए सुबोध, विचार पूर्ण संस्मरणो का अंग्रेजी अनुवाद है। इस अनुवाद को प्रस्तुत करके श्रीमती सरोजिनी नानावटी ने मात्र अंग्रेजी जानने वालो को–इस समूह की संख्या थोडी होने पर भी जबरदस्त है–बडा उपकार किया है। काका साहबने, अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार होते हुए भी, उस भाषा का कम से कम उपयोग करने का व्रत पालन किया है। विलायत में भी कई जगह, जहा संभव रहा, उन्होंने हिन्दी से ही काम चलाया। इस व्यवहार में एक दृढता का गुण है, आदर्श है, साथ साथ देश का एक छोटा, फिर भी प्रभावशाली समूह काका साहब के विचारो से अछूता रह जाने की कमी भी है।

युग पुरुष गान्धी के विचार वाहकों, भाष्यकारो, प्रचारको में काका साहब का खास उच्च स्थान है। साहित्यिक होने से जीवन के सभी विषयों पर उन्होंने अपनी लेखिनी खूबी के साथ चालायीं। इस छोटा सा जेल संस्मरण में भी पाठको को भली भाती महसूस होगा कि छोटी छोटी बातो का–वनस्पति, चीटियों की कतार, नक्षत्र, बिल्ली, बदर, कौआ, आदि का उन्होंने जेल को एकान्तता में कितनी बारीकी से निरीक्षण किया और उन के सहारे कितने बडे ऊचे ख्यालात पेश किये।

श्रीमती सरोजिनी ने इस प्रयत्न द्वारा एक बडा लोकोपयोगी कार्य किया है। उनको इसमें अच्छी सफलता भी मिली है। आशा है कि काका साहेब के अन्यान्य उच्च कोटी के लेख भी अंग्रेजी में यथा शीघ्र प्रस्तुत होंगे।

मोटे अक्षर में सुन्दर छपाई है, जो स्कूल कालेजो के लिये सुविधानजक है।

–रा शंकरन्

प्राप्ति स्वीकार

इन्टर नेशनल ब्यूरो ऑफ एजुकेशन के प्रकाशन

१. इन्टरनेशनल इयर बुक ऑफ एजूकेशन–१९६०
२. आरगनाइसेशन ऑफ प्रि–प्राइमरि एजुकेशन
३. द वन टीचर स्कूल

नवजीवन प्रकाशन मंदिर–	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१. आर्थिक और औद्योगिक जीवन	–गाधीजी	१९६	४ ००
२. ईवन बिहाइन्ड द बारस्	–काका कालेलकर	९८	१.२५
३. हडताले	–गाधीजी	२८	०.३०
अ० भा० सर्व सेवा सघ प्रकाशन			
१. लोर-भाव या आत्म-बल	–महात्मा भगवानदीन	६६	०.५०
२. मधुमेह : कारण और निवारण	–पुच्या व्यकटरामय्या इन्द्रप्रसाद गुप्त	८८	० ७५
३. कोरापुट में ग्राम-विकास का प्रयोग	–अ. सहस्रबुद्धे	१५२	२.००

एक पत्र

साथियों,

पार्टिनिको में अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध विरोधक संघ की प्रबन्ध समिति की बैठक के बाद मैं पश्चिम जर्मनी में अन्तर्भूखण्ड पदयात्री दल के साथ ४ दिन रहा। पदयात्रियों का कहीं कहीं उत्साहपूर्ण स्वागत होता था, कहीं-कहीं शंका के साथ-जो कि स्वाभाविक ही है। पश्चिम जर्मनी में साम्यवादी देशों के प्रति इतना जबरदस्त अविश्वास है-जो हर दिन, जीवन के हर पहलू में निरंतर प्रचार के द्वारा बढाया जाता है-कि उन्हें ऐसे एक संघ के प्रति शंका होना अनिवार्य ही है जो साम्यवादी और असाम्यवादी लोगों से एक ही स्तर पर एक ही भूमिका से बात करता है।

उसके बाद हालण्ड में एक युवक शिविर में ६ दिन बिता कर मैं इन्लैण्ड गया। वहां अन्तर्राष्ट्रीय के प्रधान दफ्तर में रहा, बहुत शान्तिवादी मित्रों से मिला। अहिंसा की व्यावहारिक पद्धतियों का विकास करने की आवश्यकता को सब तीव्रता के साथ महसूस कर रहे हैं। डेन्मार्क, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में भी यही अनुभव आया। अभी १० ता. को पूर्वी जर्मनी आया हूं। यहां की सरकार की तरफ से मुझे शिक्षण संस्थाएं देखने का मौका और सब तरह की सुविधाएं दी गयी हैं। स्टेशन पर शिक्षा विभाग के श्री गिअराडे आये थे और उनके साथ श्रीमती हेयटिके, जो मुझे सारा दिखा रही है। ११ ता. स्कूल के बालकों का काम फेक्टरी में देखा और शाम को शिक्षा का रिसर्च इन्स्टीट्यूट। १२ ता. को एक हाईस्कूल और पयनीयर पॅलस। यह सब देख कर बड़ा अच्छा लगा। बच्चों के लिये कितना किया हुआ है, यह एक बड़ी सुखदायक अनुभव देनेवाली बात है। १३ ता. को एक गांव का स्कूल। कल ड्रेसडेन आ कर बीमार बालकों की शिक्षा अस्पताल में कैसे होती है, यह देखा। बच्चे अपनी शिक्षा में पिछड़ न जायें, इसलिये अस्पताल की लम्बी अवधि में उनके पाठ चालू रखते हैं। कोई कोई बालक तो २,३ या ५,६ वर्ष भी अस्पताल में रह सकता है। उसकी शिक्षा चालू रहे और साथ-साथ उसके मानस की स्थिति भी स्वस्थ रहे, यह इनका ख्याल है। ख्याल बुलन्द है और बड़ा सोच समझ कर योजना पूर्वक ये लोग काम कर रहे हैं। यहां के शिक्षा के काम के बारे में आगे विस्तार से लिखूंगा।

यहां से फिर हालण्ड और स्विट्जरलैण्ड जाना है और फिर दक्षिणी फ्रान्स में 'डेल वास्तो'-जिनका भारतीय नाम शान्तिदास है-के आश्रम में ३,४ दिन रहूंगा। उसके बाद युगोस्लाविया और ग्रीस होता हुआ दिसंबर के २४ ता. बेरूत पहुंचने का मेरा कार्यक्रम है। बेरूत में विश्वशान्ति सेना की स्थापना से संबद्ध सम्मेलन में भाग लेने के बाद स्वदेश लौटने की आशा करता हूं।

सब को सादर प्रणाम,

१५-१०-'६१ आपका देवी भाई

इन्दौर नगर में शांति सेना के प्रशिक्षण वर्ग

दिनाक १९ से २६ अक्टूबर '६१ तक कस्तूरबा शाति सेना विद्यालय की सचालिका कु श्री निर्मला देशपाडे तथा नगर की सुप्रसिद्ध डा० श्रीमति शकुतला देशपाडे के सत्प्रयत्नो से बहना के लिए इन्दौर नगर में शाति सेना प्रशिक्षण वर्ग चलाये गये, जिसका उद्देश्य था कि इदौर की स्त्री-शक्ति शाति-रक्षा और शील-रक्षा के लिए जागृत हो। इन वर्गों का उद्घाटन दिनाक १९ अक्टूबर '६१ को विजयादशमी के शुभ पर्व पर सर्वोदय तत्वदर्शन के मनीषी श्री शकररावजी देव ने किया। ये वर्ग गजो कपाउट में स्थित सरस्वती महिला शिक्षण विद्यालय में प्रतिदिन दोपहर २ से ४ बजे तक चले, जिसमें औसतन ५० बहनो ने भाग लिया।

एक हफ्ते के इन प्रशिक्षण वर्गो में प्रशिक्षणार्थियो को देश में शाति सेना की आवश्यकता और महत्व एव कार्यक्रम, लोकतत्र और साम्यवाद, अशोभनीयता निवारण, सर्वोदय-विचार, सब प्रमुख धर्मो की सामान्य जानकारी, घरेलू उपचार तथा सर्वोदय नगर अभियान के सबध में जानकारी दी गई।

जबलपुर संभागीय सर्वोदय सम्मेलन एवं शांति सेना रेली

२६ व २७ नवम्बर '६१ को जबलपुर में सभागीय सर्वोदय सम्मेलन तथा शाति सेना रेली का आयोजन हो रहा है। रैली में प्रदेश के सभी शाति सैनिको के भाग लेने की आशा है। सम्मेलन की व्यवस्था क्षेत्रीय सयोजक श्री गणेशप्रसाद नायक कर रहे है। अेक अन्य सूचना के अनुसार इस अवसर पर म० प्र० सर्वोदय मडल की प्रबधकारिणी समिति की बैठक भी हो रही है जिसमें शाति सेना के सक्रिय सगठन, अशोभनीयता निवारण मुहीम, भूदान तथा भूमि वितरण, आगामी आम चुनाव की दृष्टि से लोक शिक्षण इत्यादि महत्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार विनिमय होगा।

भूल सुधार

'नई तालीम' के अक्टूबर के अक में "शिक्षा और युद्ध" नाम के लेख म लेखक का नाम नही दिया गया था। उस लेख के लेखक ब्रिस्टल युनिवर्सिटी के अर्थशास्त्र विभाग के डॉ आर वी. सेम्प्सन् हैं।

Regd. No. N.-106

हिन्दुस्तान में भाषा, जाति, धर्म और पार्टी ये चार समस्यायें है, लेकिन इन चारों का उपयोग हम अच्छी तरह करेंगे तो पुष्ट बन सकते हैं। जो मनुष्य एक से ज्यादा भाषा सीखेगा उसका क्या नुकसान होगा ? जोर जबरदस्ती तो नहीं हो सकती है, प्यार से ही एक दूसरे की भाषा सीख सकते हैं। दिल्ली की कान्फ्रन्स ने तय किया कि हर कोई तीन भाषा सीखे। एक दाहिनी आंख होगी मातृभाषा, बाई आंख राष्ट्रभाषा हिन्दी-यह मेरा अपना काव्य है, कान्फरन्स की भाषा नहीं। भगवान् शंकर त्र्यंबक याने त्रिनेत्र थे। यह तीसरा नेत्र याने ज्ञानचक्षु। यह है संस्कृत भाषा। यह भारत के लिए ज्ञान नेत्र है। हिन्दुस्तान की किसी भाषा वाले को संस्कृत के बिना नहीं चलेगा। तो तीसरा नेत्र है संस्कृत। अब किसी की आंख बिगडी है और दूर देख नहीं सकते हों तो वह चश्मा पहनेगा। वह है अंग्रेजी भाषा। आपकी आख दूर देख सकती है तो अच्छी बात है, नहीं तो आपको चश्मा पहनना होगा। चीन, जापान, इग्लैन्ड आपको जाना हो तो आपको चश्मा पहनना पडेगा। याने वहा अंग्रेजी काम देगी। असम वाले धुबरी से डिब्रुगढ ही घूमते हैं, लेकिन भारत में अन्यत्र जाना है तो उन्हें हिन्दी सीखनी चाहिये और उससे भी दूर जाने के लिए अंग्रेजी।

—विनोबा

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवा
मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

जनवरी १९६२ | वर्ष १० : अंक ७

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ भा. सर्व सेवा सघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

जनवरी १९६२

वर्ष १० अंक ७.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है । जिसका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै है । चन्दा पेशगी लिया जाता है । वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै. अधिक लगता है । चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों मे लिखें । पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें । "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं । इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है । पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय ।

वर्ष १० अंक ७ ★ जनवरी १९६२

ईश्वर के राज्य में बडा कौन है ?

उसी समय शिष्य ईशु के पास आकर पूछने लगे, स्वर्ग के राज्य में सब से बडा कौन है ?

इस पर ईशु ने एक छोटे बच्चे को अपने पास बुला लिया और उसको उनके बीच में खडा किया,

और कहा, मैं तुम से सच कहता हूं, अगर तुम अपना मत न बदलो और छोटे बच्चों के जैसे न बनो तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर पाओगे।

इसीलिये जो भी अपने आपको इस बच्चे के समान छोटा और नम्र बनायगा, वही स्वर्ग के राज्य में सब से बडा होगा।

और जो कोई मेरे नाम से एक ऐसे बालक को स्वीकार करता है वह मुझे स्वीकार करता है।......

ख्याल करो इन छोटों में से किसी को तुच्छ न समझना, क्योंकि मैं कहता हूं ये मेरे पिता के–जो स्वर्ग में हैं–संमुख सदा रहते हैं।

—बाइबिल से

शिक्षक ईशु ख्रिस्त

मार्जरी साइक्स

इस समय हम ख्रिस्तु के जन्म का उत्सव मनाते है और विश्व के लिये उनके जीवन से जो शिक्षा मिली है, उसपर मनन करते हैं। हम जो शिक्षक है, हमारे लिये विशेष महत्व की बात है कि अपने ही काल और देश में, अपने देशवासियो में, ईशु ख्रिस्त और सब बातो से भी ज्यादा एक शिक्षक के रूप में माने जाते थे। हम बाइबिल में पढते हैं कि उन्हें "रब्बि" शब्द से सबोधित किया जाता था, जिसका अर्थ है "शिक्षक"। यह सही है कि रोगियो को दुरुस्त करने की उनकी जो शक्ति थी, बहुत लोग उससे आकर्षित हुए थे, लेकिन स्पष्ट है कि उससे भी अधिक लोग उनके उपदेश सुनने के लिये आते थे। यह उन लोगो के लिय एक नयी चीज थी। हम बाइबिल में पढते हैं कि उन्होंने प्रामाणिक रूप से "शिक्षा दी", "स्क्राइब्स" के जैसे नही (वे जो परपरा से शिक्षक वर्ग के थे)।

इसलिये यह उचित ही होगा कि जिन्हें शिक्षा के काम से वास्ता है (और उसका मतलब है सर्वोदय विचार के हम सब लोग, क्यो कि हम विद्यालयो में और सस्थाओ में काम कर रहे हो या नही, *हमारा कार्य मूलत शिक्षा का* ही है) वे इस पर विचार करें कि एक शिक्षक के रूप में ईशु से हम क्या सीख सकते हैं। इस विषय पर तो पूरी पूरी किताबें लिखी जा सकती हैं, लेकिन एक छोटे लेख में कुछ थोड़े से मुद्दो को विचारार्थ रखना ही संभव होगा। इनको ख्याल में रखते हुए हम धर्मग्रन्थो के वे भाग फिर से पढें जिनमें ईशु का एक शिक्षक के रूप में वर्णन किया है और इस पर मनन करे कि हम उनसे क्या सीख सकते हैं।

१. सब से पहले हम ऊपर दिये गये उस वाक्यखण्ड पर विचार करे, जिसमें कहा गया है कि 'उन्होंने प्रामाणिक रूप से शिक्षा दी'। ईशु उन्हीं बातो के बारे में बोलते थे जिन्हे वे अपने ही निरीक्षण और अनुभव से जानते थे। 'स्क्राइबस' के शिक्षक वर्ग के जैसे वे दूसरो से सुने कुछ तत्वो या सिद्धान्तों का पुनरावर्तन ही नही करते थे। क्योकि वे जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवो से बोलते थे उनकी बात में निश्चितता थी। यह स्पष्ट है कि वे अपने देशवासियो के धर्मग्रन्थो में निष्णात थे, उनका बहुत आदर करते थे और उन्होंने अपने उपदेशो में भी उनका उपयोग किया। यह भी स्पष्ट है कि अपने समय की जरूरतो के अनुसार इन धर्मग्रन्थो की व्याख्या और प्रतिपादन करने में उन्होने अपने ज्ञान और अनुभव से काम लिया। और उन्होने अपने श्रोताओ से प्रार्थना की कि वे *अपने अनुभव और विवेकबुद्धि से इसे परखें*। जब एक 'रूढिवादी" ने 'साब्बात' (रविवार) के दिन एक रोगी की परिचर्या करने के लिये उनका विरोध किया था, क्योकि धार्मिक नियमो के अनुसार साब्बात के दिन काम करना

मना था और रोगी को ठीक करना भी एक तरह का काम ही है, तो उनका उत्तर एक प्रश्न के रूप में था। उन्होने उपस्थित जन-समूह के सामने पूछा, "साब्बात के दिन पुण्य काम करना ठीक है कि पाप? जीवन को बचाना ठीक है; या मारना?"

२. इससे और भी एक बात हमारे सामने स्पष्ट होती है। साधारण स्त्री-पुरुषो की सद्‌बुद्धि में उन्हें अपार आस्था थी, ठीक तरीके से विचार करने तथा ठीक नतीजो पर आने की उनकी शक्ति में वे विश्वास रखते थे; बार बार, जभी उनसे कोई प्रश्न पूछा जाता था, वह प्रश्न जनता से फिर से पूछने से ही वे उसका उत्तर देते थे-जैसे ऊपर के किस्से में हुआ था। "तुम अपने पडोसी पर अपने जैसे ही प्रेम करो", यहूदियो के इस कानून के सवन्ध में एक आदमी ने पूछा, "परन्तु मेरा पडोसी कौन है"? ईशु ने एक कहानी बताने से उसका उत्तर दिया (अच्छे "सामरिटन" की वह प्रसिद्ध कहानी)। और फिर उस व्यक्ति से पूछा, "आप क्या सोचते है? इसमें जरूरत-मन्द आदमी का पडोसी कौन था?" वे हमेशा बने बनाये उत्तर देने तथा अपने अधिकार का उपयोग करने से इनकार करते थे, दूसरो पर अपना मत कभी नही लादते थे। एक दफे उन्होने पूछा, "तुम्हारे ऊपर मुझे किसने न्याया-धीश बनाया है? तुम अपने लिये क्यो नहीं तय करते हो कि ठीक क्या है?" उनका विश्वास था कि अगर लोग समस्या को स्पष्टता से समझेंगे तो उनको अपनी चेतना और विवेक बुद्धि ही उन्हे ठीक निर्णय पर पहुचा देगी।

३. ईशु ने यह भी बहुत स्पष्टता से देखा कि वह क्या चीज है जो मनुष्य को अंधा और बहरा बना देती है और अपने अन्तःकरण और बुद्धि के विपरीत ले जाती है। आदमी अपने स्थितिगौरव तथा महत्व के बारे में गलत कल्पनाओ के कारण अधे और बहरे बनते है। अपने सामाजिक वातावरण के कारण वे लोगों को उनकी यथार्थ योग्यता के आधार पर नही, बल्कि उनकी संपत्ति या प्रचलित सामाजिक व्यवस्था में उनकी प्रतिष्ठा के आधार पर छोटा बडा मानते है। इन धारणाओ को ईशु ने जो चुनौती दी, वह उनकी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू है। उनके शिष्य आश्चर्यचकित हो गये थे, जब उन्होने यह घोषणा की कि एक अमीर के लिये ईश्वर के राज्य में प्रवेश करना असभव सा है, क्योंकि उसकी अमीरी उसे याथार्थ्यों के बारे में अधा बना देती है। जब तक इस उद्‌गार ने उन्हे इस विषय पर विचार करने के लिये बाध्य नही किया था, तब तक उनके शिष्योंने यही माना था कि सपत्ति ईश्वर की विशेष कृपा की एक निशानी है। उनकी यह भी मान्यता थी कि पुरुष स्त्रियो से श्रेष्ठ है, इस-लिये जब एक स्त्री को-जो कि समाज में बद-नाम थी और जिसके साथ एक कुए के पास अचानक ही मुलाकात हुई थी—आध्यात्मिक उपदेश देने में गुरु को काफी मेहनत उठाते हुए देखा तो उन्हे और आश्चर्य हुआ। और बच्चा का तो उनकी नजर में कोई भी महत्व नही था। एक दफे उन्होंने कुछ स्त्रियो को रोकने की चेष्टा की जो अपने बच्चो को गुरु के पास लाकर उनके बहुमूल्य समय "नष्ट करना" चाहती थी। तब ईशु ने उनको मना किया, बच्चो और उनकी माताओ का प्रेम के साथ स्वागत किया; इतना ही नही, उन्होंने एक बच्चे को उनके बीच में खडा कर दिया और शिष्यो से कहा कि अगर वे उस बच्चे के जैसे

नही बनेंगे तो ईश्वर के राज्य में प्रवेश नही पायेंगे। क्यो ? क्योकि बच्चे–जब तक उनका मन सामाजिक प्रतिष्ठा की गलत धारणाओ से कलुषित नही होता है–लोगो का उनकी सही योग्यता के आधार पर ही मूल्यांकन करते हैं, वे अभी बहरे और अंधे नही बने है; जैसे ईशु कहा करते थे, उन्हे अभी सत्य "सुनने के लिये कान" है।

बच्चे को बीच में खडा करने का ईशु का यह काम सिखाने के उनके तरीको की प्राणवत्ता का एक उदाहरण है। हम कह सकते हैं कि "श्रवण दर्शन उपकरणो" के बारे में वे पूरी तरह से जानते थे। वे जानते थे कि एक दृश्य, एक वाक्यखण्ड, एक उपमा या कविता मनुष्य की स्मृति पर ऐसे अंकित होती है, जो केवल सैद्धान्तिक या वाचिक शिक्षा नही कर सकती है। और यद्यपि उसका पूरा पूरा अर्थ उस समय मन में उतर न पाया हो तो भी वह रह रह कर स्मृतिपट पर आयगा और तब उसके तात्पर्य का पूर्ण बोध होगा। मछली पकडने वाले अपनी जालिया समुद्र में फेंक रहे थे, उन्होने उनसे कहा, "मेरे साथ आओ और मैं तुम्हे आदमियो को पकडनेवाले बनाऊगा।" उस समय जेरुसलम् में रोम का शासन था और ईशु को रोमन् राज्य का कर देने के बारे में कहा गया। उन्होने कहा "मुझे एक सिक्का दिखाओ और उस पर यह किसकी मूर्ति है ?" मूर्ति भगवान् की नही, रोमन् साम्राट् की थी।

कहा जाता है कि जब ईशु ने बोनेवाले की कहानी बतायी तब उन्होने पत्थरभरे एक खेत में किसी को सचमुच बीज बोते हुए देखा था, और कहानी कहते कहते उन्होने उन पक्षियो की तरफ इशारा किया था, जो बीज खाने के लिये इकट्ठे हुए थे। यह सही हो या न हो, ईशु का सिखावन रोज़मर्रा जिन्दगी की साधारण घटनाओ से भरा हुआ है––बीज बोना, फसल काटना, खाना पकाना, झाडू लगाना, भीख मागना, दावत देना; ऐसी बाते जो हर कोई जानते और समझते हैं, वे व्यावहारिक नैतिकता में नये पाठो के माध्यम बनाए हुये हैं।

और बाइबिल की सब से करुण कहानी वह है जब ईशु अपने शिष्यों को आखिर तक इस बात पर झगडते देख कर कि उनमें "सब से बडा" कौन है, अत्यन्त दुःखी हुए थे और अपने कपडे उतार कर एक बहुत छोटे नोकर का रूप धारण किया था, अपने शिष्यो के पाव धो कर उन्होने तोलिया से पोछा। यह ऐसी शिक्षा थी जो कभी भूली नही जा सकती।

५ ईशु ने लोगो के साथ रहने से उन्हें शिक्षा दी। उन्होने *"बारह आदमियो को चुना, ताकि वे उनके साथ हो सके"*। एक दल में एक साथ रहने तथा दिनभर के जीवन में हिस्सेदार बनने का शिक्षा की दृष्टि से जो मूल्य है, उसमें वे विश्वास करते थे। हम बाइबिल में पढते हैं *कि उनके सब से महान् उपदेशो के अवसर इस* दल के दैनिक जीवन की घटनाओ से स्वाभाविक ही निकले हुए थे। हम यह भी पढते हैं कि यह छोटा सा संघ, जिसे गुरु से दीक्षा मिली थी, ईशु के निधन के बाद भी अविचल रहा और वे शिष्य उनकी शिक्षा और उपदेशो के सन्देशवाहक बन गये। इन साधारण गुणदोषपूर्ण आदमियो ने ही ईशु की शिक्षा को नष्ट होने से बचाया और उनकी जीवनी और उददेशो का जो वर्णन बाइबिल में मिलता है उसके लिये हम इन्ही के ऋणी हैं।

शिक्षक ईशु के जीवन की ये कुछ बाते हैं जिन पर अपने ही सिखाने के कार्य के संबन्ध

(शेषांश पृष्ठ २१६ पर)

भविष्य बालक का है, पर

काशिनाथ त्रिवेदी

भविष्य का स्वामी सदा से ही बालक रहा है। आगे भी वही रहेगा। बालक की विभूति इसी में है कि वह भविष्य का स्वामी है। वर्तमान उसका अवश्य है, पर उस पर उसका काबू नही। वर्तमान में वह विवश है और यही उसके जीवन की सबसे बडी करुणा है। अपनी इस विवशता का उपचार उसके अपने हाथ में नही, हमारे हाथो में है, हम, जो उसके बडे बन कर बैठे हैं। हम समझ, चाहे और यत्न करे तो बालक के जीवन की इस विवशता को बडी हद तक दूर कर सकते हैं और उसे विकास के मार्ग पर निधडक आगे बढाने के लिए रास्ता खोल सकते हैं। बालक सहज ही विकासशील होता है। उसका क्षण क्षण विकास में बीतता है। उसका अग प्रत्यग, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय विकास की भूखी होती है। उसकी सवेदनशीलता इतनी सूक्ष्म, तीव्र और उत्कृष्ट होती है कि उसका अ कलन या वर्णन करना हमारे बस का नही। प्रकृति ने बालक के मन-मस्तिष्क को इतना सवेदनशील बनाया है कि ससार का कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सवेदन-यन्त्र भी उसकी बराबरी नही कर सकता। शैशवावस्था में अपनी इसी सवेदनशीलता के सहारे बालक अपने आस-पास की प्रकृति, समाज, व्यक्ति और व्यवस्था के प्रति इतना सजग रहता है कि साधारणतः यह बात हमारे समान बडो की समझ में आ ही नही पाती। बालक के सुख-दु ख और हर्ष-विषाद के आवेग बहुत प्रबल होते हैं। मान-अपमान को भी वह तत्क्षण बडी गहराई से ताड लेता है।

जन्म के दिन से लेकर ६–७ वर्ष तक की उसकी उमर का समय बहुत ही मूल्यवान माना गया है। यह समय फिर उसके जीवन में कभी आता नही। इस उमर में उसे जो मिल जाता है, वह समूचे जीवन के लिए उसके साथ जुड जाता है। बालक के भविष्य को बनाने या बिगाडने में इन वर्षों का बडा हाथ रहता है। यदि परिवार और समाज की ओर से इस उमर में बालक को भर-भर कर सही व्यवहार दिया जाए, सही साधन दिए जाए, सही वातावरण दिया जाय, और सही अवसर दिए जाए तो इन सबसे लाभ उठाता हुआ बालक जिस तरह अपना विकास करेगा वह मानवता के लिए भूषणरूप ही होगा। जिसे बचपन में कुछ नही मिला, वह बडेपन में दूसरो को क्या देगा? कुए में पानी होगा तभी न डोल में आएगा? इसीलिए बाल-जीवन के मर्मज्ञो ने कहा है, बालक बडो का बाप है। जिन परिस्थितियों में बचपन बीतेगा, वे बाल-मन पर वैसा असर करेगी और बडेपन तक वह असर अपना काम करता रहेगा। बचपन में बच्चे को स्वावलम्बी, स्वतत्र, स्वाभिमानी, सेवा-भावी, साहसी, परिश्रमी, प्रामाणिक, परोपकारी और निर्भय बनने का मौका मिला, तो बडेपन में वह इन गुणो का विकास करके जीवन में बहुत ऊचा उठ पाएगा। कम-से-कम उसका रुख तो ऊचाई और अच्छाई

की ओर रहेगा ही। परिस्थितियां उसे गिराएं या बाद में जुडी हुई दुर्बलताएं उसे विवश करें, तो बात दूसरी है। इसीलिए कहा गया है कि जिनका बचपन सम्हल गया, उसका जीवन समूचा बन गया—सुरक्षित हो गया। मनुष्य के बचपन की कुछ ऐसी ही महिमा है। प्रकृति में सर्वत्र यही नियम पाया जाता है। इसीलिए जीवन में बीज, अंकुर और पौधे का इतना महत्व माना जाता गया है।

यों देखा जाए तो दुनिया के सारे उद्योग और व्यापार बालक के लिए ही होते हैं। हर पिता और हर माता की यह भावना रहती है कि उनके बालक उनसे अधिक समर्थ हों, समृद्ध हों और सफल हों। इसी अर्थ में बेटे को बाप से सवाया देखने की लालसा सब के मन में रहती है। पर बेटा चाहे तब भी बचपन में ऐसी कोई युक्ति नहीं कर सकता, जिससे मा-बाप की मदद और सहयोग के बिना ही वह बडेपन में उनसे सवाया बन जाए। यह जिम्मेदारी तो प्रकृति ने माता-पिता पर ही डाली है। घर में बच्चे का आना, माता-पिता के लिए साधना का एक बडा निमित्त बनता है। जो माता-पिता सजग रहकर, साधक रूप में बालक के बीच रहते और जीते हैं, वे अपने बालक को सहज ही इतना दे देते हैं, जितना और किसी उपाय से दिया नहीं जा सकता। भगवान् की तरह बालक भी भावना का ही भूखा होता है। उसे घर में, समाज में सब की भरपूर भावना मिले, तो उसका जीवन-सुमन खिलता ही चले। मुरझाने और कुम्हलाने का प्रसग खडा ही न हो। पर आज तो हालत कुछ और ही है।

सैंकडो सालों की गुलामी, अज्ञान, अंधविश्वास और गरीबी आदि ने मनुष्य के दिल-दिमाग को इतना जड-पत्थर बना दिया है और भावनाओं को इस तरह से दबाया, कुचला है कि झकझोरने पर भी औसत आदमी अपनी सहज और शुद्ध वृत्ति पर आ नहीं पाता। उसे बुराई अच्छाई और अच्छाई बुराई लगने लगती है। गुलामी में पग-पग पर उसकी मानवता को जिस तरह रोंदा गया, गाली गलोज, मार-पीट और डाट-डपट के सहारे जिस तरह उसे मजबूर कर-करके उससे काम लिया गया, उसके फलस्वरूप वह इतना जड और चेतना-शून्य हो गया है कि उसे अपने मूलस्वरूप का भान ही नहीं हो पाता। जब घर-गृहस्थी बसाए हुए बडों के मन-मस्तिष्क का यह हाल है, तो उनके बीच असहाय की भांति जीने वाले शिशुओं और बालकों की क्या स्थिति होगी, इसकी कल्पना करना कठिन नहीं। आश्चर्य और दु:ख इस बात का है यह हालत केवल अपढ-कुपढ माता-पिताओं की नहीं, बल्कि प्राय: उनकी भी है, जो शिक्षित, सभ्य, सस्कारी, संपन्न और समर्थ माने जाते हैं। आज बालक का जीवन ऊपर से नीचे तक, महल से झोपडी तक, सब कहीं भारी विवशता के बीच बीतता है। जिसका बचपन नाना प्रकार की विवशताओं और ताडनाओं के बीच बीता हो, वह बडेपन में महान् गुणों का स्वामी किस तरह बने?

इसीलिए यह जरूरी ही नहीं, लाजिमी भी है कि बालक को उसके भविष्य का सच्चा स्वामी बनाने के लिए हम उसके वर्तमान को अपने व्यवहार, विचार, वाणी और विवेक से इस तरह समृद्ध करें कि उसके बचपन में और फलत: बडेपन में भी सहसा कोई विकृति और गिरावट न आने पाए। इसके लिए आदि से अंत तक समाज के बडे बूढे ही जिम्मेदार हैं।

(शेषांश पृष्ठ २४९ पर)

सर्वोदय सहकारी ग्राम स्वराज्य संघ, सेवाग्राम

अ. वा. सहस्रबुद्धे

अेक वर्ष की खेती का अहवाल :

(अेक अप्रैल १९६० से मार्च १९६१ तक)

पिछले १॥ वर्षों से सेवाग्राम में खेती उद्योग प्रधान एक समाज बनाने का प्रयत्न जारी हुआ है। सर्वोदय आन्दोलन में काम करनेवाले कार्यकर्ताओ के और नई तालीम शालाओ के सामने पिछले कई वर्षों से अेक समस्या खडी हुअी है, वह यह कि खेती के आधार पर अैसा श्रमिक समाज बनाना है, जिसमें हर सदस्य को जीवन पोषण का मूल आधार प्राप्त हो सके। अगर अपना आन्दोलन स्वाश्रित और व्यापक बनना है, तो वह तभी सभव होगा जब गाव के लोग सैकडो की तादाद में अपना-अपना उत्पादन कार्य करते हुये समाजनिर्माण के कार्य में योग दे सके। नई तालीम से यह अपेक्षा है कि उसमें से निकले विद्यार्थी अपने श्रम के आधार पर आजीविका प्राप्त कर सकेंगे। लेकिन सवाल यह है कि प्रचलित खेती की पद्धति और तरीको में आज अधिक मेहनत करने पर भी श्रम से फुर्सत या पेट भर खाना मिलना बहुत आसान नही है। हमारी सस्थाओ में आम तौर पर जो खती चली है उसका स्वरूप भी यही रहा है। शिक्षक, विद्यार्थी, खेती सभालने वाले सचालक गण और कुछ मजदूर-ये सब मिलकर खेती का काम समालते हैं। शालाओ में और सस्थाओ में बार-बार यह सवाल उठता है कि विद्यार्थी या मजदूर पूरा दायित्व नही ले पाते हैं, उतना ही नही इस काम में अपनापन नही महसूस करते हैं। खेती की योजना काम करने वालो की कैसे बनें, खेती की पद्धति वैज्ञानिक और अधिक उत्पादक कैसे हो और खादी शास्त्र विकसित हुआ है और उस शास्त्र में हमें काफी आकडे प्राप्त हुअे है, वैसे खेती काम में भी काम का नर्म्स और अेक वैज्ञानिक बुनियाद कैसे मिले। यह सब प्रश्न सस्थाओ के सामने अेक समस्या बनकर खडे हैं।

सेवाग्राम में आज खेती का प्रयत्न अिस सवाल का जवाब तलाश करने के रूप में है। यहा सर्व सेवा सघ की कुल ३२५ एकड जमीन है, जिसमें १०३ एकड पहले दर्जे की है, ३४ एकड मध्यम दर्जे की है और ७६ एकड हलकी जमीन है। ११५ एकड पडती जमीन है जिसमें २५ एकड मकानों के काम ली गयी है। यहा के औसत किसान परिवार की प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति १२४ रुपया वार्षिक आमदनी है। याने परिवार में अदाजन ५०० से ६०० रुपया वार्षिक आय होती है। खेती की आमदानी १५० रुपये से १,८०० रुपया वार्षिक आय जबतक नही करेंगे तब तक पढे लिखे लोग खेती को अपनायेंगे नही। अपने परिश्रम से इस वृद्धि को सिद्ध करके दिखाना इस खेती प्रधान उद्योग परिवार का मुख्य

उद्देश्य माना गया है। अक्टोबर १९६० में सर्वोदय सहकारी ग्राम स्वराज्य संघ की स्थापना हुअी, जिसके द्वारा संघ की २०९ एकड जमीन को १२ इकाइयों में बांटकर प्रत्येक इकाई को एक उत्साही तरुण और उनके साथ काम करनेवाले अेक दो साथियों को स्वतंत्र रूपसे काम करने के लिये सौंपा गया। हर इकाई में सिचाई का प्रबंध है और हर कुअें में बिजली से चलनी वाली मोटर पंप का प्रबंध भी किया गया। प्रारंभ से ही फसल की योजना बनाना, हर इकाई पर ही सौंपा गया प्रत्येक इकाई हर मौसम की खेती तथा अपने-अपने काम का विस्तृत विवरण लिखें यह आग्रह भी रखा गया। पढे लिखे लोग कम पढे लिखों को मदद करेंगे। सामूहिक चर्चा, विचारविनिमय से आपस के काम का निरीक्षण और मार्ग दर्शन होने लगा। पढे लिखे लोगों का किताबी-ज्ञान, कम पढे लिखे लोगों का अनुभव का ज्ञान, दोनों के मेल से खेती–काम द्वारा प्रौढ शिक्षण का अेक ढाचा धीरे-धीरे बना रहा है। मोटे तौर पर ५ साल तक यह योजना चलाने का सोचा गया है। प्रत्येक इकाई में आम तौर से अेक ही सहकारी मजदूर रखा गया है। हिसाब के बारे में यह मत रहा है कि नफा नुकसान की पूरी जिम्मेदारी इकाई स्वयं उठावे। खेती से जो आमदनी होगी उसका दसवां हिस्सा ब्याज, घिसारा, खेती लगान और सामूहिक व्यवस्था की दृष्टि से अलग रखने का सोचा गया। कुल उत्पादन के ९० प्रतिशत में यदि खर्च निकालकर कुछ बचत होगी, तो अुसे इकाई में पूर्ण रूप से जिम्मेदारी से काम करनेवाले लोगों में वितरित किया जावेगा। खेती में किसी स्थायी परिवार को ६० रुपये मासिक से कम नहीं मिले और ज्यादा-से-ज्यादा १५० रु. मासिक मिले, यह मान्यता रखी गयी और उत्पादन बढने के साथ-साथ इस वेतन का अन्तर कम करने का सोचा गया। उत्पादन अधिक होने के लिये जमीन सुधार, सिंचाई का प्रबंध आदि स्थाई खर्च सर्व-सेवा-संघ से किया जाय। चालू खर्च के लिये संघ से पूंजी मिलती रहे, जो फसल के बाद लौटाने की जिम्मेदारी इकाई लें। इस व्यवस्था से यही अपेक्षा रही है कि ज्यादा से-ज्यादा उत्पादन की प्रेरणा मिलेगी, जिम्मेदारी का भान होगा और सहकारी भावना का विकास होगा।

प्रयत्न यह रहा कि शिक्षित युवक खेती में स्वयं ६–८ घंटा काम करके यह साबित करे कि समतोल और नियोजित खेती द्वारा अधिक आनन्ददायक जीवन प्राप्त हो सकता है। गांव के अनपढ नौजवान भी अेक दो वर्ष बाद अिस प्रकार की आयोजित कृषि अिकाअी जिम्मेवारीपूर्वक चलाने लायक बन सकें इस दृष्टि से गाव के कुछ लोगों को प्रत्येक अिकाओ प्रमुखने सहायक के रूप में चुन लिया और अिस प्रकार प्रौढ नअी तालीम शुरू हुअी। शुरू में अिन सहायकों को ४० रुपया माहवार ही देने का तय हुआ। चालू साल में खेती में जो मुनाफा हो उसका ५० प्रतिशत बोनस के रूप में काम करने वालों को दिया जाय यह तय किया गया। खेती में कुल २२ परिवार काम करते थे। जीवनमान और आमद बढ़ाने के चक्कर में कहीं हमलोग पैसेवाली फसलों के पीछे न दौड़ने लगें अिस दृष्टि से योजना के कुछ नियम बनाये गये। २५ प्रतिशत जमीन पैसेवाली फसलों (मनी क्राप्स) के लिये, २५ प्रतिशत चारे के लिये और शेष ५० प्रतिशत

अनाज और अन्य जरूरतो के लिये रखने का तय हुआ ।

२०९ अेकड़ जमीन पर काश्त की गयी । उसमें ५६ अेकड सिंचाओ की और १५३ अेकड़ सूखी थी । सिंचित भूमि में से बरसात में ५६ अेकड़, सर्दी में ३९ अेकड़ और गर्मी के दिनों में १८ अेकड में फसले बोई गयी। सिंचित जमीन में २ या ३ फसले तथा सूखी में १ ही फसल ली गयी । इस वर्ष ८८५ मन अनाज, ११४ मन कपास, ६,००० मन चारा, ४०,००० पूली सूखा घास पैदा हुआ । सपूर्ण खेती में कुल खर्च ६२,७०६ रुपया और आमदनी ५४,५१५ रुपया हुई । ८,१५१ रुपये का नुकसान रहा । यदि दस प्रतिशत व्यवस्था खर्च घटा दें जो इस नुकसान में शामिल है, तो प्रत्यक्ष घाटा केवल ४,६५१ रुपयें हुआ ।

फसलें :—मुख्य फसले धान, कपास, ज्वार, गेहू, चारा और फलो में सतरा, केला तथा अंगूर की रही । इसके पूर्व यहा इस क्षेत्र में ज्वार और कपास ही मुख्य फसले थी । थोड़ा गेहू तथा धान भी होता था । पर उनका प्रति एकड़ उत्पादन कम ही था । फलो में केला, पपीता और सतरा ही होता था । पैसेवाली फसलो के लिये कपास होती थी, पर उसकी उपज बहुत कम थी, प्रति एकड ६०० से ९०० पौंड तक होती थी । हमने खेती प्रारम्भ करने के बाद फसल योजना बदली । अनुभव ने बतलाया कि जहा सिंचाई की व्यवस्था है, वहां कपास और ज्वार फायदे की फसले नही हैं, क्योंकि ज्वार और कपास की साल में एक ही फसल ली जा सकती है, परन्तु धान के बाद गेहू चना, मटर, सब्जी आदि की दूसरी फसलें ली जा सकती हैं । अतः धान का क्षेत्र बढा दिया और आवश्यकता पडने पर सिंचाई भी की गयी । धान के बाद उसी खेत में दूसरी फसल गेहू की ली गयी ।

पहले वर्ष के कम-से-कम तथा ज्यादा-से-ज्यादा उत्पादन के खर्च तथा आमद के तुलनात्मक आंकडे

फसल रु०	ज्यादा-से-ज्यादा प्रति एकड				कम-से-कम प्रति एकड खर्च			
	खर्च रु०	उत्पादन		नफा या घाटा	खर्च रु०	उत्पादन		नफा या घाटा
		मन	कीमत			मन	कीमत	
धान	३४०	४०	५४०	२०० नफा	१४९	९	११७	३२ नफा
गेहू	३९०	३८	६९४	३०४ ,,	१९१	११	१९८	७ ,,
कपास	४९५	२७	८७६	३८१ ,,	२०८	१०	३८०	१७२ ,,
बरसीम	७९७	६२०	९३०	१३३ ,,	४३२	३-६	४५१	२७ ,,
भाजी	५८६	९१	७२८	१४२ ,,	६०६	३४	३१४	३२२ घाटा
कडयालू	६३२	६१२	७६५	१३२ ,,	३१०	११०	१३७	१७३ ,,
जवार	१८०	१२	१०८	७२ घाटा	६०	२	३०	३० ,,

आगे के पत्रक से पता चलेगा कि वर्धा जिले के औसत आकडो के साथ इन के आकडों की तुलना की गई है । पत्रकों में दिखाये गये आकडो को देखने से स्पष्ट होता है कि इस एक साल में ही विभिन्न फसलो की पैदावार हमारे यहां की खेती में ही प्रति एकड सवागुनी से डेढ़ गुनी तक बढी है । वर्धा जिले के सूखी खेती के आकडों के साथ तुलना करते हैं तो

यह फर्क २–३ गुना से भी ज्यादा दिखाई देता है। अनाज की खेती के अलावा ११,०००, केले के पौधे, १,००० पपीता, ४०० संतरा (२ साल के) तथा १५० अमरूद (२ साल के) लगाये गये है। पौन एकड में करीबन् १००० अंगूर की बेलें भी प्रयोग के तौर पर लगाई गई है। थोडा गन्ना, हल्दी, अदरक और फल भी लगाये गये हैं। फूल का बगीचा सौंदर्य के साथ साथ आमदनी का भी जरिया हो सकता है, इसका प्रयोग किया जा रहा है।

वर्धा जिले तथा सेवाग्राम के उत्पादन का तुलनात्मक दर्शन

फसल	वर्धा जिले का प्रति एकड औसत				१९६०–६१ का सेवाग्राम का औसत			
	खर्च रु	उपज पौंड	कीमत रु	बचत रु	खर्च रु	उपज पौंड	कीमत	बचत रु
कपास	१०१	४००	२००	९९	२६३	९८०	४९०	२२७
गेहू	८२	५००	१२०	३८		१४८०	३२४	३४
धान	८०	७००	१०८	२८	२७७	१८४०	२८८	११

१९६०-६१ का इकाईवार आय व्यय विवरण पत्रक

इकाई क्रमांक	क्षेत्रफल सिंचित एकड	क्षेत्रफल सूखा एकड	कार्य कर्ता	साल भर की आय खडी फसल रूपया	साल भर की आय प्रत्यक्ष आय	कुल आमद रू	कुल खर्च रूपया	मुनाफा रूपया	नुकसान रू
१	१०	–	३	२३३३–००	४९७६–१०	७३०९–१७	६६७२–४४	६३६–७३	–
२	६	–	२	७०४–०४	२४२२ ९५	३१२६–९९	३८५२–८९	–	–
३	१२	–	५	७९११–०१	५६७०–४९	१३५८१–५०	१५०५२–६१	–	१४७१–१–
४	७	–	२	११८६–००	३०८३–८२	४२६९–८२	५२६६–३०	–	९९६–४८
५	९½	–	३	९६६–००	७८३३–५१	८७९९–५१	८६१२–८७	१८६–६४	–
६	७½	१२	३	८७५–००	३७१७–१५	४५९२–१५	७९८०–१७	–	३३८८–०२
७	४	२९	३	१६७४–६५	६०९८–३०	७७७२–९५	८०४५–४३	–	२७२–४८
८	–	४९	५	–	१९१६–०५	१९१६–०५	३८४२–५१	–	१९२६–४६
९	–	१४	२	३४–१६	९५८–१५	९९२–३१	१२५१–०३	–	२५८–७२
१०	–	४९	२	–	२१५४–८२	२१५४–८२	२१३०–२९	२४–५३	–
बैल विभाग			२	–	–	–	–	१३९–८२	–
जोड	५६	१५३	३२	१५६८३–९३	३८८३१–३४	५४५१५–२७	६२७००६–५४	९८७–७२	९०३९ १७

खर्च तथा आमद . इस साल में कुल खर्च ६२,७०६ रुपये तथा आमद ५४,५१५ रुपयो की हुई जो कुल खर्च का ८७ प्रतिशत है। इसमें ६१-६२ के लिये १५,६८४ रुपयो की खडी फसले है। कुल मिलाकर ८१५१ रुपये का नुकसान रहा जो कुल खर्च का १३ प्रतिशत है। इसमें से करीबन् ६,००० रुपयो का नुकसान सूखी खती में हुआ। खडी फसलो में केला,

पपीता, अंगूर, अमरूद, संतरा और हराचारा आदि हैं। आय-व्यय के इकाईवार विवरण, जो ऊपर दिया गया है, से स्पष्ट होगा कि कुल खर्च में वह रु. ३,५०० भी शामिल है जो आय के १०% है और सर्व सेवा संघ में व्यवस्था खर्च और केंद्रीय प्रवृत्तियों के वास्ते रखा जाता है। आज खेतीमें काम करनेवालों के सामने समस्या है कि छोटी छोटी इकाइयों से-५-६ एकड जमीन से-आस पास के क्षेत्र में काम करनेवालों से ज्यादा उत्पादन कैसे करे। इस साल स्थाई रूपसे खेती में काम करनेवालों का औसत वेतन करीब एक सौ रुपया प्रति माह रखा है। इस साल की आकडों में खर्च का ६०%-३७,६९४ रुपया, स्थाई वेतन, अस्थाई मज्दूरों और बैल खर्च के मदों में गया है जो खेती के संगठन की दृष्टि से अधिक माना जायेगा। इस खर्च का प्रतिशत घटाना खेती की सफलता के लिये एक मुख्य कदम है।

भूमि-सुधार : अिस साल व्यापक पैमाने पर भूमि-सुधार का काम किया गया। मृत्तिका संरक्षण के लिये २५ अेकड़ भूमि पर कटूर बंडिंग किया गया। ३० अेकड़ में प्लाट्स के हिसाब से बांध डाले गये। पानी के निकास के लिये २० अेकड़ में नालियां बनायी गयीं। खेतों में नुकसान पहुंचाने वाला अेक नाला ६ फर्लांग तक थोडा गहरा तथा सीधा किया गया। उसके दोनों ओर बांध डाला गया। बांधों की मजबूती के लिये उन पर पैरा घास लगायी गयी। अिन कामों में कुल खर्च १०,४५८ रुपये हुआ। मृत्तिका-संरक्षण का काम अिर्द-गिर्द के क्षेत्र में भी सरकार की ओर से चल रहा है।

भूमि-सुधार का फसलों पर अेक साल में अेकदम असर नहीं दिखाअी देगा। परन्तु इसके कारण धीरे-धीरे भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होगी और बंडिंग तथा नालियों आदि के कारण अगले पांच सालों में उपज की मात्रा में २५ प्रतिशत तक वृद्धि होगी, अैसी सम्भावना दीखती है। खेतों से जो उपजाअू मिट्टी और खाद वर्षा में बह जाती थी, उसकी रोकथाम हुअी है और अब वह खेत में ही बनी रहेगी।

खाद : अधिकांश अिकाइयों में से मिट्टी के नमूने मृत्तिका परीक्षण शालाओं में भेजे गये। उनके निष्कर्ष मिलने पर जिस भूमि में जिन तत्वों की कमी दिखाअी दी उनकी पूर्ति करने के प्रयत्न किये गये। अिसके लिये कम्पोस्ट, तालाब की मिट्टी, हरी खाद, (सन-सावरी) खली की खाद तथा रासायनिक खादों का उपयोग किया गया। कुल ९,४९६ रुपयों का खाद डाला गया था। अिसमें से करीब ३,५०० रुपयों का रासायनिक खाद था। करीबन् २०० गाडी गोबर की खाद तथा ४० ट्रक तालाब की मिट्टी बाहर से लायी। कम्पोस्ट खाद में स्वावलम्बी होने के प्रयत्न जारी हैं। वर्ष भर में ३०० गाडी कम्पोस्ट बनाअी गयी। खेती के चारों ओर करीबन् १० हजार फीट सावरी लगाअी गयी। उसके पत्तों का उपयोग खाद के लिये किया गया। नत्रजन, फासफोरस व पोटेश की अपनी जरूरत का अधिकांश सेन्द्रिय खाद से पूरा कर सकें, इस दिशा में प्रयास चालू हुआ। खाद की अपनी आवश्यकतापूर्ति के लिये हमें मल-मूत्र का पूरा-पूरा उपयोग करना पडेगा। आज आम तौर पर उसके प्रति हमारी उदासीन वृत्ति दिखाई देती है। यदि हम इसका खाद के लिये ठीक से उपयोग करना सीखते हैं तो हमारी खाद की समस्या काफी मात्रा में हल हो सकेगी। उसके लिये गोपुरी संडास, नली-

वाला कैंसल सडास, पवारजी का आदर्श सडास, गैस प्लान्ट आदि का उपयोग करे, इस दिशा में प्रयत्न चल रहा है।

सिंचाई :—हमारे पास कुल १५ कुयें हैं, उनमें से ११ कुओं पर बिजली के पंप बिठाकर सिंचाई की गई। ठंड में ३९ एकड़ तथा गर्मी में १८ एकड भूमि में सिंचाई की गई। इस वर्ष सिंचाई के लिये बिजली खर्च ३,०८७ रुपया हुआ। पंप और पाईप बिठाने का कुल खर्च १९,६७२ रुपया हुआ। कुछ कुओं की सिंचाई क्षमता बढाने की दृष्टि से उनको गहरा किया गया, इससे पानी की मात्रा में वृद्धि हुई। सिंचाई के लिये करीबन् १॥ हजार फीट पाइपलाईन डाली गई है। इसमें से ६०० फीट सीमेंट की तथा ८०० फीट मिट्टी के पाइप हैं। इसके लिये ३, ३३९ रुपये खर्च हुये। सेन्ट्रल रोड रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली की ओर से न पझरनेवाली (वाटर प्रूफ) नालियां बनाने के बारे में विचार विमर्श हुआ। कौन सी फसल को कितना पानी चाहिये इसका भी अन्दाजा निकालने की कोशिश की गई। कभी कभी आवश्यकता से भी ज्यादा पानी दिया जाता है। कम पानी से ज्यादा जमीन की सिंचाई कैसे हो इसके लिये छिडकाव पद्धति (स्प्रिंकलिंग) से पानी देने का प्रयोग दिखाया गया। बरसात में बहकर जानेवाले पानी को रोक कर जमीन में अन्दर झरने से कुओं के पानी का स्तर बढाने के लिये करीब ११,००० रुपयों की लागत से एक तालाब टेकडी तथा सेवाग्राम सडक के बीच में बनाया गया। इस तालाब का शुभारंभ सन् १९६० में सेवाग्राम में हुये सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर किया गया था। इस तालाब के बांध पर पैरा घास लगाई गई है।

सुधरे बीज व औषधियाँ.—गेहूं के हायब्रीड ६५ व एन. पी. ७१० बीज अच्छे साबित हुए। करीबन् ३५० रुपये औषधि के लिये खर्च हुए।

सुधरे औजार:— इसके लिये विभिन्न अनुसन्धान केन्द्रों से तथा अनुसन्धान कर्ताओं से संबंध स्थापित कर नये औजार मंगाये गये और कुछ मंगाये जा रहे हैं। यहां के स्थानीय औजारों में भी भिन्न-भिन्न प्रयोग किये गये। औजारों पर कुल ६,०९२ रुपये खर्च हुये। दिल्ली से श्रीयुत खर्डेकरजी द्वारा बनवाये गये कृषि औजार भी मंगाये थे परन्तु उनके उपयोग करने की पूरी जानकारी न होने के कारण इस वर्ष उनका उपयोग नहीं किया जा सका।

बैल व्यवस्था : हमारे पास १० बैल जोडियां हैं। आवश्यकतानुसार इकाई के बीच में बांटा जाता था। उसमें १२,९०६९ रुपया खर्च हुये। बैल जब खाली रहे तब क्या व्यवस्था करें, यह समस्या बीच बीच में उपस्थित होती रही। नई जमीन तैयार करना, रास्ते और मकान बनाना आदि काम में बैलों का उपयोग हुआ। कभी कभी गांव वालों को भी किराये पर दिया। सदस्यों के मन में बैल खर्च अधिक है, यह भावना रही। बैलों को सामूहिक रखा जाय या अलग अलग युनिट में बांटा जाय, इसके बारे में अभी तक एक राय नहीं बन सकी है।

बिक्री व्यवस्था . खेती का एक ही विभाग न होने के कारण इकाई प्रमुखों के सामने बिक्री की समस्या आयी। आरम्भ में अलग-अलग व्यवस्था रखी, परन्तु भाव का नियंत्रण खेती समिति करती थी। आगे जाकर इस व्यवस्था में काफी अडचनें आयी, अत: व्यवस्था बदली गयी। सारे उत्पादन की बिक्री और

खरीदी सहकारी दूकान के जरिये करने का तय किया गया। खेती करनेवाले उत्पादक तथा ग्राहक दोनों की एक उप समिति बनाई गई जिनके द्वारा यहां धान्य-कोठार चलाया जा रहा है। उप समिति द्वारा भाव तय किये जाते हैं। खरीदी पर छह प्रतिशत चढाकर बिक्री करने का सर्व सामान्य नियम रखा गया। भण्डार में प्रतिमाह तीन से चार हजार रुपये तक की बिक्री होती है।

हिसाब : इकाई–पद्धति से खेती करने पर हिसाब म आमूलाग्र परिवर्तन करना पडा। शुरू मे विर्द, खतौनी, व्हाउचर फाईल, रसीद बही तथा आमद बही हरएक इकाई के लिए रखी गई। इससे केन्द्रीय दफ्तर से लिए पैसों के खर्च का विवरण पता चलता था। पर कौन-सी फसल पर कितना खर्च हुआ, किस-किस मद में हुआ, किस प्रक्रिया में कितनी मजदूरी लगी, प्लाटवार कितना खर्च हुआ और उत्पन्न कितना हुआ, इन सबकी जानकारी इस पद्धति से हिसाब रखने पर नहीं मिल पाती थी। इसलिए प्रत्येक इकाई की एक दैनिक डायरी रखी गई। उसमें कौन-सा काम किया, कितने आदमी लगे तथा अन्य खर्च क्या हुआ आदि विवरण रखा जाता है। फसलों की खतौनी में दैनिक डायरी की फसलवार और प्रक्रियावार खतौनी की गई। प्रत्येक इकाई का हिसाब इस प्रकार रखने से खेती के तुलनात्मक आंकडे मिले। इससे आगे के लिये काफी लाभ मिलेगा। उदाहरण के तौर पर इकाई क्रमांक ६ में खाद और बैलजोडी पर अधिक खर्च करके भी घाटा रहा। धान की फसल को अधिक खाद देकर भी उत्पादन के आंकडे इकाई क्रमांक ५ से आगे नहीं बढे। अेक वर्ष में ही अधिक खाद देने से उत्पादन अधिक प्रमाण में बढेगा, ऐसा जरूरी नहीं है। इस प्रकार का हिसाब कहां ज्यादा खर्च हो रहा है तथा कहां घाटा होने की संभावना है इस तरफ हर एक व्यक्ति का ध्यान खींचने में मददरूप हुआ। यह हिसाब आगे की फसलवार योजना तथा दाज-पत्रक बनाने के लिये सच्ची और ठोस आधारशिला बनेगी ऐसी आशा है।

सभी खादों का उपयोग खेत में एक ही साल में नहीं होता है। कुछ सालों तक जमीन में उसका असर रहता है। इसका ठीक से हिसाब करने की दृष्टि से खाद का किस तरह बँटवारा करना चाहिये इसके भी कुछ नियम बनाये गये। कम्पोष्ट खाद का खर्च पहले वर्ष ५० प्रतिशत, दूसरे वर्ष ३० तथा तीसरे वर्ष २० प्रतिशत माना गया। खली की खाद पहली फसल में ५० प्रतिशत, दूसरी में ५० प्रतिशत तथा कृत्रिम खादों में अमोनियम सल्फेट पूरा पहली फसल के लिये तथा सुपर फास्फेट २ फसलों के लिये माना गया। वैसे ही बडा लोखंडी हल चलाने का खर्च ३ साल में वितरित किया गया है। उपरोक्त पद्धति से खाद खर्च का बंटवारा करके फसलों के खर्च तथा आमद के हिसाब किये गये।

साथियों का शिक्षण : हमने पहले ही मान लिया था कि एक दो साल में इकाइयों की संख्या बढानी है तथा सहायकों को ही आगे चलकर प्रमुख बनाना है, अतः उनका शिक्षण आवश्यक है। रोज शाम को काम के बाद लोग एकसाथ बैठ कर दिन भर के काम की चर्चा करते थे और दूसरे दिन के काम की योजना बनाते थे। काम की अड़चनों का हल निकालते थे। इससे साथियों को काफी फायदा हुआ। आज वे भी अपने अपने हिसाब रखने लगे हैं,

अपने काम की योजना बनाते हैं और हर सप्ताह के खर्च का अदाजा लगाते हैं। ऐसी बैठको में वे सबके सामने अपने विचार रखने में समर्थ हुए हैं। इसके सिवाय उनको अक्षर-ज्ञान, गणित आदि भी सिखाया जा रहा है। सब साथी काफी रुचि लेकर काम करते हैं और आगे आने का प्रयत्न करते हैं। एक छोटासा खेती सम्बन्धी पुस्तकालय भी रखा है। कुछ साथियो ने कपास, धान और गेहू की फसलो का गहरा अध्ययन भी आरभ किया। ये लोग अध्ययन करके उस विषय को सबके सामने रखते हैं। एक दो साल में सभी साथी अपना हिसाब लिखने तथा योजना बनाने आदि में पूरे समर्थ हो जाएगे ऐसी आशा है। इकाइयो के सभी लोग सप्ताह में एक बार सबके खेतो में जाकर फसलो का निरीक्षण करते रहे, फसलो की आपस में तुलना करके देखते रहे और उस पर चर्चा भी करते रहे हैं। इस तरह के निरीक्षण और चर्चा के द्वारा उनका ज्ञान तथा जिम्मेवारी की भावना भी बढ रही है।

अनुभव तथा अडचनें : विभिन्न इकाइयो के तुलनात्मक खर्च तथा पैदावार के प्रक्रिया-वार आकडो से हमें बहुत सीखने को मिला है। हमें विश्वास हो गया है कि यदि हम ४–५ साल तक इस प्रकार तुलनात्मक समीक्षा करते रहेगे तो इस इलाके के लिये प्रत्येक फसल की प्रक्रिया के कुछ उसूल (नर्मस्) तय कर सकेगे। किस जमीन में कैसी फसल बोना, बीज कौनसा और कितना, पौधो का अतर, बोने के साधन, खाद का परिणाम, मात्रा तथा देने का तरीका, सिंचाई कब और कितनी, व्याधियो की रोकथाम, फसल कटाई का सही समय आदि बातो के बारे में कुछ सही धारणायें कायम कर सकेंगे जो इस क्षेत्र के लिये आगे मार्गदर्शक हो सकेगी।

पिछले ३०–४० साल में औसत वर्षा ३० इच रही, परन्तु इन दो सालो की वर्षा को देखते हुए हमने अपनी तात्कालिक फसल योजना में कुछ फर्क किया है। यदि वर्षा इसी प्रकार ज्यादा रही तो यहा ज्वार या कपास और बीच-बीच में तुवर–यह जो सर्व सामान्य फसले हैं उनमें परिवर्तन करना होगा। लेकिन इस सबध में कोई नया मार्गदर्शक अनुभव आज उपलब्ध नही हो सका है। सिंचाई का ज्यादा से ज्यादा प्रबन्ध करने का हमारा प्रयास रहा है। इसलिये हमारे सिंचाई प्रधान खेती से जो अनुभव आयेंगे, वे आज वर्धा जिले की आम खेती के लिये मार्गदर्शक नही हो सकेगे। लेकिन यदि खेती को अपने पाव पर खडी करना है तो हरएक किसान की खेती का कुछ हिस्सा सिंचित हो, इस दिशा में सोचना आवश्यक होगा।

इस साल खेती में आये घाटे के कई कारण रहे हैं। खेती के कुछ अनुभवी लोग यहा की आबोहवा तथा जमीन के लिये नये ही थे। जमीन के परिचय में समय गया। खर्च तथा आमद के अन्दाजे में इस कारण काफी फर्क पडा। खेती में काम न होने की अवधि में बैलो को तथा कार्यकर्ताओ को सहायक धन्धो में काम मिलना चाहिये। सहायक धन्धे के रूप में वस्त्रोद्योग, रेशा-उद्योग, तेलघानी तथा गाडी-भाडा का काम करने का अगले साल के लिये सोचा जा रहा है।

बाजार भाव में चढाव-उतार के कारण भी काफी नुकसान रहा।

प्रति एकड औसत आय सिर्फ ८७ रुपया रही। यह वर्धा जिले की औसत से भी कम है। उपरोक्त जमीन में बहुत सी जमीन तीसरे दर्जे की मुरूमाड है। इस जमीन का पोत सुधारने का प्रयास पहले करना होगा तभी वह ज्वार और कपास की दृष्टि से लाभदायक होगी। इसमें अनाज बोने के पहले यदि घास या पेड लगाये जावे और ४-५ साल वैसे ही उसको जोड दिया जाय तो धीरे-धीरे मुरम के बदले जमीन बनने लगेगी और उसके बाद ही अनाज की खेती हो सकेगी। किस किस्म की घास बोना चाहिये, कौन से वृक्ष लगाने चाहिए इस सम्बन्ध में काफी विचार हुआ। खरीफ की फसल में वर्षा से लाभ उठाकर घास लगाई जा सकेगी, और उस दिशा में कार्यक्रम हाथ में लेने का हम सोच रहे हैं। जिस जमीन की शक्ति कम से कम ५ मन प्रति एकड पैदा करने की न हो उस जमीन में कतई खेती नही करनी चाहिए। यदि कास्तकार करता रहेगा तो वह घाटे में ही जायेगा। वर्धा जिले में २५ प्रतिशत जमीन इसी किस्म की है जो कास्तकार को पोसाती नही है। अच्छी जमीन में लाभ करना और सूखी जमीन में मरते रहने का काम आज यहा हो रहा है। तज्ञ लोगो की मदद से प्रयोग करके इसका उत्तर निकालना होगा और उस दिशा में हमलोग कोशिश कर रहे है।

सेवाग्राम में खेती का काम एक प्रौढ-शिक्षण का जरिया बने, यह हमारा उद्देश्य है। वर्धा जिले की खेती की समस्याओ के ऊपर यहा चिन्तन हो और यहा की खेती में इस तरह के प्रयोग हो जिससे कि अनुभव के आधार पर खेती का मार्ग-दर्शन करने की शक्ति यहा का खेती-उद्योग प्रधान परिवार प्राप्त करे। कुछ काम प्रयोग के रूप में भी यहा चलते रहेगे, जिनमें नुकसान भी उठाना पडेगा। ग्रामवासियो के छोटे-छोटे वर्ग यहां चलाये जा सकेगें। यहा सीखकर वे अपने-अपने खेतो में उसका अमल करने की कोशिश करेगें। इसके लिये यहा एक शिक्षण सस्था भी चले। १०० लडको के लिये उत्तम बुनियादी का पाठ्यक्रम यहा चलना चाहिये। खेती और उद्योग तालीम के माध्यम बनें। खेती में काम करनेवाले लोग ही शिक्षक बनें उस दिशा में भी हम आगे बढना चाहते हैं। खेती में काम करनेवाला मजदूर दिन में दो-तीन रुपया प्राप्त कर सके ऐसी आर्थिक उन्नति की भी कोशिश यहा होगी।

(पृष्ठ १९६ का शेषांश)

केवल बालको, किशोरो और युवको को दोषी ठहराकर हम अपने लिए निर्दोषता का दावा नही कर सकते। आज देश में और दुनिया में भी सब कही नई पीढी के व्यवहार-विचार में जो उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता दिखाई पडती है, उसके मूल में माता-पिताओ और समाज के बडो के ही प्रकट-अप्रकट दोष है। ये अगर सही जीवन बिताने का आग्रह रखेंगे, तो बालको और युवको में गलत रास्ते में जाने की प्रेरणा जागेगी ही नही। वर्तमान को हम सावधानी से सभाल लेगे, तो भविष्य को सभालने में आज के बालको, किशोरो या युवको को बहुत मेहनत नही करनी पडेगी। भविष्य बालक का है, इसमें शक नही, पर वर्तमान को सभालने का दायित्व हमारा है। हम वर्तमान को सुधार-सभाल लेगे तो भविष्य सदा उज्जवल ही रहेगा।

वैयसाल अंबुलकर

तापमान

तापमान लेखा रखकर विद्यार्थी जब यंत्रो का निरीक्षण करने लगे, तब उनके सामने बहुतसी कठिनाइयाँ खडी हुओ। उन्होने कई गल्तियां की। साधारण तापमान देखने में गल्तिया नही हुओ। ज्यादा-से-ज्यादा और कम-से-कम तापमान देखने में एक विद्यार्थी गलती कर रहा था। और वह उसे ही महसूस हुओ। जिस समय उसने तापमान लिया उस समय जहा पारा खडा था, वही से तापमान ले लिया। परिणाम यह हुआ कि ज्यादा से-ज्यादा और कम-से-कम तापमान में कुछ फरक नही था। उसे बडा आश्चर्य लगा। समझाने पर उसने ठीक रेकार्ड रखा।

दूसरे विद्यार्थी ने दूसरी गलती की। आर्द्रता मापक यन्त्र में गीला तापमापक उसने पानी में घुसाकर रख दिया। परिणामवश उसके दानो ताप में अतर बहुत कम पडा। आर्द्रतामान बढा। इधर आकाश में कोई बादल नही थे, साफ था। उसे बडा आश्चर्य हुआ कि वास्तव में हवा शुष्क होते हुअे भी हमारा यन्त्र आर्द्रतामान बहुत ज्यादा बताता है। पानी के ऊपर उसने बल्ब निकालकर रखा, तब ठीक हुआ।

वायु भार मापक यन्त्र का रेकार्ड देखने में कोई गलती नही हुओ।

रेकार्ड रखते हुअे, विद्यार्थियो के दिलमें कुछ इस प्रकार के प्रश्न उठे —

तापमापक किस प्रकार बनाया जाता है ?

सेंटिग्रेड और फॅरनहीट में क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर:-पारे का तापमापक बनाने के लिये प्रथम नली चुनना चाहिये। इस नली के दो हिस्से होते है। १ नली २. बल्ब। नलीका छिद्र समान और बारीक होना चाहिये। एक सिरेपर लवासा बल्ब लगा हुआ रहता है। दूसरे सिरेपर एक कीप लगी हुई होती है। इस कीप में शुद्ध किया हुआ पारा भर दिया जाता है, किन्तु वह केशनली में प्रवेश नही कर सकता क्योकि उसमें की हवा निकलने का कोई मार्ग नही है। बल्ब को गरम करने पर इस वायुका प्रसरण होता है और पारेको ढकेलकर कुछ वायु बाहर निकल जाता है। उसे ठडा करनेपर कुछ पारा अदर घुस जायगा। इस क्रिया को बार-बार करनेपर सारा पारा केशनलो और बल्ब में भर जायगा। इसके बाद नलीको इतना गरम किया जाता है कि पारा उबलने लगता है। यह कार्य बडी सावधानी से किया जाता है, ताकि हवा का एक भी छोटा बुलबुला पारे में न रह जाय। फिर इसे इच्छानसार तापक्रम पर कीप का सिरा वहीं का काच गला कर बन्द कर देते है। अब केशनली में पारा और उसकी भाप ही है। इस तापमापक पर निश्चित चिन्ह लगाये जाते है।

तापमान दर्शक मुख्य चिन्ह दो होते है. अधोबिंदु और ऊर्ध्वबिंदु। सेंटिग्रेड तापमापक पर अधोबिंदु 0° C और ऊर्ध्वबिंदु १००° C है। फॅरनहीट तापमापक पर अधोबिंदु ३२° फॅरनहीट और ऊर्ध्वबिंदु २१२° फॅरनहीट होता

है। यह बिंदु निश्चित करना महत्व का कार्य है। अधोबिंदु (सेंटिग्रेड) निश्चित करने के लिये तापमापक यंत्र शुद्ध बर्फ में रखा जाता है और जहां पर पारा ठहरेगा वहां कानस से निशान लगाया जाता है। उर्ध्वबिंदु निश्चित करने के लिये यह यंत्र पानी के बाष्प में रखा जाता है और उसी प्रकार चिन्ह लगाया जाता है। फॅरनहीट का अधोबिंदु (0°F) निश्चित करने के लिये शुद्ध बर्फ और नौशादर इस मिश्रण का उपयोग किया जाता है। उर्ध्वबिंदु निश्चित करने के लिये पानी के बाष्प का उपयोग करते हैं।

दोनों चिन्ह निश्चित होने के बाद सेंटिग्रेड तापमापक बनाना हो तो बीचका अंतर १०० विभागों में बाटा जाता है। फॅरनहीट तापमापक 0° से २१२° तक याने २१२ विभाग किये जाते हैं। हरेक विभाग को अंश कहते हैं। शुद्ध बर्फ का तापमान ३२°F है।

वर्ग में दोनों स्थिर बिन्दु निश्चित करने के प्रयोग भी बतलाये गये और समझाया गया।

इस पर से एक प्रश्न निकला कि नौशादर *मिलाने से क्या बर्फ का तापमान कम होता है?* उर्ध्व-बिन्दु निश्चित करने के लिये तापमापक पानीमें घुसाकर क्यों नही रखा जाता?

उत्तर: नौशादर मिलाने से बर्फ का तापमान अवश्य गिर जाता है। नमक या अन्य कोई ठोस बर्फमें मिलाने से भी गिर जायगा। तापमापक पानी में घुसाकर नही रखने का कारण है कि पानी अशुद्ध होता है। उसका उत्कलन बिन्दु ठीक नही दिखाई देगा। लेकिन बाष्पका तापमान स्थिर रहेगा। (यहां पर नमक आदि पानी में मिलानेसे *उत्कलन बिन्दुपर क्या प्रभाव* होता है, यह भी बताना चाहिये।)

दूसरे प्रश्न का उत्तर फॅरनहीट और सेंटिग्रेड *तापमान की बनावट से स्पष्ट होता है।* सेंटिग्रेड का 0° सें. तापमान फॅरनहीट के ३२° फॅ. के तापमान के बराबर है। वैसे ही सेंटिग्रेड का १००° सें तापमान २१२° फॅ. के तुल्य है। सेंटिग्रेड तापमान से 0° से १००° तक १०० भाग हैं। और फॅरनहीट में ३२ से २१२ याने १८० भाग किये हैं। सेंटिग्रेड के १०० फॅरहीट के १८० भागों के बराबर है। याने सेंटिग्रेड के ५ भाग=फॅरनहीट के ९ भाग होंगे। और 0°C=३२°F।

आजका तापमान १६° सें. है। इसे फॅरनहीट में परिवर्तित करना हो तो इस तरह करना चाहिये:—

सेंटिग्रेड ५ भाग=फॅरनहीट ९ भाग

सेंटिग्रेड १६ भाग=फॅरनहीट २८.४ भाग

अब फॅरनहीट का अधोबिंदु ३२° F है। इसलिये २८.४+३२=६०.४° F यह फॅरनहीट तापमान होगा। इसका एक सूत्र ख्याल में रखना आसान होगा।

$$\frac{C}{100} = \frac{F-32}{180}$$

इस सूत्र से सेंटिग्रेड से फॅरनहीट या फॅरनहीट से सेंटिग्रेड में परिवर्तन कर सकते है।

इसके काफी उदाहरण देकर समझाया गया।

रोज के उपयोग के लिये इसका एक आलेख बनाना चाहिए। एक बडा कागज लेकर १"=१० भाग यह प्रमाण लेकर एक तरफ सेंटिग्रेड और दूसरी तरफ फॅरनहीट लिखकर यह आलेख बना सकते हैं। *विशेष गणित करने की जरूरत नहीं* है। १८"×१०" का एक समकोण चतुर्भुज बना॰

कर उसका कर्ण निकाल लीजिये। कर्ण जहां से शुरू होता है वहां 0° नाम देकर १०° वाले बाजूपर १०० तक (सेंटिग्रेड) और १८° बाजूपर १८० तक (फॅरनहीट) या ३२° से २१२ तक अंक लिख दिजिये।

स्थिर बिन्दु के बारेमें विद्यार्थियों के बहुत से प्रश्न थे। कुछ पुस्तकें पढकर भी उन्होंने प्रश्न पूछे। इस सम्बन्ध में प्रश्न इस प्रकार थे:—

बर्फ और भाप का तापमान स्थिर क्यों और कबतक रहता है? समुद्र की सतह पर पानीका उत्कलन बिंदु १००° से. होता है, लेकिन हमारे स्थानपर क्यों बदलता है? वायुभार का परिणाम उसपर कैसा होता है?

उत्तर: समुद्र की सतहपर ३० इंच वायुभार है। हमारे यहां २९.३ इंच रहता है। वायुदाब जब कम होता है, तब उत्कलन बिंदु कम होता है। जितना हम ऊंचा जायेंगे वायुभार उतना ही कम होता जायगा। उत्कलन बिंदु भी कम होगा।

यह स्पष्ट करने के लिए उन्हे दो प्रयोग बताये गये। (१) भार बढने पर उत्कलन बिंदु बढता है। (२) भार कम होने पर उत्कलन बिंदु कम होता है। एक फ्लास्क में पानी लेकर उसको दो छेदवाला काग लगा दीजिये। एक छेद में तापमापक व दूसरे में समकोण काच नली रखो। कांचनली को रब्बर की नली लगाकर एक काच के ग्लास उसके दूसरे सिरे रखो। पानी को गरम करने पर जब वह उबलने लगता है, तब तापमान नोट कर लो। ग्लास में पानी डालो। उबलना कुछ समय के लिये बन्द हो जायगा। फिर पानी उबलने लगेगा। तापमान देखने पर पता चलेगा कि तापमान पहले की अपेक्षा बढा है। जैसा जैसा पानी ग्लास में बढेगा तापमान भी बढेगा। ख्याल में रखना चाहिये की तापमापक फूट न जाय।

दूसरा प्रयोग भी आसानी से कर सकते है। फ्लास्क में पानी उबालो व उसे कागज लगाकर उलटा रखो। ठंडा पानी उसपर डालने पर देखा जाता है कि पानी फिर से उबल रहा है।

पानी जब उबलता है तब वह भाप बनने के लिये गर्मीका उपयोग करता है। इसलिये उसका तापमान बढता नहीं। हर द्रव पदार्थ का ऐसा ही होता है। द्रव से वायुरूप बनना, यह एक क्रिया है, जिसे स्थितिपरिवर्तन की क्रिया कहते हैं। वैसे ही ठोस से द्रव, द्रव से ठोस और भाप से पानी बनने की क्रिया को भी स्थितिपरिवर्तन कहेंगे। जब स्थितिपरिवर्तन होता है, तब गर्मी का प्रमाण कम या ज्यादा जरूर होगा पर उसका तापमान पर कुछ भी परिणाम नही होगा। इसलिये सभी स्थितिपरिवर्तन की क्रियाओं में तापमान स्थिर रहेगा। इस ताप को गुप्त ताप कहते हैं। पानी का बर्फ बनता है, इस क्रिया में तापमान स्थिर होगा परंतु ताप या गर्मी निकल जायगी। जितनी गर्मी पानी के बर्फ बनने में कम होगी, उतनी ही बर्फ का पानी बनने में देना पडेगा। यह गरमी नाप सकते हैं। यह प्रयोग द्वारा हम देख सकते हैं (कॅलरी मीटर का प्रयोग करना पडेगा। इसके लिये विशिष्ट ताप, कॅलरी तापग्रहण शक्ति इन सबकी जानकारी देनी चाहिये।)

आर्द्रतामान और वायुभार के विषय में भी विद्यार्थियो की बहुत जिज्ञासा पैदा हुई थी।

चलते फिरते पुस्तकालय

लीलावती जैन

इधर के वर्षों में भारत में साक्षरता बढने के साथ साथ पुस्तक प्रकाशन कार्य भी पहिले से काफी बढा है। नये-नये पुस्तकालय तथा वाचनालय देश भर में कायम किये जा रहे है और गावो में भी इनको खोलने का प्रयत्न है। इस क्षेत्र में विदेशो में जो कार्य हो रहा है, उससे हम बहुत कुछ सीख सकते है। वहा पुस्तको की लोकप्रियता बहुत है और जनता की ज्ञानपिपासा तृप्त करने के लिये पुस्तको को मोटर में भरकर देश के दूर-दूर इलाको में भेजा जाता है, जिससे वह जनसाधारण के लिये सुलभ हो सके। योरोप के अेक छोटे, अेक करोड की आबादीवाले देश हगरी में मोटरो द्वारा पुस्तके पाठको के गावो में पहुचाई जाती है।

१९५९ के वसन्त के दिनो में हगरी में १६ मोटरगाडिया चलते फिरते पुस्तकालय के रूप में तैयार की गई थी। इनको देश के १६ प्रदेशो में बाट दिया गया। प्रत्येक मोटर में पुस्तकाध्यक्ष के लिये एक कमरा था, जिसमें ग्रामोफोन और १६ मिलीमीटर का प्रोजेक्टर भी लगा था। पुस्तको के रखने के लिये अलग स्थान था। इनमें से अेक चलता-फिरता पुस्तकालय वोरसोड कोन्डो नामक स्थान के फेरेन्क राकोजी पुस्तकालय के पास भेज दिया गया था। सप्ताह में तीन दिन-बुध, शुक्र और रविवार को-यह चलता फिरता पुस्तकालय ६ दूर दूर बसे गावो में और २७ फार्मों पर जाता, जहा अभी बिजली, रेल या मोटरबस नही जाती आती। तीसरे पहर यह पुस्तकालय वहा पहुचता जब कि खेतो पर काम हो रहा होता। औसतन अेक दिन में यह दो जगह जाता है। पहिले महीने में ८६६ स्त्री-पुरुषो ने, जिनमें २०२ बच्चे थे, इस पुस्तकालय की सभासदी के कार्ड लिये और १२६४ किताबें लेकर पढी गई।

लापलो नामक अेक फार्म के नजदीक अेक अलग खडी इमारत के पास से होकर बस गुजरती है, जो अेक स्कूल है। यहा पर स्त्रियो और बच्चो का झुण्ड था। वह सब किसान औरते थी। फार्म पर काम करनेवाले पुरुष अभी वहा पर काम कर ही रहे थ, इसलिये स्त्रिया मोटर पर आ गई, अपने लिये, अपने बच्चो व पतियो के लिये नई किताबें लेने के लिये। कुछ देर बाद पुरुष भी अपने काम से सीधे यो ही गर्द वर्द में भरे कपडे पहिने आ गये। अब से बीस वर्ष पूर्व इनमें से कोई भी अेक पुस्तकालय में पैर रखने तक की काबिलियत नही रखता था। अब पुस्तकालय स्वय उनके पास आता है।

सैन्डोर प्रेविजा नामक सज्जन पहिले खेतो पर मजदूरी करता था और अब दूकानदार है तथा स्थानीय पचायत का पच है। वह कभी पुस्तकालय के अन्दर नही गया था। तब यह सबेरे से शाम तक काम करता रहता था और पढने का कोई समय ही नही निकाल पाता था। वह कहता कि आपको जानना चाहिये कि उस जमाने में अेक गरीब आदमी का जीवन क्या

था ? बिना इसे जाने आपको क्या पता चलेगा कि यह अब कितना सुधर गया है । पहले वह केवल भरपेट भोजन चाहता था, अब जीवन की और बातों में भी उसकी दिलचस्पी जग गयी है । उसने कविता की दो पुस्तके लेकर अपनी बगल में दबा ली और नमस्ते करके चला गया ।

लापलो की तुलना में अेप्रोहोमक तो बडा शहर है । इसमें अेक प्रमुख सडक है, दूकानों का बाजार है और स्कूल के आहाते चारो ओर तार लगा हुआ है । जब पुस्तकालय की मोटर वहां पहुची तो अेक मेज पडी थी और कितने ही स्त्री-पुरुष उसका इन्तजार कर रहे थे । बिल्कुल अन्धेरा हो चुका था । स्कूल का अध्यापक अेक पेट्रोल की लेम्प ले आया जिससे पुस्तक वितरण का कार्य हो सके । उपस्थित जनता ने इन्हे चारो ओर से घेर लिया । अधीर बालको ने अेक के कान में धीरे-धीरे कहा कि वह उसकी पसन्दो की किताबें दिलाने की कृपा करे । पूछताछ की कि अगली कौनसी पुस्तक उन्हे पढ़ने को लेनी चाहिये । उन्होने सावधानी से पुस्तको को उठाया, धरा और देखा । सारा दृश्य प्रेरणादायी था । लेम्प की हल्की सी रोशनी और अनेको किताबें मागते हुये हाथ । इसके अेक कार्यकर्ता के लिये यह दृश्य नया नही था, क्योकि उसने इसी इलाके में अबसे २० व॰ पूर्व दौरा किया था जब कि जमीन बाटने की खबर फैली हुई थी ।

गाव के बाहर के हाल तथा उसके चौक में रात्रि के समय भूमिहीन किसान अेकत्रित थे । वे तीन गांवो से आये थे और यह शिकायत करना चाहते थे कि उनको अभीतक कुछ जमीन नही मिली है । मेज के तीनों ओर वे अर्धचंद्र आकार में खडे थे और लेम्प की रोशनी उस व्यक्ति के मुंह पर पड रही थी, जो बोल रहा था । रात्रि के अन्धेरे में अनेक आदमियो की भीड खडी थी । सब के हाथ बढे हुये थे और सब के इशारे वैसे ही थे । भिखमगो की तरह वे अेक अेकड भूमि मांग रहे थे । यह हृदयविदारक दृश्य इस कर्ता-कर्त्ता को कई दिनो तक याद रहा । परन्तु अब वह दृश्य गायब ही गया है । इस समय ये लोग जमीन मागने नही आये थे । उनके हाथ भीख के लिये नही, पुस्तको के लिये फैले हुये थे । मेजके पास जाकर अेक बुड्ढे किसान ने अेक किताब वापिस की और दूसरी ली । कार्यकर्त्ता ने वापिस की हुई किताब को गौर से देखा और पूछा कि क्या तुम थोपम मानकी रचना पढ रहे थे ? उसने हा, करते हुये कहा कि इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है ? उसने बताया कि वह तो खूब पढता है । उसकी अवस्था ६२ वर्ष की है और अब वह पूर्ववत् काम नही कर सकता । उस अवस्था में मनुष्य बैठकर पढना ज्यादा पसन्द करता है । उसे तो पुस्तकों का बहुत शौक है । अब वह कोई ऐतिहासिक पुस्तक पढ़ना पसन्द करेगा, पर वह मन को प्रसन्न करनेवाली हो । उसने मार्क ट्वेन का अेक उपन्यास लेना तय किया । जब पुस्तको का लेन-देन समाप्त हो गया, तो गाव के सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक घर वापिस गये और यह पुस्तकालय भी वापिस चला गया ।

भारतीय ग्रामीण भी उस दिन की बाट देख रहे हैं जब उन्हे इस प्रकार की सुविधायें प्राप्त हों ।

बुनियादी शिक्षा के कुछ मूल सिध्दान्त

[कुछ दिन पहले एक गोष्ठी में बुनियादी तालीम के आगे के कार्यक्रम के बारे में विचार विमर्श हुआ था। उसके निष्कर्षों को यहां दिया जा रहा है ताकि नई तालीम के कार्यकर्ता इन मुद्दों पर विचार करें और अपनी राय जाहिर करें। ऐसी समालोचनाओं को प्रकाशित करने में हमें हर्ष होगा। आशा है उससे कुछ विवादग्रस्त मुद्दों पर पुनर्विचार करने तथा शिक्षकों की व्यावहारिक कठिनाइयों को समझने व उनको दूर करने के उपाय सुझाने में मदद होगी। सं०]

१. बुनियादी तालीम में किसी एक ही उद्योग पर आग्रह नहीं है। आग्रह ऐसे एक उत्पादक उद्योग पर है जिसकी ज्यादा से ज्यादा शैक्षणिक संभावनाएं हो। बुनियादी तालीम को मात्र कताई, बुनाई या खेती के उद्योग में सीमित रखना उसका क्षेत्र संकुचित करना तथा विकास का मौका रोकना होगा।

२. कोई भी उत्पादक काम बेढंगा या अशास्त्रीय नहीं होना चाहिये। उत्पादन के आधार पर उसका मूल्यांकन करना ही काफी नहीं, वह हर प्रक्रिया में वैज्ञानिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से ठीक संगठित भी होना चाहिये।

३. बुनियादी पद्धति में उत्पादक काम शिक्षा-क्षेत्र की एक तिहाई ही होता है। उसकी उपमा एक समत्रिकोण से की गयी है जिसके तीन बाजू उत्पादक श्रम तथा प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण है। इन तीन आधारों से समवाय पद्धति से शिक्षा दी जानी चाहिये।

४. जीवन के दैनिक अनुभवों से शिक्षण, यह बुनियादी तालीम का सारभूत सिद्धान्त है। उसके बगैर वह पुस्तक-केन्द्रित प्राथमिक शिक्षा का एक रूपान्तर मात्र होगा जो प्रभावशाली नहीं है। बुनियादी पद्धति की समृद्ध शैक्षणिक संभावनाएं ही उसकी विशेषता है।

५. तालीम में सीखने व जीने की प्रक्रिया अभिन्न होनी चाहियें। इसमें कुछ कमियां या बाधाएं आती हो, तो उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना है। उपलब्ध परिस्थितियों में जितना भी हो सके सामाजिक जीवन को सुचारु रूप से संगठित करना चाहिये। यह सही है कि आवासीय विद्यालयों में ही पूर्ण सामाजिक जीवन संभव है। फिर भी दूसरे विद्यालयों में भी विद्यालय परिवार के अन्दर तथा आसपास के समाज के सहयोग से सामाजिक जीवन कुछ हद तक संगठित हो सकता है। स्कूल और समाज का ऐसा परस्पर सहयोग, चाहे वह ग्रामीण इलाकों में हो, चाहे शहरों में, अत्यन्त महत्वपूर्ण और वांछनीय है।

६. ग्रामों में और शहरों में जो बुनियादी विद्यालय चलेगे, उनमें केवल उत्पादक उद्योग के चुनाव में ही फर्क होगा। शहरों के स्कूलों

में छपाई, और लकड़ी या धातु का काम उद्योग के लिये चुने जा सकते हैं, बशर्ते शिक्षक इनमें प्रवीण हो और शिक्षा के माध्यम के तौर पर उनका उपयोग करने में समर्थ हो।

७. शिक्षा के कार्यक्रम में पूर्वोक्त समत्रिकोण के अन्दर दूसरा भी एक समत्रिकोण बनना चाहिये, जिसके तीन बाजू विद्यार्थियों का स्वशासन, आत्मनिर्भरता तथा सामूहिक जीवन होंगे। विशेषत: आज भारत में इन तीनों बातों पर जोर देने की आवश्यकता है। और शायद काफी समय तक यह परिस्थिति रहेगी।

८. उद्योग में उत्पादन की उपेक्षा न करते हुए ही शैक्षणिक पहलू का ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिये। अच्छे काम से स्वाभाविक ही अच्छा माल निकलेगा और उससे काम करने वाले को फायदा मिलना चाहिये।

९. इन दोनों पहलुओं में कोई विरोध है, यह सोचना ही गलत है। काम अच्छा और उपयोगी होना चाहिये।

१० जब सभी प्राथमिक शालाएं बुनियादी पद्धति से चलेंगी तो माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा पर उसका क्या परिणाम होगा, यह तय करने के लिये अभी हमारे पास काफी सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि जब सारी प्राथमिक शिक्षा बुनियादी पद्धति की होगी, तो उच्च शिक्षा पर उसका क्रान्तिकारी परिणाम होगा। आजकल जो बहुउद्देशीय शालायें चल रही हैं, वह माध्यमिक शिक्षा पर बुनियादी तालीम के प्रभाव के फलस्वरूप हैं।

११. आज की समाज व्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन बुनियादी तालीम के लिये अनिवार्य पूर्व स्थिति नहीं है, बल्कि उसका अवश्यंभावी परिणाम है, जो दीर्घकाल में ही दिखाई देगा। बहुत बड़े और बहुत जल्दी निकलनेवाले परिणामों की हम अपेक्षा न करें और फिर यह न कहें कि बुनियादी तालीम से वह हुआ नहीं। वह एक अच्छी चीज को खराब साबित करने की पुरानी पद्धति है।

अंग्रेजी भाषा के घूंघट में छिपी हुई विद्या स्वभावतः ही हमारे मन की सहवर्तिनी होकर नहीं चल सकती। अपने चारों ओर की आबहवा से यह विद्या विच्छिन्न है, बिछुड़ी हुई है; हमारे घर और स्कूल के बीच ट्राम या पांवगाड़ी चलती है, मन नहीं चलता। स्कूल के बाहर पड़ा हुआ है हमारा देश; इस देश में स्कूल का विरोध ही ज्यादा है काफी, सहयोगिता के नाम को नहीं। इस विच्छेद के कारण हमारी भाषा और विचारधारा अधिकांश स्थलों पर स्कूली लड़कों के समान ही चला करती है। नोटबुकों का शासन हम पर से हटा नहीं, और न हमारी विचारबुद्धि में उतना साहस ही है।....शिक्षा के साथ देश के मन या हृदय का सहज-स्वाभाविक मेल कराने की तैयारियां भी आज तक नहीं हुई। यह वैसा ही है जैसे दुलहिन रह गयी इस पार मायके के जनानखाने में ही और उसका दूल्हा रहता है नदी के उस पार रेती छोड़ कर और भी आगे। आखिर पार होने की नाव गयी कहां?

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ग्राम महाविद्यालयों के आदर्श*

डा० जाकिर हुसैन

भारत की उच्चशिक्षा प्रणाली के–जो अपने आपको अत्यन्त अभिजात और शुद्ध मानती है– दुर्गम दुर्गों में ग्रामीण महाविद्यालयों की एक तरह से असाधारण, परन्तु फलप्रद कल्पना को लाने का श्रेय अमेरिका के डा. आरथर मार्गन का है, यह कहने में मैं कोई गोपनीय बात नहीं प्रगट कर रहा हूं। डा. मार्गन अपने टेनेस्सी वेली के काम से विख्यात हैं। जिन तेजस्वी, मौलिक विचारवाले लोगों के संपर्क में आने तथा साथ में काम करने का मुझे सुयोग मिला है, उनमें डॉ. मार्गन को मैं विशेष रूप से मानता हूं। भारत की उच्च शिक्षा व्यवस्था को सही दिशा में अग्रसर कराने के बारे में उनका आग्रह और युनिवर्सिटी कमीशन की चर्चाओं में उनके महत्वपूर्ण हिस्से के लिये वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। भारत के उपाध्यक्ष, महान् दार्शनिक ऋषि डा. राधाकृष्णन् के सुयोग्य नेतृत्व में और डा. मार्गन जैसे साथियों के संग में उस कमिशन के काम में मैंने जो समय बिताया उसे मैं अपनी ही तालीम के सब से फलप्रद वर्षों में मानता हूँ, क्योंकि वह काम करते, करते तालीम थी, जैसे सभी अच्छी तालीम होती है।

भारत में ग्रामीण महाविद्यालयों की स्थापना के प्रस्ताव के-पीछे कई विचार काम कर रहे थे। गांधीजी और उनके महान् राष्ट्रीय आन्दोलन ने यह पहली दफा भारत के उपेक्षित ग्रामों को विकासयोजनाओं के केन्द्र में रखा था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने श्री निकेतन में ग्रामपुर्ननिर्माण के काम में मदद के लिये डा. एल्म हर्स्ट को बुलाया था। जब हम स्वातंत्र्यलिब्ध के नजदीक पहुंच रहे थे, तो गांधीजी ने बुनियादी तालीम के अपने विचार देश के सामने रखे थे, और इस प्रकार शिक्षा को जीवन से एकरूप तथा काम को उसका मुख्य माध्यम बनाना चाहा। यह जिन्दगी की सरल लेकिन असल बात को पकडने के उनके असाधारण सामर्थ्य का एक उदाहरण था। डा. मार्गन जो खुद एक उच्च कोटी के इंजिनीयर, शिक्षाविद् तथा समाजशास्त्री हैं, एन्टिमोच ।.लेज के, जिसके वह अध्यक्ष थे, "काम और तालीम कार्यक्रम" से संबन्धित थे। वे कई सालों से शहरों के बढते हुए निबिड जनवास के बदले छोटे छोटे अन्तरंग समुदायों को समाज की मौलिक इकाई के रूपमें बनाये रखने की आवश्यकता का प्रतिपादन और प्रचार करते आये हैं। भारत की शैक्षणिक विचारधारा में उनको जो सारभूत प्रतीत हुआ था उससे और उनके अपने समाजशास्त्र तथा शिक्षा संबंधी विश्वासों से ही उच्च ग्रामीण शिक्षा के बारे में उनके ये विचार उत्पन्न और पुष्ट हुए थे। कमिशन के अपने साथियों

---

* श्री रामकृष्ण मिशन ग्रामीण महाविद्यालय के (मद्रास राज्य) दीक्षांत समारोह के अवसरपर, ११ नवंबर १९६१ को दिये गये भाषण से।

को यह विचार स्वीकार्य कराने के लिये उन्हें काफी मेहनत करनी पडी थी और अन्त में यह आयोग की रिपोर्ट के एक महत्वपूर्ण अध्याय में पेश किया गया।

*लेकिन यह विचार जरा नया और असा*धारण था, और लोग नये और असाधारण विचारो को स्वीकार करने में सकोच करते हैं। देश के विश्वविद्यालयो ने इस प्रस्ताव को शका की दृष्टि से देखा, उनसे निकले पण्डितो ने भी उसे शकाभाव से देखा। उसको कुछ समय के लिये रुकना पडा। फिर एक कमेटी ने, जिसके सयोजक हमारे आज के केन्द्रीय शिक्षामत्री श्रीमालिजी थे, ग्रामीण उच्च शिक्षा के इस सारे प्रश्न का अध्ययन किया और उनके विचारविमर्श के फलस्वरूप दस बारह ग्रामीण महाविद्यालय देशभर में स्थापित हुए। वे हमारी उच्चशिक्षा व्यवस्था में एक नये और वाछनीय रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। मै मानता हू कि उनमें कई मौलिक रूप से सही और सफल विचारो का समावेश है—काम को शिक्षा का मुख्य माध्यम बनाने का, शिक्षा को जीवन के साथ एकरूप बनाने का तथा भारतीय राष्ट्रीय जीवन में छोटे छोटे अतरग समुदायो को हमारी समाजरचना की मौलिक इकाई बनाने एव उसे सफल नेतृत्व देकर सुस्थिर बनाने का विचार।

काम को शिक्षा का साधन बनाने की कल्पना हमारे देश में अब काफी अर्से से चर्चा का विषय रही है। मुझे बहुत मानसिक तकलीफ के साथ इस नतीजे पर आना पड रहा है कि बहुत हद तक इसके महत्व को और सभावनाओ की हमने उपेक्षा की है। कइयो ने उसको एक निरुपयोगी और निरर्थक आचारमात्र बना दिया, कुछ लोगो ने उसे केवल यात्रिक काम के रूप में सकुचित कर दिया। परतु अगर काम के द्वारा तालीम की कल्पना को सचमुच शैक्षणिक उत्पादक काम के रूप में ग्रहण करते—वह काम जिसका फल शिक्षा होता है—आर विभिन्न स्तरो के लिये समुचित रूप में शिक्षा में उसका समावेश होता तो इस देश में शैक्षणिक प्रयोगो को सफल बनाने में वह एक कारगर कदम होता। इस बात को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नही होने देना चाहिये कि *शैक्षणिक उत्पादक काम मूलतः* बुद्धि का काम होता है, वह कभी शारीरिक परिश्रम के साथ और कभी उसके बगैर भी हो सकता है। केवल यात्रिक शारीरिक श्रम बहुत होता है, ऐसा ही यात्रिक मानसिक परिश्रम भी होता है, जिसका कोई शैक्षणिक *मूल्य नही है।* केवल *यात्रिक काम,* जिसका काम करनेवाले के जीवन के साथ कोई सबध नही, कभी शिक्षा नही दे सकता। शैक्षणिक काम के सामान्य तौर पर चार कदम होते हैं—१. समस्या का स्पष्ट बोध, क्या करना है इसकी निश्चित जानकारी, २ काम के प्रत्येक कदम के *बारे में सोच समझकर योजना बनाना,* ३ काम को पूरा करना, ४ किये हुये काम की समीक्षा।

शैक्षणिक प्रकार के काम में इनमें तीसरा कदम ही शारीरिक होता है, बाकी तीनो बौद्धिक है। अगर काम में ये चारों बाते दृष्टिगत रखी जाय--चाहे वह शारीरिक काम हो या बौद्धिक--तो वह काम शिक्षाप्रद होता है। मै आशा करता हू कि ग्रामीण महाविद्यालय इस अत्यन्त फलप्रद सिद्धान्त को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी दाखिल करने और उसका फायदा उठाने में समर्थ होगे। विद्यार्थियो के मानस को कुछ जानका-

रियों से भर देने या केवल यांत्रिक काम कराने से वह शिक्षा नही होती।

ग्रामीण महाविद्यालयों की स्थापना के पीछे जो दूसरा विचार था, वह, मैं मानता हूं, शिक्षा को जिन्दगी के साथ समरस बनाने का था। शिक्षा के साधन के रूप में जब काम का उपयोग होता है तो वह अवधानपूर्वक सातत्य के साथ, तर्कसंगत विचार करने की आदतें निर्माण करता है। लेकिन समाज की सेवा में किये जानेवाला काम ही इनसान को असल में "शिक्षित" बना सकता है। अगर शैक्षणिक उत्पादक काम बौद्धिक विकास के लिये अपरिहार्य है, जैसे कि मैंने जिक्र किया था, तो उस काम का दूसरों की सेवा के साथ संबद्ध होना आदमी के नैतिक तथा सामाजिक विकास के लिये अपरिहार्य है। अगर हमारा ध्येय व्यक्ति को ऊंचा उठाना है, तो समाज के बारे में भी हमारा वह उद्देश्य होना चाहिये। ग्रामीण महाविद्यालयों को क्या, उच्च शिक्षा के सब केन्द्रों को अपना कार्यक्षेत्र समाज तक ले जाना चाहिये। वैज्ञानिक और तकनिकी ज्ञान के उपार्जन तथा समाज कल्याण के लिये उसके विनियोग के बीच जो बाधाएं या रुकावटें हैं, उनको हटाना है। जैसे कि एक बडे शिक्षा शास्त्री ने कहा था "ज्ञान के कार्यान्वयन में ही—उसे जीवन में उतारने से ही— उसका सही मूल्य और पूरा अर्थ प्रगट होता है।" ज्ञान की उद्धार करनेवाली और संजीवनी शक्ति तभी होती है जब कि वह समाज के जीवन और कार्यों में पुनः प्रवेश करता है।

ग्रामीण महाविद्यालयों की स्थापना इस महान् सत्य को आचरण में उतारने के लिये हुई है। उन्हें अमुक उद्योग सिखानेवाली संस्थाएं नहीं बननी है। यह विशेष रूप से माना गया है कि "ये आसपास के समाज के उत्पादक जीवन और आवश्यकताओं के साथ सफल रूप से संबद्ध हों, इसलिये कि उसके द्वारा विद्यार्थियों का परिपक्व और कार्यशील नागरिकों के रूप में विकास हो सके" और उनकी बुद्धि को "अपने स्वस्थ विकास के लिये कई विभिन्न स्रोतों से पोषण मिले, जिसमें उत्पादक काम तथा यथार्थ सामाजिक उद्देश्य व अनुभव भी शामिल हैं।" श्रीमाली रिपोर्ट इस पहलू का बहुत स्पष्टता के साथ प्रतिपादन करता है। उसमें कहा गया है, "हमारा विश्वास है कि उच्च शिक्षा की व्याख्या इतनी व्यापक होनी चाहिये जिससे अपने क्षेत्र में एक्स्टेन्शन काम की जिम्मेदारी भी उसमें शामिल हो। ग्रामीण महाविद्यालयों को एक एक्स्टेशन विभाग का केंद्रस्थान बनना चाहिये जिसका मुख्य कार्य अपने अनुसंधान और शोध के नतीजों को ग्रामीणों के घर द्वार तक पहुंचाना होगा। प्रत्येक विभाग के शिक्षकों को इस काम में अपना हिस्सा लेना चाहिये।"

ग्रामीण महाविद्यालयों की स्थापना का कारणभूत तीसरा विचार—जो मुझे बहुत जचता है—यह है कि हमारे सामाजिक जीवन की मौलिक इकाई के रूप में छोटे-छोटे अतरंग समुदायों को उनकी अर्हता का स्थान दिया जाय। उनको कायम रखने का उपाय इसकी योजना में निहित है। युनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट में जैसे कहा गया—"भारत को यह तय करना है कि क्या हमें एक बडे क्षेत्र में फैली हुई आबादी चाहिये, जिससे हमारे गांव संपन्न, सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध और रोचक स्थान बन सके और हमारे तरुणों को उनमें अपने विकास और अभिक्रम के लिये योग्य विपुल क्षेत्र उपलब्ध हो या क्या हमें बडे बडे केंद्रित उद्योग चलाने

है, जहा मजदूरो को बहुत बडी तादाद में एकत्रित होकर राज्य से या अन्य किसी अधिकृत सस्था से अपना आदेश लेना होगा"। और फिर "लोकतन्त्र के अस्तित्व के लिये यह जरूरी है कि हमारा शिक्षा का कार्यक्रम ऐसा न हो कि जिससे शिक्षित अपनी सस्कृती से विमुख और जनसाधारण के जीवन से विछिन्न हो। बल्कि शिक्षा योग्य विद्यार्थिओ को भी साधारण जनता के साथ रहने की प्रेरणा प्रदान करे--उनके सेवक और उनके नेता बनकर और इस प्रकार समाज को ऊचा उठायें"।

ग्रामीण महाविद्यालयो के स्नातको से यही अपेक्षा है कि वे जनता के सेवक और नेता बने और अपने समाज को ऊचा उठाये। आज हमारे गांवो को बदलने के लिये सहायता नही मिलती तो उनके मिट जाने का खतरा है--उनको बदलना है और ठीक रूप से बदलना है। उनको केवल परपराओ का आश्रय न लेकर जीवन को बुद्धिपूर्वक देखना और सोचना होगा, वैज्ञानिक तरीको को अपनाना होगा, काम के नये और अधिक कार्यक्षम मार्गों में आगे बढना होगा, सयुक्त प्रयत्न और सहयोग की आदतो का निर्माण करना होगा, अज्ञान, गरीबी और रोगो को मिटाना होगा तथा शान्ति और समृद्धिके वातावरण में एक अच्छी सुखी जिन्दगी की ओर भारत की आत्मा के विकास और पुनरुत्थान की नीव डालनी होगी।

(पृष्ठ १९४ का शेषांश)

में हम मनन कर सकते है। और भी बाते हैं, लेकिन उनके लिये इस लेख में जगह नही। एक आखिरी बात। एक कोई सिद्धान्त ईशु की सब शिक्षाओ में मिलता हो और उनके विविध भागो को एक समग्र रूप देता हो तो वह यह है कि शिक्षक का असल काम कुछ जानकारी देना नही है, बल्कि मनुष्य के मन और भावना को जगाना है। वह हर एक विद्यार्थी में उसकी अपनी सहज सृजनात्मक शक्तियो को जागृत करना है; प्रत्येक स्त्री पुरुष को 'अपने लिये क्या ठीक है, यह तय करने" की तथा अपने ही तरीके से और अपनी परिस्थितियो के अनुसार उसे करने के समर्थ बनाना है।

प्राप्ति स्वीकार

नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद

पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१ शान्ति निकेतन की यात्रा	प्यारेलाल नैय्यर	३१	३५ न पैसे
२ भारतीय विद्यार्थियों को सन्देश	गांधीजी	७२	५० ,, ,,
३. स्वेच्छा से स्वीकार की हुई गरीबी	,,	३१	३५ ,, ,,
४ द गास्पेल आफ रिनन्सियेशन	,,	३२	३५ ,, ,,
५. इन सेर्च आफ द सुप्रीम–खण्ड––२	,,	३३८	५०० रुपये

ग्राम-स्वराज्य पद यात्रा

है।

सेवाग्राम नई तालीम विद्यालय के ३२ विद्यार्थी और शिक्षक दिसबर १४ ता. से २३ ता तक वर्धा के नजदीक, हिंगणघाट तहसील के गावो में पदयात्रा में गये थे । यद्यपि यात्रा का मुख्य उद्देश्य लोगो में सर्वोदय विचार का प्रचार तथा भूदान था, फिर भी शैक्षणिक दृष्टि से भी इसका महत्व कम नही था । यात्रियो की तैयारी एव विचारो के स्पष्टीकरण के लिये पदयात्रा के पहले एक दिन का एक शिविर का आयोजन हुआ था, जिसमें न केवल भूदान के सिद्धान्तो पर, बल्कि सबधित विषयो पर भी चर्चायें हुई। उसके बाद विद्यार्थी आठ टोलियो में बाटे गये, एक एक टोली में शिक्षक और अन्य कार्यकर्ता भी थे । और वे अलग अलग गांवो के लिये निकल पडे ।

सामान्यत टोलियो का कार्यक्रम इस प्रकार था कि वे तीसरे पहर ५ बजे के करीब एक गाव में पहुच जाते थे । सब से पहले वे गाव की शाला में जाते, वहा बच्चो से मिलते, कुछ कहानिया वगैरह बताते, उन्हे कुछ गाने भी सिखाते और फिर उन्हें साथ में ले कर गाव की परिक्रमा करते । इस समय लोगो को शाम की सभा की सूचना दी जाती; बच्चो को भी कह देते कि वे अपने मातापिताओ को ले कर सभा में आ जाय । इससे बच्चा में खूब उत्साह हो जाता । रात की सभा में उपस्थिति आम तौर पर बहुत अच्छी थी ।

दूसरे दिन सुबह टोली-कार्यकर्ता, शिक्षक और तीन चार विद्यार्थी-घर घर जा कर लोगो से मिलते और विचार समझाते । इस समय साहित्य बिक्री भी होती थी । भूमिप्राप्ति और बटवारा भी इसी समय होता था । १२ बजे स्नान व भोजन करके वे अगले गाव के लिये करीब ४ बजे निकल जाते थे ।

विशेष उल्लेखनीय बात है कि इन टोलियो को कही भी अपने भोजनादि की व्यवस्था खुद नही करनी पडी थी । जिस गाव में पहुचे, वही अलग अलग घरो में बाट कर उनका भोजन होता था । एक आध दिन दुपहर का भोजन नही मिला तो उतनी भूख बच्चो ने खुशी से बरदाश्त कर ली और शाम के भोजन से ही सन्तोष माना । १० दिन तक इस तरह जो भोजन मिला उसी पर सब विद्यार्थी बहुत ही आनन्द पूर्वक रहे । जिससे भी पूछो वह यही कहता है कि "हमें तो बडा मजा आया ।"

इस यात्रा से बच्चों को ग्रामजीवन का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ । गावो के घर काफी साफ रहते थे, लेकिन गलियो और सार्वजनिक स्थानो की सफाई का किसी को ख्याल तक नही । सामान्य तौर पर गाव के तीन चार ही परिवार ऐसे थे, जिनके पास भूमि के अलावा भी आजीविका का कोई साधन हो, जैसे बढईगिरी, लुहारी, बुनकरी इत्यादि । ऐसे भी गाव थे, जहा जमीनमालिक बाहर

कहीं रहते थे, और गांव के लोग केवल मजदूरों के तौर पर जमीन में खेती करके गुजारा करते हैं। इन परिस्थितियों की जानकारी और प्रत्यक्ष जनसंपर्क इस यात्रा से विद्यार्थियों को हुआ।

भूदान के अलावा शान्तिस्थापना के विचार लोगों को समझाना भी यात्रा का एक उद्देश्य था। आज विश्व में आणविक युद्ध की भीषणी और उसके विनाशकारी परिणामों के बारे में विद्यार्थियों ने सभाओं में लोगों को समझाया। शान्ति के प्रतिज्ञापत्र पर ११९६ दस्तखत हुए और ५००.२१ एकड भूदान प्राप्त हुआ।

यहां पर हमारे उत्तर बुनियादी वर्ग का एक विद्यार्थी इस यात्रा के अपने अनुभवों को अपने ही शब्दों में बताता है :- —स.

ग्राम-स्वराज्य स्थापित करना हो तो पहला कदम किसानों की भूमिहीनता मिटे यही हो सकता है। वैसे यह काम वर्धा जिले में पहले जारी था, लेकिन '५७ के बाद यहां काम में कुछ खंड सा पड गया था क्योंकि जिले के कार्यकर्त्ता जिला छोडकर दूसरे ग्रामदानी क्षेत्र में गये थे। और जिला सुस्त पड गया था। अिसी ख्याल से यह पदयात्रा आयोजित की गयी। सत्तावनोत्तर आयोजित की गयी महाराष्ट्र की यह पहली ही सामूहिक पदयात्रा थी।

पदयात्रारंभ शिबिर :

ता. १४ दिसंबर को दोपहर १२ बजे तक कांढली (तहसील हिंगणघाट) में सब शिविरार्थी पहुंच चुके थे। महाराष्ट्र के विभिन्न जिलों से करीब ४० कार्यकर्त्ता; नई तालीम विद्यालय, सेवाग्राम, के ३२ विद्यार्थी व शिक्षक और महिलाश्रम, वर्धा की २० विद्यार्थिनी शिबिर में शामिल थी।

शिबिर की अध्यक्षा निर्मला बहन देशपांडे थी। अिस शिबिर में ग्राम स्वराज्य का चित्र, नई तालीम, आरोग्य सेवा, नीरा काम आदि विभिन्न विषयों पर चर्चा हुअी। मैं करीब ५-६ पदयात्रा शिबिरों में अभी तक गया हूं लेकिन वहां सिर्फ ग्रामस्वराज्य, भूदान अैसे ही विषय रहते थे। कहना चाहिये कि अिस शिबिर की यह खासियत रही; इसमें विभिन्न विषयोंपर चर्चा चली।

ता. १५ को सुबह १६ टोलियों में विभाजित हो, सब शिबिरार्थी पदयात्रा के लिये 'ग्राम स्वराज्य पदयात्रा सफल हो' यह नारा लगाते हुये चल पडे।

हम कुल ८ दिन पदयात्रा करते रहे। लोग खुशी से दान देते थे। जमीन छोडना कोई आसान काम नही है। पैसे का दान अलग होता है और जमीन का अलग। लोग साहित्य भी चाव से खरीदते हैं। विचार भी बहुतों को मान्य होता है। सवाल सिर्फ जमीन छोडने की हिम्मत का ही रह जाता है।

मानवता का साक्षात्कार :

कुछ अनुभव हमें बहुत ही करुण तथा हृद्य आये। पांडुरंग मोगरे नामका एक हरिजन बौद्ध भाई शाम को घास का गट्ठा उठाये गांव में आ रहा है, बहुत थका है। उसे पता चलता है कि देश की गरीबी मिटाकर समानता प्रस्थापित करने के लिये ये लोग जमीन मांगते हैं और हम में से ही एक भूमिहीन को उसमें श्रम करके आजीविका उपार्जन के लिये दे देते हैं। मानवता की ज्योति उसके हृदय में जग जाती है। वह झट अपने करीब ८ एकड में से २ एकड जमीन दे देता है। थोडा भी विचार

बिना किये। हां, उसमें उसे सोचने की आवश्यकता ही नहीं महसूस होती!!

एक गरीब किसान, खुद के ही हाथ और मुंह की भेंट दिन में मुश्किल से एक बार होती हो, अैसी परिस्थिति। शामका हो समय है। कुंए पर हम बैठे हैं। वह पूछता है हमें, क्या बात है? लोग उसपर हंसते हैं—"अरे, तू क्या जमीन देगा?" पर नहीं, विचार सुनता है, और थोडा सोच कर दो एकड जमीन दे देता है और वहीं कुंअेपर उसका बंटवारा भी हो जाता है। कि। सहृदय आदमी का पल्ला आंखें नही पोछेगा? सच, कभी कभी तो रोना आ जाता था।

लाहोरी गांव। समय सुबह का है। हम मुंह धो रहे हैं। गांव में रात को सभा हो चुकी थी। शिवराम नाम का भाई हमारे पास आया और कहने लगा कि मेरी जमीन में से मैं यह जमीन देता हूं। पास में लोग बैठे थे। उनमें से एक को बडी मुश्किल से तैयार किया शिवराम भाई की जमीन लेने के लिये। क्योंकि लेनेवाला कहता था मैं जमीन जोतूंगा बोऊंगा कहां से? झट शिवराम ने कहा, "बस, यही न? अरे बोऐंगे मिलकर, मैं जोत दूंगा तेरी जमीन"! इसे कहेंगे करुणा!! सच में मानवता का साक्षात्कार!

...हां; कितने बतायें, कैसे बतायें। ऐसे अगणित हमें, हमारे साथियों को अनुभव आये।

ता. २३ को सुबह तक हम सब गिरड पहुंचे। सभी के यही अनुभव; लोग अभी भी देते हैं। इस छोटे से जिले में वैसे तो पहले ही १२,००० एकड दान मिल चुका था। सामान्यतः हर गांव में ५, १० बार सामूहिक पदयात्रा की टोलियां पहुंच चुकी थी। लोगों ने दो दो, तीन तीन बार दान दे दिया था, फिर भी तिबारा ही नहीं, चौबारा उसी गांव में दान मिल जाता है। वैसे कुछ अपवाद तो रहते ही हैं।

दोपहर देहात के लोगों के साथ अुनके खेती विषयक प्रश्नों की चर्चा हुअी। मैंने जैसे पहले ही कहा था, ग्राम स्वराज्य स्थापित करने का पहला कदम किसान की भूमिहीनता मिटाना यही हो सकता है। अिसी ख्याल से अिस पदयात्रा में भी भूमिप्राप्ति पर ही जोर था। सामान्यतः जमीन का बंटवारा मिलते ही किया जाता था। पदयात्रा का अहवाल सुनाया गया।

भूमिप्राप्ति ५०० अेकड। साहित्य बिक्री २०२ रुपये। संपत्तिदाता २०। साम्ययोग ग्राहक १३।

साथ ही कुछ श्रमदान भी मिला। आदिक समय देनेवाले नये ८ कार्यकर्त्ता मिले। बाद में प्रार्थना कर के शिबिर का समारोप हुआ।

'५७ के बाद पूरे महाराष्ट्र में अेक सुस्ती सी आ गयी थी। सामान्य जनता यह समझ रही थी कि अब भूदान ग्रामदान सब खतम हो गया है। वैसे तो गांव गांव में अेक बार नही चार चार, पांच पांच बार जाकर कुल जिले में १२००० अेकड दान प्राप्त किया था। अुसके पश्चात् भी ५०० अेकड दान मिला। हम यदि जनता में जायं तो जनता देती है, यह अिसका सबूत है। यह कहना गलत न होगा कि अिस पदयात्रा से महाराष्ट्र में अेक नया जोश, नयी सनसनाहट जरूर पैदा होगी। और सत्तावन का सा वातावरण फिर बन जायगा।

—अशोक बंग

अपराध याने मानसिक रोगों का कारण और इलाज

मार्जेरी साइक्स

कुटुंब जीवन का शिक्षण पर बहुत असर होता है। जिन बच्चों का जन्म अच्छे संस्कारी कुटुंब में होता है, वे बच्चे शिक्षण का लाभ लेते हैं। सामाजिक सेवा और प्रेरणा के लिए अच्छा साहित्य मुख्य चीज है। अच्छा साहित्य पढ़ने के लिए उन्हें स्कूल और लाइब्रेरी से बहुत मदद मिलती है।

कुटुंब जीवन टूटने के कारण :

इंग्लैंड में और पश्चिम यूरोप में आज सब से बड़ा सामाजिक सकट यह है कि कुटुंब जीवन टूट रहा है। इस से बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई है। कुटुंब जीवन टूटने के कई कारण हैं। शायद सबसे बड़ा कारण यह है कि बड़े बड़े शहरों में हमारा समाज 'एटोमाइज्ड' होता है। हर व्यक्ति अलग अणु की तरह होता है। आधुनिक जीवन में बहुत से लोग अपना-अपना परिवार छोड़कर अलग रहते हैं। सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक सस्कारों का जीवन में आज यह असर है कि व्यक्ति को कुटुंब में से हटाकर दूसरी सस्था में डालते हैं और पूरे जीवन की वृत्ति कुटुम्ब के बाहर होती है।

खण्डित समाज और मानसिक बीमारियां :

बच्चों को अगर अपने परिवार में सरक्षण नहीं मिलता, मानसिक सुरक्षा भी नहीं मिलती, तो वे खण्डित–'एटोमाइज्ड'–होते हैं। एक व्यक्ति के रूप में अकेले खड़े होते हैं। इस प्रकार खण्डित समाज बनने के दो कारण हैं : एक है केन्द्रित शहरों का जीवन और दूसरा कौटुंबिक जीवन में कमजोरी। ऐसे समाज में मानसिक बीमारी ज्यादा हो रही है। अमेरिका में ६।। साल पहले एक समाजशास्त्री ने शोध की थी कि हर एक समुदाय में कितने आदमी आत्महत्या कर रहे हैं और कितने आदमी पागल होते हैं। ये दो चीजें ऐसी हैं, जो गिनकर कही जा सकती हैं। लेकिन बहुत सी मानसिक बीमारियां ऐसी होती हैं, जिनके मरीज अस्पताल में नहीं जाते। जिनका मामला बहुत गम्भीर होता है, वे ही अस्पताल में जाते हैं। फिर भी इन दो बातों से एक कल्पना आ सकती है कि समाज में कहां तक मानसिक बीमारी फैली है। इस अन्वेषक का कहना है कि शहर जैसे जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे ही मानसिक बीमारी भी बढ़ जाती है। सबसे बड़े शहरों में सबसे ज्यादा मानसिक बीमारियां भी होती हैं। उसने एक ही अपवाद बताया था कि जहां लोग अपने कुटुंब के साथ बहुत दूर रहते हैं और जिनके पास सामाजिक जीवन नहीं है, उनमें मानसिक बीमारी कम है। सबसे अच्छा मानसिक स्वास्थ्य छोटे गांव में छोटे समुदाय में होता है, जिसमें प्रायः सब लोग आपस में परिचित होते हैं। इससे पश्चिमी

समाजशास्त्रियों में चर्चा होने लगी कि एक स्वस्थ समाज में आम तौर पर कितनी लोक संख्या होनी चाहिए। आर्थर मार्गन की इस बारे में एक किताब है, 'कम्युनिटी आफ दफ्यूचर'। उसमें इस सम्बन्ध में बहुत कुछ दिया गया है।

सौम्यता से बीमारी का उपचार :

४० साल से मानसिक बीमारी के अस्पतालो की सख्या बहुत बढ गयी है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें रोगियों के साथ के बर्ताव में बड़ा परिवर्तन हुआ है। डाक्टर और नर्सों को इस बात का पता चला है कि हम इन आदमियों के साथ यदि मृदु व्यवहार करते, तो इन्हें हमारी ओर से मदद मिलेगी। पुराने जमाने में इंग्लैण्ड में जितने पागलखाने थे, उनमें आदमी को एक एक कमरे में ताला लगाकर रखते थे। कभी जंजीर भी लगा देते थे। दबाव से सुधारने की कोशिश की जाती थी। इससे बीमारी बढ गयी। लेकिन अब जो इस काम में हैं, उन्हें पूरा विश्वास हो गया है कि अहिंसक रूप में ही काम करना चाहिये। इंग्लैण्ड में 'क्वेकर्स' के हाथ में भी ऐसे अस्पताल हैं। वे बहुत सौम्यता से काम करते हैं। दूसरे अस्पतालों पर भी इसका असर हो रहा है। उनमें अहिंसक पद्धति प्रगति कर रही है। आप किसी अच्छे अस्पताल में जायेंगे, तो आपको वहाँ एक पारिवारिक वातावरण मिलेगा। ऐसे वातावरण से मानसिक बीमारी का सुधार होता है।

अपराधी मनोवृत्ति :

'खण्डित समाज' की दूसरी समस्या है, अपराधी वृत्ति। बहुत आदमी दुःखी होते हैं कि छोटे छोटे बच्चे और लडके गुनाह के रास्ते पर जाते हैं, अपराध करते हैं। इसका मूल कारण उनके परिवारों में मिलता है। उन्हें परिवार में मानसिक संरक्षण नही है।

तीन चार महीने के पहले एक क्वेकर मेगजीन में एक लेख छपा था, जिसमें एक बहनने अपने अनुभव बताये थे। उन्होंने लिखा था कि छोटे-छोटे बच्चों में स्वाभाविक रूप में दोष नही होता। सभी मामूली बच्चे जैसे ही होते है। धीरे धीरे वे खराब होते हैं, क्योंकि उनको घर नही है। वे रास्ते में घूमते हैं। नीचे वाले समाज के साथ वे परिचय करते हैं, उन्हें प्रेम दिखाने वाला कोई नहीं है। तो जितने अच्छे आदमी हैं, जिन्हें बच्चे नही हैं या जिन्हें एक ही बच्चा है, वे क्या इन बच्चों को नही ले सकते ? अपने घर में परिवार के साथ उन्हें रखकर क्या वे उनका पालन नही कर सकते ? इस लेख का असर यह हुआ है कि लोग ऐसा करने लगे हैं। मेरे मित्र को एक बच्ची अपनी थी, उसने दूसरा बच्चा लिया है। ये दोनों भाई बहन के रूप में कुटुंब में पलते हैं। यह प्रयोग बहुत सफल हुआ है।

अकसर बच्चों के खराब होने का कारण यह है कि उन्हें प्रेम पूर्वक संरक्षण नही मिलता। जब बच्चे अच्छे घरों के स्वस्थ वातावरण में रहते हैं, तो अच्छे होते हैं। कुछ लोग डरते हैं कि ऐसे बच्चे लेने से घर में कुछ खराब संस्कार आयेंगे, लेकिन अनुभव ऐसा नही है।

सवाल है कि जब ये लडके खराब हो जाते हैं, तो उनके सुधार के लिये क्या किया जाय ?

युवक अपराधी बालकों का शिविर :

इस दिशा में मैंने आस्ट्रिया में अच्छा काम देखा। ग्राट्स नामक शहर में मैं गयी थी। वहां

सर्वोदय में दिलचस्पी रखने वालो की एक छोटी सी बैठक हुई थी। बैठक के अंत में एक भाई ने मुझसे कहा कि "आप मेरा काम देखने आयेंगी, तो मुझे खूब अच्छा लगेगा। मैं सामाजिक कार्यकर्ता हू। युवक अपराधी लडको के लिए एक शिबिर है, उसमें मै काम करता हू।"

मैंने वहा जाकर देखा। मामूली जेल है, बाहर से देखने में भयकर। उसके दो विभाग हैं। एक प्रौढो के लिए और एक लडको के लिए। मैंने लडको का विभाग देखा। उनका एक प्रिन्सिपल है और एक जेल अधिकारी। जेल अधिकारी भी समझते हैं कि उनका काम लडको को सुधारना है, उन्हे दण्ड देना नही।

जब कोई लडका जेल में आता है, तो पहला काम होता है, उसका पूरा अध्ययन करना। लडके का इतिहास क्या है, उसका पारिवारिक जीवन क्या है, स्थिति क्या है, पहले क्या क्या हुआ, ऐसी कौन सी स्थिति आयी कि उसे अपराध करना पडा। यह सब देखने से मालूम होता है कि टूटे हुए परिवार से ऐसे लडके आते हैं। या तो घर में अच्छ सस्कार नहीं है या मातापिता अलग हुए हैं या घर में दारू का व्यसन अधिक है।

यहां हरएक को अच्छे उद्योग देते है। जूता बनाना, दरजी काम, बढईगिरी, फर्नीचर बनाना, बगीचा, ऐसे कामो के लिए लडको की बुद्धि की जाच होती है। मदबुद्धिवाले फर्नीचर बनाना, दरजी काम आदि नही कर सकते है। उन्हें बच्चे के खिलौने के टुकड बनाने के लिए देते है, या तो अलग अलग टुकडे देकर कहते है, उन्हें जाड दो। उन्हें रगने का काम भी दिया जाता है। यहा बाहर से शिक्षक लेते हैं। बाहर की दुनिया में स्टेण्डर्ड पाठयक्रम होता है, वैसा यहा भी होता है। इसलिए लडके जब बाहर निकलते हैं, वे अच्छे पढे-लिखे होते हैं और उन्हे कोई न कोई उद्योग भी आता है। वे अपनी आजीविका कमा सकते है।

मैंने पूछा कि "लडके बाहर जाते है, तो आपको मदद करते है? आप जो सर्टीफिकेट देते है, तो उसका नतीजा क्या होता है?" उन्होन बताया कि यह सस्था अभी ४, ५ साल से ही काम करती है। इस बीच ८० लडके बाहर भेजे। एक ही लडका वापस आया है। दूसरे लोग अच्छे नागरिक के रूप में अपना काम करते हैं और प्रगति कर रहे है।

जो लडके इस स्कूल में आते हैं, वे सब शुरू से ही छोटे छोटे परिवार के रूप में रहते हैं। उन्हे बडे बडे कमरे में एक साथ नही रखते है, छोटे छोटे कमरे में ६, ७, ८ रहते हैं। उनमें हर एक को एक पलग मिलता है, एक कुरसी मिलती है, एक आलमारी मिलती है। ऐसा प्रबध होता है कि जो लडके अच्छा काम करते है और अच्छा व्यवहार करते है, उन्हे जल्दी छुट्टी मिलती है। जो लोग अच्छा सहकारी काम करेंगे, जिनका सामाजिक व्यवहार ठीक होगा, उन्हे छूट जल्दी मिलेगी। हफ्ते हफ्ते अधिकारी, शिक्षक और बच्चे बैठते हैं और हर एक बच्चे की प्रगति पर विचार करते है। लडके भी अपने बारे में सुनते है। वे जो कुछ करते हैं, वह भी वह सुनते है। कोई शिकायत होती है, तो लडके समझ सकते है। यह बहुत उपयोगी है।

सबसे बडी चीज यह है कि कुछ अच्छे होने पर हर महीने सात आठ लडके एक शिक्षक

के साथ घूमने के लिए बाहर जाते हैं। एक शिक्षक ने कहा कि इसमें हमारी जिम्मेवारी काफी रहती है। हमें निश्चित होना चाहिए कि वह अच्छा हो रहा है। हमारे साथ जो लड़के आते हैं, वे भाग जाना चाहे, तो कोई रोक नहीं सकता। एक आदमी कुछ नहीं कर सकता। इसलिए परस्पर विश्वास होना चाहिए। आपस में हम सब मित्र हैं। हममें आपस में जिम्मेदारी का भाव होना चाहिए।

सैनिक कवायद नहीं है :

मैंने बच्चों से बहुत बातें की। वे बहुत सुन्दर चीजें बनाते हैं। मैंने एक लडके से कहा कि बहुत अच्छा काम किया है, तो वह खुश हुआ। उसने मुझे सामान्य लडके की तरह जवाब दिया। मैं यह कह देना चाहती हू कि बच्चों की यहां पर सैनिक कवायद नहीं होती। जान बूझकर वह यहा नही रखी गयी है। उन्होंने जेल अधिकारियों और सरकार से बात की कि लडकों को अच्छा नागरिक बनाना है, तो अच्छी आदत, अच्छा शिष्टाचार लड़कों में आना चाहिए। इसलिए यहा सैनिक कवायद नही होगी।

जिस लडके ने मुझसे बात की, वह खून करके आया था। परिवार की स्थिति खराब थी, इसलिए उसने खून किया था। कभी कभी जो लड़के आते हैं, वे बहुत बडा अपराध करके आते हैं। फिर भी देखने से वे मामूली बच्चे लगते हैं। गुण विकास संभव रहता है। खराब समाज परिस्थिति से वे खराब हुए हैं, उनके सुधार की संभावना होती है।

ग्राड्स के जेल के मकान में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मामूली जेल के जैसे बडे दरवाजे और दरवाजे पर बड़े ताले लगाये जाते हैं।

इग्लैण्ड में जिस शहर में मैं रहती थी, वहा प्रसिद्ध जेल है, पर है बिना दीवालों का। उस जेल में ताले नहीं लगते।

यह अहिंसक पद्धति है। हमें नये समाज का निर्माण करना है, तो सवाल आयेगा कि हम अपराधियों के लिए क्या प्रबन्ध करते हैं। इसके बारे में पश्चिम में ऐसे प्रयोग होते हैं।

("विदेशों में शान्ति के प्रयोग"—पुस्तक से)

नई तालीम के लिये विनोबाजी का सुझाव

असम यात्रा, दि० २८-११-६१

श्री. राधाकृष्णन्,

१७-११ का पत्र मिला। आपने तीन समस्याएँ पेश की है।

१. हमारी स्वतंत्र संस्थाएँ किस तरह आगे बढ़ें। नौकरी में जाने की इच्छा न रखनेवालों के लिये संस्थाएँ हों। भले उसमें थोड़े विद्यार्थी आवे, आदर्शरूपेण चले।

२. सरकारों पर असर अवश्य होगा ऐसा मैं मानता हूं। खास करके जबकि नई तालीम का बोर्ड भी बननेवाला है। इसलिये काम ठीक चलेगा ऐसा मानना चाहिये।

३. हमारी संस्थाओं को नई तालीम का रंग देने की बात। रंग तो वह देगा जिस पर रंग चढ़ा हो। ऐसे लोग सर्व-सेवा-संघ, खादी-कमीशन और अब नई-तालीम-बोर्ड आदि में अनेक हैं। उनके द्वारा उसका एक क्रमवार कार्यक्रम बनाया जाय तो अमल में आ सकेगा।

विनोबा का जय जगत

Regd. No. N.-106

विश्वमहायुद्धों के इस जमाने में–उस आणविक युग में, जीवन के मूल्य बदल गये हैं। हमने सीख लिया है कि हम इस सृष्टि में केवल थोड़े दिन के मेहमान हैं; दो मुकामों के बीच के मुसाफिर है। हमारे इस छोटे जीवन काल में उस संसार के साथ के अपने संबन्धों के बारे में, जिसमें हम इतने थोड़े समय के लिये हिस्सेदार बनते है, हमें खुद अपनी अन्तर्दृष्टि ढूढनी है। इसका मतलब–जैसा मैं समझता हूं–उन्नीसवी सदी के भौतिकवाद से दूर जाना होगा। उसका मतलब आध्यात्मिक जगत् में फिर से अपने आपको पाना होगा, अपने आन्तरिक जीवन म धर्म का पुनःस्थापन होगा। धर्म से मेरा अभिप्राय किसी विशेष संप्रदाय या पन्थ से नहीं, बल्कि एक आन्तरिक प्राणवान् भावना से है।

–बोरिस पास्टरनाक

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

फरवरी १९६२ वर्ष १० : अंक ८

सम्पादक

नई तालीम

[अ भा. सर्व सेवा सघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

फरवरी १९६२

वर्ष १० अंक ८

अनुक्रम

* 'मंगल प्रभात' से साभार

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। असका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम' का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ८ ★ फरवरी १९६२

विद्या में जातिभेद

एक ओर तो हमारे देश में सनातन शिक्षा की व्यापकता रुक जाने से जन-साधारण में ज्ञान का अकाल चिरंजीव होकर खड़ा हो गया और दूसरी ओर आधुनिक समय की नई विद्या का जो आविर्भाव हुआ, उसका प्रवाह भी सार्वजनिक देश की ओर नहीं बहा। पत्थर के बने कुण्डों के पानी की तरह वह जगह-जगह आबद्ध हो कर रह गया; जहाँ बहुत दूर से आकर तीर्थ के पंडों को दक्षिणा देकर तब कहीं अंजुलि भरने की नौबत आती है,—नियम ही ऐसे कस कर बांधे गये हैं। मन्दाकिनी के रहने का स्थान विशेष रूप से शिव के पेचीले जटाजूट में ही है, मगर फिर भी उन्होंने अपनी धारा देवललाट से उतार कर बहुत ही साधारण रूप में घाट-घाट के नीचे से मर्त्यजना के द्वार के सामने होकर बहाई है और घट घट में भर कर अपना प्रसाद बाँटा है। परन्तु हमारे देश में चाल्ह् प्रवासिनी आधुनिकी विद्या वैसी नहीं है। उसमें विशिष्ट रूप तो है, पर साधारण रूप नहीं है। इसीलिये अंग्रेजी सीखकर जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, सर्वसाधारण के संग उनके मन का मेल नहीं होता। हमारे देश में सब से बढ़ कर जातिभेद यही है, श्रेणियों में परस्पर अस्पृश्यता इसी का नाम है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शब्द शक्ति की प्रतिष्ठा से साहित्य तेजस्वी होगा

विनोबा

'साहित्य' शब्द क्या सुझाता है ? शब्द ही अपनी व्याख्या प्रकट करता है। वह कहता है कि मैं सहित चलने वाला हूँ। किसके साथ जायेगा ? मनुष्य की बुनियाद में सत्य है। सत्य का अर्थ ही है कि वह है। सत्य के साथ जो चलेगा, वह है 'साहित्य'। रामजी के साथ लक्ष्मण जाते हैं, वैसे सत्य के साथ साहित्य जायेगा। जितना व्याप राम का, उतना ही लक्ष्मण का। इतना ही है कि उसके पीछे पीछे जायेगा। सत्य जितना व्यापक होगा उतना ही साहित्य व्यापक होगा। ऋग्वेद में एक वाक्य आया है : "यावत् ब्रह्म वेष्टित तावती वाक्।" ब्रह्म जितना व्यापक है, उतनी वाणी व्यापक है।

इन दिनो भारत में एक भाषा समस्या पैदा हुई है। वह लगभग हल हो गयी है। उसके बारे में हमसे पूछा गया था। हमने कहा कि मनुष्य को भगवान ने भाषा नही दी, वाणी दी है। श्री अरविंद बचपन में इग्लैंड गये थे, शायद सात साल की उम्र में ही वे गये थे। वहा उन्होने अग्रेजी, फ्रेंच, लॅटिन, ग्रीक सीखी। चारो भाषाओ के पडित हुए। लेकिन उसके साथ साथ बगला भाषा कतई भूल गये। वापस भारत आये तो बडौदा स्टेट में गायकवाड के पास उनको नोकरी मिली। वहा गुजराती, बगला और हिन्दी सीखे, याने बगला भाषा फिर शुरू से सीखनी पडी। उसके बाद बगाल में उन्होंने आन्दोलन किया। फिर वे पाडिचेरी गये, वहा तमिल सीखी; याने भारत की सब भाषाए फिर से सीखी। वेद, उपनिषद्, गीता में पारंगत हुए। तीनो के विषय में उन्होंने लिखा है। उनके विचार मौलिक हैं। उनके पीछे अनुभव है। उन्होंने बगला सीखा, लेकिन सर्वोत्तम ज्ञान उनको अग्रेजी भाषा का था। जितना लिखा सब अग्रेजी में लिखा, लेकिन बहुत अच्छा लिखा। आखिर में उन्होंने 'सावित्री' नाम का महाकाव्य लिखा है, वह भी अग्रेजी में लिखा। यदि भाषा ईश्वरदत्त होती तो मनुष्य उसे इस तरह नही भूलता। मातृभाषा के समान दूसरी भाषा मनुष्य सीख सकता है।

यह तो मैंने सहज उदाहरण दिया। इससे ध्यान में आयेगा कि भाषा एक बात है और वाणी दूसरी।

साहित्य का सबध वाणी से आता है। मनुष्य की वाणी जितनी विकसित होगी, उतना उसका जीवन विकसित होगा। कुल जीवन का आधार वाणी है।

हम मातृभाषा का अभिमान रखते हैं। लेकिन मातृभाषा में हम एक दूसरे को गाली भी देते हैं। आपस आपस में मातृभाषा में ही गाली दे सकते हैं, दूसरी भाषा में नही।

मातृभाषा की उन्नति गाली देने से तो नहीं होगी। उन्नति वाणी से, विश्वास से होगी। वाणी सत्यमय और संयमशील हो तो वाणी में शक्ति आती है। इन दिनों भारत में हमने शब्द शक्ति खोयी है। जहां शब्द शक्ति खोते हैं, वहां शस्त्र शक्ति के सिवाय गति नहीं होती है।

गांधीजी की शक्ति :

गांधीजी आये, उनके पहले अच्छे नेता हिन्दुस्तान में थे, जिन्होने आजादी की तरफ जनता का ध्यान खींचा। लेकिन लोगों में यह भावना थी कि नेता जो बोलते हैं उससे दूसरा अर्थ उनके मन में होगा, याने वे द्व्यर्थी बोलते हैं। उन दिनों अंग्रेज सरकार थी, इसलिए कानून में बंधनेवाली भाषा के लिए शायद वे वैसा बोलते होंगे। मतलब, नेताओं के शब्दों के अर्थ के विषय में लोगों के मन में भ्रम था। गांधीजी आये तो नया तरीका आरम्भ हुआ। उन्होंने जैसा मन में है वैसा बोलना शुरू किया, याने दोनों में कोई भेद नहीं। अहिंसा की महिमा गांधीजी बताते थे। पंजाब में उन दिनों दंगे हुए। उससे भारत की जनता में क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसके परिणामस्वरूप अहमदाबाद में भी घर जलाये गये। तब गांधीजी को बहुत दुःख हुआ। उन दिनों हम साबरमती में थे। उस वक्त हम छोटे थे। सन् १९१८ की बात है। २३ साल की हमारी उम्र थी। हमारे साथ दूसरे भाई भी थे। वे भी इसी प्रकार जवान थे। हमने शहर में जाकर गांधीजी का कहना लोगों को समझाना शुरू किया। लोगों से हम कहते थे "आपने यह काम किया, देश में अशांति फैली है; पर ऐसा काम गांधीजी को पसंद नहीं है। उनको इससे दुःख होता है। गांधीजी आपको ऐसा काम करने के लिए नहीं कहते हैं।" लेकिन लोग हमसे कहते थे कि "तुम बच्चे हो। 'धर्मराज जो बोले छे एनो अर्थ भीम जाणे छे। तमे शुं जाणो ?' वे बोलते तो है अहिंसा, अहिंसा—लेकिन उनके मनमें दूसरा ही अर्थ होगा।"

उसके बाद गांधीजी साबरमती पहुंचे और इन घटनाओं के लिए उन्होंने उपवास किये। जब उपवास ही किये, तब लोग समझे कि गांधीजी जो बोलते हैं वही अर्थ उनके मन में होता है। शब्द शक्ति की प्रतिष्ठा नहीं थी, नेताओं के शब्द पर लोगों का विश्वास नहीं था, याने वे जो बोलते हैं उससे भिन्न अर्थ उनके मन में होता है, ऐसा लोग समझते थे। परन्तु गांधीजी ने तप करके शब्द की प्रतिष्ठा बढ़ायी, कायम की। "यद्वदेव वदति तद् भवति।" ऐसा मनुष्य जो जो बोलता है वही होता है। वह दैवी वाणी कहलाती है। गांधीजी के बारे में ऐसा ही हुआ।

आज स्वराज्यप्राप्ति के बाद १४ साल हुए हैं। आज भारत में कोई नेता नहीं है, जिसके शब्द पर लोगों का पूरा विश्वास है। जो बोलेगा वही अर्थ अगर मन में हो तो 'पालिटिक्स' (राजनीति) में वह मूर्खता साबित होगी। ऐसा मनुष्य मूर्ख माना जाता है। जो मन में है वही बोलना है तो राजनीति का पेंच क्या रहा ? छिपाने की कला होनी चाहिये; अंग्रेजो में हम जिसे 'कमाउपलाज' कहते हैं। दिखाना एक बात, करना—दूसरी बात और मन में तीसरी बात होगी, तो वह उत्तम राजनीतिज्ञ है, ऐसा आज माना जाता है। इसलिए शंकरदेव ने वर्णन

किया है : प्रल्हाद का गुरु शडाम उसे राजनीति सिखाता है, राजनीति याने 'राक्षसर शास्त्र'–राक्षसोकी विद्या है ऐसा शकरदेव का अभिप्राय है। मेरा भी अभिप्राय इसके अनुकूल है। लेकिन मैं शंकरदेव के नाम से कहता हू, ताकि उसमें जरा वजन आये।

जहा शब्द शक्ति गयी, वहां अमोघता नही रही। फिर वहा शस्त्र शक्ति के बिना गति नही रही। यह समझना चाहिये कि जहा शब्द शक्ति कम हुई, वहा शस्त्र शक्ति जोर करेगी और वहा साहित्यिक फीके हो जायेंगे; क्योंकि साहित्य का सारा दारोमदार शब्द पर होता है। शब्द ही शस्त्र है और शब्द ही रत्न हैं। इसलिए शब्द शक्ति कुठित हो तो साहित्य निस्तेज होगा।

यह एक महत्व का विचार है। साहित्यिक का लक्षण क्या है? जिसका सपूर्ण चिंतन यथावत् शब्दो में प्रकट होना है, उसका एक एक शब्द याने प्राण होता है। वह शब्दशक्ति कुठित होगी तो साहित्यिक के जीवन में रस नही रहेगा।

शकराचार्य कहते हैं : "केषाममोघवचनम् ?" किनकी वाणी की शक्ति अमोघ होती है ? "ये च पुनः सत्यमौनशमशीला:" जिनमें सत्य होता है, जो मौन रहते हैं, जो शाति रखते हैं, उनकी वाणी अमोघ होती है। प्रश्नोत्तर के रूप में उन्होने लिखा है :

केषाममोघ वचनम् ?

ये च पुनः सत्य मौन शमशीला ।

वाणी में सत्य रहेगा, तो उस वाणी का फल प्रत्यक्ष प्रकट होता है। जहा नही बोलना है, वहा मौन की शक्ति होगी, वहा शब्द व्यर्थ जायेगा। जहां क्षोभ का मौका है, वहां चित्त में शम नही रहा तो वाणी गडबड करती है, सम्यक् नही रहती है। वाणी तो रामबाण जैसी होनी चाहिये। "रामो द्विशरान् नाभिसधत्ते"–राम दो बार बाण नही छोडता है। एक बार बाण छोडता है और वह सफल ही होना चाहिये, होता है। राम दो बार नहीं बोलता है। "रामो द्विर्नाभिभाषते।" यह शक्ति साहित्यिक की है।

साहित्य की कुशलता अहिंसा में :

अब साहित्य की खूबी किसमें है ? शक्ति तो सत्य में, सयम में और शाति में है। यह उसकी शक्ति है। लेकिन खूबी किसमें है ? लोकहृदय में प्रवेश की कला कौनसी है ? 'वह है अहिंसा।' आप कहेंगे, बाबा जहा तहा अहिंसा लाता है। जाहिर सभा में भी अहिंसा की बात की और साहित्यिको की सभा में भी अहिंसा की बात करता है। साहित्य की खूबी व्यजना में, लक्षण में है, सुझाने में है। आज्ञा में नही है, साक्षात् उपदेश में नही है। जहा साक्षात् उपदेश होता है, वहा वह परिणाम नही करता है। जहा *अप्रत्यक्ष उपदेश होता है, सुझाते हैं, साक्षात्* आज्ञा नही करते, 'सजेस्टिव' होता है, वहा वह सर्वोत्तम साहित्य माना जाता है। इसकी मिसाल 'वाल्मीकि रामायण' है। वह अप्रतिम कलाकृति है। वह आपको प्रत्यक्ष आज्ञा नही देता है, अप्रत्यक्ष रूपेण सुझाता है। ऐसी सृष्टि उसने निर्माण की है कि आपके चित्त में कारुण्य, सहानुभूति उत्पन्न होती है और सहज भाव से अनायस ऊचे पहाड पर आप चढ जाते हैं। जैसे इजीनियर करता है। चार हजार फीट ऊपर जाना है तो वह आहिस्ता आहिस्ता ऊपर

जाने वाला रास्ता बनायेगा। वह इतना सहज होगा कि इतने ऊपर हम चढे है, इसका भान नही होगा और आखिर चार-पॉच हजार फूट ऊपर हम चढेंगे। जिस तरह इजीनियर कुशलता से आपको ऊपर ले जाता है, वैसे ही आप पर उपदेश का आक्रमण किये बिना वह कुशलता से आपके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करके आपको ऊपर ले जाते है।

महाभारत में मुख्य पात्र कौन है, यह कहना मुश्किल है। कथा, उपन्यास, नाटक आदि में मुख्य कौन है, यह तो स्पष्ट मालूम होता है। लेकिन महाभारत में आप व्यास की प्रतिभा देखेंगे। कभी इच्छा होती है कृष्ण को मुख्य पात्र कहने की, तो कभी द्रौपदी मुख्य है, ऐसा आभास होगा। कभी आभास होगा कि अर्जुन मुख्य पात्र है, कभी युधिष्ठिर के लिए, कभी भीष्म के लिए यह आभास होगा। कभी आभास होगा कि कर्ण ही मुख्य है। आप निर्णय नही कर पायेंगे। उस वक्त जैसा अनुभव आयेगा वैसा आप कहेंगे। व्यास ने इतनी विशाल सृष्टि बना कर आपको अनुकूल बनाया है। दुर्योधन पर भीम गदा का प्रहार करता है। मरते मरते दुर्योधन कहता है, "जिंदगी भर तेरे सामने मैंने सिर नही झुकाया है, धन्य है मेरा जीवन।" और फिर वह मर गया। वहा कृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन खडे है और उनके सामने उसके ये उद्‌गार निकले है। इस पर व्यास 'कमेंट'–राय नही प्रकट करता है। उसने इतना ही लिखा है कि यह सुन कर आकाश से देवताओ ने पुष्पवृष्टि की। यह पढ कर आपकी सहानुभूति दुर्योधन की तरफ जाती है। कुछ प्रसगो में दूसरा की तरफ आपकी सहानुभूति जाती है। याने व्यास यह करता है कि विश्व में जहा-जहा गुण है, वहा वहा से लेकर उसने चित्र खडे किये है। महाभारत का नाम ही है 'गुण समूह'। व्यास हरएक के दोष भी बतायेगा। ऐसा पुरुष सामने नहीं रखेगा, जो केवल गुणमय है या जो केवल दोषमय है। दुर्योधन के गुण भी बतायेगा और युधिष्ठिर के दोष भी बतायेगा। जब जहा दोष है, चाहे थोडा-सा है, वह किसी महापुरुष में है, तो वह भी बताएगा और छोटे का गुण भी बतायगा। इस तरह जगह-जगह उपदेश दिया है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप में, प्रत्यक्ष उपदेश नही दिया है। जैसे पिस्तौल दिखाना वैसे ही आज्ञा करना भी एक हिंसा है। शास्त्रकार आज्ञा दे सकता है। मास्टर सीधी आज्ञा देते है। मा कुशलता से सलाह देती है और सुझाती है तो वह मा का शब्द हृदय में पैठता है। इसकी मिसाले मै दे सकता हू, लेकिन वह लबा फासला होगा। सार इसका यही है कि अनाक्रमणकारी शब्दरचना में अहिंसा होती है। इसलिए काव्य ध्वनिरूपेण प्रकट होता है। यह ध्यान में आना चाहिये कि साहित्य में हृदय में प्रवेश करने की जो अप्रत्यक्ष शक्ति है, वह है मधुरता में, मार्दव में, अहिंसा में, नम्रता में और प्रत्यक्ष शक्ति है सत्य में। सत्य और अहिंसा के बिना वाणी समर्थ साबित नही होगी।

आगामी युग की महान शक्ति : साहित्य

जिस देश की वाणी दूषित है उस देश की उन्नति नही होती है। हमारे यहा कहावत है 'जहां लक्ष्मी होती है वहां सरस्वती नही होती है और जहा लक्ष्मी नही होती है वहा सरस्वती रहती है।' लेकिन वेद में आया है "जिस देश के लोग छाननी से छान-छान कर वाणी बोलते

है, याने जहा मननपूर्वक और बुद्धिपूर्वक, शाति-पूर्वक वाणी बोली जाती है, वहा उस देश में, उस समाज में लक्ष्मी रहती है।" ऐसा वर्णन किया है। यह वर्णन अनुभवयुक्त है।

आज आप देखिये, अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति किसमें है। जो मनुष्य तौला हुआ शब्द बोलेगा, जिस शब्द में अतिशयोक्ति नही होगी, सत्य हो, मधुरता हो, फिर भी काम की शक्ति हो और बोलने वाले का चित्त अक्षोभ हो, तो वह शब्द कारगर होगा और वह सर्वोत्तम 'स्टेट्समैन' होगा। सर्वोत्तम नीतिज्ञ के लिए यही शब्द उत्तम होगा और वही दुनिया को बचायेगा। अगर राजनीतिवाले क्षोभयुक्त बोलने वाले हो, जिसमें अतिशयोक्ति होगी वह बात बात में आग लगाने वाले होग। उससे शब्द शक्ति नही रहेगी।

एक बात और। साहित्यिक को निर्विकार होना चाहिये। दुनिया के विकार का नाप करने के लिये उसे निर्विकार रहना चाहिये। नाडी देखनी है, ज्वर नापना है तो खुद को निर्विकार होना चाहिय, जैसे थर्मामिटर होता है। इसी तरह से दुनिया के विकारो को जानना चाहिये। जो समाज का विकार नापेगा, उसे स्वय निर्विकार होना चाहिये।

भगवान कृष्ण के शब्द में शक्ति थी, उस वाक्य से अर्जुन का सशय गया। यह तो पाँच हजार साल पहले की बात है। लेकिन आज भी वह लोगो के सशय दूर करता है। यह उनकी अनासक्ति थी। यह अनासक्ति साहित्यिक में न हो, तो वह दुनिया को नाप नही सकेगा। मुझे गुस्सा आया तो दूसरे का गुस्सा मैं नही नाप सकूगा।

इसलिए सृष्टि और समाज को पहचानना चाहिए और यह पहचानने वाला सर्वज्ञ होता है उसे द्रष्टा होना चाहिए। साक्षी होना चाहिए, जो खेल में शामिल नही है। साहित्यिक को ससार के खेल में द्रष्टा होना चाहिए। यदि वह खेल का पात्र हो, तो उसका चित्र खिचने वाला कोई दूसरा होना चाहिए।

ऐसे महाकवि थे व्यास। उन्होने अपने कुल दोष महाभारत में प्रकट किये। स्वय की उत्पत्ति और पाडवो की उत्पत्ति का यथावत् चित्र खडा किया। अपने बारे में ऐसा चित्र खडा करने वाला साहित्यिक कौन हो सकता है? व्यास खुद अलग हो गया, यानि लेखक के तौर पर व्यास ने अलग होकर लिखा। इस सृष्टि और ससार से अलग होने की शक्ति जिसमें होगी, वह उत्तम साहित्यिक होगा।

साहित्यिक ससार की तरफ अभिमुख होना चाहिए। विरक्त है और अभिमुख नही है, तो वह साहित्यिक नही होगा। वह मुक्त होगा। अपनी शाति वह पा सकता है, लेकिन साहित्यिक नही हो सकता, क्योकि अभिमुख नही है। तो ससाराभिमुख भी होना चाहिए और फिर भी ससार के विकारो से अलग होने वाला चाहिए। साहित्यिक के शब्द में यह शक्ति आनी चाहिये।

विज्ञान के जमाने में सत्य की तरफ रुचि अधिकाधिक बढ रही है और बढेगी। 'फिक्शन' में क्या होता है? कहते हैं कि उसमें चन्द्रप्रकाश की आवश्यकता होती है, सूर्य प्रकाश की नही। सूर्य प्रकाश में साफ दीखेगा, चद्र प्रकाश में कभी भूत दीखेगा, कभी गेंडा, कभी पुरुष दीखेगा एक सीगवाला दीखेगा और होगा पेड ही। ऐसा भ्रम होगा, तब काव्य होगा। अधेरे में अमावस्या की रात हो तो काव्य नही होगा, क्योकि कुछ भी नही दीखेगा। सूर्य प्रकाश में सब

स्पष्ट दीखेगा, इसलिए उसमें काव्य नहीं होगा। इसलिए काव्य के लिए भ्रम चाहिये। विज्ञान का जमाना आया तो भ्रम का क्षेत्र कम होता गया है, और उत्तरोत्तर कम होगी ऐसा मानते हैं। मैं उलटा मानता हूं। मैं मानता हूं कि इसके आगे विज्ञान के जमाने में ऐसा साहित्य निकलेगा कि दांते और शेक्सपियर, वाल्मीकि और कालीदास फीके पड़ेंगे। ऐसे महान् साहित्यिक होंगे। यह किस आधार से मैं कहता हूं? इसलिए कि साहित्य के लिए जो चाहिये वह विज्ञान 'सप्लाय' कर रहा है। विज्ञान के कारण ज्ञात का क्षेत्र भी बढता है और अज्ञात का भी क्षेत्र बढता है। आज अज्ञात कितना है? खूब है। पर मालूम नहीं कितना है। विज्ञान के कारण कितना विशाल अज्ञात है, यह ध्यान में आयेगा। न्यूटन कहता था कि मुझे जो ज्ञात हुआ है, वह समुद्र के एक बिंदु का बिंदु है, इतना ही मुझे जानने को मिला है। यानें कितना अज्ञात है, और कितना बाकी है तथा कितना वह जानता था, इसका भान उसे था। यह अकल्पनीय, अवर्णनीय, अनिर्वचनीय, शब्दातीत, कल्पनातीत है। प्रकट बोल नहीं सकते हैं। इससे ज्यादा प्रकाशन सामर्थ्य नहीं था।

लेकिन कितना लम्बा चौडा, गहरा और व्यापक अज्ञात है, इसका अनुभव आयगा। काव्यशक्ति के लिए कुछ ज्ञात और कुछ अज्ञात, कुछ ज्ञात क्षेत्र, कुछ अज्ञात क्षेत्र, कुछ अन्धेरा और कुछ प्रकाश चाहिए। ये दोनों खूब बढेंगे। बहुत बडा चन्द्र प्रकट होगा। इसलिए साहित्यकला और काव्यकला खूब बढेगी।

यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि प्राचीनों के पास जितना ज्ञान था, उससे हमारे पास कम ज्ञान नहीं है। बडे बडे ऋषियों के पास ज्ञान था। लेकिन जैसे मैंने 'स्थित प्रज्ञ दर्शन' में लिखा है कि पुराने जमाने के स्थित प्रज्ञ से आज के स्थितप्रज्ञ बहुत आगे बढे हुए होंगे। यह समझना चाहिये कि उत्तरोत्तर मानव विकसित हो गया है। पुराने जमाने के बडे बडे ऋषि और महापुरुषों ने जो ज्ञान हमें दिया है, उसे हम नवीन शक्ति से भावित करते हैं और उसमें अपनी बुद्धि डाल कर उसे रसमय बनाते हैं। हमारे युग में ऐसी शक्ति पडी है कि उसके प्रभाव से हम इतने महान् हुए हैं।

इसके आगे हमारे सामने बहुत काम उपस्थित है। इसके आगे दुनिया में दो शक्तियां काम करने वाली हैं और बाकी शक्तियां नहीं चलेंगी। एक शक्ति है विज्ञान और दूसरी आत्मज्ञान की। कौन शक्तियां नहीं चलेंगी? ये धर्म, पंथ, रियासत राजनीति नहीं चलेगी। आज वे जोर लगा रही हैं। दीपक बुझने के समय जरा बडा बनता है और फिर बुझ जाता है। वैसे यह सारा "पालिटिक्स' बडा हो रहा है, बुझने के पहले।

विज्ञान आयेगा, आत्मज्ञान आयेगा। धर्म, पंथ और राजनीति जायेगी। एक है प्राण और दूसरा है ज्ञान। एक है शक्ति और दूसरी है बुद्धि, वह मार्गदर्शन करेगी। जीवन को इन्हीं दो की जरूरत है। विज्ञान से गति मिलेगी। आत्मज्ञान के मार्गदर्शन में विज्ञान काम करेगा। परिणामस्वरूप पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा।

साहित्यिक को इन दो शक्तियों, को जोडने का काम करना होगा। यह बहुत बडा काम है। 'पुल' (ब्रिज) बनना होगा। दोनों के बीच खडे होकर जीवन का योग करना होगा। वह किस शक्ति से होगा? चिंतन शक्ति से, प्रतिभा शक्ति से और शब्द शक्ति से होगा।

मार्जरी साइक्स

बाल सभा

प्रारभ से ही नई तालीम विद्यालयों के कार्यक्रम में बाल सभाओ का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जिसकी बैठक सप्ताह में या पक्ष में एक बार नियमित रूप से होती है। प्रचलित शालाओ को बुनियादी शिक्षा की दिशा में परिवर्तित करने के एक प्रारंभिक कदम के तौर पर ऐसी बाल सभाए शुरू करने की सिफारिश की गयी है। लेकिन अगर विद्यालय के कार्यकर्त्तागण इन बाल सभाओ के असल मूल्य को नही पहचानते, यानी वे क्या कर रहे हैं और क्यो कर रहे हैं, इसको अच्छी तरह से समझकर इनका आयोजन नही करते, तो इस तथाकथित "स्वय शासन" का केवल औपचारिक आचारमात्र रह जाने का खतरा है। तब वह चुनावो पर आधारित लोकतन्त्र के बाह्य रूप की केवल एक नकल ही होगी।

"शिक्षणविचार" के एक लेख में विनोबाजी ने नई तालीम के इस पहलू का 'पारिवारिक विद्यालय" के रूप में वर्णन किया है। डेविड विल्स की जिस पुस्तक का जिक्र मैने पिछले एक लेख में किया था, उसमें कहा गया है कि विद्यालय परिवार को चाहिये कि वह अपने ही तरीको से बच्चे को एव अच्छे पारिवारिक जीवन से जो लाभ मिलते है या मिलने चाहियें, वे प्रदान करे। ये लाभ है

१ परिवार के बडों और बच्चा के बीच का प्रेमपूर्ण विश्वासयुक्त सबन्ध। इसका मतलब है कि बच्चे को एक व्यक्ति की तरह देखें, उसके अधिकारो का आदर करे और उसकी जरूरतो को उत्तम रीति से पूरा करे।

२. भोजन, स्नान व नीद आदि का एक नियमित कार्यक्रम, जिसमें हर एक बच्चा सुरक्षा का अनुभव करे, और साथ-साथ वहाँ एक व्यवस्थित फिर भी स्वतन्त्र पारिवारिक जीवन बने। डेविड विल्स का कहना है कि इस तरह की अनुशासनयुक्त व्यवस्थितता तथा प्रेमपूर्ण घनिष्ठता का सयोग विद्यालय में बच्चो और बडो के 'जिम्मेदारी में हिस्सेदार" (उनकी भाषा में) बनने से ही पाया जा सकता है। वह खास कर उन बच्चो के बारे में लिखते हैं जो भावनात्मक सुरक्षा के अभाव से पीडित हैं, लेकिन जो वे कहते हैं वह साधारण बच्चो के लिये भी लागू होता है। शिक्षा के सामाजिक पहलू का जिन लेखकों ने भी विवेचन किया है, वे सभी इन बातो से सहमत है। यहां आगे मैं जो लिख रही हूँ उसमें डेविड् विल्स की इस किताब के उन भागो से बहुत कुछ लिया गया है, जो अपने अनुभव के आधार पर मै भारत में हमारे लिये विशप उपयोगी समझती हूँ।

भारत में आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चो में उन नैतिक मूल्यो का निर्माण करना तथा एक प्रजातान्त्रिक जीवन के लिये अनुपेक्षणीय सयुक्त अनुशासन का अभ्यास होना चाहिये जिसकी कल्पना ग्रामराज और पचायत राज में

की गयी है। एक अच्छी बाल सभा इस का एक कारगर माध्यम होगा।

१ बच्चों के अन्दर एक यूथवृत्ति (हर्ड इन्स्टिन्क्ट) विकसित होती है जिसके कारण वे सघो में और दलो में एकत्र हो कर कुछ करते हैं। अपने ही कार्यों का प्रबन्ध करने के लिये बालसभा में एकत्रित होने से इस प्रवृत्ति को एक विधायक रूप मिलता है। तब वह बच्चो को उद्देश्यपूर्ण और रुचिकर कामो में लगा देता है और समाजविरोधी प्रवृत्तियो से बचाता है।

२ बालसभा से बच्चो को प्रजातान्त्रिक नियमो को ठीक समझने में मदद मिलती है। प्रत्येक बच्चे को अपने व्यवहार में कुछ नियमो का पालन करना पडता है, और वह किसी "बाह्य शक्ति" के दबाव से नही, बल्कि अपने ही समकक्षा की–अपने ही सघ की–मांग के कारण। बाल सभा में कोई बडा नही, बल्कि उसके ही जैसा एक बच्चा सफाई मत्री ही यह माग करता है कि वह खुली सभा में बता दें कि उसने वर्ग का कमरा साफ करने का अपना कर्तव्य क्यो नही पूरा किया। और बच्चो की सभा ही उससे पूछती है कि उसने दूसरे लडके को क्यो पीटा या स्कूल के समय सिनेमा देखने क्यो गया?

३ बालसभा से बच्चे यह भी समझते है कि अगर उनको सब की सुविधा के लिये काम ठीक चलाना हो तो सब को मदद करनी होगी, सभा की बैठको में सबको अपना हिस्सा लेना होगा। व्यवस्था के कार्यों में भी सब को समय देना पडता है और अगर वे किसी विशेष विषय की चर्चा के अवसर पर सभा में उपस्थित नही रहते तो उनके दृष्टिकोण पर विचार नही होगा और यह उन्ही की गल्ती होगी।

४. प्रत्येक बच्चे को अपना हक और न्याय मिले, और निर्बल को आक्रमणकारी से रक्षा मिले, यह बालसभा का ही एक कार्य है। बच्चा अपने ही साथियो की एक न्याय सभा में अपनी शिकायत पेश करता है तो दोनो पक्षो के दृष्टिकोण सामने आते है और किसी को अन्याय या असहायता की भावना से पीडित होने की जरूरत नही रहती है। असल में एक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में पुलीस का भी यही विधायक कार्य है और बच्चे इसको समझें, यह आवश्यक है।

५. और आखिर, सक्रिय रूप से काम करने वाली एक बालसभा विद्यालय परिवार के बडो को हमेशा "पुलीस" के जैसे (नकारात्मक अर्थ में) काम करने की बाध्यता से बचाती है। कई सारे स्कूलो में शिक्षक बच्चो पर जो नियम लाद देते है, उनके बनाने में बच्चो का खुद का कोई हिस्सा नही होता, वे ऊपरी शासन से लाद दिये जाते हैं और इसलिये बिलकुल भी लोकतान्त्रिक नही है। जब ये नियम समाज के नियम होते हैं और शिक्षक भी बच्चो के जैसे समाज के सदस्य होते हैं–बगैर किसी विशेष सहूलियतो और अधिकारो के–तब बच्चो और शिक्षको के आपसी सबन्ध पर उसका दो तरह से अच्छा प्रभाव होता है। पहला, शिक्षक तब बच्चो के मित्र बन जाते है। अधिकारवादी स्कूलो में जैसे होता है, बच्चे उन्हे अपने निसर्गशत्रु के तौर पर नही देखते हैं। दूसरा, जबरदस्ती के आज्ञापालन के बदले बच्चे तब उनका स्वाभाविक आदर करने लगते हैं। बच्चे अपने अनुभव से समझ लेते हैं कि बालसभा में शिक्षक जो

बताते है या सुझाव देते है, वह आम तौर पर ठीक और ज्ञानपूर्वक बात होती है, और वह समाज के हित के लिये बताया जाता है, न कि किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से। इसलिये वे उनको सुनने व समझने के लिये तैयार रहते है।

यह आखिरी बात हमें एक और मुद्दे पर ले जाती है जो मेरे इस लेख का दूसरा विषय है। मै जानती हू कि ऊपर का पेरग्राफ पढ कर मेरे पाठक कहेंगे कि शिक्षको और खास कर प्रधानाध्यापक को एक स्कूल के काम के बारे में कुछ अनिवार्य जिम्मेदारियाँ और उनको निभाने के लिये आवश्यक अधिकार भी है, जो वे बच्चों पर नही छोड सकते है।

यह बिलकुल सच बात है और इसकी परवाह न करते हुए अगर शिक्षक "जिम्मेदारी में हिस्सेदार" बनते है तो उस प्रयोग का निश्चय ही पराजय होगा। मै "स्वयशासन" के बदले "जिम्मेदारी में हिस्सेदार" बनना–यह शब्द ज्यादा पसन्द करती हूँ, इसलिये कि समाज के कार्यों का सचालन एक जिम्मेदारी है और उसमें बडे और बच्च भी हिस्सा लेते है। बाल सभा का इस जिम्मेदारी में अपना हिस्सा है, पूरी जिम्मेदारी उसकी नही।

इसलिये अगर बाल सभा को सफल रूप से काम करना है और उससे वे अच्छे परिणाम निकलने है जिनका कि ऊपर जिक्र किया है, तो अमुक परिस्थितियो का निर्माण आवश्यक है। पहली बात यह है कि बाल सभा की प्रवृत्तियो व अधिकारो का दायरा स्पष्ट रूप से निर्धारित हो, उसका वास्ता ऐसे कार्यों से ही हो जिनको संभालने का उसका सामर्थ्य है। उदाहरणार्थ: डेविड विल्स के स्कूल में बाल सभा को उन कार्यों पर कोई अधिकार नहीं, जिनका सबन्ध बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य और सुरक्षा से है। उनको समझाया गया कि इसके लिये कुछ तकनीकी जानकारी की आवश्यकता है, जो ज्ञान अभी उन्हें नही है और इसलिये सोने का समय, सफाई के नियम, और भोजन इत्यादि पर निर्णय शिक्षक करेंगे। हा, जरूर अपनी पसन्दगी और नापसन्दगी के बारे में बच्चोंको जो कुछ कहना है, उन पर अवश्य ध्यान देंगे और यथा सभव उनकी इच्छा के अनुसार चलने का प्रयत्न करेंगे। बच्चो ने माना कि ये मर्यादायें ठीक और आवश्यक है और यह भी माना कि वे ऐसे कोई नियम नही बना सकते है जो देश के नियमो के विरोध में है–उदाहरणार्थ: वे ऐसा नियम नहीं बना सकते है कि गणित नही पढाना है। बाल सभा के और शिक्षक वर्ग के अधिकारक्षेत्रो के इस विभाजन का परिणाम यह हुआ कि बच्चे उन विषयो में–जो बडो के कार्यक्षेत्र में है–बडो के अधिकार को मानने के लिये ज्यादा तैयार हुए है, बनिस्बत उन विद्यालयो के जहा बच्चो का अपना कोई अधिकार है ही नही। इसलिये बाल सभा की सफलता के लिये पहली आवश्यक बात यह है कि उसके अधिकारो की मर्यादा स्पष्टता से समझी जाय।

दूसरी बात है कि अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र में बाल सभा का अधिकार परिपूर्ण और वास्तविक हो। शिक्षको को चाहिये कि वे सभा के निर्णयों का पूरा पूरा पालन होने दे, वे जैसे भी हों, शिक्षक खुद उनसे सहमत हो या न हो। सभा के सदस्यो की हैसियत से शिक्षको को भी किसी भी प्रस्ताव पर अपने मत जाहिर करने चाहिये, फिर भी उन्हे ज्यादा बोलने से बचना चाहिये, और अपने अधिकार-

बल से किसी के ऊपर अपने विचार जबरदस्ती नही लादने की कोशिश करनी चाहिये। अगर कोई गलत निर्णय हुआ तो समाज अपने अनुभव से ही उस गल्ती को पहचाने—यद्यपि इससे थोडे समय के लिये सब को खूब ही असुविधा क्यो न उठानी पडे—इसकी तैयारी शिक्षक में होनी चाहिये। अपने ही अनुभवो से और अपनी ही *गल्तियो से सीखना, सीखने के सब से अच्छे* तरीको में है और बच्चो को उसका मौका दिया जाना चाहिये, बशर्ते उससे कोई खतरा न हो, जैसे कि ऊपर कहा गया था। अगर हम चाहते हैं कि *बाल सभा का आदर और प्रतिष्ठा* हो तो यह जरूरी है कि उसका अधिकार वास्तविक हो। बच्चे नकलीपन को तुरन्त ताड लेते हैं और तब वे बाल सभा में अपनी रुचि जल्दी ही खो बैठेंगे। अगर उनको यह *भावना होती है कि शिक्षकों के विचार स्वीकार्य* कराने के लिये यह एक बहानामात्र है, तो वे बाल सभा के निर्णयो के बारे में कोई जिम्मेदारी महसूस नही करेंगे।

तीसरी बात बाल सभा तब अच्छा काम करेगी जब कि बच्चे यह महसूस करते हैं कि वह उन्ही की बनायी हुयी है, शासन और व्यवस्था का यह तत्र उन्होंने ही निर्माण किया है। इसका यह मतलब *होगा कि उसका विधान* स्थिर या चिरस्थायी नही हो सकता है, उसमें आखिरी बात नही कही जा सकती, अगर एक साल के बच्चो ने विधान बनाया तो दूसरे साल के लिये वह लागू होना जरूरी नही है। विद्यालय का जीवन स्थायिक नहीं है, उसमें पीढिया बहुत जल्दी बदलती हैं, एक साल में जो नेता हैं, अगले साल वे बदल जाते हैं। इसलिये शासन के तरीके भी अनाम्य नही होने चाहिये। शिक्षको को चाहिये कि वे परिवर्तन के सुझावो का स्वागत करे, उन्हें प्रोत्साहन दें। वर्तमान पीढी को हमेशा ऐसा महसूस होना चाहिये कि वे अपने तरीके से ही काम कर रहे हैं, न कि पिछले सालो के कुछ नियमो का अनुसरण ही कर रहे हैं, जिनके बनाने में उनका कोई हाथ नही था।

चौथा : जब एक बाल सभा सगठित की जाती है, या उसमें परिवर्तन किये जाते हैं तो वे "हवा में बनायी बातें" नही होनी चाहिये, मामला केवल सैद्धान्तिक नही होना चाहिये। वह जिन्दगी की किसी वास्तविक परिस्थिति से, समाज की किसी विशेष जरूरत से, स्वाभाविक ही निकलनी चाहिये। बच्चे सामने की किसी वास्तविक समस्या पर विचार करे, निर्णय पर पहुचे, फिर उस निर्णय को कार्यान्वित करे। अगले दफे भी जब कोई परिस्थिति उठती है, जिसका हल करना उनके सामर्थ्य के अन्दर है, तो उन्हे करने दें। तब जल्दी ही बच्चे दूसरी बातो पर भी सोचने और अपना सुझाव देने लगेंगे, क्योंकि वे महसूस करते हैं कि उनके विचारो को गभीरता से लिया जाता है, उन्हें आदरपूर्वक सुनते हैं। और इस प्रकार एक असली काम की बाल सभा बन जाती है। ऐसा कोई नमूना तो नही हो सकता जो सभी विद्यालयो और सभी परिस्थितियो के लिये उपयुक्त हो, प्रत्येक बाल सभा को अपनी परिस्थिति में ही विकसित होनी है, तभी वह प्राणवान्, सक्रिय और सामाजिक शिक्षा का एक सच्चा माध्यम बनेगी।

आखिर, उन तरुण शिक्षको के लिये जिन्हे कोई अनुभव नही है, एक चेतावनी का शब्द। इस तरह "जिम्मेदारी में हिस्सेदार" बनने में

(शेषांश पृष्ठ २३६ पर)

वायुभार और आर्द्रता मान

देवलाल अबुलकर

तापमान समझाने के बाद वायुभार और आर्द्रता मान का प्रश्न उपस्थित हुआ । वायु-भार का अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक हुआ । वायु का दबाव सब दिशाओ में है, यह सबको मालूम था । इसलिए मुझे आगे का ही हिस्सा समझाना पड़ा । प्रश्न था—वायुभार क्या है ?

उत्तर इसे समझने के लिये हम एक प्रयोग करेंगे । प्रयोग के लिये साधन—एक मोटे काच की ३ फीट लम्बी नली जिसका एक मुह बन्द हो, एक कटोरी और पारा ।

प्रयोग लम्बी नली का बन्द मुह नीचे करके उसमें इस तरह से पारा भरना चाहिये कि उसमें हवा का एक भी बुलबुला नीचे न रहने पावे । नली टेढी करके पारा पूरा भरना चाहिये । कटोरी में पारा लेकर लम्बी नली के मुह पर अगूठा रखकर उसे कटोरी न उलटा रखना चाहिये । नलीका मुह पारे के अदर घुसने पर अगूठा निकाल लेना चाहिए । निरीक्षण में ऐसा मालूम होगा कि नली में पारा कुछ नीचे उतर आया । कटोरी के पारे की सतह से जितनी नली के पारे की ऊचाई होगी वही हवा का दबाव है । इचो में उसे नाप लेना चाहिये ।

इस प्रयोग से प्रश्न निकले यह वायु-भार कैसे होता है ? पारे के ऊपर नली में क्या है ? पारे का उपयोग क्यो किया जाता है, पानी का क्यो नही ? लम्बी नली टेढी कर दी तो क्या होगा ?

उत्तर कटोरी के पारे पर हवा का दबाव है । लम्बी नली के अदर से पारे का दबाव कटोरी के पारे पर है । हवा का जितना वजन कटोरी के पारे पर है, उतने ही वजन का पारा नली में रहेगा । यदि ज्यादा हो तो कटोरी में उतर जायगा । इसका अर्थ है कि बाहर के हवा का वजन नली के अदर के पारे से सतुलित हो गया । इसलिये हवा का वजन हम गणित से निकाल सकते हैं । पारे की घनता १३ ६ ग्राम प्रति घ से मी है । लम्बी नली के मुह का क्षेत्रफल एक वर्ग से मी है और नली में ३०" या ७६ से मी पारा समुद्र की सतह पर रहता है । (इस स्थान पर वह २९ ३" है ।) इसलिये पारे का आयतन ७६ घ से मी हुआ । पारे का वजन=७६×१३ ६=१०३३ ६ ग्राम हुआ । इतना ही हवा का वजन होगा । इससे स्पष्ट है कि एक वर्ग से मी पर हवा का दबाव १०३३ ६ ग्राम है । एक वर्ग इच पर हवा का दबाव १५ पौंड होता है ।

हमारे स्थान पर दबाव कम है । जैसे जैसे हम ज्यादा ऊचाई पर जायेंगे वैसा वायुभार कम होगा क्योकि वायु की घनता कम होती है । साधारण रूप में ९२० फीट ऊचाई के लिये वायुभार एक इच घट जाता है । इससे किसी स्थान की ऊचाई भी हम नाप सकते हैं ।

वायुभार के प्रयोग में लम्बी नली में से पारा उतर जानेपर ऊपर कुछ नही रहता है। पारे की थोडी भाप रहेगी। उसे टारिसेली का निर्वात प्रदेश कहते हैं।

इस नली को टेढी करने से नली पारेसे भर जाती है क्योंकि दबाव वही रहता है। इसलिये पारे की लम्बात्मक उचाई स्थिर रहती है। नली को ऊपर उठाने से भी पारे की ऊचाई स्थिर रहेगी, इस दृष्टि से पारा नीचे ऊपर होगा।

इस प्रयोग में पारे का ही उपयोग करना चाहिये। पानी का उपयोग नही कर सकते। पारे की घनता पानी की अपेक्षा १३६ गुना ज्यादा है। पानी का उपयोग करना हो तो काच की नली कम से कम ३४ फीट लम्बी लेनी होगी। ऐसी नली से प्रयोग करना आसान नही होगा।

प्रश्न : पारे का वायुभार मापक और द्रवहीन या निर्वात वायुभार मापक इसमें से कौनसा ठीक है ? क्या उपयोग में आने वाले अन्य कोई वायुभार मापक है ?

उत्तर : द्रवहीन वायुभार मापक के (एनेरोइड बॅरोमीटर) डायल पर जो अंक लिखे जाते हैं, वे पारे के वायुभार मापक के आधार पर ही लिखें जाते है। लेकिन पारे का वायुभार मापक इस लायक नही कि हम उसे चाहे जहा आसानी से ले जा सके। द्रवहीन वायुभार मापक को हम कही भी ले जा सकते, लेकिन उससे देखा गया वायुभार ठीक होगा ही ऐसा नही। सूक्ष्म वायुभार समझने के लिये फर्टीन के वायुभार मापक का उपयोग करते हैं। इससे मिलीमीटर के २० वे भाग तक दाब ठीक ठीक ज्ञात होता है।

आर्द्रता मापक यन्त्र के बारे में विद्यार्थीयों के प्रश्न इस प्रकार थे। हवा में आर्द्रता कितनी है, यह हम कैसे जान सकेगे ? पानी में भीगा हुआ कपडा रखने का क्या मतलब है ?

उत्तर : वायु के किसी निश्चित आयतन में जलबाष्प जितनी मात्रा में किसी समय विद्यमान है और जितनी मात्रा से उस समय वह वायु सतृप्त हो सकती है, इन दोनो मात्राओं की निष्पत्ति को आर्द्रता या आपेक्षिक आर्द्रता रखा गया है। जैसे यदि किसी समय प्रत्येक घ. से. वायु में 'अ' ग्राम जल बाष्प है, और उसे सतृप्त करने के लिए 'ख' ग्राम जल बाष्प की आवश्यकता है तो : आर्द्रता= $\frac{अ}{ख}$ इस सूत्र के अनुसार जलवाष्प की मात्रा मालूम करना अति आवश्यक है। लेकिन व्यवहार में हर समय जलबाष्प मालूम करना कठिन होगा। बायल के नियम का सहारा लेकर इसे हम आसान कर सकते हैं।

प्रश्न : बायल का नियम क्या है ?

उत्तर : बायल का नियम है—यदि किसी वायु का तापक्रम स्थिर रहे तो दाब के कारण उसका आयतन उत्क्रम अनुपात से बदलता है :

एक पात्र में पानी भर देने पर उसमें और पानी नही भर सकते। लेकिन सायकल के या फूटबाल में चाहे जितनी कम ज्यादा हवा भर सकते है। लेकिन उसी समय हमारी समझ में आता है कि ग्यास पर दबाव बढ गया है। इससे स्पष्ट है कि दबाव बढने पर वायु का आयतन घट जाता है। वैसे ही वायु का दबाव कम हुआ तो आयतन बढेगा। वायु का दबाव और उसका आयतन यह दोनो उत्क्रम अनुपात से बदलते हैं।

इसको सूत्र के रूप में रख सकते हैं। यदि किसी वायु का आयतन 'आ' है और दबाव 'द' है, तो—

आ $\frac{१}{द}$ इसका अर्थ है : आ × द = स्थिरांक

निश्चित तापक्रम पर (आ × द) की कीमत स्थिर होगी। 'आ' या 'द' कितना भी बदले, निष्पत्ति स्थिर रहती है। (यह नियम बायल का उपकरण लेकर प्रयोग से भी समझाया गया।)

अभी आर्द्रता का सूत्र देखने पर पता चलेगा की 'सतृप्ति' यह शब्द उसमें आया है।

आधा ग्लास पानी लेकर उसमें थोडा नमक डालिये। वह नमक घुल जायगा। और थोडा नमक डालने पर और उसे अच्छी तरह हिलाने पर वह भी घुल जायगा। पानी में थोडा थोडा नमक डालिये और हिलाते रहिये। आखिर नमक घुलना बंद होगा। अभी वह पानी नमक से 'सतृप्त' हो गया। वैसे हवा भी जलबाष्प से जब 'सतृप्त' हो जाती है तब उसे 'सतृप्त' हवा कह सकते हैं। यह संतृप्तता तापक्रम पर अवलंबित है। तापक्रम ज्यादा हो तो हवा संतृप्त होने के लिये ज्यादा जलबाष्प की जरूरत होगी। तापक्रम कम हो तो कम जलबाष्प उसे संतृप्त करने के लिये आवश्यक होगा।

आर्द्रता के सूत्र में बायल के नियम का उपयोग कर उसे व्यवहारोपयोगी बना सकते हैं। जलवाष्प का आयतन उसके दाब का उत्क्रम अनुपाती होगा। उसे नापने की कठिनाई *भी अधिक है और समय भी अधिक लगता है।* इसका दाब आसानी से मालूम हो सकता है। इसलिये आर्द्रता के सूत्र में उसका आयतन के बदले उसका दाब ही हम विचार में ले तो अच्छा है। सूत्र का नया रूप इस प्रकार होगा :

$$\text{आर्द्रता} = \frac{\text{जलबाष्प का प्रस्तुत दाब}}{\text{प्रस्तुत दाबपर जलबाष्प का सतृप्ति दाब}}$$

यह जलबाष्प का दाब जानने के लिये हमें ओसाक जानना जरूरी है। फिर बाष्पदाब टेबल से देख कर हम हल कर सकेंगे।

(पृष्ठ का २३३ शेषांश)

कुछ अडचनें तो आती हैं, वह हमेशा सरल और अनायास नही होता हैं। पहला . इसमें उतनी शीघ्र और कारगर रीति से काम बनता नही है जितना एक अनुभवी शिक्षक के अपनी आज्ञा देने मात्र से होता है। एक "कार्यदक्ष" व्यक्ति के लिये यह आसान नही है कि वह स्वयं अलग हो कर रहे और पीढी के बाद पीढी को अपना रास्ता ढूढते और गलतिया करके धीरे धीरे सीखते रहने दें। दूसरा : यह काम से बचने का कोई तरीका नही है, "जिम्मेदारी में हिस्सा लेने" का मतलब यह नही है कि शिक्षक की कोई जिम्मेदारी ही नही है; उसकी जिम्मेदारी उतनी ही है जितनी अधिकारवादी तरीको में होती है, उसे हमेशा इसके बारे में सावधान रहना होगा कि कब अपना प्रभाव डाले और कब अलग रहे। लेकिन बडे समाज के लिये लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अगर हमारी सच्ची श्रद्धा है तो हमें बच्चो के समाजो में भी इन्ही पद्धतियो से काम करना होगा—जो बच्चे कल के नागरिक हैं। नही तो वे सीखेंगे कैसे ? अगर हमारी यह श्रद्धा है तो "जिम्मेदारी में हिस्सा लेने" के इस अनुभव से हमारी श्रद्धा बढेगी और उससे कुछ अडचने और असुविधाएं क्यों न हो, हम इस प्रयोग को एक अनावश्यक बोझ नही महसूस करेंगें।

सेवाग्राम कृषि एवं क्षेत्र-विकास योजना पर कुछ विचार

बनवारीलाल चौधरी

[पिछले कुछ अंको में सेवाग्राम कार्य की कृषि और विकास योजना पर लेख प्रकाशित किये गये हैं और जनवरी १९६२ के अंक में इस कार्य का पहले वर्ष का अहवाल भी दिया गया। सेवाग्राम के कार्य में विशेष रुचि रखनेवाले और सर्वोदय विचार धारा पर चिन्तन करनेवाले मित्र अपने-अपने अभिमत समय-समय पर भेजते रहते हैं। यह सभी जानते है कि श्री बनवारीलाल चौधरी नई तालीम के चुने हुए सेवकों में से हैं और खेती के विषय में तो वे एक खास विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने अपने विचार पत्र-व्यवहार द्वारा, और चर्चा आदि में भी श्री अण्णासाहेब और अन्य मित्रों के समक्ष रखे हैं। उसी के आधार पर उन्होंने यह लेख भेजा है। —सम्पादक]

सेवाग्राम कोई भौगोलिक स्थान-मात्र नहीं है। सेवाग्राम एक विचार का प्रतीक है। रामायण में ऐसा कहा गया है कि जहा राम है वहीं अयोध्या है, वैसे ही जहा भी गाधी विचार धारा से समाजसेवा का कार्य होता है वहीं सेवाग्राम है। गाधी विचारधारा का ही व्यापक नाम सर्वोदय है। सर्वोदय का अपना धर्म सिद्धात और दृष्टिकोण है, जिसे हम सब लोग मानते हैं। हमारा ध्येय ग्राम-उद्योग प्रधान भूदान मूलक अहिंसक क्रांति है। अर्थात् हमारा लक्ष्य सर्वोदय समाज की स्थापना है। यह वर्ग विहीन शोषणहीन समाज होगा। हमारी प्रथम मंजिल अत्योदय होगी। इस क्रांति की महत्वपूर्ण बात मानवीय मूल्यों की स्थापना है। हमारे सब प्रयत्नो का माप मानव का विकास होगा, न कि उत्पादन की बहुलता। इस आधार पर ही वर्धा की पचवर्षीय योजना बनी थी। सर्वोदय प्लान भी इन्ही सिद्धान्तो का प्रतिपादन करता है। प्यारेलालजी ने 'द लास्ट फेज' के दो अध्यायों —टुवर्डस् न्यू होराइजन्स—में खेती की भारतीय नीति क्या हो, इसका बहुत अच्छे ढग से विवेचन किया है। श्री इ एफ शूमाखर के भारतीय विकास की समस्याओ पर कुछ विचार भी सर्वोदय विचारो के अनुरूप हैं। उनके अनुसार "कसौटी सास्कृतिक न कि आर्थिक होना चाहिये, क्योंकि आर्थिक विकास का अन्तिम लक्ष्य सास्कृतिक ही है, (व्यापक अर्थ में) न कि सिर्फ आर्थिक। कहना न होगा कि कृषकों की गरीबी और ग्रामीण दैन्य की समस्या मूलत सास्कृतिक समस्या है। वे लोग जो केवल कृषि के औजारों, खादों आदि की बात करते हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण बात को भूल जाते हैं कि अगर भारतीय कृषि अपने सबसे अच्छे तरीको के सहारे बहुत अच्छी होती—पश्चिम से आये हुए तकनीकों पर ध्यान ही मत दीजिये, तो आज की अपेक्षा अधिक उत्पादक होती। परतु ऐसा क्यों नही है ? यह समस्या सास्कृतिक ह्रास और बौद्धिक भूल के कारण है। पूजी की कमी केवल इसी समस्या की देन है।

"मुख्य उपभोग-सामग्रियों में स्वावलबन होगा जैसे खाद्यान्न, वस्त्र, मकान और औजार शिक्षा योजना के आधार होंगे।

"मेरी (शूमाखर) ऐसी अपनी व्यक्तिगत मान्यता है कि जो देश अपनी विकास योजनाओं के लिये बाहरी मदद पर निर्भर करता है वह अपनी जनता के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को इतनी

महान् क्षति पहुंचाता है कि सकीर्ण दृष्टि से भी देखने पर हाने वाली हानि लाभ को अपेक्षा महत्तर होती है" ।

मैं आर्थिक प्रश्न पहले लेता हूँ । सेवाग्राम में आर्थिक समस्या का हल मूल्त सरकारी सहायता से होगा, जैसा कि योजना में इगित है । सरकार की ओर से इतनी निधि सरल्ता से उपलब्ध होने के निम्नलिखित कारण है

(१) गाधी का नाम ।

(२) विदेशो में इस कार्य का प्रचार रूप में महत्व।

(३) महाराष्ट्र सरकार और खासकर मुख्य मत्री पर सेवाग्राम अधिकारियो का व्यक्तिगत प्रभाव । (जो कि वर्तमान स्थिति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है)

इसका अर्थ यह है कि यह योजना सामान्य योजना के रूप में अन्य किसी क्षेत्र में लागू न हो सकेगी । सेवाग्राम का कार्य जनसाधारण की शक्तियों से परे का होगा । सेवाग्रामरूपी पिंड ब्रह्माण्ड नहीं बन सकेगा । साथ ही इस तरह से जब कृत्रिम रूप में निर्मित स्थिति विशेप में कार्य होता है तब एक भी इकाई के टूट जाने या प्रतिकूल हो जाने पर पूरी की पूरी योजना ही बैठ जाती है । उदाहरणार्थ-कोरापुट की योजना की सफलता और असफलता कार्यकर्ताओं के प्रयत्नो के बजाय सरकार के रुख पर अवलबित हो गई थी । इसके कारण ही हमें वहाँ से हाथ खीच लेना पड़ा ।

शासन द्वारा सचालित विकास योजनाओ की हमारे दल ने दो कारणो से टीका की थी (१) योजना स्थानीय साधन शक्ति पर आधारित नहीं है (२) अधिक खर्चीली है । हमारा दावा रहा है कि स्थानीय शक्ति के जागरण के आधार पर खडी योजनायें आरम्भ में धीमी प्रगति करती है, पर वे क्रमश अत शक्ति और गति प्राप्त कर तेजी से सफलता की ओर अग्रसर होती है । स्थानीय शक्ति की परख की कमी के कारण ही विकास योजनायें स्वयसचालित गतिशील योजनायें न बन पाई । खर्च भी उनपर काफी हो रहा है और यह सब विदेशो से भीख मागकर या कर्ज लेकर पूरा किया जा रहा है । हमारी आवाज में कोई बल न होगा यदि हमारी योजनायें भी सरकारी योजनाओं के समान हो और हम भी काफी अधिक मात्रा में अनुदान की माग करे । ऐसी सरकार से जो स्वय अनुदान और उधारी पर काम चला रही है आर्थिक माग करना उसपर और भी अधिक भार डालना है । आप तो जानते ही है कि केवल उधार ली निधि पर भारत सरकार प्रतिवर्ष २६ . ६५ करोड विदेशी मुद्रा खर्च कर रही है क्या हम हमारी नीति और प्रत्यक्ष कार्य से मार्गदर्शन कर राष्ट्र को इस दयनीय स्थिति से उबार सकते है ?

आपने ग्राम द्वारा शाला-गृह निर्माण हेतु अशदान की बात कही है ४,००० रु के मकान के लिये केवल ४०० रु एकत्रित करना सरल है । समाज विकास योजना का सही नियम है-५० प्रतिशत सहायता देना इस शर्त पर कि अन्य किसी सरकारी या अर्धसरकारी अनुष्ठान से सहायता न ली गई हो । इसके अनुसार सही माने में ग्राम को २,००० रु इकट्ठा करना चाहिये । सेवाग्राम विशेप रिआयत प्राप्त कर रहा है । आस पास के अन्य गावो की अपेक्षा सेगाव धनी गाव है । वहा के परिवार का एक न एक व्यक्ति हमारी सस्थाओ में या वर्धा में या सरकारी नोकरी में है । यह गाव में साइकल की सख्या, साइकल की दूकान, आटा चक्की इत्यादि इगित करते है । ऐसा गाव यदि ४०० रु ही इकट्ठा करे तो कैसे काम चलेगा । और मैं तो सर्वोदय की दृष्टि से ग्राम अशदान (पीपल्स पार्टीसिपेशन) के नाम हो दूसरे मानता हू । वे है

(१) भूमिदान (२) सर्वोदय पात्र
(३) सपत्तिदान (४) खादीग्रामोद्योग
(५) श्रमदान (६) नई तालीम

हमारी मजिल के ये मील के पत्थर है । इनकी उपलब्धि के अनुपात से मजिल पार करने का अनुपात आका जा सकेगा । योजना को कार्यान्वित करने की पूर्व तैयारी के रूप में ये आना चाहिये । बिना इसके हमारे प्रयत्नो से लोगों को मिला आर्थिक लाभ

ध्वंसात्मक हो सकता है। लोगो में गलत आदतें पड़ेंगी। मिशनकाल्‍ोनिओं और हमारे संस्थाओं के आस पास के गावों में यह हुआ है। हमें इसपर शांत चित्त से विचार करना होगा।

खेती की योजना में तीन विषयों में मुझे शकायें है। वे है :

(१) ट्रैक्टर का उपयोग, (२) खाद का प्रबन्ध, (३) कैश क्राप—बाजार हेतु पैसा कमाने की दृष्टि से लगाई फसले।

यंत्रीकरण :

ट्रेक्टर मैकेनाइजेशन का प्रथम कदम है। काम जल्दी करना, गहरी जुताई और सस्ता काम होना, इसके पक्ष में दिये गये कारण है। ट्रेक्टर से काम अवश्य जल्दी हो जाता है, पर उस काम मे लगने वाली मनुष्य शक्ति और बैल निठल्ले हो जाते हैं। बधान का काम ट्रेक्टर (बुलडोजर) से कराने की बहुत लोग सलाह देते है। हमारा अनुभव है कि आदमी की तुलना में बुलडोजर द्वारा डले बाध पोले होते है। उनके बह जाने और फूट जाने का अधिक अंदेशा रहता है। दूसरी बहुत महत्व की बात यह है कि बुलडोजर से बाध बनाने के लिये दूर से मिट्टी खीचते है। खेत के काफी हिस्से की ऊपर की सतह बाध पर खिंच जाती है। जिससे २-३ वर्ष फसल के उत्पादन पर प्रतिकूल असर होता है।

मैकेनाइजेशन अधूरा नहीं होता। एक मशीन अपनी पूर्ण क्षमता से काम अदा करने के लिए दूसरी पूरक मशीन की माग करती है। ट्रेक्टर से आरम्भ कर कम्बाइन तक पहुच जाते है। प्रक्रियात्मक अत यह ही होता है। उदाहरणार्थ-होशगाबाद जिले में कास उन्मूलन योजना के अन्तरगत पूरे क्षेत्र में ट्रेक्टर से गहरी जुताई की गई। इस जुताई से सब खेतो के वर्षों के बधे सब मेंड बाध टूट गये। सोचा यह था कि आदमी शक्ति से बाध बना लिये जावेगे। हजारो एकड जमीन के बाध बनाना एक साथ आदमी शक्ति से सभव नहीं है। सब बाधो की टूटी स्थिति में एक निश्चित योजना से और अनिवार्य रूप से सब भूमि मालिकों को राजी करके ही काम उठाया जा सकता है। मान लीजिये ऊचाई की ओर से किसान बाध न बनावे और नीचे के धरातल के दो चार किसान बाध बनावे तो क्या होगा ? पहली वर्षा में ही सब बाध बह जावेगे। नीचे की ओर के किसान उच्च धरातलीय मालिको की ओर देखते भर है। जब तक वे काम न उठावे लोगो द्वारा किया गया काम पानी मे जावेगा। फल यह हुआ कि ट्रेक्टर चले आठ दस वर्ष हो गये पर आज तक मनुष्य शक्ति से बधान नही बने। करोडो टन उपजाऊ मिट्टी समुद्र में चली गई। इस वर्ष फिर नई योजना आई और समधरातलीय बाध (कंटर बड्स्) का काम बुलडोजर से आरभ हुआ। इस क्षेत्र में इस वर्ष शायद १५०० एकड अधिक से अधिक २००० एकड रकबे में समधरातलीय बाध बनाये जा रहे हैं। इस रफ्तार से क्षेत्र पूरा करने में कम से कम १० वर्ष लगेंगे।

बैल और ट्रैक्टर का साथ-साथ रहना कठिन है। इसका मेल असभवसा दिखता है। आज तक का इतिहास यही है। ड्राफ्ट एनीमल का उद्धार किसान के पेट में जाकर ही हुआ है। २५ वर्ष के अन्दर अमेरिका में ट्रैक्टर की सख्या पाच गुनी हो गई और ड्राफ्ट पशु की घटकर १।८ रह गई। इनके साथ ही आये ग्रेन कम्बाइन, मक्का तोडने के यत्र, कपास चुनाई यत्र, दूध दुहने के यत्र इत्यादि।

मशीन की अमेरिकन फार्म पर व्यापकता

बिजली	१० प्रति सन् १९३४ में ९६ प्रतिवर्ष वर्तमान
ट्रैक्टर	१००० सन् १९१० मे ५० लाख वर्तमान
मोटर ट्रक	शून्य सन् १९१० म ३० लाख १९५५ ई मे
ग्रेन कम्बाइन	१००० सन् १९१० मे १० लाख ,,
कार्न पिकर	शून्य ,, ७ ,, ,,
दूध दुहने की मशीन	१२०० ,, ७ २५ लाख
फार्म की सख्या	२४० लाख १९१० में ३१ लाख १९५९ में
घोडा	(यह भी अधिक सख्या मे दक्षिण मे है जहा मशीन का साम्राज्य अभी स्थापित नही हो पाया है।)

चूंकि इन सब यन्त्रो का प्रबध करना छोटे किसानो की शक्ति के बाहर की चीज है इसलिये वे विस्थापित हो शहरो मे चले गये और फेक्टरी के मजदूर बन गये । १९१० में अमेरिका में फार्म की संख्या ६४ लाख थी, १९५७ में वह ४९ लाख रह गई यह प्रतिवर्ष कम होती जा रही है ।

आपका कहना है कि ट्रेक्टर के उपयोग से आप अधिक लोगो को काम दे सकेंगे । सधि काल में यह ऐसा ही दीखता है । फलित रूप इसमे उल्टा है । अमेरिका में सन् १९१० में लगभग ३५ प्रतिशत आबादी फार्म पर काम करती थी, सन् १९५७ में वह केवल १२ प्रतिशत रह गई ।

'यन्त्रीकरण की काल्पनिक उच्चता में भी एक भ्रामक गुण है । वह बहुत उज्वल अपेक्षायें प्रस्तुत करता है, जो पहली नजर में पूर्ण रूप से प्राप्त हो सकने सरीखी दिखती हैं, परन्तु साथ ही वह अभिपूरक प्रक्रियायें उत्पन्न करती है जो उसके लाभो को करीब करीब मेट देती हैं । उदाहरणार्थ वह नये कार्य और कार्यों के नवीन क्षेत्र प्रस्तुत करती हैं, परन्तु साथ ही नये कार्य प्रदान करने की गति से भी तेज गति से वह ऐसे कई कार्यो में लगे लोगो को विस्थापित (बेरोजगार) कर देती हैं" ।

मशीन का उपयोग हम आवश्यकता मानकर स्वेच्छा से आरम्भ करते हैं, फिर वे हम पर लद जाती है, अनिवार्य बन जाती है । कागजी हिसाब से ऐसा लगता है कि इनके आसरे उत्पादन सस्ता हो जाता है । परन्तु (जहा तक आमदनी का प्रश्न है साधारण अमेरीकन किसान को खुशहाली उतनी उपलब्ध नहीं है जितनी की अमेरिका में साधारणत विद्यमान है) मानवीय मूल्यो में तो वस्तुस्थिति और भी दयनीय है ।

मशीनीकरण के बारे में बापू के विचार ये थे 'मेरी मशीन अति बुनियादी प्रकार की होगी जिसकी मैं घर घर म स्थापना कर सकू ।

"मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि महगी और विलष्ट मशीनो का उपयोग कदापि समाज के स्वावलम्बन पर आघात न करे और वे (मशीन) लोगो की बुद्धि और समझ के परे न हों । साथ ही साथ वे लोगो के अकेले या सहकारी आर्थिक क्षमता के अंदर हो ।"

"कृषि के भाग्य ही अलग होते हैं । जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, शाश्वत अर्थ नीति में यन्त्रशक्तिचलित साधनो का कृषि में उपयोग ही नही के बराबर है ।"

"मैं चाहता हू कि अपने देश के करोडो दीन लोग स्वस्थ और सुखी हो और उनका आध्यात्मिक विकास हो । इसके लिये अभी तक मुझे मशीन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।"

अमेरिका की यन्त्रीकरण कृषि नीति के कारण ही अमेरिका शासन को अपने बजट में रक्षा (सामरिक) खर्च के बाद सब से अधिक निधि कृषि के लिये रखनी होती है । दुर्भाग्य उस किसान का है कि वह बुलियन बाजार की हलचल का झटका सहने में असमर्थ हो गया है । जबकि कल उस पर इसका कुछ प्रभाव ही नही होता था । अमेरिकी खेती का सरप्लस भी कृत्रिम है ।

"अनेक उदाहरणो में उपज की अतिरिक्तता इतनी अधिक कीमत का फल है जितनी कि उपभोक्ता देना न चाहे । उदाहरणार्थ अमेरिका में यदि मक्खन की अतिरिक्तता है तो उसका खास कारण मक्खन की प्रति पोड ४ रु कीमत है जब कि उसके ऐवजी पदार्थ मारगरीन का भाव १।रु ही है । कीमत का यह भारी भेद उपभोक्ता लोगो को मारगरीन खरीदने को स्वाभाविकत प्रेरित करता है और इससे मक्खन की अतिरिक्तता हो जाती है । यदि भाव का यह अतर कम कर दिया जाय तो अधिकाश उपभोक्ता मारगरीन की अपेक्षा मक्खन खरीदना अधिक पसद करेंगे ।"

डब्ल्यू० ई० हैमिल्टन के मतानुसार "अतिरिक्तता को कौशल्य से जोडना भूल है । अस्थाई अतिरिक्त कई बार अच्छा अनुकूल मौसम या बाहरी बाजार की माग गिर जाने से हो जाती है । लगातार सतत अतिरिक्तता जैसी कि हाल के वर्षों में अमेरिका में है, खासकर शासन की ऊची कीमत बनाये रखने की

नीति का माल है जो कि इतने अधिक उत्पादन को प्रोत्साहित करती है जितने कि बाजार में बडी कीमत पर खपत नही होती। कृत्रिम प्रलोभन पर आधारित अतिरिक्त उत्पादन अस्थिर ही होगा, वह समक्ष और स्थायी हो नही सकता। आश्चर्य है कि अमेरिकन किसान फसल के पहाड खडा करता है। पर वह उसका इफरादी से उपयोग नही कर सकता। यत्रीकरण ने खेती का चालू खर्च भी बढाया है। फल स्वरूप लगभग ३५ से ४० प्रतिशत किसान और २० से ३० प्रतिशत किसान पत्नी, फार्म के बाहर पार्ट टाईम चाकरी करती हैं। इसके बिना उनका गुजारा नही। किसानो के कर्ज का अनुमान सन् ४७–४८ मे सम्पत्ति का ७ प्रतिशत था। सन् १९५५ मे बढकर ९.५ प्रतिशत हो गया है।

क्या भूमि की अति गहरी जुताई जरूरी है? इस प्रश्नपर अभी कृषिवैज्ञानिको का मतैक्य नही है। मध्य प्रदेश मे कांस उन्मूलन के दो प्रयोग हुये (१) प्लॉट रिसर्च इन्स्टिट्यूट इन्दौर और (२) ट्रैक्टर द्वारा कास उन्मूलन। पहली रीति है गर्मी मे बार बार (तीन चार बार) बखर चलाना। वर्षा मे जब बतर मिले तब २–३ बार देशी हल से जोतना और फिर बखर चलाकर भूमि तैयार कर लेना। दो तीन वर्षों मे कास सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जावेगा। विशेष खर्च भी नही लगेगा। दूसरी योजना मे ट्रैक्टर द्वारा गहरी जुताई से कास मारा गया। पर साथ ही उसकी जडें, गठाने गहरी दब भी गई। ट्रैक्टर चलाने के तीसरे वर्ष से फिर कास ने सिर उठाना शुरू कर दिया। अब योजना है फालो अप कल्टिवेशन विथ मिडियम ऑर लाईट ट्रक्टरर्स। भूमि कटी, अनावश्यक खेतो मे ट्रैक्टर चला और किसान ६० रु प्रति एकड के हिसाब से एव मध्यप्रदेश शासन ३५ रु प्रति एकड से कर्जदार हुआ।

मुमकिन है कि सेवाग्राम टैक्टर की भावी प्रक्रियाओ से अपने को बचा ले, परन्तु वे लोग जो सेवाग्राम को देख टैक्टर को अपनावेगे इसम डूब जावेगे, बच नहीं सकेगे। सेवाग्राम बडा है (महाजन हैं) उसे जन साधारण की प्रक्रियाओं का सब तरह से पूर्ण ध्यान रख फूक फूक कर कदम रखना चाहिये।

ट्रैक्टर की शरण जाने के पहले हमे बैल शक्ति द्वारा चलित साधनो पर पूरे पूरे प्रयोग करके देखना चाहिये। हमारी वर्तमान आवश्यकतानुसार उन यत्रो में सुधार करे, उसी अनुपात से इस दिशा में प्रयत्न करें, जितने रूप में चर्खा सुधार और अम्बर निर्माण में किये गये। कुछ प्रयोग चल भी रहे हैं। बोल्टास ने ऐसे यत्र बनायें हैं जो ट्रैक्टर के उपयोग में आनेवाले यत्रो का छोटा रूप है और बैल द्वारा चलाये जा सकते हैं। हम उनको चला कर देखें। ऐसे १०–१५ वर्ष के प्रयोग से केवल यह सिद्ध हो जाने पर कि ट्रैक्टर के अलावा दूसरा पर्याप्त है ही नही, तब हम प्रामाणिकता से कहे, "ट्रैक्टर लो। ट्रैक्टर लो।"

इन सब स्थितियो को ध्यान में रख और यह विचार कर कि ट्रैक्टर क्या ऐसा साधन है जो हमारे साध्य के अनुरूप है, हमें सेवाग्राम मे ट्रैक्टर के उपयोग के बारे मे फिर से सोचना चाहिये।

खाद का प्रबन्ध सघन खेती मे खाद की माग बहुत बढ जाती है। इसे पूरा करना अनिवार्य है। सेवाग्राम के वर्तमान प्रयोगो में यह माग वर्धा, आसपास के स्थान एव समायनिक उर्वरकों से पूरी की गई। सेवाग्राम इसे अपनी पूजी के बलपर एव लोगो के अज्ञान और लोभ के कारण पूरी कर सका है। आज क्षेत्र में कितना खाद उपलब्ध है, उसके अनुसार सेवाग्राम का अपना हिस्सा होगा। उस प्रमाण तक ही वह खाद का हकदार है। उससे अधिक प्राप्त करना अन्य लोगो को उससे वचित करना है। अब यदि सेवाग्राम की माग इस प्रमाण से अधिक है तो उसे अपने प्रयत्नों से खाद उत्पादन करना होगा। इसके साधन हरी खाद, अखाद्य खली, मल की सोन खाद, पेशाब की हीरा खाद, कूडा कचरे का कम्पोस्ट और फसल चक्र पालन करना है। भूमि का दिल सुधारना होगा तब ही सामान्य औसत उत्पादन बढेगा। अमेरिका को ५० वर्ष, जापान को ६० वर्ष और लगभग इतना ही समय इग्लड को अपनी खेती का औसत उत्पादन दुगना करने में लगा है। उदाहरणार्थ–अमेरिका में १९१६ में गेंहूँ ५३,५१०,००० एकड, उत्पादन १७ करोड टन और १९५८ में ५३,५७७,००० एकड, उत्पादन ३९ करोड टन हुआ।

चूंकि प्रयोगकर्ताओ को निधि उपलब्ध थी सेवाग्राम की सभी इकाइयो ने कपोस्ट इत्यादि बनाने एव अपने प्रयत्नो से खाद की पूर्ति करने की अवहेलना की । योजना के प्रत्यक्ष व्यवहारी रूप मे मुझे इस दिशा में प्रयत्नों की उदासीनता दीखी । सही कदम तो यह होगा कि हम आरम्भ से ही खाद स्वावलम्बन का प्रयत्न करे और उसके अनुपात के आधार पर खेती की सघनता का क्षेत्र बढावे ।

टॉनिक के रूप में परिस्थिति विशेष में रासायनिक खाद का हम उपयोग कर सकते हैं, पर उसे सामान्य न बनावे । खाद्य उत्पादन में केवल अधिक मात्रा में उत्पादन कर लेने भर से समस्या हल नही होगी, उत्पादन किस गुण का है यह अत्यन्त महत्व का है । स्वास्थ्य का आधार न केवल उपयुक्त भोजन है वरन् ऐसा अन्न है जो स्वस्थ भूमि पर उपजाया गया हो ।

कैश क्राप : कैश क्राप में हमे यह सिद्धात मानना होगा कि हम समाज की बुनियादी मागो को पूरी करने वाली फसले ही लगावे । इसको यदि हम मानते हैं, तब सेवाग्राम के लिये कैश क्राप कपास, मूगफली, केला और सतरा जाति के फल होगे । ये फसले सेवाग्राम क्षेत्र में अभीतक पूरी तरह विकसित नही हो पाई है । इसलिए हमें लक्झरी क्राप का परित्याग करना होगा । लक्झरी क्राप्स का कृत्रिम रूप से बाजार भाव अधिक होता है । भले ही खाद्यतत्व की दृष्टि से उनका मूल्य कम क्यों न हो । सामान्य खाद्य फसलो की तुलना में उनका साधारणत उत्पादन भी कम होता है । उदाहरण के रूप में टमाटर और अगूर का तुलनात्मक दृष्टि से विवेचना यहा कर रहा हू । आशा है आप इस पर गौर करेंगे ।

खाद्य की दृष्टि से टमाटर और अंगूर के गुण

	हरा टमाटर	पका टमाटर	अंगूर
आर्द्रता प्रतिशत	९३८	९४५	८५५
प्रोतजन ,,	१.९	१.०	०८
स्नेह ,,	०.१	०.१	०.१
धातुक्षार ,,	०७	०५	०.४
रेशा ,,	—	—	३०
शक्करा ,,	४.५	३९	१०२
चूना ,,	०२	००१	००३
स्फुर (फास्फरस) प्रतिशत	०.०४	०.०२	००२
लोह ,,	२.०४	०.०१	००४
कैलारिक मूल्य प्रति १०० ग्राम्स	२७	२१	४५
विटामिन ए (अन्तरराष्ट्रिय इकाई) प्रति १०० ग्राम्स	३२०	३२०	१५
विटामिन बी. माइक्रोग्राम्स प्रति १०० ग्राम्स	६९	१२०	
निकोटीन एसिड मिलीग्राम्स प्रति १०० ग्राम्स	०४	०४	०.३
राइबोफ्लविन मिलीग्राम्स प्रनि १०० ग्राम्स	—	६०	१०
विटामिन सी मिलीग्राम्स	३१	३२	३

अर्थात् टमाटर की अपेक्षा अगूर में विटामिंस बहुत कम है । धातु पदार्थ और चूना फासफरस और लोहा भी टमाटर में अगूर की तुलना में करीब करीब सम है बल्कि कच्चे टमाटर में लोहा और फासफरस अगूर मे अधिक हैं । अगूर में शक्करा का अश अधिक है, इसलिये उसकी कैलारिक वेल्यू अधिक है । टमाटर की यह कमी थोडी सी शक्कर या गुड मिलाकर खाने से पूरी हो जाती है ।

टमाटर की भूमि पर एक वर्ष में टमाटर के अलावा एक या दो और फसल ली जा सकती है । इस प्रकार प्रति एकड उत्पादन अधिक होगा । टमाटर और अगूर का प्रति एकड उत्पादन एकसा ही है । जैसे–

अगूर– ७००० में २०००० पोंड

टमाटर– ३०००० में ४०००० पौण्ड

(समान परिस्थिति में)

टमाटर की काश्त सरल और कम खर्च की है । अगूर के बारे में चीमा, भट्ट और नायक का मत है

कि "जैसा कि दक्षिण में अभी होता है यदि हर तीसरे या चौथे वर्ष कुहरा से फसल नष्ट हो गई तो सब मुनाफा डूब जाता है। इसलिये पिछले कुछ वर्षों से नासिक जिले में अंगूर की काश्त करना जुआ खेलना जैसा है"।

अंगूर का बाजारू भाव अच्छा है क्योंकि

(१) अंगूर से शराब और आसव बनता है।

(२) वह धनी लोगों का टेबल फ्रूट है, उसे सामंत शाहीका संरक्षण (पेट्रोनिजन) प्राप्त है।

अब प्रश्न है कि सेवाग्राम में अंगूर लगाने या टमाटर। पैसे की बाजारू फसल का मूल्य कृत्रिम है। माग और उपलब्धि पर वह आधारित है, न कि उपयोगिता या गुण पर। हमारा काम ही इन मूल्यों को बदलना है। बाजार के हाई फैनेन्स के दुष्टचक्र से खेती को किसान ही बचाता है।

प्रौढ़ शिक्षा : आपने प्रौढ़ शिक्षा का उल्लेख किया है। बापू भी इसको बहुत महत्व देते थे और तालीमी संघ की एक बैठक में उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा पर सब दृष्टि से विस्तृत रूप से विचार भी किया था। श्री जी रामचन्द्रन् को इसकी जिम्मेदारी सौंपी गई थी। तालीमी संघ की पूना में हुई बैठक की कार्यवाही में इसका पूर्ण विवरण है। उसे पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि औद्योगिक (तकनीकी) ज्ञान मात्र प्रौढ़ शिक्षण नहीं है। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक ट्रक ड्राइवर शिक्षित गिना जाता। ऐसा ही केवल रोजी कमा लेने की क्षमता को भी प्रौढ़ शिक्षण नहीं माना जाता। बापू ने एक बार कहा था कि मुझे ऐसे शिक्षण से कोई सरोकार नहीं जो कि शाला को केवल स्वावलम्बी बना देने का जिम्मा लेता है। प्रौढ़ शिक्षण की सफलता के लिये भारत की वर्तमान परिस्थिति में नई तालीम ही एकमात्र विकल्प नजर आता है। स्वाभाविक प्रक्रिया बच्चा के माध्यम से माता पिता तक पहुंचना है।

फेल्ट नीड —विकास योजनाओं के आरम्भिक काल में "फेल्टनीड" का बहुत ढिंढोरा पीटा गया। अशिक्षा के अंधकारमय वातावरण में सही फेल्ट नीड का लोगों को ज्ञान ही नहीं होता। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि जीवन की अधोतम स्थिति में व्यक्तियों का अपनी सही आवश्यकताओं को जान लेना कठिन है। शांति निकेतन के अनुभव भी इसी प्रकार के हैं। लोग दारिद्रमय जीवन के इतने आदि हो जाते हैं कि उनको उससे ऊपर उठने की आवश्यकता भी महसूस नहीं होती और न उनमें अच्छे जीवन के प्रति कोई आन्तरिक प्रेरणा ही होती है। कोरापुट में आपको भी यही अनुभव हुआ है। गुरुदेव ने लिखा है-' मेरा ध्यान विशेषतः इसी प्रश्न पर लगा रहा कि उनमें (ग्रामीणों) जीवन कैसे पैदा किया जाय? पर उनके सहायता के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित हुई कि वे स्वयं अपने आपको घृणा करते थे। वे कहा करते-बाबू, हम तो कुत्ते हैं। बिना हंटरबाजी या पिटाई के हम लोग कैसे सीधी तरह रह सकते हैं।"

नवयुवकों की कठिनाई —हमारा पूरा आन्दोलन क्रमशः एक नया मोड ले रहा है। तालीमी संघ का सर्व सेवा संघ में विलीनीकरण इस प्रक्रिया का ही फल है। सेवाग्राम सम्मेलन के बाद ग्राम स्वराज्य के एवं ग्राम शक्ति के विकास पर विभिन्न दृष्टि से सोचना भी आरम्भ हुआ। दो क्षेत्र या यह कहिये कि हमारे दो गुरुजनों ने इस दिशा में रचना का कार्य आरम्भ किया है। आपने सेवाग्राम में और धीरेन दा ने बलिया में। हम नवयुवकों को ये प्रयोग संदिग्ध स्थिति में डाल देते हैं। मुझ सरीखे लोगों को ये दोनों कार्य एक दूसरे के पूरक नहीं लगते।

आदर्श आचार्य नानाभाई

काका कालेलकर

[नई तालीम परिवार के श्रेष्ठतम सदस्यो में नानाभाई का स्थान ऊँचा था । हिंदुस्तानी तालीमी सघ के साथ उनका सक्रिय सम्बन्ध प्रथम से ही रहा था । वे हमारे देश के प्रमुख शिक्षा शास्त्रियो में से थे । उनकी दीर्घ-कालीन सेवाओं के प्रति सारा शिक्षा जगत् हमेशा कृतज्ञ रहेगा । ३१ दिसम्बर १९६१ को वे हमसे सदा के लिए विदा हो गये, किन्तु उनकी सेवायें और जीवन साधना हमें हमेशा प्रेरणा और शक्ति देती रहेगी । नई तालीम परिवार की ओर से हम उन्हे श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हे । –स०]

गये वर्ष के अन्तिम दिन सौराष्ट्र के, बल्कि गुजरात के एक समर्थ निष्ठावान् शिक्षा-शास्त्री श्री नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट इस दुनिया से चल बसे । वे एक ब्राह्मण वृत्तिके तत्त्वनिष्ठ और व्यवहार कुशल, तेजस्वी अध्यापक थ । गाधीयुग में जो राष्ट्रीय शिक्षाका ठोस काम हुआ उस में आचार्य भट्ट मेरे बडे भाई थे । हम सब उनको नानाभाई कहते थे । सारा गुजरात भी उन्हे नानाभाई के नाम से ही पहचानता आया है । शास्त्रनिष्ठा, रूढिनिष्ठा और गुरुशुश्रूषा के सनातन आदर्शों में पले हुये नानाभाई की आत्मनिष्ठा और तत्त्वनिष्ठा ऊपरकी सब निष्ठाओ से अधिक प्रभावी साबित हुई और उन्होने अपने जीवन में नई-नई उन्नति ही साध ली । प्रथम कालेज में इतिहास के अध्यापक का काम करते हुये उन्होने एक छात्रालय चलाया, जिसमें ब्राम्हणी आदर्श सजीवन रूप से पाले जाते थे । धीरे धीरे उस छात्रावास का विकास होकर उसने दक्षिणामूर्ति विद्यालय का रूप धारण किया और गाधीजी के प्रभाव के कारण वह विद्यालय पूरा पूरा राष्ट्रीय बना और पश्चिम के नये-नये विचारों को आजमाने का वह एक प्रयोगालय भी बना । जब से दक्षिणामूर्ति विद्यालय गाधीजी के प्रभाव के नीचे आ गया, मेरा उस सस्था के साथ सम्बन्ध बढता गया ।

नानाभाई को शुरू से साथी भी अच्छे मिले । उनमे श्री गिजुभाई बधेकाने बाल-शिक्षाका क्षेत्र पूरी तौर पर अपनाया और श्रीमती ताराबाई मोडक का सहयोग पाते ही उस काम को एक तरह से उन्होने गुजरातव्यापी बनाया । बाल शिक्षा का नया आदर्श आज सारे गुजराती समाज में दृढमूल हो गया है और लोग उसका महत्त्व अच्छी तरह से पहचान चुके हैं ।

प्रगति और स्थैर्य दोनो तत्त्वो की एकसाथ उपासना करना–यही है शिक्षा का उत्कृष्ट आदर्श । दक्षिणा मूर्तिने प्रयोग के ऊपर भार अधिक दिया । फलत नानाभाई को उस सस्था का विसर्जन करना पडा । नानाभाई और उनके साथियों की अनेक वर्षों की तपस्या का विसर्जन हुआ । लेकिन नानाभाई हृदय से अपराजित थे । गाधीजी के प्रभाव का उनपर गहरा असर हुआ, इसलिये उन्होने छोटे से गाव में जाकर वहीं से ग्राम शिक्षाका प्रारम्भ किया । और वह भी उसके श्रीगणेश से । याने प्रारम्भिक सद की सब कठिनाइयो का सामना करते हुये वे धीरे धीरे आगे बडे ।

नानाभाई ने अपने जन्मक्षेत्र का और स्वभाव का त्याग नहीं किया था । जिस समाज से उन्होने अपने सस्कारो का पोषण लिया उसी समाज की भाषा की सेवा करते उन्हें असाधारण सफलता मिली । उनकी ग्राम दक्षिणामूर्ति सस्था फूली, फली और अपने नये-नये साथियो

की मदद से उन्होने 'लोक भारती' नाम का एक विद्यापीठ—युनिवर्सिटी चलाने की हिम्मत की। प्रथम सर प्रभाशंकर पटनी जैसे और बाद में श्री ढेबरभाई जैसे राजनीतिक नेताओंने नानाभाई के कार्य की महत्ता पहचान ली और उन्हे हर तरह की मदद की।

नानाभाई अच्छे शिक्षाशास्त्री तो थे ही। भारतीय संस्कृति के विशाल-व्यापक स्वरूप का उन्हें दर्शन हुआ था। वाणी और लेखनी के द्वारा समाज की सांस्कृतिक उन्नति करना यह भी उनका एक जीवनकार्य था। रामायण, महाभारत और भागवत जैसे हमारे संस्कृति के अमर ग्रंथो के साथ उनका अच्छा परिचय था। इन ग्रंथो का दूध या मक्खन जनता तक पहुँचाने का सुन्दर काम नानाभाईने किया।

स्वराज्य पाते ही सौराष्ट्र में नवजीवन का एक तेजस्वी संचार हुआ था। सौराष्ट्र सरकार के द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार व्यापक रूपसे करने की उम्मीद रखकर नानाभाईने सौराष्ट्र सरकार के मन्त्री-मण्डल में स्थान ले लिया। लेकिन उन्होंने देखा कि सरकारें नाम भले गांधीजी का ले, किन्तु अंग्रेजी अमल के कारण जो रूढि समाज मे दृढमूल हुई उससे निकल आनेकी शक्ति या इच्छा समाज में नहीं है। नानाभाईने स्वराज्य सरकार के द्वारा सांस्कृतिक स्वराज्य स्थापन करने की आशा छोड दी और अपनी 'लोक भारती' की सेवा एकाग्रता से चलायी।

जिस तरह नानाभाई की दक्षिणामूर्ति में शुरू-शुरू में मैं ओतप्रोत हुआ था उसी तरह हमारे गुजरात विद्यापीठ के साथ नानाभाई कुछ काल के लिये ओत-प्रोत हो गये थे और मेरे पहले वे ही गुजरात विद्यापीठ के कुलनायक रहे थे। जब गांधीजीने नानाभाई को कुलनायक बनाया तब नानाभाई ने नम्रता और आत्मविश्वास के साथ कहा कि, "यह गांधीजी का ही प्रभाव है कि—'अश्मापि याति देवत्वम्'।"

इन दिनो नानाभाई का स्वास्थ्य ठीक नही रहता था। उनकी उम्र अस्सीसे अधिक हो गयी थी। श्री मनुभाई पंचोली जैसे उनके समर्थ साथी उनका काम अच्छी तरह से चलाते थे। और नानाभाई के लिये आनन्द के साथ अपनी संस्था का विकास देखते रहने का ही कर्तव्य बाकी रहा था। लेकिन भगवान को नानाभाई की उन्नति में तनिक भी कचास नही रखनी थी। जब वे ८० साल के थे, एक जवान और कार्यकुशल पुत्र का वियोग उन्हे सहन करना पडा। दुःख की भयानक मात्रा के बिना मनुष्य का जीवन-दर्शन पूरा नही होता।

करीब एक साल हुआ मैं सणोसरा जाकर नानाभाई का पुण्यदर्शन पाने का सोच रहा था। एक दफे सौराष्ट्र जाने का पूरा कार्यक्रम भी बनाया था। लेकिन वह चीज होने की नहीं थी। बात रह गयी और अब नानाभाई का दर्शन इहलोक में मैं नहीं कर सकूंगा, इतना ही विषाद मन में रहा है।

भारत में अध्ययन-अध्यापन के सनातन आदर्श को जीवित रखने का भार जिनके सिरपर था और जो प्राचीन आदर्श और नई उमगें दोनो का समन्वय कर सकते थे ऐसे शिक्षा-शास्त्रियो का एक समर्थ प्रतिनिधि अपनी सारी तपश्चर्या को आशीर्वाद देता हुआ इहलोक से चला गया। इहलोक तो नानाभाईने छोडा। लेकिन लोकभारती के लिये और सारे गुजरात के लिये प्रेरणारूप वे दीर्घ काल तक जीवित रहेंगे, इतनी एकनिष्ठ तपस्या व्यर्थ नहीं जायेगी। आखिरकार तपस्या ही सर्वसमर्थ है— 'तपो हि दुरतिक्रमम्।'

विश्व शान्ति सेना बनी

देवी प्रसाद

आज की परिस्थिति में जब कि हिंसा के साधन, युद्ध की तैयारियां, दिन ब दिन बढती जा रही है, स्वाभाविक ही है कि अहिंसा में विश्वास करने वालों के सामने एक आह्वान उपस्थित हो। खास तौर पर उन लोगों का, जो अन्याय और हिंसा का मुकाबला करने के लिए अहिंसा पर आधारित तरीको और कार्यक्रमो की खोज में लगे है, इस प्रयत्न में लग जाना स्वाभाविक है कि जहां कही इस प्रकार के प्रयोग हुए हो उनका अध्ययन करे और उनकी सम्भावनाओं के बारे में प्रयोग करें। यह एक ऐतिहासिक सयोग ही था कि ऐसे समय युद्ध विरोधक अन्तर्राष्ट्रीय का दसवा त्रैवार्षिक सम्मेलन दिसबर १९६० में भारत में हुआ। भारत में कुछ वर्षों से इस दिशा में काफी हद तक सगठित रूप से कार्य हो रहा है। देश के आन्तरिक तनाव और झगडो को मिटाने के लिए शान्ति सेना कार्य कर रही है। गाधीजी के द्वारा प्रारभ किये कार्य के इस संगठित स्वरूप ने देश विदेशों में लोगो को आकर्षित किया है। इसलिए युद्ध विरोधक अन्तर्राष्ट्रीय के इस सम्मेलन में, शान्ति-सेना का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर भी हो, यह बात सहज ही उठी थी। इसके लिए उस सस्था ने एक ऐसे जागतिक सम्मेलन का आयोजन करने का जिम्मा उठाया था, जिसमें ससार मे तरह तरह से शान्ति-कार्य करनेवाले व्यक्तियो और संस्थाओ का सहचिन्तन और सहयोग हो। इस सम्मेलन का उद्देश्य था–एक विश्व-शान्ति सेना की सम्भावनाओं पर गहराई से विचार करके उसका निर्माण करना।

युद्धविरोधक अन्तर्राष्ट्रीय के मंत्री श्री आर्लो टाटम को इस सम्मेलन का आयोजन करने का भार दिया गया था। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और परिश्रम के साथ अपनी जिम्मेदारी को पूरा किया। दिसम्बर १९६१ की २८ तारीख से यह पाच दिनों का सम्मेलन लेबनान की राजधानी बैरूथ के पास ब्रूमाना नामक स्थान में शुरू हुआ। कई अर्थों में ब्रूमाना इस कार्य के लिए आदर्श स्थान था। प्राकृतिक सौंदर्य और शान्तिमय वातावरण, क्वेकर हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक और उनके अन्य सभी साथियों ने सम्मेलन को सुहावनेपन और आत्मीयता का रग दे दिया था। इस प्रकार के सम्मेलनों के लिए एक ख्याल यह होता है कि इसका स्थान गुटो की राजनीति के परे हो। लेबनान को चुनने के पीछे यह भी एक उद्देश्य था और साथ-साथ वह स्थान पूरब और पश्चिम दोनो ओर से आने वालो के लिए बीच में भी पडता था।

२७ को शाम तक आनेवालों में से अनेक मित्र आ चुके थे और २८ को जब सुबह ९ बजे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ तो उपस्थिति बहुत सन्तोषजनक हो गई थी। केवल खेद इस बात का था कि अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी कम्यूनिस्ट देशों से कोई प्रतिनिधी नही आये, हालाकि सम्मेलन के स्पॉन्सर्स (निमत्रको) में

चार प्रतिष्ठित व्यक्ति उस क्षेत्र के भी थे। दूसरी कमी जो महसूस हुई, वह थी भारत के पूर्वी तरफ के देशो के प्रतिनिधियो का न आना। किन्तु ये कमियां उतनी इसलिये अधिक नहीं अखरीं क्योंकि सारे सम्मेलन का वातावरण देशों की सरहदों के बिलकुल परे रहा। पहले दिन ही सम्मेलन में एक ऐसी भावना छा गई थी कि हम जितने भी लोग इकठ्टे हुये हैं, वे देशो की दृष्टि से चर्चा में भाग नहीं लेगें, बल्कि अपने चिन्तन को विश्व पैमाने पर रखेंगे।

सम्मेलन की तैयारीसमिति के अध्यक्ष माइकल स्काट ने प्रतिनिधियो का स्वागत करते हुए हमारे सामने आज जो गम्भीर प्रश्न उपस्थित हैं, उनकी ओर घ्यान खीचा। उन्होने कहा कि यदि हम अफ्रिका को खून की नदियो से बचाना चाहते हैं और तीसरे महायुद्ध को न आने देना चाहते है तो हमें अत्यन्त क्रियाशील तौर पर कदम उठाने होंगे।

उसके बाद एजे मस्ते की अध्यक्षता में जी० रामचन्द्रन् ने सम्मेलन को आह्वान देते हुए उसके सामने जो कार्य होना चाहिए उसका जिक्र किया। उन्होने कहा कि हमें अब इस बात पर चर्चा करने में समय नहीं बिताना चाहिए कि विश्वशान्तिसेना बने या न बने। हमें तो ऐसा मानकर स्पष्ट कार्यक्रम बनाना चाहिए कि सेना बन गई और उसे अब मैदान में उतरना है। इस विचार पर और कारवाई की आवश्यक बातो पर सम्मेलन ने चर्चा की। विषयो के आधार पर प्रतिनिधियों को चार टोलियो में उनकी अपनी रुचि के मुताबिक बाट दिया गया। ये चार विषय इस प्रकार थे :—

(अ) सिद्धान्त और उद्देश्य।

(आ) संगठन और अन्य संस्थाओं के साथ सम्बन्ध, अर्थ व्यवस्था।

(इ) शातिसैनिकों का प्रशिक्षण।

(ई) प्रारम्भिक प्रवृत्तिया।

बिना यह तय हुये कि हमारे सिद्धान्त और उद्देश्य क्या हों, अगली तीन बातों पर विचार करना व्यावहारिक नही होगा, इस लिये चारों टोलियों ने अपनी पहली दो-तीन बैठकों में सिद्धान्तो और उद्देश्यों के विषय में ही चर्चा की और उसके बाद अपनी चर्चा के निष्कर्षों को पहली टोली के पास भेज दिया, ताकि सब का सार सम्मेलन के सामने आ सके।

दूसरे दिन की दोपहर की बैठक में इस विषय पर चर्चा हुयी। इसे ठीक तरह लिखने के लिए एक प्रारूप समिति बनाई गई। एन्टन नैल्लन की अध्यक्षता में हुई चर्चा के बाद जो प्रारूप मान्य हुआ, वह इस प्रकार है :

सिद्धान्त और उद्देश्य :

आज जिन्दगी के सब संबन्धों में मानव-व्यक्ति और समाज एक अति कठिन सन्धि से गुजर रहे हैं और इसलिये वे या तो निराशावाद की ओर या अपनी समस्याओं के हल के लिये हिंसात्मक तरीको की ओर मुड़ते है।

हमारी यह दुनिया भूखी है—जीवन की अतिसाधारण जरूरतों की उसे भूख है; स्वतंत्रता, न्याय और मानवीय गौरव की भूख, आपस की समझ तथा शान्ति की भूख।

और हमारी यह दुनियां इन भूखों को मिटाने के लिये पर्याप्त साधनों से समृद्ध है। उसके लिये आवश्यक तकनीकी कुशलतायें हमारे अन्दर हैं, स्वतंत्रता के अर्थों के बारे में

हम अधिकाधिक सचेत हो रहे हैं, और हमें ऐसा बौद्धिक व आध्यात्मिक पैतृक प्राप्त है जो बन्धन, अभाव तथा कलहो से अपने आपको मुक्त करने का सामर्थ्य हमें देता है।

हमारी दुर्दशा इसमें है कि हमारी दृष्टि आज भी उन पुराने विचारो से कलुषित है जो हमें विश्व की असलियत को देखने नही देती, इस अणुयुग में वह जैसा है। व्यक्ति, जनता और सरकारे उन पुरानी आदतो, सिद्धान्तो तथा हिंसात्मक तरीको के कैदी हैं, जिनका उन्होने खुद सर्जन और निर्माण किया है।

साधारण सूझ, राजनैतिक परिपक्वता और नैतिकता आज हमें इनसे बाहर निकलने के लिए बाध्य कर रहे है। सभ्यता का ही नही, बल्कि शायद मानव जाति का ही टिकना इस मुक्ति पर निर्भर करता है। मनुष्य को एक विकल्प को ढूढना और उस पर प्रयोग करना होगा। यह विकल्प अहिंसा है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह पथ मनुष्य को मुक्त करेगा और उसकी बुद्धि और शक्ति को सृजनात्मक सफलता लाभ करायेगा।

एक जगत् परिवार युद्ध सस्था का स्थान ले सकता है।

स्वतत्रता और समता उपनिवेशवाद और दूसरे अन्यायो का स्थान ले सकती है। मानव सम्मान मनुष्य की गिरावट और उसके ध्वस का स्थान ले सकता है।

अहिंसा इन उद्देश्यो पर पहुचने का रास्ता है। यह समझ कर कि गहन चिन्तन की आवश्यकता है, प्रयोग करने की आवश्यकता है, सख्त परिश्रम की आवश्यकता है, सब्र और त्याग की आवश्यकता है, हम अपने आप को इस पथ पर लगाते हैं। हर देश के अपने साथियो को यह हमारा आवाहन है कि वे हमारे इस प्रयास में हमें साथ दें।

विश्वशान्तिसेना का निर्माण उन्हे साथ लाने के लिए किया गया है जो इस आवाहन की पुकार को सुनेगें और अहिंसा को मुक्ति और क्रातिकारी शक्ति को हमारे इस जगत् में अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयत्न करेगे।

उद्देश्य :

१ एक सेना का निर्माण और उसकी शिक्षा की व्यवस्था, जो निम्न लिखित मौको पर अहिंसात्मक कदम (सत्याग्रह) उठाने के लिए तैयार रहेगी।

(अ) उन आन्तरिक और आन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में जहा हिंसा फूटी हो या फूटने की सम्भावना हो।

(आ) हर प्रकार के युद्ध के खिलाफ, युद्ध की तैयारियो के खिलाफ और बढते हुए बडे पैमाने पर ध्वस करने वाली सस्थाओ के खिलाफ।

२ हर जगह जनता को इस प्रकार सक्रिय बनाने का प्रयत्न करना कि वे अपने आपको जिम्मेदार और शक्तिशाली बनाये ताकि आधुनिक युद्ध के जजाल का अहिंसा से—प्रेरणा पूर्ण आत्मविश्वास के साथ मुकाबला कर सके।

३ अन्याय के प्रतिकार की पद्धतियों में उन गुणो का समावेश करके जिनके द्वारा मानव जीवन या और उसके सम्मान का सरक्षण हो और जिनके द्वारा शान्ति स्थापना की हवा बने, शान्ति के विचार में क्रान्ति लाना।

४ जनता के स्वय निर्णय और सामाजिक पुनर्निर्माण के अहिंसात्मक प्रयासो में सहयोग देना।

५. जहा जहा ऐसी सस्थायें अभी नही हैं जो विश्वशाति सेना के साथ सहयोग दे रही हो, वहा राष्ट्रीय सघटनो का निर्माण करने का प्रयत्न करना ।

६ विद्यमान उन सस्थाओ के साथ जितना अधिक हो सके, सहयोग करना जो शान्ति, स्वतत्रता और समाज सेवा का कार्य कर रही हो । और जहा आवश्यक हो उनमें समन्वय करना और एक ऐसा सूचनाकेन्द्र स्थापित करना जिसमें सारे ससार में होनेवाली अहिंसात्मक प्रवृत्तियों की खबरें मिल सके ।

७ शाति सेना के कार्य में सहायता देने योग्य क्षेत्रो पर शोध के कार्य को प्रोत्साहन देना और उसका सगठन करना ।

प्रशिक्षण टोली के लिए कई लिखित 'पेपर' आ चुके थे । उनमें से लगभग सभी में अच्छे अच्छे सुझाव थें । चर्चा के बाद जो प्रारूप तैयार हुआ, उस पर सम्मेलन में सिद्धराज ढड्ढा की अध्यक्षता में चर्चा होने के बाद वह मजूर किया गया ।

शान्तिसैनिक और प्रशिक्षण :

कलाओ तथा विविध विज्ञानो में प्रवीणता पाने के लिये अगर लम्ब अध्ययन और अनुभव की जरूरत है तो अहिंसा की कला के लिये यह और भी कितना अधिक जरूरी है। विश्व शान्तिसेना के लिये विशेष रूप से तैयार किये हुए एक प्रशिक्षण क्रम का यह चर्चा मण्डल सुझाव करता है। प्रारभ में उसमें एसे लोगो को लिया नही जाना चाहिये जिन्होने शान्ति के आन्दोलन में सक्रिय भाग नही लिया हो। स्थानिक अनुभव या प्रशिक्षण पाये हुए लोग ही शान्तिसैनिको के रूप में लिये जायेंगे। स्थानिक प्रशिक्षण के साथ सबन्ध और रुचि बनाये रखना हमारे लिये जरूरी है ।

हम प्रशिक्षण क्रम के तीन स्तरो की सिफारिश करते हैं :

१ स्थानिक कार्य सामाजिक काम, नागरिक सेना (सैनिक के विरोध में)

२. शान्तिसेना प्रशिक्षण (निचे दिया हुआ)

३ प्रधान केन्द्र प्रशिक्षण समिति, क्षेत्रीय नेताओ की गोष्ठियो और सभी प्रशिक्षण स्तरो का समन्वय

इस बुनियादी व्यवस्था में सामयिक समावनाओ तथा भौगोलिक परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तन किये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ क्षेत्रीय प्रशिक्षण समितिया इस प्रकार गठित की जा सकती हैं :

एशियाई क्षेत्र : पाकिस्तान, भारत, ब्रह्मदेश, सिलोन, अस्त्रलेशिया

आफ्रिकन क्षेत्र आफ्रिका, मध्यपूर्वी देश

यूरोपीय क्षेत्र :

अमेरिकन क्षेत्र : उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका

स्थानो तथा उपकरणो का चुनाव प्रशिक्षण समिति और कार्यकारिणी समिति के निर्णयो पर छोड दिया जायगा । हम अपेक्षा करते हैं कि वर्तमान सुविधाओ का पूरा-पूरा ख्याल किया जायगा और योग्य सस्थाओ के साथ सहयोग होगा ।

शान्तिसैनिक स्वाभाविक ही सैनिक पास के क्षेत्र से चुने जायेंगे और उन्हे प्रशिक्षण दिया जायगा । स्वास्थ्य सबन्धी जरूरते, आवेदन पत्र आदि के नियमो के बारे में स्थानीय और

क्षेत्रीय केन्द्रों के ज्यादा से ज्यादा अधिकार व स्वतंत्रता का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। ब्राडफार्ड लिटल की बनायी नियमावली अपनी अपनी परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तनों के साथ काम आ सकती है।

प्रत्येक केन्द्र को प्राशिक्षण सवन्धी अनुशासन के अपने नियम बना लेने होगे। फिर भी सभी स्तरों के प्रशिक्षण केन्द्रों का आपस में घनिष्ठ सहयोग, खास कर सैनिकों के चुनाव में, सब के काम में सहायक होगा।

कार्यकर्त्ता : सामान्यत: केन्द्रो के कार्यकर्त्ता भी क्षेत्रीय ही होगे। प्रत्येक प्रशिक्षण केन्द्र के लिये एक पूरा समय काम करनेवाले निर्देशक और उनके सहायको की आवश्यकता होगी। इन स्थनीय कार्यकर्ताओ के अलावा बाहर से आये हुए विद्वानो और विशेषज्ञो की सहायता ली जा सकती है। और प्रशिक्षणकाल में ही सैनिको की स्वाध्यायप्रवृत्ति बढाना और उनका ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारी लेना लाभप्रद होगा। कुछ समय के बाद सैनिको और कार्यकर्ताओ का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आदान प्रदान ज्यादा होगा, ऐसी हम आशा करते है।

प्रशिक्षणार्थियो की योग्यता और प्रगति की समय समय पर समीक्षा हो, इसका प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये, इसलिये नही कि उनका ऊचे नीचे दर्जों में विभाजन हो, बल्कि इस दृष्टि से कि विभिन्न कुशलताओ का समुचित उपयोग हो।

सभी प्रशिक्षण स्तरो में हमें प्रधान केन्द्र, समितियो तथा क्षेत्रीय और स्थानीय प्रशिक्षण केन्द्रो के निर्देशको पर पूरा भरोसा रखना चाहिये जिससे कि प्रयोग, परिवर्त्तन और नई पद्धतियो का उपयोग करने के लिये उन्हें स्वतन्त्रता हो।

शिक्षाक्रम : विभिन्न प्रशिक्षणक्रमों के कार्यान्वियन और विकास में लचीलेपन की जरूरत को पहचानते हुए भी चर्चा मण्डल का मत है कि सभी क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों के शिक्षाक्रमो में निम्नलिखित बाते व अनुभव के मौके आने ही चाहिये। मण्डल आशा करता है कि इस विषय में रुचि रखनेवाले साथी व्यक्तिश. इनमें से कुछ का आगे प्रयोग तथा संभावनाओ का अध्ययन करेगें।

१. अहिंसा का अध्ययन : विश्वभर में अहिंसा के इतिहास, आदर्श, दर्शन तथा अर्थ शास्त्र का अध्ययन।

२. सरल जीवन : आराम व उपकरणो की बहुलता के बिना रहने और कठिनाइयो को सहन करने का अभ्यास तथा कठिन परिस्थितियो में भी अपनी मौलिक जरूरतो को किसी तरह से भी पूरी करने का सामर्थ्य।

३. सेवा का काम . श्रम शिबिर; बीमारों बूढो व गरीबो की देखभाल–प्राथमिक उपचार, जान बचाना, आग बुझाना इत्यादि कुशलताओ को प्राप्त करना।

४. पारिवारिक जिम्मेवारी . (क) एक संघ में मिलकर निर्णय लेने तथा नियमितता का अभ्यास (ख) हिस्सा लेना और मिलकर काम करना (ग) सृजनात्मक आत्मप्रकटन की कलाओ का अभ्यास, नाटक, संगित, इत्यादि।

५. संपर्क और संबंध : (क) शान्तिसेना में सब के उपयोग के लिये एक भाषा का चुनाव। (ख) व्यक्ति तथा संघ के मन शास्त्र का अध्ययन (ग) एक विशेष कार्यक्रम को हाथ में लेने पर

उसके लिये आवश्यक भाषा, दूसरों के रस्म रिवाज तथा धार्मिक व नैतिक मूल्यों को सीखना, समझना ।

६. अहिंसा के प्रत्यक्ष काम : सघर्ष की परिस्थितियो में एव तनाव या अन्याय जहा है, वहा अहिंसात्मक पद्धतियो का प्रयोग ।

७ अनुशासन · क शारीरिक–सहनशक्ति, उपवास, आदि, ख. भावनात्मक–अनासक्ति, संघ के निर्णयो को स्वीकार करना, ग. क्षमा, मौन ।

मण्डल ने सामान्यतः यह महसूस किया कि सारे प्रशिक्षणक्रम में मनन, ध्यान तथा चेतना की शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक वृत्तियो व आन्तरिक शक्तियो का विकास करने पर ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिये । शान्ति-सैनिको के व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिये अनिवार्य आध्यात्मिक साधना के लिये अलग समय रखना जरूरी होगा ।

आखिर में मण्डल आशा करता है कि ऊपर दिये गये सुझावो को प्रशिक्षणक्रम की एक अति-सामान्य रूपरेखा के तौर पर ही लिया जायगा। प्रशिक्षण के क्रम व पद्धतियां अनुभव के आधार पर आग विकसित करनी होंगी ।

यह मण्डल सिफारिश करता है कि कम से कम एक क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र तुरन्त स्थापित करने की ओर सम्मेलन गभीरता से विचार करे। हमारा मत है कि इससे (१) पहली टुकडी को प्रशिक्षण देने व बढाने (२) शान्तिसेना के प्रधान केंन्द्र को मजबूत बनाने (३) स्थानिक परिश्रम को प्रोत्साहित करने (४) शान्तिसेना की स्थापना की ओर ठोस काम करने तथा (५) समुचित कार्यक्रमो को निश्चित करने व उनका आरभ करने में मदद होगी ।

चर्चाओ तथा लिखित सुझावो में ये मुद्दे आये–शान्तिसेना की अधिकृत भाषा के रूप में एस्पेरन्टो का उपयोग हो, कुछ प्रशिक्षक केन्द्रो में भ्रमण करनेवाले हो, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्थाओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय सबन्धो का अध्ययन हो । चार्ल्स वाकर की "अहिंसात्मक कार्यों" की पुस्तिका की अध्ययन के लिये सिफारिश की गयी । प्रशिक्षण के लिये नये लोगो के पास भी हमें पहुँचना चाहिये, केवल उन्ही के पास नही जो अभी कार्यक्षेत्र में है। शान्ति-सेना की सफलता के लिये आवश्यक अन्तर्दृष्टि और मानसिक गुणो के विकास में समय लगाना चाहिये। पहले एक हजार सैनिक बिना प्रशिक्षण के ही लिये जाने चाहिये ।

विश्व शान्तिसेना का सगठन किस प्रकार हो और उसका सम्बन्ध शांति कार्य करनेवाली सस्थाओ के साथ कैसा रहे, इस विषय पर चर्चा टोली की रिपोर्ट लिखित रूप में नहीं आई । सम्मेलन ने तय किया कि हर दो वर्ष में एक सम्मेलन हो जिसमें २५ व्यक्तियो की एक काउंसिल चुनी जाय । यह काउंसिल अपनी पाच व्यक्तियो की कार्यकारिणी चुनेगी। यह भी तय हुआ कि शान्तिसेना के कुछ व्यक्ति स्पासर (आमत्रक) हो और उसकी दो प्रकार की सदस्यता हो–एक तो उन सस्थाओ की जो शान्तिसेना के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने को तैयार हो और दूसरी उन सस्थाओ की जो शान्ति सेना के साथ केवल विशेष मुद्दो पर सहयोग देने को तैयार हो ।

इस अवस्था में आर्थिक प्रश्न पर अधिक चर्चा नही हो सकती थी। आम तौर पर यह ख्याल रहा कि जब हमारा काम बढता है तो यह प्रश्न भी हल होना कठिन नहीं होगा ।

शान्ति सेना का नाम क्या हो? इस पर आये अनेक सुझावों पर चर्चा होने के बाद तय हुआ कि आज तक जो नाम हम इस्तेमाल करते आये है–वर्ल्ड पीस ब्रिगेड–वही इसका नाम रहे, केवल उसके अतमें "फॉर नॉन् वायोलेंट एक्शन" और जोड दिया जाय। हा, अपने अपने क्षेत्रो की भाषाओं में सभी उसका जो उचित अनुवाद समझा जाय, करे।

शान्तिसेना की प्रारम्भिक प्रवृत्तियों पर विचार करने वाली टोली के निष्कर्षों पर चर्चा जी० रामचन्द्रन् की अध्यक्षता में हुई। इसमें मुख्य तौर पर दो प्रकार के कार्यक्रमो का सुझाव आया। एक तो किसी प्रश्न को लेकर प्रदर्शन आदि एक ही साथ दुनिया के कोने-कोने में सगठित किए जाय। उसमें यह भी सुझाव आया कि एक दिन क उपवास की बहुत बडे पैमाने पर योजना की जाय। बर्लिन और आणविक शस्त्रास्त्र के प्रश्न को इस सिलसिले में हाथ में लिया जाय, इस बात पर बारीकी से चर्चा हुई। दूसरा–अफ्रिका के किसी क्षेत्र में उपनिवशवाद के खिलाफ ऐसा कदम उठाया जाय जिससे कि वहां की जनता को अहिंसात्मक तरीके से स्वराज्य पाने की प्रक्रिया में सहारा मिले। इस प्रश्न पर अधिक विचार अफ्रिका के इस विषय में सहानुभूति रखने वाले नेताओ के साथ सलाह मशविरा करने के बाद किया जाय। उपरोक्त दोनों कार्यक्रमो के ऊपर काउसिल में चर्चा हो, यह निश्चित किया गया।

काउसिल के लिए २२ व्यक्तिओ की नामजदगी की गई और काम चलाने के लिए एक पाच व्यक्तियो की समिति इग्लैण्ड की ओर एक वैसी ही अमेरिका की बनाई गई। भारत में भी एक ऐसी समिति हो, जो पूर्वी देशो के इस क्षेत्र के काम की जिम्मेदारी लें, इस बात का भी सुझाव आया।

अपने भाषणो के दौरान में भारत के एक दो प्रतिनिधियों ने काश्मीर समस्या का जिक्र किया था और कहा था कि भारत और पाकिस्तान के बीच के तनाव को मिटाने के लिए हमें *काश्मीर समस्या को अहिंसा के तरीकों से सुल*-झाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य राष्ट्रों के कुछ प्रश्नो का भी जिक्र उठा–उदाहरणार्थ, अमेरिका और क्यूबा, इग्लैण्ड, फ्रास और सुवेज, रूस और हगरी। इस विषय पर सम्मेलन ने यह मतव्य प्रगट किया :

यह सम्मेल अहिंसक विचार धारा के भारतीय नेताओ के इस वक्तव्य का अभिनन्दन करता है कि उन्होंने गोआ की समस्या का शान्तिपूर्ण तरीके से हल करने तथा अहिंसा की कार्यक्षमता को प्रकट करने और उसमें अपनी आस्था फिर से व्यक्त करने का एक बडा अवसर खो दिया है।

भारतीय प्रतिनिधियो की इस बात का यह स्वागत करता है कि भारत और पाकिस्तान के बीच सद्भावना बढाने तथा दोनो देशो के बीच आज जो प्रश्न खडे है–जिसमें काश्मीर का प्रश्न भी शामिल है–उनका समाधान ढूढने का वे प्रयत्न करेंगे। हमारे भारतीय मित्र जानते ही है कि सुवेज और मध्यपूर्वी देशों में ग्रेट ब्रिटन का, अलजीरिया में फ्रान्स का तथा क्यूबा में सयुक्त राष्ट्र, अमेरिका के आक्रमणकारी कृत्यो के कारण पाश्चात्य देशों से आये हुये हम लोगो के ऊपर अपराधो का एक बडा भारी बोझ है।

भारतीय प्रतिनिधि काश्मीर की समस्या के हल के लिये जो भी प्रयत्न करेंगे, उनके

लिये यह सम्मेलन अपने पूरे समर्थन और सहारे का वायदा करता है ।

जनवरी एक तारीख की रात साढे दस बजे सम्मेलन गीतो के साथ सम्पन्न हुआ । दो जनवरी को नयी निर्मित काउंसिल की बैठकें हुई ।

इस सम्मेलन की कई बातो ने सभी को प्रभावित किया । सारा कार्य स्वय प्रेरित रूप से चला, चर्चाओं और सारे व्यवहार में बिलकुल भी कृत्रिमता नही थी । कुछ ऐसे प्रतिनिधी जो पूरे पूरे अहिंसा को मानने वाले नहीं थे, वे भी इस प्रयास की महत्ता को महसूस करते थे । सम्मेलन में गाधीजी के सानिध्य का आभास हर क्षण होता था । फ्रास के आवे पियर, इग्लैंड के माईकल स्कॉट, अमेरिका के एजे मस्ते आदि की प्रज्ञा और कई नवयुवक प्रतिनिधियो की तीव्रता और बौद्धिक सूझबूझ ने चर्चाओ को समग्रता का रूप दे दिया था । जी रामचन्द्रन की भाषा कभी कभी लोगो को मोह देती थी । प्रशिक्षण की टोली में नारायण देसाई के परचे ने सभी को प्रभावित किया था । एसे पाच छ दिना के सत्सग में रहकर किसे प्ररणा न मिलती ।

स्वर्गीय भाई सुब्बरायन

नई तालीम परिवार को यह सूचित करते हमें दु ख होता है कि एन सुबरायन् का देहान्त १८-१२-६१ उनके अपन गाव नल ूर में हुआ । १९४४, ४५ में वे प्रशिक्षण पाने के लिये सेवाग्राम आये । प्रशिक्षण के बाद तामिलनाडु बुनिय दी तालीम सघ के आधीन तिरुचड गाडु में बुनियादी स्कूल चलाते थे । १९५७ में सेवाग्राम में पुन आकर नई तालीम की सेवा में अपने को अपण कर दिया । करीब दो साल बडी लगन व श्रद्धा के साथ काम किया ।

दो साल पहले उनको पक्षाघात का रोग हुआ । डाक्टरों के इलाज से सुधरा, फिर भी काफी समय तक आराम की जरूरत थी ता अपने ही गाव में जाकर रहन लगे । गाव पहुचने पर वे वहा बच्चो को इकटठा करके प्रार्थना भजन आदि सिखाते रहे । श्रीमती आशादेवी का वे अपनी मा मानते थे और हर सप्ताह उन्हें नियमित रूप से पत्र ि खते थे । हर पत्र में भक्ति की बाते ही थी । तमिल भक्ति-साहित्य के कुछ चुन हुए भागो के अनुवाद भी हर पत्र में देते थे । उनका एक आखिरी पत्र इस प्रकार था

मैं अपना सारा समय भ गवान के गुणगान और चिन्तन में ही बिताता हू और आत्मानुभूति का अनुभव कर रहा हू । अप्परजी न ईश्वर की महिमा के बारे में एक कविता बनाई है । उसका अनुवाद यहा देता हू

अगर तू नचाता है तो न ाचनवाला कौन हो सकता है ।
अगर तू काबू में रखता है तो काबू में न आनेवाला कौन हो सकता है ।
अगर तू भगाता है तो न भागनेवाला कौन हो सकता है ।
अगर तू पिघलाता हो तो न पिघलानेवाला कौन हो सकता है ।
अगर तू गायक बना हो त न गाने वाला कौन हो सकता है ।"

भाई सुब्बरायन का देहान्त छोटी उम्र में ही हो गया । लेकिन उनको अपने रोगग्रस्त शरीर से जल्दी छुट्टी मिली, वे लम्बे कष्ट से बच गये । उनकी आत्मा की नित्यशान्ति के लिये हम आन्तरिक प्रार्थना करते हैं ।

—रा शकरन

टिप्पणियाँ

ईसाई धर्म परिषद का निवेदन

पिछले महीने में विश्व ईसाई धर्म परिषद (वर्ल्ड काउंसिल आफ चर्चेस्) का जो सम्मेलन दिल्ली मे हुआ, जिसमे दुनिया के सभी भागो के चर्चेस् के प्रतिनिधि भाग ले रहे थे, उसने सभी राष्ट्रो की सरकारों और जनता को सबोधित करके यह प्रस्ताव पास किया है -

१ आज युद्ध ही स्वय सब का शत्रु है। युद्ध इनसान के स्वभाव के प्रति एक अपराध है। कई पीढियों का भविष्य एव पिछले युगो का पैतृक आज खतरे मे है। उनको नष्ट करना आसान हो गया है, क्योकि थोडे से लोगो की गल्तियाँ या गलतफहमियाँ एक विध्वसकारी प्रलय को उपस्थित कर सकती हैं। उनकी रक्षा और प्रगति आज कठिन हो गयी है क्योकि उसके लिये सब का निष्ठापूर्वक श्रम चाहिये। युद्ध की तरफ ले जाने वाली चीजो मे सयम व त्याग वृद्धि हो, विभाजनकारी शक्तियो को दूर करने से काम मे क्षमा और सतत प्रयत्न हो, तथा शान्ति को बढावा देनेवाली प्रवृत्तियों में धैर्य और साहस हो।

२ युद्ध के रास्तो से निवृत्त हो कर शान्ति के मार्गों में अग्रसर होने के लिये सबको शस्त्रशक्ति की विभीषिका का परित्याग करना होगा। इसका मतलब है, परस्पर भय का वातावरण बनाय रखना, छोटे देशो पर दबाव डालना तथा शस्त्रों का खटखटाना छोड दें। भीषणी एव नि शस्त्रीकरण की नीतियाँ एक साथ चल नही सकती।

३ शस्त्रसज्जा को बढाने की जो होड चल रही है, उसको रोकना जरूरी है। परिपूर्ण नि शस्त्रीकरण ही हमारा स्वीकृत लक्ष्य है और उस पर पहुचने के लिये ठोस कदम उठाना चाहिये। फिलहाल एक निश्चयात्मक पहला कदम उठाना है—जैसे अणुपरीक्षणो को बन्द करना, बावजूद सभी रुकावटो और बाधाओ के।

४ बल के बदले न्यायबुद्धि से काम लेने और शस्त्रीकरण के निश्चय को बढावा देने के लिये शान्ति की संस्थाओ तथा विवादों का शान्तिपूर्ण तरीकों से हल करने की पद्धतियों का विकास करना जरूरी है। इससे सयुक्त राष्ट्र सगठन को उसकी घोषणा पत्र की भावना तथा प्रतिज्ञाओ के अनुरूप शक्तिशाली बनाना हमारा कर्तव्य होता है। यह कर्तव्य सभी देशो का है, चाहे वे बडी शक्तियो के साथ सम्मिलित हो या उनसे स्वतत्र और तटस्थ हो। तटस्थ देश अपनी तटस्थता के कारण इसमें और ज्यादा भाग ले सकते हैं, वे घोषणापत्र के सिद्धातो के समर्थक अगुआ हो सकते हैं।

५ न्याय से शाति स्थापित करने के लिये परस्पर अविश्वास की रुकावटो को हर स्तर पर हटाना है। परस्पर विश्वास आज दुनिया की सबसे कीमती चीज है, इसको व्यर्थ खोना नहीं चाहिये, इसको और बढाना है। पूरे मानव समाज मे स्वतत्रता अतिआवश्यक हैं, इसलिये कि व्यक्ति का तथा देश का परस्पर सपर्क बेरोकटोक बढे। आवागमन की रुकावटें दूर करनी हैं, वे लोगो को, धर्मों को, यहा तक कि परिवारो को भी एक दूसरे से दूर करती है। मानवीय सपर्क, एक दूसरे की जानकारी तथा सास्कृतिक आदानप्रदान की स्वतत्रता शान्ति प्रस्थापित करने के लिये जरूरी हैं।

पोस्टर सत्याग्रह का असर

भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय की एक विज्ञप्ति द्वारा सूचित किया गया है कि केन्द्रीय सरकार ने फिल्म निर्माताओ के परामर्श से बम्बई में बनने वाली फिल्मो के पोस्टरो की जाच के लिए समिति नियुक्त की है। यह समिति सिनेमा के पोस्टरो के प्रकाशन से पहले उनकी जाच करेगी और यह देखेगी कि जो पोस्टर अवाछित है उन्हे या तो जारी न किया जाय, अथवा उनमें परिवर्तन किया जाय।

हमे आशा है कि इसी प्रकार से अन्य फिल्म केन्द्रो में भी केन्द्रीय सरकार कानून और समितियो का निर्माण करेगी और देश की जनता सार्वजनिक स्थानो मे लगने वाले सभी प्रकार के पोस्टरो का नैतिक स्तर गिरा हुआ न हो, इस पर ध्यान रखेगी और आवश्यकता पडने पर उचित कदम उठाने के लिए तैयार रहेगी।

मेरी विदेश यात्रा

साथियो,

सात माह की विदेश यात्रा के बाद १४ जनवरी को मैं सेवाग्राम वापस पहुंचा। सात माह का अरसा बहुत छोटा नही होता यह मैंने इन दिनो में महसूस किया। हालाकि जहां-जहा भी गया, यह महसूस करता था कि इतने कम दिनो में किसी देश को या उसके जीवन के एकाध पहलू को भी समझना अत्यन्त कठिन है। और उसके साथ-साथ भाषा का एक बहुत बडा प्रश्न मेरे सामने हमेशा रहा। यूरोप की भाषाओ में से मैं केवल अग्रेजी ही थोडा जानता हू। इन महीनो में मुझे आठ, नौ भाषाओ से सरोकार पडा। एक देश में आठ-दस दिन रहने के बाद जब दस, बीस शब्दो को समझने और उनका उपयोग करने की थोडी सी जानकारी हो जाती थी, तभी वहा से छोडकर दूसरी भाषावाले देश में चले जाने का प्रोग्राम होता था। इस तरह अधिक तर दुभाषियों के आधार पर ही सब बातचीत करनी पडती थी। और कही-कही तो जब कोई अग्रेजी समझने वाला नही होता तो इशारो की भाषा से ही काम चलाना पडता था। मैं अपने आपको इस मामले में बडा भाग्यवान् समझता हू। मदद में जो दुभाषी मित्र मिले, वे बहुत अच्छे मिले। तो भी सब से गहरी बात मेरे मन में यह बैठी कि किसी देश को, उसकी सस्कृति को थोडा भी समझना हो तो बिना उसकी भाषा सीखे, वह नही हो सकता। इसलिये जो अनुभव मुझे हुअे वे कोई बहुत ठोस या बिल्कुल सच्चे होगे ऐसा मैं विश्वास के साथ नही कह सकता हू; तो भी जो मैंने देखा समझा वह आप लोगो के समक्ष थोडे से में पेश करना चाहता हूं।

मैंने सोचा था कि हर माह अपने कार्यक्रम और अनुभव के आधार पर अेक पत्र आप तक पहुंचाऊ। वह थोडा कुछ करने का प्रयत्न भी किया। लेकिन दुर्भाग्यवश मेरे तीन पत्र जो मैंने कुछ विस्तार से लिखे थे, वे यहां तक पहुचे नही। या तो मेरी किसी गल्ती के कारण या पोस्ट आफिस में कुछ होने के कारण यह हुआ होगा, और इसलिए इन महीना में आप तक जितनी खबर मुझसे पहुचनी चाहिये थी अुतनी न पहुच पायी। अुसका मुझे बडा खेद है।

जैसा कि जाने के समय मैंने सूचित किया था, मेरे मुख्य कार्य दो थे। अेक तो यूरोप के कुछ देशो में जो शाति कार्य हो रहा है अुसके साथ परिचय करना और जहा तक हो सके हमारे यहां के कार्य के साथ उनसे सम्बध स्थापित करना। मैं खास तौर से युद्ध विरोधक अन्तर्राष्ट्रीय की कौन्सिल की वार्षिक बैठक, जो सीचीलिया में जुलाई के चौथे हफ्ते में हुअी, अुसमें शामिल होने के लिये, और अतर्राष्ट्रीय द्वारा आयोजित युवक अध्ययन शिविर जो हालेण्ड में अगस्त महीने के तीसरे सप्ताह में हुआ था, अुसमें शाति सेना के विषय पर चर्चा करने के लिये गया था।

दूसरा कार्य जो मैंने करने का प्रयत्न किया, वह तो उन देशो की शिक्षा प्रणाली को समझने का था। जहा जहा मै गया, वहा मेरा प्रयत्न रहता था कि वहा के शिक्षको से मिलू और शिक्षा की विशेष सस्थाओ को देखू। पश्चिमी जर्मनी, हॉलेण्ड, पूर्वी जर्मनी, युगोस्लाविया और स्विट्जरलेंड, इन पाच देशो में इस ओर खास ध्यान दे पाया। पूर्वी जर्मनी और युगोस्लाविया की सरकार ने मुझे विशेष निमत्रण देकर उनकी शिक्षा प्रणाली को समझने में खास सहायता की। मै उनका विशेष तौर पर आभारी हू। शिक्षा के बारे में जो अनुभव मुझे अपनी इस यात्रा में हुए उन्हें अलग-अलग लेखो में देना चाहता हू। कोशिश करूगा कि अगले दो चार महीना में यह कार्य नियमित तौर पर करता रहूं। शाति कार्य के बारे में भी कुछ लिखना चाहता हू। इस पत्र में अपने सात माह के कार्यक्रम का ब्योरा दे रहा हू।

सीचीलिया श्री दानिलो दोलची के केन्द्रो में एक महीना–जुलाई की २३ तारीख तक रहा था। वहा से एक लम्बा पत्र अगस्त में आपको मिला। पार्टिनिको के इस केन्द्र के बाद मैंने चार पाच दिन स्विट्जरलैण्ड में बिताये और फिर चार दिन के लिए सेनफ्रान्सिस्को–मास्को वाली युद्धविरोधी पद यात्रा म भाग लिया था। उसका जिक्र नवम्बर के पत्र में किया था, वह भी एक उपयोगी अनुभव था। चाहे इस यात्रा से लोगो के द्वारा युद्ध के होने या न होने पर कोई असर न हुआ हो, किन्तु इसमें भाग लेने वाले मित्रो ने यह अनुभव तो किया कि दुनिया से युद्ध खतम हो, इस पर सारा ससार गहराई से सोच रहा है। और क्यो कि ये २५–३० नवयुवक कठिन तपस्या करके शाति के सदेश को विश्व के कोने-कोने में ले जा रहे थे, इनके प्रति जो भावना लोगो को होती थी वह बडी आशा प्रदान करने वाली थी। मुझे याद है हेनोवर शहर में जब चौराहे पर कधे पर एक बडा पोस्टर रखे मैं शाति सदेश का चार पाच भाषाओ में लिखा पर्चा बाट रहा था तो कितने ही लोग आकर बडी उत्सुकता के साथ हमारी बातो को समझना चाहते थे। एक अधेड उमर की बहन दौडी-दौडी आयी थी। उसने तीन-चार मिनट तक जर्मन भाषा में कुछ कुछ कहा। मै उसका एक शब्द भी नही समझ पाया था, केवल इतना समझा था कि वह हमें शुभकामनाए दे रही है—आशीर्वाद दे रही है। इतने में एक दूसरी बहन आयी जो थोडा बहुत अग्रेजी जानती थी। उससे पूछा कि यह बहन क्या कहना चाहती है। वह युद्ध के कठिन समय का अनुभव कर चुकी थी। उसका सब कुछ खो गया था। उसने मुझसे यह कहा "मेरे जैसा अब भविष्य में और किसी को अनुभव न हो, इसलिए मेरी मनोकामना है कि तुम्हारा यह आन्दोलन सफल हो।" ये पचीस-तीस नवयुवक महीनो तक अपनी यात्रा के दौरान में रोज इस तरह के अनुभव करते थे।

हैनोवर के नजदीक श्री पार्टर मैनशन का एक आश्रम है। उसका नाम फ्रेण्डशिप हाऊस (मित्रता गृह) है। वहाँ भी तीन दिन रहने का मौका मिला। केन्द्र के सचालक श्री ल्यासले हेमन्स के आग्रह पर—जिस आग्रह के लिये मै उनका बडा कृतज्ञ हूँ—उस समय चलने वाले एक शाति शिबिर के बारह, तेरह नवयुवक भाई बहनो के साथ रहने का अवसर मेरी इस यात्रा का एक सुहावना अनुभव है। उनमें स कुछ तो ऐसे

जवान थे जिन्हें शान्ति या अहिंसा के कार्य का अनुभव तो था ही नही, उसके बारे में जानकारी भी नही के बराबर ही थी। गांधीजी का नाम मात्र वे जानते थे। किन्तु जगत् में शान्ति हो और वह अहिंसा के आधार पर हो, इस विचार के प्रति जो श्रद्धा उनमें बनी उसने मुझे मोहित कर दिया। और हेमन्स दंपती और पास्टर्र मेन्सोन के स्नेह ने बूकेबर्ग के इस मित्रता गृह को मेरे लिये एक अपना घर ही बना दिया।

डेन्मार्क के लोकशाला के आन्दोलन के कर्मठ नेता श्री पीटर मानीके ग्रीष्म शिविर चलाया करते है। उन्होने मुझे उसमें हिस्सा लेने के लिये निमंत्रित किया था। जगत् प्रसिद्ध कथाकार हेन्स अन्डरसन् के शहर ओडन्सी से बीस किलोमिटर एक रमणीय स्थान में यह शिविर चल रहा था। कई देशों के व्यक्ति इसमें शामिल होने के लिये आये थे, उनमें अरबी और पूर्वी देशो के लोग भी थे। वे सभी समाज शिक्षा या अन्य समाज सेवा के कार्य के अनुभवी लोग थे। अरब के देशों और इजराइल के बीच के तनाव को कौन नही जानता। आपस में बोलना तो दूर रहा, वे एक ही मेज पर बैठकर भोजन नही करते। किन्तु मैंने एक दृश्य ऐसा देखा जिससे मेरा विश्वास पक्का हो गया कि अगर हम अपना अवगुंठन उतार कर–संकीर्ण राष्ट्रीयता का, भाषावाद का, पंथ वाद का अवगुंठन उतार कर–केवल मानव के तौर पर एक दूसरे के समक्ष खडे हो तो प्रेम के सिवाय और कोई संबन्ध मनुष्य के बीच नही हो सकता। मैंने देखा कि रात का समय था, भोजन के बाद मनोरंजक कार्यक्रम चल रहा था और अरब और इजराईल की बहने और भाई ऐक दूसरे के बगल में हाथ डालकर सब कुछ भूलकर नृत्य कर रहे थे।

नई तालीम और शांति सेना व भूदान के विषय में इस शिविर में दो दिन चर्चा करने के बाद में हॉलेंड चला गया। वहां युवक अध्ययन शिविर, जिसका जिक्र मेरे नवम्बर के पत्र में था, एक ग्रीष्म कालीन भ्रमण स्थान पर था; विषय था शांति सेना। चर्चा में लगभग ३५ व्यक्ति योरोप के कई देशों से इस शिविर में भाग लेने के लिये आये थे। शान्ति सेना का कार्य यूरोप में कैसे हो सकता है? शान्ति सैनिक की तैयारी में, उसके कार्य क्षेत्र में सेवा का क्या स्थान है? जब कि हालेण्ड जैसे देशो में गरीबी पूरी पूरी मिट गयी हो, समाज सेवा के सभी कार्य सरकार के द्वारा होते हो, किसी को किसी दूसरे की सेवा की आवश्यकता विशेष महसूस न होती हो, ऐसी परिस्थिति में शान्ति सैनिक यदि जनता में गहराई से प्रवेश करना चाहे, जनता के साथ प्रेम सम्बन्ध कायम करना चाहे तो उसे किस प्रकार की सेवायें करनी होगी? इन सब कठिन प्रश्नो पर चर्चाएँ हुई।

हालेण्ड की समृद्धता और स्वच्छता देखकर अपने देश के बारे में तरह तरह के विचार मन में आते रहें। बरसों से हालेण्ड को पवन चक्कियों का देश कहकर समझता रहा हूँ। उसकी कला से भी बरसों से परिचित था। रेंब्रान्ट, वर्मीयर, फ्रान्सहाल्स और वेनग्राक की कृतियो का प्रत्यक्ष दर्शन करने का सौभाग्य यहाँ प्राप्त हुआ। इनकी कलाओं की स्तुति जो मन ही मन की थी, वह केवल पुस्तको में उनके चित्र जो देखे थे, उनके बारे में पढकर जो समझा था उसी के आधार पर थी। किन्तु जब उनके समक्ष खडा हुआ तब समझा कि वे मेरी स्तुति के भी बहुत ऊंचे स्तर के है। अमस्टर्डम

और हेग बडे बडे शहर हैं। उनकी अपनी अपनी विशेषता तो है ही। लेकिन डेल्फ्ट का वही सदियों पुराना स्वरूप आज भी वैसा ही है। उसकी नहरें, नहरों में चलती हुई किश्तियां एक निराला वातावरण बनाती है। सडक पर बडा मिकेनिकल बाजा जो एक पहिया घुमाने से बजता रहता है, और उसके पास टिन का डब्बा लिये इस बाजेवाले की पत्नी पैसे इकट्ठा करती हुई जब देखी तो पुराने कई चित्र याद आ गये। राटेर्डम पिछले महायुद्ध में आधे से भी अधिक तहस नहस हो गया था। आधुनिक वास्तुकला के क्रान्तिकारी विशेषज्ञों को यह बडा मौका मिल गया और अब जो राटेर्डम बना है वह तो आधुनिक वास्तु कला का नमूना ही है। विशाल से विशाल बिल्डिंगे एक तरफ और उसी के साथ साथ उन्होने परिवारो के लिये छोटे छोटे मकान बनाये हैं। आधुनिक विज्ञान ने जो सुविधाए उपस्थित की हैं, वे सब उनमें हाजिर हैं। घर का काम करने के लिये किसी नौकर की जरूरत न रहे इस तरह से सारी योजना दीखती है। घरों घरों में कपडे धोने की मशीने, रेडियो, टेलिविजन और खाद्य पदार्थों को ठंडा रखने की मशीनें दीखती है। हरेक के पास टेलिफोन। कभी कभी तो मन में ऐसा ख्याल आता था कि कही ऐसा न हो, ये सुविधाए इतनी बढिया और अधिक न हो जाय कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से प्रत्यक्ष मिलने की आवश्यकता ही न रहे। हर कोई घर बैठे ही सब कुछ काम चला ले। हिन्दुस्तान का दूध वाला याद आ जाता है, जो सुबह पुकार कर घरवाली को दूध लेने के लिये कहता है और जब वह दूध लेनेके लिये आती है तो उन दोनो का आपस में राम राम होता है। और वे एक दूसरे के परिवार की खुशखबरें पूछते हैं। और इधर दूधवाला दूध की बोतलें कब दरवाजे के सामने रख गया, किसी को कुछ मालूम नहीं। आखिर दूध वाले से क्या मतलब, दूध मिल गया न! किन्तु मनुष्य मनुष्य के बिना कैसे रह सकता है—यह अवस्था भी बदलेगी और कोई नया तरीका मनुष्य को सूझेगा जिससे वह मानव सम्बन्ध को अधिक महत्त्व दे सकेगा।

हालेण्ड से निकलने के पहले मित्रोंने अम्स्टरडाम क्वेकर केन्द्र में एक सभा रखी थी। इसमें मैंने भारत के शांति आन्दोलन और भूदान यज्ञ के बारे में कहा। मित्रों ने बडे आग्रह के साथ चाहा कि मै फिर एक सप्ताह के लिये हालेण्ड जावूं। वे अलग अलग शहरों में इस प्रकार की सभाओं की योजना बनाना चाहते थे। मैं उनके इस आग्रह को टाल न सका। २० अक्टूबर को मैं फिर हालेण्ड गया। सात दिनो का यह कार्यक्रम एक दिन के शांति सेना समेलन से शुरू हुआ, जो अम्स्टर्डम में हुआ था। युनिवरसिटी में भी सोशल जाग्राफी फ्याकल्टी में बहुत अच्छी चर्चा हुई। हेग में ह्युमेनिस्ट सगठन और रोटेरियन क्लब के लोगों के साथ दो बैठको में, एक छोटे से शहर में मजदूरों के साथ और इसी तरह कई सभाओं में तरह-तरह के विचार वाले लोगों के साथ मिला। वैसे तो कई तरह के अनुभव हुए पर इतनी समृद्धि के बावजूद भी लोग अपनी परीस्थिति से संतुष्ट नही है, यह महसूस किया। मित्रों, पत्र अधिक लम्बा होता जा रहा है। आखिर यात्रा भी तो लम्बी ही थी न! इसलिए बाकी का अगले अंक में दूंगा। लौटने के बाद आप सब से इस पत्र के द्वारा मिल पा रहा हूं, यही आनन्द है। आप सब को सप्रेम प्रणाम।

—देवीभाई

पठनीय पत्रिकाएं

भूदान यज्ञ (हिन्दी साप्ताहिक),
भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक
सम्पादक–सिद्धराज ढड्ढा,
पता : अखिल भारत सर्व सेवा सघ,
राजघाट, काशी ।
वार्षिक शुल्क–छः रुपये

भूमिक्रांति
(सुरुचिपूर्ण सचित्र साप्ताहिक सर्वोदयपत्र)
सम्पादक–देवेन्द्रकुमार गुप्त
पता :–गाधी भवन, यशवत रोड
इन्दोर, म० प्र० ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

साम्ययोग (मराठी साप्ताहिक)
सम्पादक–गो. न. काले
पता : साम्ययोग कार्यालय,
सेवाग्राम [वर्धा] ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

ग्रामराज
सपादक–गोकुलभाई भट्ट
पता : किशोर निवास,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

सर्वोदय (अग्रेजी मासिक)
सपादक–एन् रामस्वामी
सर्वोदय प्रचुरालय, तचाटूर

खादी पत्रिका (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–ध्वजाप्रसाद साहु,
जवाहरलाल जैन
पता :–राजस्थान खादी सघ,
पो० खादी बाग (जयपुर) राजस्थान
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

सर्वोदय सन्देश (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–हेमनाथ सिंह
पता :–सर्वोदय साहित्य चौक बाजार
मुगेर, बिहार ।
वार्षिक शुल्क–एक रुपया

गाधी मार्ग (हिन्दी त्रैमासिक),
सम्पादक–श्रीमन्नारायण
पता :–गाधी निधी,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

मंगल प्रभात (हिन्दी पाक्षिक),
सम्पादक–काका कालेलकर
पता : हिन्दुस्तानी साहित्य सभा,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

भूदान (अग्रेजी साप्ताहिक)
सपादक–सिद्धराज ढड्ढा
अ. भा. सर्व सेवा सघ, राजघाट, काशी ।

और हेग बड़े बड़े शहर हैं। उनकी अपनी अपनी विशेषता तो है ही। लेकिन डेल्फट का वही सदियों पुराना स्वरूप आज भी वैसा ही है। उसकी नहरें, नहरों में चलती हुई किश्तिया एक निराला वातावरण बनाती है। सड़क पर बड़ा मिकेनिकल बाजा जो एक पहिया घुमाने से बजता रहता है, और उसके पास टिन का डब्बा लिये इस बाजेवाले की पत्नी पैसे इकट्ठा करती हुई जब देखी तो पुराने कई चित्र याद आ गये। राटेर्डम पिछले महायुद्ध में आधे से भी अधिक तहस नहस हो गया था। आधुनिक वास्तुकला के क्रान्तिकारी विशपज्ञो को यह बड़ा मौका मिल गया और अब जो राटेर्डम बना है वह तो आधुनिक वास्तु कला का नमूना ही है। विशाल से विशाल बिल्डिंगे एक तरफ और उसी के साथ साथ उन्होंने परिवारों के लिये छोटे छोटे मकान बनाये हैं। आधुनिक विज्ञान ने जो सुविधाए उपस्थित की हैं, वे सब उनमें हाजिर हैं। घर का काम करने के लिये किसी नौकर को जरूरत न रहे इस तरह से सारी योजना दीखती है। घरो घरो में कपड़े धोने की मशीनें, रेडियो, टलिविजन और खाद्य पदार्थों को ठंडा रखने की मशीनें दीखती है। हरेक के पास टेलिफोन। कभी कभी तो मन में ऐसा ख्याल आता था कि कही ऐसा न हो, ये सुविधाए इतनी बढ़िया और अधिक न हो जाय कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से प्रत्यक्ष मिलने की आवश्यकता ही न रहे। हर कोई घर बैठे ही सब कुछ काम चला ले। हिन्दुस्तान का दूध वाला याद आ जाता है, जो सुबह पुकार कर घरवाली को दूध लेने के लिये कहता है और जब वह दूध लेनेके लिये आती है तो उन दोनों का आपस में राम राम होता है। और वे एक दूसरे के परिवार की खुशखबरें पूछते हैं। और इधर दूधवाला दूध की बोतलें कब दरवाजे के सामने रख गया, किसी को कुछ मालूम नहीं। आखिर दूध वाले से क्या मतलब, दूध मिल गया न! किन्तु मनुष्य मनुष्य के बिना कैसे रह सकता है—यह अवस्था भी बदलेगी और कोई नया तरीका मनुष्य को सूझेगा जिससे वह मानव सम्बन्ध को अधिक महत्त्व दे सकेगा।

हालेण्ड से निकलने के पहले मित्रोंने अम्स्टरडाम क्वेकर केन्द्र में एक सभा रखी थी। इसमें *मैंने भारत के शांति आन्दोलन और भूदान यज्ञ के बारे में कहा। मित्रो ने बड़े आग्रह के साथ* चाहा कि मैं फिर एक सप्ताह के लिये हालेण्ड जाऊ। वे अलग अलग शहरो में इस प्रकार की सभाओं की योजना बनाना चाहते थे। मैं उनके इस आग्रह को टाल न सका। २० अक्टूबर को मैं फिर हालेण्ड गया। सात दिनो का यह कार्यक्रम एक दिन के शांति सेना समेलन से शुरू हुआ, जो अम्स्टर्डम में हुआ था। युनिवरसिटी में भी सोशल जाग्राफी फ्याकल्टी में बहुत अच्छी चर्चा हुई। हेग में ह्युमेनिस्ट सगठन और रोटेरियन क्लब के लोगो के साथ दो बैठकों में, एक छोटे से शहर में मजदूरों के साथ और इसी तरह कई सभाओं में तरह-तरह के विचार वाले लोगों के साथ मिला। वैसे तो कई तरह के अनुभव हुए पर इतनी समृद्धि के बावजूद भी लोग अपनी परीस्थिति से सतुष्ट नहीं है, यह महसूस किया। मित्रो, पत्र अधिक लम्बा होता जा रहा है। आखिर यात्रा भी तो लम्बी ही थी न! इसलिए बाकी का अगले अंक में दूगा। लौटने के बाद आप सब से इस पत्र के द्वारा मिल पा रहा हू, यही आनन्द है। आप सब को सप्रेम प्रणाम।

—देवीभाई

पठनीय पत्रिकाएं

भूदान यज्ञ (हिन्दी साप्ताहिक),
भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक
सम्पादक–सिद्धराज ढड्डा,
पता : अखिल भारत सर्व सेवा सघ,
राजघाट, काशी ।
वार्षिक शुल्क–छः रुपये

भूमिक्रांति
(सुरुचिपूर्ण सचित्र साप्ताहिक सर्वोदयपत्र)
सम्पादक–देवेन्द्रकुमार गुप्त
पता :–गाधी भवन, यशवत रोड
इन्दौर, म० प्र० ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

साम्ययोग (मराठी साप्ताहिक)
सम्पादक–गो. न. काले
पता : साम्ययोग कार्यालय,
सेवाग्राम [वर्धा] ।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

ग्रामराज
सपादक–गोकुलभाई भट्ट
पता : किशोर निवास,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

सर्वोदय (अग्रेजी मासिक)
सपादक–एन्. रामस्वामी
सर्वोदय प्रचुरालय, तंजावूर

खादी पत्रिका (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–ध्वजाप्रसाद साहु,
जवाहरलाल जैन
पता :–राजस्थान खादी सघ,
पो० खादी बाग (जयपुर) राजस्थ
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

सर्वोदय सन्देश (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–हेमनाथ सिंह
पता :–सर्वोदय साहित्य चौक बाजा
मुगेर, बिहार ।
वार्षिक शुल्क–एक रुपया

गाधी मार्ग (हिन्दी त्रैमासिक),
सम्पादक–श्रीमन्नारायण
पता :–गाधी निधी,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

मंगल प्रभात (हिन्दी पाक्षिक),
सम्पादक–काका कालेलकर
पता : हिन्दुस्तानी साहित्य सभा,
राजघाट, नई दिल्ली ।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

भूदान (अग्रेजी साप्ताहिक)
सपादक–सिद्धराज ढड्ढा
अ. भा. सर्व सेवा सघ, राजघाट, काशी ।

रजिस्टर्ड संख्या—N.-106

आत्मा के गुण हैं सत्य, ज्ञान, सुख, क्षमा, ऋजुता इत्यादि। ये गुण जब काम लायक निर्मल हो जाते हैं, तो आत्मबल नाम पाते हैं। इनके निर्मल होने पर बुद्धिबल और देहबल द्वारा जो भी काम होते हैं, उनसे समाज की भलाई होती है और आत्मगुणों की निर्मलता बढ़ती चली जाती है। थोड़े से शब्दों में यह चरित्र-बल ही है, जो आत्मबल के नाम से पुकारा जाता है। चरित्र से मतलब सच्चरित्र होता है, यह कभी नहीं भूलना चाहिये।

—महात्मा भगवानदीन

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मु
मुद्रित और प्रकाशित।

नई तालीम

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

मार्च १९६२ | वर्ष १० : अंक ९

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

मार्च १९६२

वर्ष १० अंक ९

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। असका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी डाक से मगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक ९ ★ फरवरी १९६२

मेरा कर्तव्य क्या है ?

अगर मेरी आंखों के सामने एक मां अपने बच्चे को पीट रही हो तो मुझे क्या करना चाहिये ? याद रखिये, प्रश्न है कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? याने उस समय ठीक और तर्कसंगत क्या है, यह नहीं कि ऐसी परिस्थिति में मेरी पहली प्रतिक्रिया क्या होगी। जब व्यक्ति का अपमान होता है तो उसकी पहली इच्छा प्रतिकार की होती है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या वह तर्कसंगत है ? उसी प्रकार यहां प्रश्न है कि क्या उस मां के प्रति बलप्रयोग करना तर्कसंगत है जो अपने बच्चे को पीट रही हो ? जब मां बच्चे को पीटती है तो उसमें वह कौनसी चीज है जो मुझे दर्द देती है और जिसको मैं खराब समझता हूं ? वह क्या यह है कि बच्चे को तकलीफ हो रही है या यह कि मां प्रेम का आनंद अनुभव करने के बदले क्रोध से विवश हो रही है ? मैं सोचता हूं कि उसमें ये दोनों बातें ही खराब हैं। पाप एक आदमी नहीं कर सकता। पाप दो आदमियों के बीच का अनैक्य है। और इसलिये, अगर मैं कुछ करना चाहता हूं तो मुझे इस उद्देश्य से करना है कि दोनों के बीच के विसंवाद को मिटा दूं और मां और बच्चे में सामञ्जस्य पुनः स्थापित करूं। इसलिये मैं कैसे शुरू करूं ? मां के प्रति हिंसा का उपयोग करूं ? वैसा करने से मैं मां और बच्चे के बीच का अनैक्य हटाऊंगा नहीं,–बल्कि उसमें एक और नयी खराबी ही जोड दूंगा–उसके और मेरे बीच के मनमुटाव की। इसलिये मुझे क्या करना चाहिये ? अपने को बच्चे की जगह रख दूं–वह असंगत नहीं होगा जो डोस्टोयेव्स्कि ने लिखा है, वह मैंने कई संन्यासियों और प्रधान पादरिओं को भी कहते हुए सुना है, लेकिन मुझे उस विचार से घृणा होती है,–वह यह कि प्रतिरक्षा के लिये युद्ध करना उचित है, वह अपने भाइयों के लिये अपनी जान अर्पण करना होता है। मैंने हमेशा इसका यह जवाब दिया है, "अपनी छाती पर मार सहन करके प्रतिरक्षा करना–यह ठीक है, लेकिन लोगों पर बन्दूक चलाना प्रतिरक्षा नहीं है, वह तो हत्या करना है।"

–लियो टाल्सटाय

धार्मिक शिक्षा

गांधीजी

मेरे लिए धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा है या यों कहिये कि केवल सत्य है, क्योंकि अहिंसा सत्य की खोज का आवश्यक और अनिवार्य साधन होने के कारण सत्य में शामिल है। इसलिए जो भी चीज इन गुणों के पालन में सहायक होती है, वह धार्मिक शिक्षा देने का साधन है और मेरी राय में इसके लिए उत्तम मार्ग यह है कि शिक्षक लोग खुद इन गुणों का कड़ाई से पालन करें। उस हालत में चाहे खेल के मैदान में हो, चाहे कक्षा के कमरे में, लड़कों के साथ उनके संपर्क से ही विद्यार्थियों को इन बुनियादी गुणों की सुन्दर शिक्षा मिलेगी।

यह बात तो हुई धर्म के सार्वत्रिक सिद्धान्तों की शिक्षा के बारे में। धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने धर्म के सिवा दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन भी शामिल होना चाहिये। इसके लिए विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिये जिससे वे संसार के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धान्तों को आदर और उदारतापूर्ण सहनशीलता की भावना रखकर समझने की आदत डालें। यह काम ठीक ढंग से किया जाय तो इससे उनकी आध्यात्मिक निष्ठा दृढ़ होगी और स्वयं अपने धर्म की अधिक अच्छी समझ प्राप्त होने में मदद मिलेगी। परंतु एक नियम ऐसा है जिसे सब महान धर्मों का अध्ययन करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिए; और वह यह है कि अलग अलग धर्मों का अध्ययन उनके माने हुए भक्तों की रचनाओं द्वारा ही करना चाहिए। उदाहरण के लिए, अगर कोई भागवत पढ़ना चाहता है, तो उसे विरोधी आलोचक के किये हुए अनुवाद के जरिये नहीं बल्कि भागवत के किसी प्रेमी के तैयार किये हुए अनुवाद के द्वारा पढ़ना चाहिये। इसी तरह बाइबल का अध्ययन भक्त ईसाइयों की टीकाओं द्वारा करना चाहिए। अपने धर्म के सिवा दूसरे धर्मों के इस प्रकार के अध्ययन से सब धर्मों की मौलिक एकता समझ में आ जायगी और उस सार्वभौम और शुद्ध सत्य की भी झांकी मिल जायगी, जो मतों और संप्रदायों के शोरगुल से परे है।

कोई एक क्षण के लिए भी मन में यह डर न रखे कि दूसरे धर्मों के आदरपूर्ण अध्ययन से हमारे अपने धर्म में हमारी श्रद्धा कमजोर पड जायगी या हिल उठेगी। हिन्दू तत्वज्ञान मानता है कि जगत के सारे धर्मों में सत्य के तत्व हैं, और उन सब धर्मों के प्रति आदर और सम्मान का भाव रखने का आदेश वह देता है। बेशक, इसमें यह बात स्वीकार कर ली गई है कि अपने धर्म के प्रति हमारा आदर है ही। दूसरे धर्मों के अध्ययन और आदर से अपने धर्मों के प्रति हमारा आदर कम नहीं होना चाहिये। बल्कि उसके फलस्वरूप दूसरें धर्मों के प्रति भी हमारा आदर बढ़ना चाहिये।

इस सम्बन्ध में धर्म की वही स्थिति है जो संस्कृति की है। हमारी अपनी संस्कृति की रक्षा का यह अर्थ नहीं कि हम दूसरी संस्कृतियों से घृणा करें; बल्कि वह रक्षा हम से इस बात का तकाजा करती है कि दूसरी तमाम संस्कृतियों के उत्तम तत्वों को ग्रहण कर के हम उन्हें पचा लें। धर्म के विषय में भी यही बात लागू होती है। हमारे आज के भय और आशंकायें उस जहरीले वातावरण का परिणाम हैं, जो आज देश में पैदा कर दिया गया है। यह वातावरण आपसी घृणा, दुर्भावना और अविश्वास से भरा हुआ है। हमारे मन में सदा यह भय और आशंका बनी रहती है कि कहीं कोई हमारे धर्म को या हमारे प्रियजनों के धर्म को गुप्तरूप से नुकसान पहुंचाये। लेकिन जब हम दूसरे धर्मों और उनके अनुयायियों के प्रति मन में आदर और सहिष्णुता का विकास करना सीख जायगे, तब यह अस्वाभाविक स्थिति दूर हो जायगी।

जब तक मनुष्य में अहंकार बना हुआ है तब तक आकांक्षाओं और वासनाओं से पीछा नहीं छूट सकता। जिसने अपने अहंभाव को खो दिया वह वासनाओं पर विजय प्राप्ति कर चुका—उसे न तो सांसारिक आकांक्षायें सताती हैं, न स्वर्गीय। वह तो स्वाभाविक आवश्यकताओं से ही परितुष्ट रहने लगता है।

—गौतम बुद्ध

नवग्रहों की पीडा

काका कालेलकर

ईश्वर की दुनिया में हम हैं। हमारी सब ओर दुनिया फैली हुई है। हम स्वयं दुनिया का एक अंग हैं। दुनिया का चिन्तन करनेवाले चन्द लोगों का सूत्र है कि दुनिया के एक-एक कण में सारी दुनिया सूक्ष्म रूप में भरी हुई है। पेड की टहनी का एक टुकडा काटकर हम बोते हैं। उसमें से एक सारा पूरा वृक्ष पैदा हो जाता है। आश्चर्य-चकित होकर कवि गाता है—'एक बुंद से मानव-जैसे पुतले बनाये हजारों।' सचमुच यह सारा विश्व एक गूढाति-गूढ वस्तु है। कल्पना कर के थक जाने पर कवियों ने कह दिया कि भगवान तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं। पुराणकारों ने ब्रह्माण्ड की कल्पना का स्थलकाल में विस्तार कर के दिखाया है। किन्तु यह सारा ज्ञान कहाँ से आया सो तो बताया नही। लोग कहते हैं कि योगविद्या से ऋषि-मुनियों ने यह सब पाया। योगविद्या के ग्रन्थ हैं उनमें उस विद्या की साधना और प्रक्रिया बताई है। उसके अनुसार चलनेवाले कई लोग देखने में आते हैं। उनका स्वभाव, उनकी सिद्धियाँ और उनका ज्ञान देखते कई बार दुख होता है। कभी भी सन्तोष या उत्साह नही होता। योगविद्या का माहात्म्य बताने वाले बहुत हैं, सिद्धि बताने वाले बहुत कम। उनकी आखरी दलील इतनी ही होती है कि जिस चीज को तुम नही जानते उसका इनकार करने का तुम्हें अधिकार क्या है? लेकिन उनको भी एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि आपको जिसका न ज्ञान है, न अनुभव उसके बारे में कुछ भी कहने का और केवल कल्पना पर बडे-बडे महल खडे करने का अधिकार आपको भी कहाँ से आया? क्या अज्ञान किसी विचार-परम्परा की बुनियाद हो सकती है?

गूढवादी लोग जिस तरह चर्चा में परास्त होने के बाद अपना पैंतरा बदल देते हैं और कहते हैं कि, 'यह चर्चा का विषय नहीं है, अनुभव का है। हम अपने अनुभव के बलपर कहते हैं।' वे जानते नही कि अनुभव का नाम लेना अपने को अपने पक्ष को और भी कमजोर करना है। सामान्यतया दुनिया के सब सज्जन ऐसे 'अनुभव' वादियों से चर्चा करना छोड देते हैं। मन में कहते हैं आपके अनुभव की कदर करनेवाले आपको ढेर आदमी मिलेंगे। आप अपना सम्प्रदाय चलाइये। आपका अनुभव हमारे काम का नही है। अनुभव की भी तो कसौटी होती है। भोले लोगों की अपना एक अलग दुनिया होती है। उसमें हमे प्रवेश करना नही है। हमें जिस चीज का अनुभव होता है उसका हम सबूत भी दे सकते हैं और अनुभव भी करा सकते हैं।

पुराणों में चन्द्रलोक की बाते आती हैं। आज-कल के खगोलशास्त्र में भी चन्द्रलोक की बातें आती हैं। खगोलशास्त्र का अनुभव दूरबीन के द्वारा, गणित और पदार्थ-विज्ञान के द्वारा हम सब को करा सकते हैं। रशियन और अमेरिकन व्योमयात्री खगोलशास्त्र के और विज्ञान शास्त्र के बलपर आकाश में घुम आये। उन्होने चन्द्र

के पृष्ठभाग के फोटो भी लिये। खगोलशास्त्री दूरबीन की मदद से चन्द्र पर के पहाडों का और खड्डों का चित्र निकालते हैं। उनकी ऊंचाई-गहराई का ठीक नाप भी लेते हैं। उनके इस अनुभव का वे अनुभव करा सकते हैं। इसलिए उनकी बातें विश्वास-पात्र होती है।

गूढविद्या के 'अनुभव' वादी अकाट्य दलीलें करते हैं, लेकिन अपने 'अनुभव' का दूसरों को अनुभव नहीं करा सकते। वे कहते हैं हम बताते हैं ऐसी साधना तीस-चालीस बरस तक करो, तब तुम्हें अनुभव मिलेगा। साधना भी ऐसी बताते हैं जिसपर विश्वास रखना आसान नहीं होता। हम जब पूछते हैं कि आपको बताई हुई साधना जिन्होंने की है ऐसे चार-दस आदमियों को बताइये। उनके अनुभव में अगर एक-वाक्यता दीख पडी तो हम आप की बातें सुनने को तैयार होंगे।

गूढ अनुभव और गूढ विद्या का हम इनकार नहीं करते। जिस चीज को हम नहीं जानते उसका इनकार करना गलत होगा। लेकिन इनकार कर नहीं सकते इसलिये हम थोडे ही स्वीकार करने के लिये बंधे हुए हैं?

मनुष्य के ज्ञान का क्षेत्र आज मर्यादित है। उसका अज्ञान का क्षेत्र अज्ञात है और इसीलिये अमर्याद है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ज्ञान की बुनियाद पर श्रद्धा और तर्क के बल से हम अनुमानों की इमारत खडी कर सकते हैं। लेकिन वहाँ पर भी खोज और प्रयोग कर के निश्चय पर पहुँचने की अपेक्षा तो रखते ही हैं। हमारे देश में और दुनिया में अन्यत्र भी असंख्य भोले लोग मौजूद हैं जो अज्ञान के बल पर कल्पना के सहारे और काल्पनिक अनुभव की दुहाई देकर एक काल्पनिक दुनिया खडी कर देते हैं। उनका यह प्रयास उन्हें मुबारक। किन्तु वे आसपास के लोगों को आग्रहपूर्वक उनकी अन्धी और अविश्वसनीय बुनियाद पर निकाले हुए अनुमान के अनुसार चलने को कहते हैं। कोई न चला तो उसकी तरह-तरह से निन्दा करते हैं। उसे नास्तिक, दुर्दैवी, अभागा कहते हैं। मन में चिढते हैं और फिर ।

शनि की साढे-साती

हमारे पुराणों में एक बहुत ही दिलचस्प कथा है। एक बार शनिमहाराज शिवजी के पास गये और उनसे कहने लगे, "देवाधिदेव मेरा प्रभाव इतना है कि एक भी जीव मेरी साढे-साती से छुटकारा नहीं पा सकता। अब आप का भी समय आ गया है। लेकिन आप तो देवाधिदेव ठहरे। इसलिये मैं आप को साढे सात साल नहीं, किन्तु साढे सात पल ही बाधा करूँगा। कल तडके से साढे सात पल तक मेरी बाधा रहेगी।"

शिवजी ने जवाब दिया, "अच्छा, तुम्हारा इतना प्रभाव है? देख लेता हूँ मैं, तुम किस तरह मुझे बाधा करते हो!"

दूसरे दिन नूर के तडके हिमालय की ठण्ड में शिवजी ने एक जलाशय में डुबकी ली और साढे सात पल तक जल में समाधि लगाकर बैठे। साढे सात पल पूरे होते ही बाहर आये तो सामने शनि-महाराज खडे! शिवजी ने हँसते-हँसते उनसे पूछा, "क्यों जी, तुम मुझे बाधा करनेवाले थे न? कहो क्या बिगाड सके तुम मेरा? कैसा रहा तुम्हारा प्रभाव?"

शनिमहाराज ने ठण्डे स्वर में कहा, "महाराज, आप जैसे देवाधिदेव, मेरे, डर से इस ठण्ड में साढे सात पल पानी में डूबे रहे यह क्या मेरा कम प्रभाव रहा? मेरा प्रभाव काम कर ही गया!"

सारी जिन्दगी अैसे-आस्तिक, श्रद्धावान 'अनुभव' वादियों का मैं परिचय पाता आया हूँ। वे मुझे जबरदस्ती साक्षात्कारी अवतारी पुरुषों के पास ले गये हैं। प्रसाद के तौर पर अुनका अुच्छिष्ट खाने का अुन्होंने मुझे आग्रह भी किया है। अुनकी बात न मानने पर अुन्होंने मुझ पर तरस भी की है। ऐसे लोगों ने मुझे जितना डर बताया वैसा कोअी मेरा नुकसान *नहीं हुआ और जिन भोले लोगों ने अुनकी बात* मान ली अुनको कोअी लाभ हुआ भी मैंने न देखा न सुना।

जो लोग अपने मर्यादित ज्ञान के बल पर चलते हैं और अज्ञान का क्षेत्र घटाने की कोशिश करते हैं, अुनकी प्रगति हम देखते हैं। केवल दुन्यवी और भौतिक प्रगति ही नहीं, आध्यात्मिक प्रगति भी दीख पडती है। और अुनका अच्छा असर आसपास फैला हुआ भी स्पष्ट दीख पडता है। और जो लोग दावा ही-दावा करते रहते हैं अुनका भी असर फैलता है। वह किस किस्म का होता है यह भी हम देखते आये हैं।

मेरे बचपन में लोग कहते थे कि सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के समय पर कुछ भी खाना नहीं चाहिये। खाने पर भस्मरोग होता है। (भस्मरोग क्या बला है अिसकी तलाश करने पर मालूम हुआ कि आदमी की भूख अनहद बढती है। वह जो खावेगा भस्म हो जाता है। न कभी उसको तृप्ति होती है न उसकी शक्ति बढती है।) ग्रहण के समय खाने का मनुष्य को सूझना नहीं चाहिये। ग्रहण रोज होते नहीं, इसलिए ध्यान से उन्हें देखना चाहिये यहां तक मैं सहमत हूँ। अगर कोअी कहे, जैसा चन्द सनातनी लोग विज्ञान की दुहाई देकर दलील करते हैं–कि ग्रहण के समय सूर्य की किरनें हमारे शरीर तक नहीं पहुँचती, इसलिये हमारी पाचनशक्ति क्षीण होती है, इसलिये ग्रहण के समय नहीं खाना चाहिये तो मैं सुनने को तैयार हूँ। लेकिन सुनकर अनुभव करने को भी जी चाहेगा। रात को सूर्य की किरनें हम तक नहीं पहुँचती, तो भी लोग मजे से खाते हैं। किसी को अजीर्ण या भस्मरोग नहीं हुआ। मैंने तो एक-दो दफे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण में चालू रहते खाकर देखा। मुझे कोई भस्मरोग नहीं हुआ। दूसरा भी कोई नुकसान नहीं हुआ। लाभ इतना ही हुआ कि किसी ने अज्ञात का डर दिखाया तो मान जाने की जो कमजोरी मनुष्य में होती है वह दूर हुई। अन्धश्रद्धालु लोगों की आग्रही बातें मान लेने की और हजम करने की शक्ति क्षीण हुई। जिस चीज को हम नहीं जानते उसका हम स्वीकार करें कि हम नहीं जानते इतना बस है। जो लोग गूढ अनुभव का दावा करते हैं और उसके बलपर हम पर सवार होना चाहते हैं उनकी बातों की या तो हम उपेक्षा करें, या जांच करें। उनके बताये हुए डर को हम शरण न जायें।

किसी ने मुझे पूछा कि फलज्योतिष में मानते हो? मैंने कहा कि मैं कैसे कहूँ कि आकाश के ग्रहों का तारों का और अन्य ज्योतियों का मुझ पर या किसी पर असर होता ही नहीं? होता होगा। उस असर के होते हुए भी मेरा जीवनक्रम ठीक चल रहा है और जो लोग फलज्योतिष पर विश्वास करते हैं और ग्रहशान्ति के मन्त्र बोलते हैं और दान देते हैं उनके जीवन में कोई खास सुधार हुआ देखने में नहीं आया। अगर कोई आकर मुझ से कहे कि आपका स्वास्थ्य आपको अच्छा लगता है, लेकिन कल आपको एक भयानक बीमारी होनेवाली है,

इसलिये आज मैं दवा देता हूँ उसे ले लीजिये और मैंने उसकी दवा ले ली तो दूसरे दिन वह जरूर कह सकता है कि देखिये कितनी भयानक बीमारी से आप बच गये। मेरी दवा का यह अद्‌भुत असर है। मेरी दवा न लेते तो जरूर आप छ महीने तक बीमार रहते। तो ऐसे आदमी को मैं क्या जवाब दू? मैं मन में कहूँगा बिना कारण दवा ली और बेवकूफ बना। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मैं दवा न लू और मेरा भोला नौकर मुझे बचाने के लिये कोई मन्त्र बोले, दान करे और लोग मुझे कहें कि देखिये आपके नौकरो के इलाज से आप बच गये। ऐसी दलील का जवाब क्या हो सकता है? मैं फिर से कहता हूँ कि मैं यह नही कहता कि जो फलज्योतिष चलता है उस पर मेरा विश्वास नही बैठता। अगर फलज्योतिष कोई सायन्स (विज्ञान) है तो वह कच्चा है उसकी बुनियाद कच्ची है। उसके दावे को हम मान नही सकते।

इतना विस्तार से जवाब देकर भी मुझे सन्तोष नही हुआ। मैंने आगे जाकर कहा कि मेरा अनुभव है कि जो लोग फलज्योतिष में मानते हैं और उसके अनुसार चलते है या इलाज करते है उनकी विचार-शक्ति, तर्क-शक्ति और शुद्ध अनुमान निकालने की शक्ति क्षीण होती है। अज्ञात के डर के कारण वे ज्ञात का अनादर करते हैं। स्वय बेवकूफ बनकर दूसरो को बेवकूफ बनाने की कोशिश करते हैं। अन्य पुरुषार्थ छोडकर फलज्योतिषि के पीछे पडते हैं। समय और पैसा बरबाद करते हैं और उनका जीवन दयापात्र बनता है। इसलिए फलज्योतिष में अगर थोडा कुछ सत्यांश होने की सभावना रही तो भी उसके पीछे जाने में नुकसान ही नुकसान है। जितने सकट हम स्पष्ट देखते हैं उनका शुद्ध इलाज हम करते जायें और विश्वास रखें कि यह दुनिया ईश्वर की है। यह अनाथ नही है। इसमें हम अपने ज्ञान, अनुभव और शुद्ध श्रद्धा के अनुसार चलें। बाकी का सब ईश्वर के हाथ में है इस विश्वास से हम अपने मन को मजबूत करे। हम ज्ञान के उपासक बने न कि अज्ञात और अज्ञान के।

२

इन दिनो आकश में आठ ग्रह एक राशि में आये। याने पृथ्वी से ये सब एक राशि में दीख पडे। पृथ्वी ऐसे स्थान पर आई कि जहाँ से ये आठ ग्रह एक ही राशि में आये हुए हो ऐसा दृश्य खडा हुआ। इन में राहू केतु तो सचमुच ग्रह नही हैं। ये तो ज्योतिष शास्त्र के बताये हुए दो काल्पनिक बिन्दु हैं जिनके बीच हमेशा १८० अश का अतर रहता है। बाकी के सात ग्रह एक राशि में दीख पडे। कुछ समय तक उसी हालत में वे रहे। इस में कोई बडी बात तो है नही। आकाशस्थ अनेक ज्योतियो का इस तरह एक राशि में आना बार-बार सभव नही होता। लेकिन उसमें दूसरी कोई खूबी है नही।

जिस दिन मैं साठ बरस का हुआ उस दिन मैंने सोचा कि मेरी जिन्दगी में ऐसा दिन न कभी आया था, न आयन्दा आने वाला है। इसलिये मेरे लिये यह दिन अनोखा है, अजीब है, उसे अद्‌भुत भी कह सकता हूँ। लेकिन उसका कोई दूसरा महत्त्व तो है नही। जैसे दूसरे दिन वैसा ही यह दिन है। उस दिन मैंने अपने साठ बरस के जीवन का चिन्तन किया। आगे के जीवन के लिये कुछ सकल्प भी किये। इस से अधिक दिन मैं दूसरा कुछ था ही

नही । इसी तरह जब सात या आठ ग्रह एक राशि में आये तब मेरा कर्तव्य हुआ कि मैं इस दृश्य को ध्यान से देखू । ऐसा मौका मुझे जिन्दगी में शायद ही कभी मिलेगा । जब कभी गाधीजी और रवीद्रनाथ एक ही स्थान पर आये, हम बडे कुतूहल से उन दोनो को एक साथ बैठ देखते थे । हमने कभी नही माना कि उनके इस तरह एकत्र आने से कुछ शान्ति करने की जरूरत है या कुछ जाप करने की । श्री सम्पूर्णानन्द और श्री डालमिया अपने अनुभव से भले कहे कि फलज्योतिष सच्चा है, हम तो अष्टग्रह का दृश्य आकाश में देखकर सन्तोष मानेंग । ग्रह-शान्ति के लिये पैसा इकट्टा करना, दक्षिणा देकर मन्त्रो का जप करवाना, घी जलाना, आदि प्रवृत्ति में नही पडेंगे । अगर पृथ्वी का नाश ही होनेवाला है, तो भले हो । महायद्ध आदि झझटो स सब को एकसाथ मुक्ति मिलेगी । चुनाव की चिन्ता किसी को करनी नही पडेगी । कर्जा देनेवाला, लेनेवाला दोना उसकी चिन्ता से मुक्त हो जायेंग और विश्व में दीर्घकाल के लिए शान्ति स्थापित होगी । ज्ञात वस्तु का और उसके ज्ञात परिणामो का हम योग्य इलाज जरूर करे । लेकिन असिद्ध वस्तु का डर रखकर हम नाहक अस्वस्थ न बनें ।

जब किसी ने मुझ से पूछा कि क्या इस अष्टग्रह का हमारे देश पर कुछ असर होगा तब मैने हँसते हुए कहा, क्यो नही ? असख्य लोग दिन-रात डरते रहेंगे । कई लोग पैसा इकट्ठा करके यज्ञ-याग करवायेंगे । बडे बडे लोगो को चितावनी दी जायगी कि आप सभलकर चले । हवाई जहाज में न बैठें । कोई हिम्मत का काम न करें । अधेरे में न जायें । अष्टग्रह का एक बडा असर यह होगा कि लोग रेल की मुसाफिरी कम करेगे । इसलिए मुसाफिरी करनेवालो को बैठने सोने को जगह अच्छी मिलेगी । बीमा कम्पनी को काम बहुत मिलेगा । (बीमा कंपनियाँ डरेगी या नही इसका पता नही ।) ऐसे ऐसे बहुत परिणाम होगे और वे अष्टग्रह के कारण ही होगे ।

अगर कही भूचाल हुआ तो हम कह नहीं सकेगे कि अष्टग्रह के कारण ही हुआ । अगर किसी की मोटर पेड के साथ टकराई तो हम कह नही सकेगे कि उसका कारण अष्टग्रह की युति ही है । लेकिन जो भी यज्ञयाग होगे, जपजाप्य होगा, डर फैलेगा और खर्चा होगा वह तो अष्टग्रह युति का फल ही होगा इसमें कोई शक नही । इतना प्रत्यक्ष कार्यकारण सम्बन्ध होते हुए हम कैसे कहें कि अष्टग्रह-युति का कोई असर ही नही ?

हाँ एक बात भूल गया । इस अष्टग्रह-युति के कारण फलज्योतिष के बारे में लेख लिखे जायेंगे । बहुत से पक्ष में होगे, चन्द विपक्ष में होगें और ग्रहो की चर्चा बहुत चलेगी ।

इन नवग्रहो में से एक ग्रह का डर लोगो को ज्यादा है वह है शनि महाराज । इनके बारे में जो अनेक कथाएँ बचपन में पढी थी उनमें से एक रोचक कथा छ बरस के पहले 'मगल प्रभात' में दी थी । दिलचस्प होने के कारण आज वह इस अक में दी जाती है ।

[मगल प्रभात से साभार]

सामूहिक और सामाजिक विकास के मूलतत्व *

ठाकुरदास बग

श्री रिचर्ड हौसर व श्रीमती हेबाजिबा हौसर लदन की एक सामूहिक और सामाजिक विकास सस्था के सचालक हैं। गत साल श्री जयप्रकाश नारायण इग्लैंड गये थे तब उनकी इनसे भट हुई थी। इस दम्पती के ज्ञान का उपयोग सर्वोदय आदोलन को हो सकेगा ऐसा श्री जयप्रकाशजी को लगा। इसलिये श्री जय प्रकाशजी के कहने से सर्व सेवा सघ ने इन्हें भारत आने का और कार्यकर्ताओ के शिविर लेने का निमत्रण दिया। अत दोनो जनवरी के मध्य में तीन सप्ताह के लिये भारत आये। दिल्ली में 'देश के पुनर्निर्माण में युवको का स्थान' इस विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की गई।

२५ जनवरी से ८ फरवरी तक बारडोली में पाच पाच दिन की तीन गोष्ठिया हुई। पहली गोष्ठी में निरक्षर और थोडे से अक्षरज्ञानवाले ग्राम नेताओ ने भाग लिया। दूसरी गोष्ठी में ग्राम-दानी गावो में और ग्राम इकाई के क्षेत्र में निर्माण के काम में जुटे हुओ कार्यकर्ताओ ने भाग लिया। सर्वोदय आदोलन या कार्यकर्ता प्रशिक्षण का काम करनेवाले भारत के चुने हुए कार्यकर्ताओ ने तीसरी गोष्ठी में भाग लिया। आखिर की गोष्ठी ५ से ८ फरवरी तक हुई। और उसी में भाग लेने का मौका मुझे मिला।

चुने हुए ३५ कार्यकर्ताओ ने इस तीसरी गोष्ठी में भाग लिया। हौसर दम्पती का व्यक्तित्व असाधारण है। अहिंसा पर इन का सपूर्ण विश्वास है। वे खुद को गाधी कार्यकर्ता मानते हैं। गाधीजी विश्वनागरिक थे, ऐसी इनकी मान्यता है। गाधी जी के बताये हुए अहिंसक मार्ग से दुनिया से हिंसा जड्मूल से किस तरह उखाड फेंक दी जा सकेगी इसका शोध और कार्य इनका जोवन मिशन है। श्री रिचर्ड हौसर जन्म से आस्ट्रियन हैं और श्रीमती हौसर अमेरिकन हैं। पिछले चार साल से आप दोनो इग्लैंड में रहते हैं। कैदियो में, विकृत कामवासना के भुक्तभोगियो में, परीक्षा में अपयश मिले हुए विद्यार्थियो में, पागलखाने में मानसिक विकृतिवाले रोगियो में, सामाजिक काम करनेवाली सस्थाओ में इत्यादि इस तरह ८० प्रकल्पो में आप की सस्था काम कर रही है।

ता ५ को बारडोली की आखरी गोष्ठी के प्रारभ में उन्होने कहा "गाधीजी का अहिंसा का तत्वज्ञान मुझे मान्य है। मै सिर्फ आप के काम की पद्धति के बारे में बोलने वाला हू। पहली बात यह ख्याल में रखनी चाहिए कि लोगो के लिये आपको आदोलन

* श्री व श्रीमती हौसर द्वारा सचालित शिबिर

नहीं करना चाहिए। आज भूदान आंदोलन का स्वरूप करीब-करीब ऐसा ही है। लोगों को खुद अपना आंदोलन चलाना चाहिये। यही लोकशाही का तत्व है। आज भूदान आंदोलन या तो जमींदारों के लिये या भूमिहीनों के लिये और या दोनों के लिये चलाया जा रहा है। इसे मैं पितृभाव कहता हूं। पुराने समय के पैतृक समाज में यह भाव शोभा देता; पर आज के मातृसमाज में यह बात युगबाह्य हो गयी है। अतः जिन के लिये यह आंदोलन है, वे ही इसे चलायें। हम सलाह देने का, प्रेरणा देने का व मूल्यांकन करने का काम करें। यानी हम स्थानीय कार्यकर्ता (श्री हौसर इन्हें 'कम्युनिटी लीडर' कहते हैं) खोजें व उन्हें आंदोलन चलाने दें। भूदान आंदोलन की दूसरी और तीसरी मंजिल तो हमने बनायी है। पर इस इमारत की निचली मंजिल या नींव ही नहीं है। निचली मंजिल या नींव के बिना किसी भी इमारत की कल्पना नहीं की जा सकती। बिना इस नींव के इतनी भूमि और इतने ग्रामदान आप को मिले ही कैसे, इसी का मेरे जैसे सामाजिक इंजिनियर को आश्चर्य होता है। अतः आप इस तरह के कार्यकर्ताओं (इनको ही 'आंशिक समयदानी' कहते हैं) की खोज करें, और वे ही यह आंदोलन चलायें ऐसी परिस्थिति निर्माण करनी चाहिये।

इसलिये हमारा आंदोलन समग्र होना चाहिये। यानें हम केवल जमीन का प्रश्न हल करने के पीछे न पड़ें। बल्कि जीवन के सभी प्रश्नों को आंदोलन स्पर्श करे, यह देखें। जनता स्वयं अपने प्रश्न हल करे। नींव के कार्यकर्ताओं को जो बातें आवश्यक महसूस होंगी वे करेंगे। हमारा काम यह है कि ईप्सित बातें ग्रामीण कार्यकर्ताओं को करने दी जायं और उन्हें अहिंसा व समता की ओर मोड़ा जाय। उन पर कोई भी बात लादी न जाय। नहीं तो उन का विकास नहीं होगा और आंदोलन भी स्वयंस्फूर्त नहीं होगा।

श्री हौसर के विश्लेषण के अनुसार दुनियां में तीन प्रकार के नेता होते हैं :

१. सत्ता नेता : उस के हाथ में सत्ता होने से वह काम करता है। वह जिनका काम करता है उनके स्तर से ज्यादा ऊंचा नहीं जा सकता। पंडित नेहरू, ख्रुश्चेव आदि इस तरह के नेता हैं।

२. प्रभाव नेता : गांधीजी या विनोबाजी इस तरह के नेता हैं। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नेहरूजी भी प्रभाव नेता हैं। श्री. जयप्रकाशजी ने जब से राजनीति छोड़ी तब से वे भी प्रभाव नेता बने हैं। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री नवकृष्ण चौधरी को भी यह बात लागू होती है। हमारा काम प्रभाव नेता का है। सत्ता नेता का हमारा नहीं।

३. नौकर : नौकरी के कारण मिलनेवाली सत्ता की वजह से प्राप्त होनेवाली नेतागिरी, यह एक तीसरा नेता वर्ग है। उदाहरणार्थ: शिक्षण विभाग का संचालक।

हमें दूसरे वर्ग की भूमिका से काम करना है यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये। अतः हम देहाती और शहर के सामाजिक कार्यकर्ताओं पर अपना विचार जबरदस्ती लाद नहीं सकते। उन्हें जिन कामों में रुचि हो, वे करने दिये जाय। उसमें से निर्माण होनेवाले उत्साह को योग्य विचारों की ओर मोड़ने की कुशलता हमें हासिल करनी चाहिये। इसके लिये हमारी काम की पद्धति या दृष्टिकोण समग्र होना

चाहिये। फिर यह जरूरी है कि बुद्धि और विवेक की हम उपासना करे। साक्रेटिस की तरह हर बात अच्छी तरह परखकर ही उसको स्वीकार करने की वृत्ति देहात में या शहर में काम करने वाले कार्यकर्ताओ में और अन्य सभी लोगो में बढानी चाहिये।

श्री हौसर ने हम सबको सम्बोधित कर के कहा, "आप पर सब लोग प्रेम करते है। दिल्ली में सभी लोगो ने आपके बारे म अच्छे उद्गार निकाले।" सबको हमारे आन्दोलन का परीक्षण करना चाहिये। उसकी समालोचना करनी चाहिये। और इस के लिये भावना से बुद्धि का अधिक प्राधान्य होना जरूरी है। प्रश्न पूछने की और विचार करने की आदत हम सब को लगनी चाहिये।

गाधी जी आदोलन शुरू करते थे, उस समय उन के बारे में विरोधक के मन में भी आदर भाव रहता था। प्रेम में शकाओ को, प्रश्नो को स्थान नही होता। आदर भाव में मतभिन्नता के लिये स्थान है। श्रद्धा के बजाय बुद्धि पर अधिक जोर देना चाहिये। इस से आदोलन ज्यादा स्थायी बनेगा।

भूदान की कार्यपद्धति में करुणा का उपयोग किया गया है। पर अन्यायी समाजरचना के विरोध में प्रकोप (इन्डिग्नेशन) का उपयोग नही किया गया। प्रेम और करुणा की तरह ही प्रकोप की भी बहुत बडी शक्ति है। व्यक्ति पर प्रेम--लेकिन समाज रचना के विरोध में प्रकोप होना चाहिये। इससे समाज में बहुत बडी शक्ति निर्माण हो सकती है। फिर उस में ये अद्भुत उत्साह निर्माण हो सकेगा। प्रकोप को उद्रेक (कॅथार्सिस) मिलना चाहिये। आज भारत की जनता में बहुत बडे प्रमाण में सुप्त या जमी हुई हिंसा (फ्रोजन वायोलेंस) है। पजाब के बटवारे के समय या आसाम में भाषा के प्रश्न पर उसका दर्शन हुआ। इस जमी हुई हिंसा को प्रकोप के रूप में प्रगट करना चाहिये और उस का उपयोग उत्साहनिर्मिति में होना चाहिये। महात्माजी ने इस सुप्त हिंसा का उपयोग सत्याग्रह के लिये किया था। हम भी जन समाज का सगठन करने की बात नीव के कार्यकर्ताओ से कहें।

अदाता को जमीन दी जाती है, उसके बदले में हम उस से कुछ भी नही लेते। यह ठीक नही है। उसे भी समाज के लिये कुछ न कुछ देना ही चाहिये। इस का अर्थ जमीन की कीमत ले, ऐसा नही। समाज के लिये वह श्रमदान दे, भूदान आदोलन को मदद करे, अन्य भूमिहीनो का जमीन दिलाने का प्रयत्न करे, दूसरे गरीबो को मदद करे। यानी किसी न किसी प्रकार से वह जमीन के बदले में कुछ दे। लेने से मनुष्य हतप्रभ होता है, उसकी आत्म शक्ति कुठित होती है। जमीनदारो को भी अपने दान के बदले में कीर्ति पद, सम्मान आदि मिलने चाहियें।

यह सारा करने के लिये लोगो का हम भिन्न भिन्न प्रकार से सर्वे करे। लोगो को अपनी कठिनाइया कहने दी जाय और उसी में से उन्हें मार्ग खोजने के लिए तैयार करना चाहिये। विचारो को चालना देने का हमारा काम है, प्रत्यक्ष काम हम नही करनेवाले हैं। वह तो जनता करनेवाली है, हम यह बात ख्याल में रखें। हम धीरज रखें। यह जल्द ही मिलेगा ऐसी झूठी कल्पना लोगो में न फैलायें। बल्कि उबडखाबड रास्ते की और बीच बीच में आनेवाले ज्वार भाटे की कल्पना जनता को अच्छी तरह दे। लोगो को

(शेषांश कव्हर पृष्ठ ३ पर)

ओसांक और आर्द्रता मान

देवलाल अबुलकर

जलबाष्प का सतृप्ति दाब मालूम करने के लिये ओसाक जानने की आवश्यकता महसूस हुई।

प्रश्न था ओसाक क्या है? उसे किस तरह मालूम कर सकते है?

उत्तर: शीत ऋतुओ में सुबह खुले मैदान में रखी हुई कुछ वस्तुओ पर अथवा घास तथा पौधो की पत्तियो पर पानी की छोटी-छ टी बूदें जम जाती हैं। पृथ्वी की मिट्टी भी इन जलबिंदुओ से भीग जाती है। इन्ही जल बिंदुओ का नाम ओस है। इसका कारण है कि दिन में सूर्य का जो ताप वस्तुओ ने लिया था वह सध्या होते ही उनमें से निकलने लगता है। किसी वस्तु में से वह बहुत शीघ्रता से निकल जाता है और किसी में से धीरे-धीरे। स्पर्श करने पर पहली प्रकार की चिजें ठडी मालूम पडती है। उनके आसपास की हवा का तापक्रम भी बडी शीघ्रता से घटने लगता है। अत वह सतृप्त होकर अपना जलबाष्प उन्ही वस्तुओ पर छोड जाती है।

(नोट 'ओस' के बारे में विस्तार पूर्वक विवरण स्वतत्र रूप में देना आवश्यक है। यहा पर थोडे में ही बताना लाजिमी है।)

परिभाषा जिस तापक्रम पर यह ओस जमती है उस तापक्रम को ओसाक कहते है।

इस ओसाक को नापना आवश्यक है। इसको नापने के लिये कुछ उपकरणो का उपयोग करते हैं। वे हैं: १. डॅनियल का आर्द्रतामापक; २. रेनो का आर्द्रतामापक, ३. डाइन का आर्द्रतामापक इत्यादि।

प्रयोग शालाओ में डॅनियल या रेनो के आर्द्रतामापक का प्रयोग कर सकते हैं। हम डॅनियल के आर्द्रतामापक का प्रयोग करेंगे।

इस उपकरण में तराजू के समान दीखनेवाली काच की नली है जिसके दोनो बाजुओ में दो बल्ब लगे रहते हैं। पहले बल्ब का दूसरे बल्ब से सबध है। पहला बल्ब ² भाग ईथर से भरा हुआ है। इसके अन्दर सोने की पट्टी चारो ओर काच पर लगी रहती है। इसमें एक त पमापक भी है। नली और दूसरे बल्ब में ईथर की भाप है। यह यत्र एक स्टॅड पर रखते हे। उसी स्टॅड मे लगा हुआ हवा से सबध रखनेवाला तापमापक भी रखते हैं। दूसरे बल्ब पर जालीदार कपडा लगा हुआ है।

प्रयोग के शुरू में दोनो तापमापको में बताया हुआ तापक्रम समान होगा।

प्रयोग शुरू करने के लिये थोडा ईथर दूसरे बल्ब पर डाला जाता है। उसका बाष्पीभवन होता है। उसके लिये जो गर्मी आवश्यक होती है वह बल्ब के अदर जो ईथर बाष्प है उसमे प्राप्त होती है। परिणामवश उसका तापमान कम होता है और उसका रूपांतर द्रव इथर में होता है, भाप की अपेक्षा द्रव का आयतन बहुत ही कम होता है। इसका परि-

णाम पहले बल्ब के ईथर पर होता है । उसपर का दबाव कम हो जाता है । दबाव कम होने के कारण उसकी कुछ भाप बनती है और दूसरे बल्ब में आती है, जहां बाहर डाले गये ईथर की बाष्पीभवनक्रिया चालू है । उसका फिर से द्रव इथर में रूपांतर हो जाता है ।

इस क्रिया का पहले बल्ब में जो ईथर है उस पर जो परिणाम होता है, वह महत्त्वपूर्ण है । उस पर दबाव कम होता है इसलिये उसकी कुछ अंश में भाप बनती है । लेकिन यह भाप बनने के लिये जो गर्मी प्राप्त होती है, वह उसी द्रव ईथर से प्राप्त होगी । इसलिये उसका तापमान घटते जायगा । अब ईथर का तापमान कम होता है तब उस बल्ब का भी तापमान घटना ही चाहिये । उसमें रखे हुए तापमापक से यह बात स्पष्ट होगी ।

दूसरे बल्ब पर थोडा-थोडा ईथर डालते रहना चाहिये । धीरे धीरे पहले बल्ब का तापमान घटते जायगा ।

जब पहले बल्ब का तापमान घटता है तब उससे लगी हुई जो हवा का अश है, उसका भी तापमान घटता रहेगा । कुछ समय बाद तापमान इतना कम होगा कि वह हवा संतृप्त होगी । और कुछ जलबिंदु पहले बल्ब पर जमने लगेंगे । बल्ब के अंदर जो तापमापक है उस पर से तापमान देख लेना चाहिये ।

दूसरे बल्ब पर ईथर डालना भी बंद कर देना चाहिये । पहले बल्ब पर जमे हुए जलबिंदु उडने लगेंगे । जब वे पूरे निकल जायेंगे, वह तापमान फिर से देख लेना चाहिये । दोनो तापमान का औसत तापमान 'ओसांक' होगा ।

अन्य जो आर्द्रतामापक हैं, उनकी रचना अलग-अलग प्रकार की है किन्तु उनका तत्त्व एक ही है ।

प्रश्न : सोने की पट्टी किस लिये रखी गई है ?

उत्तर : सोने की पट्टी चमकदार है । जब हवा संतृप्त होकर उसकी बाष्प ओस के रूप में पहले बल्ब पर जमने लगती है, तब उसकी चमक जाती रहेगी । कांच के पृष्ठ पर उसका परिणाम एकदम नहीं दिखाई देता । इसलिये थोडासी भी ओस जमने के बाद वह स्पष्ट रूप से हमें दीखना चाहिये, और ओसांक ठीक-ठीक देखने में सहायता मिलनी चाहिये, इसलिये सोने की पट्टी का उपयोग होता है ।

प्रश्न : इस 'ओसांक' से हम संतृप्त दाब किस तरह जान सकते हैं ?

उत्तर : हवा में जब आर्द्रता का प्रमाण ज्यादा रहेगा तब वह संतृप्त होने के लिये हवा का तापमान ज्यादा घटने की आवश्यकता नहीं होती । ओस जल्द ही जमनी शुरू होगी । लेकिन यह आर्द्रता का प्रमाण जब कम रहेगा तब ओस जमने के लिये देर लगेगी और साधारण तापमान में और ओसांक में काफी फरक होगा । पहले स्थिति में साधारण तापमान और ओसांक में कम फरक होगा । अतएव यह स्पष्ट है कि जब ओसांक और साधारण तापमान में ज्यादा फरक रहेगा तो समझना चाहिये कि हवा में आर्द्रता का प्रमाण कम होगा और जब ओसांक और साधारण तापमान में फरक कम होगा तब हवा में आर्द्रता का मान ज्यादा होगा ।

प्रश्न : पहले हमें जो समीकरण बताया गया था उससे हम आर्द्रता का निश्चित प्रमाण कैसे जान सकेंगे ?

उत्तर : जो समीकरण हमने पढा वह है :

$$\text{आर्द्रता} = \frac{\text{जलबाष्प का प्रस्तुत दाब}}{\text{प्रस्तुत तापक्रम पर जलबाष्प का संतृप्ति दाब}}$$

किस तापक्रम पर जलबाष्प का सतृप्ति दाब कितना होता है यह अच्छी तरह नाप लिया गया है। (यह सारिणी भौतिकशास्त्र की किताब से प्राप्त हो सकती है।) इस सारणी की सहायता से तुरन्त मालूम हो सकता है कि ओसाक पर सतृप्ति दाब कितना है। ऊपर के प्रयोग स यह भी स्पष्ट है कि पहले बल्ब को ठण्डा करके उससे स्पर्श करनेवाली वायु का तापक्रम हमने अवश्य घटाया है किन्तु न तो उसके जलबाष्प की मात्रा में परिवतन किया है और न जल बाष्प के दाब में। अतः हमें मानना पडगा कि कमरे की वायु की जलबाष्प का प्रस्तुत दाब ठीक उतना ही है जितना कि उपर्युक्त सारिणी में ओसाक पर सतृप्ति दाब लिखा है। यह वायु के प्रस्तुत दाब को नापने की अत्यत सरल रीति है। इसी कारण से ओसाक को यथार्थतापूर्वक नापना बडा आवश्यक है। इसलिय हम ऊपर दिया हुआ समीकरण यो लिख सकते है :

$$\text{आर्द्रता} = \frac{\text{ओसांक पर सतृप्ति दाब}}{\text{प्रस्तुत तापक्रम पर सतृप्ति दाब}}$$

उदाहरण से यह स्पष्ट होगा। एक दिन का साधारण तापमान १८° सें. है और ओसाक १५° से है। आर्द्रता का प्रतिशत इस प्रकार निकाला जा सकता है।

सारणी से स्पष्ट है की १८° सें. पर जलवाष्प का सतृप्ति दाब १५·३ मिलिमीटर है।

$$\text{आर्द्रता} : \frac{१२.७}{१५.३} \times \frac{१००}{१}$$

$$८३.००६\%$$

प्रश्न : गीले तथा सूखे बल्ब का आर्द्रतामापक भी आर्द्रतामापक है, उससे हम आर्द्रता मान किस तरह जान सकेंगे ?

उत्तर : इस आर्द्रतामापक में दो तापमापक है। एक तापमापक के बल्ब पर पतला कपडा या सूत बधा होता है और उस कपडे या सूत का दुसरा छोर पानी में डूबा रहता है। इसलिए यह कपडा सदा भीगा रहता है। और उस पर से जल का बाष्पीभवन हवा के बहने के कारण होते रहता है। यदि वायु शुष्क रहा तो बाष्पीभवन बहुत शीघ्रता से होता है। यदि वायु में आर्द्रतामान ज्यादा रहा तो बाष्प भवन की क्रिया धीरे-धीरे होती है। कभी कभी इसका सर्वथा अभाव रहता है। इसलिये दोनो तापक्रमो के अतर के द्वारा आर्द्रता का अदाजा लग सकता है। जितना ही यह अतर कम होगा उतनी ही अधिक आर्द्रता वायु में होगी। इस अतर के द्वारा आर्द्रता मालूम करने के लिये वास्तविक अनुभव के आधार पर सारणिया बनाई गई। उसमें प्रत्येक सूखे तापक्रम और सूखे तथा गीले तापक्रमो के अन्तर के लिये प्रस्तुत बाष्पदाब पारेक मिलीमीटरो में दिया गया है।

सारणी का कुछ अश निम्न प्रकार है :

सूखा ताप क्रम	सूखे तथा गीले तापक्रमों का अंतर (सेंटिग्रेड)											
	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१५	१२.७	११.३	९.९	८.६	७.४	६.१	५.०	३.८	२.७	१.६	०.५	...
१६	१३.५	१२.१	१०.७	९.३	८.०	६.८	५.५	.३	३.२	२.१	१.०	...
१७	१४.४	१३ ०	११.५	१०.१	८ ७	७.४	६.२	४.९	३ ७	२.६	१.५	०.४

मान लीजिये कि सूखे तापमापक का तापक्रम १७° सेटिग्रेड है और गीले तापमापक का तापक्रम ११° सेटिग्रेड है। इन दोनों का अंतर ६° से. हुआ। सारीणी में देखकर १७° सेंटिग्रेड पर प्रस्तुत वाष्पदाव १४ ४ मिलीमीटर है और ६° सें के अंतर के लिये वह ६.२ मिलीमीटर है।

आर्द्रता = $\frac{\text{प्रस्तुत वाष्प दाव}}{\text{संतृप्ति दाव}} = \frac{६.२}{१४.४} \times \frac{१००}{१}$ = ४३.०६ %। अतः वायु में जलवाष्प का परिणाम ४३.०६ % हुआ।

और भी अन्य प्रकार की सारणी बनाई गयी है, जिससे यह प्रमाण देखते ही जान सकते हैं।

(नोट:—उपर्युक्त सारणी "प्रारभिक भौतिकी" लेखक निहालकरण सेठी, डी. एस्. सी. से उद्धृत की है।)

वेणी प्रसाद

वहाँ के खेत भी देखे

योरोप जाने के पीछे यह विचार बिलकुल भी नही था कि वहाँ की बहुत चीजें देख सकूगा। वहा की खेती को समझने के बारे में कुछ प्रयत्न करूगा, यह तो सोच ही कैसे सकता था, क्योकि वह मेरा विषय है ही नहीं। और न मै ऐसी कल्पना ही कर सकता था कि रोज एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के कार्यक्रम के अन्दर खेती जैसा व्यापक और टेकनीकल विषय थोडा भी समझ पाऊंगा। समय तो कम था ही और साथ-साथ उन विषयो ने जिन्हे लेकर गया था, दिमाग को भर दिया हुआ था। मैंने खेतो की तरफ बिलकुल भी ध्यान नही दिया। किन्तु दो कारणो से मन पर कुछ-कुछ छाप पडती ही रही। एक तो यह कि लोगो से, खास तौर पर सामान्य लोगो से, ग्रामीण लोगों से और काम करने वाले लोगो से मिलने का प्रयत्न हमेशा करता रहता था। जब मौका लगता कि किसी कारीगर, किसान, मजदूर से मिल सकू, तो फिर उसे टलने न देता। इस तरह किसान परिवारो के साथ रहने और उनके साथ उनके खेतो व गायो को देखने के दो चार मौके लग ही गये। दूसरा कारण और भी पते का है। खेत, फसले और मैदानो में चरती हुई गायें किसकी नजरो को नही खेंचेगी। ट्रेन में बैठे, मोटर में घूमते-घूमते इतना सरोकार खेत और खेत के काम को देखने से आता रहा कि उसने भी मन पर अपने ढग से छाप डाल ही दी। इसी छाप को यहा प्रकट करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

जब सुनते है कि अमरीका से इतने करोड टन गेहूँ आया, आस्ट्रेलिया से इतने टन और फलानी जगह से इतना तो ऐसा महसूस होता है कि शायद उन देशों में खेतो में अनाज बरसता होगा—वहाँ का उत्पादन प्रकाण्ड परिमाण में होता होगा। शायद होता भी हो। पर मैंने जो औसत फसले योरप के देश में देखी वे आम तौर पर कहा जाय तो हमारे खेतो की फसलों से बहुत ज्यादा अच्छी होती है ऐसी बात नही है। औसतन अच्छी फसल हमारी औसतन अच्छी फसल जैसी ही दीखी। हा, हमारे यहा जो बिलकुल ही खराब फसले होती हैं वे वहा दिखाई नही देती।

योरोप की खेती में अधिकतर काम बडी बडी मशीनो से ही होता है। तो भी, कई जगह किसानो को जुताई गोडाई का काम घोडो से करते हुए आज भी प्रचुर प्रमाण में देखा जाता है। और जब देखा कि बैलो से भी खेती हो रही है तो बिलकुल हिंदुस्तान का चित्र सामने आगया। वही खरामा-खरामा चाल से दो बैलो के पीछे चलते हुए किसान और उसका परिवार घास आदि बटोरते हुअे।

वेल्स में जब खेतो में से गुजर रहा था तो रुक गया—किसान घोडे के सहारे, खेती कर रहे थे। उनके पास ऐसे साधन थे जो वैसे ही कार्य करते है जिन्हे हम ट्रेक्टर के

साथ ही-जोडते है । एक खेत खूब बडा था । उसमें केवल दो आदमी काम कर रहे थे । एक घोडे के पीछे लगे घास को एक तरफ ढकेलकर एक कतार में ढेर कर देने वाले औजार के साथ काम कर रहा था और दूसरा एक लम्बे हत्थे वाले पजे से उस लम्बे ढेर को एक जगह बडे ढेर में परिवर्तित कर रहा था । मेरे देखते देखते आधा खेत साफ हो गया । उसी समय मन में सोचता रहा कि हमारे खेतो में हाथ से इन सब क्रियाओ को करने में कमर ही टूट जाती है-ये लोग तो झुकते हुए दीखते ही नही । इस खेत में दर्जनो आदमी दीखते अगर हमारे खेत होते, परन्तु ये तो केवल दो व्यक्ति ही हैं । और अनेक विचार इसी तरह ।

जर्मनी में एक शान्तिवादी आश्रम है, उसकी २-३ हैक्टर जमीन है । उसे एक बूढा व्यक्ति सम्भालता है । उसके आर्थिक पहलू को तो मैं नही जानता, किन्तु उसे काम करते अलबत्ता देखा । मोटर साइकिल की तरह का एक ट्रेक्टर उसके पास है । उससे जुताई करते समय ऐसा दीखता है कि जैसे भारी मोटर साइकिल को पैदल चलकर घसीटकर ले जाया जा रहा हो । जब वह चला रहा था तो देखा कि गति और 'जुताई की तरह' हमारे बैल के हल जैसी ही है बल्कि कुछ धीमी ही होगी । मजा तो जब आया जब उसे 'साइय' से गहू काटते देखा । अकेला आदमी किस छन्द और गति के साथ वह काम कर गया, कुछ कह नही सकता ।

अनाज कटाई की बात तो रही अलग, सडको के किनारे, मैदानो में घास बढ जाता है । हमारे यहाँ हमने देखा और खुद भी किया कि फावडे से जमीन छील कर हम वह घास निकालते है । योरोप के कई स्थानो पर मेरी नजर इस बात पर पडी कि वे उसी 'साइथ' से सडक और मैदान का घास काट लेते हैं । औजार ऐसे चलाया जाता है जैसे नृत्य कर रहे हो । और उसके एक झोक में २-३ वर्ग फुट का घास काट कर एक सुन्दर व्यवस्थित ढग से गिर पडता है । फिर उसे उठा कर खाद बना लेते हैं । यह देख कर दो बाते ध्यान में आई । कुछ बरस पहले घास काटने के लिए मैंने भी साइथ के आधार पर एक तलवार जैसा साधन बनाया था । उससे काम भी खूब किया, पर कुछ कारणवश बात जम नही पाई । हमारे मैदानो, सडको आदि के किनारे इतने पत्थर ककड फैले रहते हैं कि इस प्रकार का औजार एक हाथ मारते ही पत्थरो से टकरा कर खराब हो जाता है । यानी काम नही होता । हम खेत से पत्थर चुनते है तो किनारे या सडक पर फेंक देते हैं और जब सडक से उठाते है तो खेतो में और किनारो पर फेंक देते हैं । उन लोगो के यहा कैसा है यह तो मुझे देखने का उतना मौका नही लगा, लेकिन यह बूढा मित्र जब एक दिन मैदान और किनारे का घास काट रहा था तो मैंने भी 'साइथ' का आनन्द लेने के लिये उससे माग कर चला कर देखा । औजार की धार ऐसी थी जैसी शायद उस तलवार की होती होगी जिसे क्षत्रिय लोग लडाई के पहले तेज कर लेते होंगे । आधा घन्टा चलाने के बाद भी उस पर एक भी ठेस नही थी । होती भी कैसे, वहा पत्थर ककड थे ही नही । हा, मैंने जिस स्थान पर औजार चलाया था वह कुछ भद्दा था, जब कि उसने जो जगह साफ की थी वह साफ थी ।

आम तौर पर काम मशीनो से ही होता है। एक विराट मशीन फसल काटती जाती है और उसी पर एक तरफ अनाज के बोरे भरे जाते हैं और दूसरी तरफ दो तीन फिट के भूसे के घनाकार बन्डल बन्ध कर ढेर हो जाते हैं। *इस प्रकार की मशीनों को देख कर ऐसा लगता था कि भारत में खेती या तो पूरे पूरे भारतीय ढग की होगी या अगर मशीने लगे तो ये सब आयेंगी ही। किन्तु जब घोडे के पीछे लगे ऐसे औजारो को देखा जिनसे हाथ का काम बहुत बडे परिमाण में कम हो जाता है तो हमारी खेती में सुधरे औजारों के लिए कितनी गुजाइश है यह महसूस हुआ।

नया सदर्भ नये साधना को लाता है और नये साधन पद्धतियो में आमूल परिवर्तन कर देते है, यह बात बडी सच्ची है। शायद खेती के मामले में भी उतनी ही लागू होगी। अगर ये औजार, जो घोडे के आधार पर इस्तेमाल किये जाते है, हम बैलो से चलाना चाहे तो बहुत आसानी से इसके अनुकूल बनाये जा सकते हैं। हा, उनके लिए कुछ आमूल परिवर्त्तन करने होगे—खास तौर पर सिचाई और उसके लिए जमीन तैयारी के सम्बन्ध में। ये औजार जमी काम देते है जब जमीन समतल हो। जैसे हम सिचाई के लिए क्यारिया और मुडेरे बनाते हैं वैसी धरती पर 'साइथ' भी काम नही करता, ये औजार तो करेगे ही नही। उन देशों में देखा कि वे सिचाई फव्वारो के जरिये देते हैं। एक किसान के खेत में जाकर यह अच्छी तरह देखा। पानी भी बहुत कम लगता है और जमीन भी ठीक रहती है। उसके लिए पानी को पाइप में दबाव से देते हैं। ऐसा दीखता है जैसे वर्षा ही हो रही हो।

हमारे खेतों में एक रौनक रहती है। जब देखो तब, बुआई, निराई, गोडाई और कटाई आदि हर समय। दर्जनो स्त्रिया निंदाई करती हुई महाराष्ट्र के खेतो में दिखाई देती हैं—फसल के दौरान में तीन–चार बार तो यह क्रिया होती ही है। यह बात वहा नही होती—ऐसा कुछ आभास हुआ। वे लोग निराई का काम करते ही नही। वहा घोडे गाडियो या मशीनो से फसल की दो कतारो के बीच बिलकुल मिट्टी की सतह से लग कर एसे रासायनिक तरल पदार्थ छिडकते है कि घास मर जाता है।

ऐसी अनेक बाते है जिनकी वजह से पश्चिम की खेती बिलकुल अलग ढग से विकसित हुई है। उसकी कई बाते अवश्य ऐसी है जिन्हे बिना संकोच और अपने सिद्धान्तों पर बिना कोई चोट पहुचाए अख्त्यार किया जा सकता है।

एक बात कुछ परेशानी की लगी, वह भी लिखना आवश्यक है। किसानो की माली हालत किसी भी हालत में और लोगो से खराब नही है। (इस समय मेरे सामने खास तौर पर उत्तरी योरोप के देशो के किसान हैं। उत्तरी योरोप दक्षिणी योरोप से बहुत अधिक विकसित है। दक्षिणी योरोप बहुत पिछडा हुआ है और वहां गरीबी भी खूब है।) एक

* मैंने एक परिवार में पूछा था कि क्या उन्हे अनाज सफाई के लिए उसे चुनना नही पडता? यह प्रश्न उन्हे कुछ जचा नही, क्योंकि अनाज तो साफ ही आता है दुकान से। तो क्या दुकान वालो को मजदूर लगा कर यह करना पडता है? उत्तर मिला उपरोक्त बात पर ध्यान पडने के बाद। जब अनाज जमीन पर पडे ही नहीं और कटाई के साथ भी जडो में चिपकी मिट्टी से बिलकुल मुक्त रहे तो मिट्टी पत्थर आयेंगे ही कैसे।

किसान के पास बीस-तीस गायें हो तो आवश्यक जमीन और आधुनिकतम ओजार सभी उसके पास होगें। को-आपरेटिवो के कारण और भी सुविधाएं है। उनके पास अच्छी बढिया मोटर होगी–ट्रक भी शायद अलग से हो, घरेलू *साधन तो अच्छे-से-अच्छे होगें ही।* तो भी परिवार के लडके खेती कार्य करे यह नही होता, वे शहर में काम करना अधिक पसन्द करते है। धीरे धीरे सभी नवयुवक शहरो के दफ्तरो या औद्योगिक काम करने के लिए निकल जाते है। हा, जो लडका खेत के कार्य में रह भी गया हो, या तो वह बुद्धि में कुछ कम होगा या घर का एक ही लडका होगा और खेत को सम्भालने के लिये उसका घर रहना बिलकुल ही आवश्यक हो गया हो, और या वह परिवार कुछ पुराने ढग का हो, यानी उसके सदस्यों के आपसी सबध कुछ पुराने ढंग के टिके रहे हों। मेरे पत्र में (मेरी विदेश यात्रा) मैंने जिक्र किया था, यहा तक कि कभी कभी इन लडकों से *पढी-लिखी शहरी लड़कियां विवाह भी* करना नही चाहती। पता नही, क्या विज्ञान को यह खोज भी करनी होगी कि खेती कार्य को मनुष्य समाज से समाप्त ही कर दिया जाय!

बहुत से लोगों को देखा कि अगर घर के पास जमीन है तो भाजी तरकारी और फूल उगाते हैं। इग्लैण्ड में भाजी तरकारी पैदा करने का शौक अधिक है। स्विजरलैंड, जर्मनी, हालैंड आदि में फूल हर जगह दिखाई देते हैं।

प्राप्ति स्वीकार

प्रकाशक : फाइड्स पबलिशर्स एसोसिएशन नोत्रदाम, इन्डियाना, संयुक्तराष्ट्र :

स्कूल्स एण्ड द मीन्स ऑफ एजूकेशन
लेखक–विलिस डी. नटिंग, पृष्ठ–१२६

प्रकाशक : ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विस, नई दिल्ली :

एजूकेशन इन ब्रिटेन पृष्ठ–६४

प्रकाशक–सर्वोदय प्रचुरालय, तंजौर, मद्रास :

द वोटर्स डिलेमा एण्ड सर्वोदय अप्रोच
लेखक–शकरराव देव, पृष्ठ–२३

प्रकाशक–सर्व सेवा संघ, राजघाट, काशी :

द पायस ऑफ प्लाण्ड इकोनामी इन इन्डिया (एक गोष्ठि का अहवाल) पृष्ठ–८४

नगर अभियान लेखक–विनोबा पृष्ठ–३१८

विदेशों में शान्ति के प्रयोग
लेखक–मार्जरी साइक्स पृष्ठ–८६

प्रकाशक–यूनैस्को, प्लेस द फोन्तेनोय, पेरिस ७ इ, फ्रांस :

टीचिंग अबाउट द फिल्म
लेखक–जे. एम. एल. पीटर्स पृष्ठ–१२०

स्टडी अब्रॉड पृष्ठ–७२२

आफ्रिका में विश्व शान्ति सेना द्वारा सत्याग्रह पदयात्रा

विश्व शान्ति सेना सम्मेलन का विस्तृत विवरण जनवरी के अंक में दिया गया था। विश्व शान्ति सेना की एक योजना यह थी कि अफ्रिका के देशो को स्वतंत्रता पाने के अहिंसक संघर्षों में शान्ति सेना सहायता करे। श्री माइकल स्कॉट, बायार्ड रस्टिन और बिल सदरलैण्ड का पत्र आया है कि वे इस कार्यक्रम को फौरन शुरू करनेवाले हैं। उन्होने हर देश से माग की है--तीन-तीन सत्याग्रहियो की, जिनमें वे चाहते हैं कि एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि का हो। ये शान्ति सैनिक टैगानिका से उत्तर रोडेशिया पदयात्रा करते हुए जायेंगे। उनके साथ स्थानिक शान्ति सैनिक भी होंगे।

इस कार्यक्रम का दूसरा हिस्सा है कि हर देश में श्री केनिथ कुआंडा जो रोडेशिया के एक श्रेष्ठ नेता है और जिन्होने अहिंसा को पूरा-पूरा अपनाया है, उनके राष्ट्र स्वातंत्र्य संग्राम को आसरा और सहायता देने की दृष्टि से प्रमुख व्यक्तियो द्वारा ब्रिटिश राजदूतो के पास निवेदन ले जाये जायें और शहरो में प्रदर्शन आदि किये जाय।

श्री कुआंडा ने विश्व शांति सेना के इस सत्याग्रह के कार्यक्रम पर अपने विचार एक मंतव्य के द्वारा प्रगट किये है–

"हमारी सहायता की माग के उत्तर में जो सहारा विश्व शान्ति सेना ने देना तय किया है उसका हम स्वागत करते हैं। हमें इस बात से विशेष प्रोत्साहन मिला है कि हमारे अहिंसक संग्राम को इतने देशों में अहिंसक आन्दोलन में लगे लोगो की एक मंडली का अनुभव प्राप्त होगा। हम विश्वास करते है कि उत्तर. रोडेशिया में इस सत्याग्रह को करने से मध्य और दक्षिण आफ्रिका के स्वातंत्र्य की कुंजी हाथ लगेगी।

"अगर अफ्रिका को अपनी सच्ची स्वतंत्रता की ओर उस रफ्तार से बढना है जिससे उसे बढना चाहिए तो हर जगह के स्वतंत्रताप्रेमी लोगों की सहायता की उसे अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि हमारा स्वतंत्रतासंग्राम हमारे या सारे आफ्रिका के लिए ही नही, बल्कि हर मानवता के न्याय्य और शान्तिपूर्ण जगत् निर्माण करने के संघर्ष का एक अंग है।"

स्वतंत्र भारत का हर नागरिक इस आन्दोलन में मदद करेगा ऐसी आशा है।

* * *

ग्रामभारती यात्रा

पिछले दिनो श्री धीरेन्द्र मजूमदारने "ग्राम भारती" की नूतन योजना प्रसारित की है। इसका प्रयोग इलाहाबाद जिले के बरनपुर ग्राम में शुरू भी कर दिया गया है। श्रम विद्यापीठ पमसना (जिला इलाहाबाद) से श्री धीरेन्द्र भाई की कटनी यात्रा १२ मार्च १९६२ से शुरू होगी तथा ५ अप्रैल तक चलेगी। इस यात्रा में २४ गावो में, प्रतिदिन एक ग्राम में पडाव के हिसाब से २४ पडाव इस प्रकार रहेंगे नमनपट्टी, भलुहा, घाव, उल्दा, देवघाट, ससारपुरा, पेंतिहा, गाढा, बडोखर, लौआकोन, भगतपुर, डीहो, लेडीयारी, पवारी, लिहुगीकला, बघोल, गोगरा, डिहार, टोगा, छापर, कोराव, बदोर, सिरोखर और ५ तारीख को पसना पहुंचना।

(शेषांश पृष्ठ २९० पर)

गांधीजी

गर्मी की छुट्टियों का उपयोग कैसे करें ?

[गांधीजी को विद्यार्थियों की सच्ची शक्ति का गहरा भान था। समय समय पर वे उन्हें सलाह देते रहते थे। उन दिनों विद्यार्थियों ने जो कार्य किया वह इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा। आज भी विद्यार्थी बहुत कुछ करना चाहते हैं। हमें उनकी इस शुद्ध वृत्ति और शक्ति का अंदाज नहीं है इसलिये उनका मार्गदर्शन नहीं कर पाते। उन्हें "भारतीय नागरिक" बनाने या अनुशासन में लाने के लिए कई तरह के फन्दे रचना हमने शुरू कर दिया है। जिस विद्यार्थी में गांधीजी करुणामय सेवक का और जगत नागरिक का चित्र देखते थे उसे हम राष्ट्रीयवाद का पुतला बनाना चाहते हैं। उसके हाथ में बन्दूक देते हैं। उसके मुंह में 'दुश्मन को मारो' का नारा देना चाहते हैं। 'दुश्मन को भी प्रेम करो' का मंत्र क्या केवल कल्चरल हिस्ट्री की पुस्तकों में पढने मात्र तक सीमित रहने के लिए है ? गांधीजी के ये सुझाव जो उन्होंने 'यंग इण्डिया' २६-१२-२९; ५-११-३१ और हरिजन १-४-३३ में दिये थे कल्चरल हिस्ट्री की टेक्स्टबुक में पढने के लिये नहीं बल्कि विद्यार्थी अपने जीवन को कल्चर्ड बना सकें इसलिए है।

—सम्पादक]

विद्यार्थियों को अपनी गर्मी की पूरी छुट्टियां ग्राम सेवा में बितानी चाहियें। इसके लिए बने बनाये रास्ते पर चलने के बजाय वे अपनी संस्थाओं के पासके गांवों में घूमते हुए जायें, गांववालों की हालत का अध्ययन करें और उन्हें अपने मित्र बनायें। यह आदत उन्हें गांववालों के सम्पर्क में लायेगी। जब विद्यार्थी उनके बीच रहने के लिए जायेंगे, तब गांववाले मौके-मौके पर स्थापित हुए पूर्व सम्पर्क के कारण मित्रों की तरह उनका स्वागत करेंगे, न कि अजनबी मानकर उन्हें शक की निगाह से देखेंगे। गर्मी की लम्बी छुट्टियों में विद्यार्थी गांवों में जाकर रहें और प्रौढों के वर्ग चलायें, गांववालो को सफाई और स्वच्छता के नियम सिखायें और मामूली बीमारों की सेवा शुश्रुषा करें। वे गांव में चरखा भी दाखिल करें और ग्रामवासियों को अपने एक एक मिनट का सदुपयोग करना सिखायें। ऐसा करने के लिए विद्यार्थियों और शिक्षकों को छुट्टियों के उपयोग की दृष्टि में संशोधन करना होगा। अक्सर विचारहीन शिक्षक छुट्टियों में करने के लिए बहुतसा घर-काम विद्यार्थियों पर लाद देते हैं। मेरी राय में यह हर हालत में बुरी आदत है। छुट्टियों का समय ऐसा है जब विद्यार्थियों के दिमाग स्कूल कॉलेज के प्रतिदिन के काम के बोझ से मुक्त होने चाहिये, और उन्हें स्वावलम्बी बनने और मौलिक विकास करने का मौका दिया जाना चाहिये। मैंने जिस ग्रामसेवा के काम का जिक्र किया है, वह उत्तम प्रकार का मनोरंजन है और उसमें बिना किसी बोझ के विद्यार्थी गंभीर न लगनेवाला शिक्षण भी प्राप्त करते हैं। जाहिर है कि यह पढाई खतम करने के बाद केवल ग्रामसेवा के ही लिए अपने आपको समर्पण कर देने की उत्तम तैयारी है।

अब समग्र ग्रामसेवा की योजना का विस्तृत वर्णन देने की जरूरत नही रह जाती। छुट्टियो में जो कुछ किया गया था उसे अब स्थायी रूप देना है। गाववाले भी ज्यादा उत्साह से इसका जवाब देने के लिए तैयार रहेगे। अब ग्राम जीवन के आर्थिक, सफाई तथा स्वास्थ्य सबधी, सामाजिक, राजनीतिक हर पहलू को छूना होगा। बेशक, अधिकतर गावो की आर्थिक कठिनाई का तात्कालिक हल चरखा ही है। वह तुरन्त गाववालो की आमदनी बढाता है और उन्हे बुराइयो से बचाता है। स्वास्थ्य सबधी काम में गाव की गन्दगी को दूर करना और उसे रोगो से मुक्त रखना आता है। यहा विद्यार्थी से यह आशा रखी जाती है कि वह खुद परिश्रम करके मैले और दूसरे कचरे को दबाने और उसे खाद के रूप म बदलने के लिए खाइया खोदेगा, कुओ और तालावो की सफाई करेगा, आसानी से तैयार होनेवाले बाध बनायेगा, गाव का कूडा कचरा साफ करेगा और आम तौर पर गाव को ज्यादा रहने लायक बनायेगा। ग्रामसेवक गाव के सामाजिक पहलू को भी छुएगा और लोगो को छुआछूत, बाल विवाह, अनमेल विवाह, शराब और अफीम गाजे का व्यसन तथा अन्य स्थानीय अन्धविश्वास आदि कुरीतियो और कुटेवो को छोडने के लिए प्रेमपूर्वक समझायेगा और राजी करेगा। अन्त में राजनीतिक पहलू आता है। इसके लिए ग्रामसेवक गाववालो की राजनीतिक शिकायतो का अध्ययन करेगा और उन्हे हर बात में स्वतन्त्रता, आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा सिखायेगा। मेरी राय में इसमें सम्पूर्ण प्रौढ शिक्षण आ जाता है। लेकिन इससे ग्रामसेवक का काम पूरा नही हो जाता है। उसे गाव के बच्चो की देखभाल का काम हाथ में लेना चाहिये, उन्हें तालीम देना शुरू कर देना चाहिये और प्रौढो के लिए रात्रिशाला चलाना चाहिये। यह अक्षर ज्ञान सपूर्ण शिक्षाक्रम का केवल एक भाग और ऊपर बताये गये विशालतर उद्देश का साधनमात्र है।

मेरा दावा है कि इस ग्रामसेवा के लिए उदार हृदय और पूर्ण शुद्ध चरित्र अत्यन्त आवश्यक है। ये दो मुख्य गुण ग्रामसेवक में हो, तो दूसरे गुण अपने आप उसमें आ जायगे।

° ° °

अपनी योग्यता को आम रुपया आना पाई में भुनाने के बजाय देश की सेवा में अर्पित कीजिये। यदि आप डाक्टर है तो देश में इतनी बीमारी है कि उसे दूर करने में आपकी डाक्टरी विद्या काम आ सकती । यदि आप वकील है तो देश में लडाई झगडो की कमी नही है। उन्हें बढाने के बजाय आप लोगों में आपसी समझौता करायें और इस तरह बिनाशक मुकदमेबाजी को दूर करके लोगो की सेवा करे। यदि आप इजीनियर हो तो अपने देशवासियो की आवश्यकताओ के अनुरूप आदर्श घरो का निर्माण करे। ये घर उनके साधनो की सीमा के अन्दर होने चाहिये। और फिर भी शुद्ध हवा और प्रकाश से भरपूर तथा स्वास्थ्यप्रद होने चाहिये। आपने जो भी सीखा है उसमें ऐसा कुछ नही है।

° ° °

जहा गर्मी की छुट्टियो के उपयोग का सवाल है, विद्यार्थी यदि उत्साह के साथ काम हाथों में ले, तो वे जरूर बहुतसी बाते कर सकते हैं उनमें से कुछ मैं यहा देता हू :

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

जाता है तो उसे मेरी आसबोर्न के केन्द्र में ले जाती हैं। वे मुझे भी वहां ले गई थी। एक छोटे से गांव में मेरी बहन कताई-बुनाई के उद्योग को केन्द्र बनाकर सेवा कर रही हैं। वे खास तौर पर बच्चों और स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दे रही हैं। वे कहती हैं कि जो उन्होंने गांधीजी से उनकी इंग्लैण्ड यात्रा के समय लंदन में सीखा था वे उसी को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न कर रही हैं। इस बहन की इस श्रद्धा और साहस को देखकर मेरा मन भर गया। जब स्वदेश वापस घर आया तो डाक में देखा कि उनका एक पत्र भी यहां पहुंच गया। गांधी का परिवार कितना बडा है, यह हम बहुत कम महसूस कर पाते हैं।

लंदन आठ दिन रहा। नये पुराने मित्रो से मिलना, म्यूजियम और कलासग्रह देखना, और मिटिंगो में भाग लेना, यह इतना चला कि आठ दिन कैसे बीत गये यह मै जान भी न पाया। बहुत व्यक्तिया से मिलने की आशा रखी थी, उनमें से आधो से भी नही मिल पाया। उसका बडा खेद है। भाई श्री जयप्रकाश लंदन में आणविक शस्त्रों के विरोध में होने वाले सम्मेलन के लिये आये थे। वे बारह सितम्बर को विश्व शांति सेना की तैयारी में होनेवाले सम्मेलन में भी उपस्थित हुए थे। उनसे मिलकर बहुत अच्छा लगा था। हेनोवर आते समय दो दिन ज्यूरिख में था। तब हमारे नवयुवक मित्र राबर्ट अबनाथर के परिवार के साथ रहा था। वहां बहन विमला ठकार भी थी। वे दो दिन ऐसे रहे थे, जैसे हम भारत में ही अपने परिवार में हों।

लंदन के दो आणविक युद्ध विरोधक प्रदर्शनों को प्रत्यक्ष देखकर एक दर्शन ही हुआ था। शांति का आंदोलन तरह-तरह से जगह-जगह पर हो रहा है। और वह बढ रहा है, यह भी देखा।

लंदन के बाद आठ नौ दिन पैरिस में रहा। एक कोठडी में बिल्कुल स्वतन्त्र ढंग से पैरिस में रहूंगा, यह कल्पना नहीं कि थी। पर बडा मजा आया। बिलकुल आवारा की तरह घूमता था और मुख्य काम मेरा था कला दर्शन। नोत्रदाम का गिरजाघर, लूव्र और गीमें सग्रहालय और शात्र का गिरजा देखने की जो अभिलाषा थी वह पूरी हुई। पैरिस भी अेक निराला नगर है और अैसा नगर जो केवल पैरिस ही हो सकता है। फ्रान्स का बैलेट थियेटर भी देखा। अुनकी कला रुचि का स्तर देखकर मैं तो अवाक् रह गया।

पैरिस के बाद स्टुटगार्ट, मूनशेन, डूसेल-डार्फ, बिलेफेल्ड, बूर्त्बर्ग और हैमबर्ग आदि पश्चिमी जर्मनी के शहरों में भूदान और शांति सेना पर व्याख्यानो का कार्यक्रम मित्रों ने आयोजित किया था। वहां के अनेक व्यक्तियो के साथ मिलता हुआ और जहां-जहां सभव हुआ शिक्षा के केन्द्रों को देखता हुआ दस अक्तूम्बर को पूर्वी बर्लिन पहुंचा। पश्चिमी जर्मनी में खास तौर पर कुछ रूडाल्फ़ स्टाइनर शालायें और कुछ आधुनिक स्कूलों को देखा। अुनका वर्णन मौका लगने पर भविष्य में देने का प्रयत्न करूंगा।

ईस्ट जर्मनी में खास तौर पर शिक्षा व्यवस्था का ही अध्ययन किया। अुस पर अलग से लेख लिखूगा। यहां तो केवल इतना कह दूं कि वे लोग शिक्षा के बारे में सचेत हैं और सबसे बडी बात जो मुझे लगी वह यह थी कि राष्ट्र क हर बालक

बालिका, जवान और बूढे सभी की शिक्षा का इन्तजाम हो रहा है। जो लोग ऊंची शिक्षा के बारे में कल्पना भी नही कर सकते थे वे भी आज उसे पा सकते है और पा रहे हैं। वहा शिक्षा डिग्री पाने के लिये नही, बल्कि राष्ट्र की संपत्ति बढे, इसके लिये हो रही है। आप उनके जीवनदर्शन से सहमत भले हो न हों, पर उन की कोशिशें उनके अपने रास्ते की दृष्टि से कितनी साफ हैं यह चीज सराहनीय है। बर्लिन, ड्रेसडन, वायमार, एरफोर्ड इत्यादि स्थानों में जाकर शिक्षा के अलग अलग पहलुओं को देखा। बर्लिन में उनकी पीस कौन्सिल के लोगो से भी मिला। उनसे हिंसा और अहिंसा के विषय पर खूब अच्छी चर्चा हुई। आज वे कहते हैं कि अहिंसा ठीक चीज है, किन्तु व्यावहारिक नही है। वह गलत है—यह कहने का आज किसी को साहस नही। जर्मनी जाकर वहां के दार्शनिक गोयेते के घर का दर्शन कर सकूगा यह इच्छा भी पूरी हुई और इतनी पूरी हुई कि जितनी कल्पना भी नही की थी। गोयते के शहर में जाकर गोयेते की सर्वोत्तम कृति का नाटक वहा के थियेटर में देखा। फौस्ट देखने का यह सयोग बडा आनददायक था।

जर्मनी से दो बार हालेण्ड गया जिसका जिक्र ऊपर किया ही है। वहाँ के मित्र श्री कारहूक ने मेरी यात्रा का अधिकतर इन्तजाम किया था। अुन्होंने बेल्जियम में कुछ मित्रो से जब इसका जिक्र किया था तो वहा के कुछ शहरो के शातिवादी मित्रो का बुलावा मेरे पास आया। अन्टवर्प, लियेज आदि स्थानो पर अच्छी सभाए हुई। विनोबाजी और भूदान आन्दोलन के बारे में जानने की कितनी उत्सुकता है इसका अनुभव सब जगह पर होता है। लियेज जैसे शहर में अकस्मात् एक बहन से मुलाकात हो गई। मुझे कुछ असमंजस हुआ, किन्तु बडा सुखकर असमंजस। इस बहन ने विनोबाजी से मिलना तो क्या, उनके बारे में अधिक जानकारी न पाते हुये भी उनके काम पर लिखी हुई सुरेशराम भाई की पुस्तक का अनुवाद किया है। क्या बात है कि यूरोप के उस कोने में बैठी हुई एक बहन को इस आन्दोलन के प्रति इतनी श्रद्धा पैदा हो!

अब तक जो कार्यक्रम रहा वह इतना दौड-धूप का था कि मैं खूब थक चुका था। कभी कभी इच्छा होती थी कि बाकी का छोडकर वापिस स्वदेश लौट जाअू। किन्तु विश्व शांति सेना के बैरूथ सम्मेलन में भाग लेना था और साथ-साथ यूगोस्लाविया जाने का कार्यक्रम वहां की सरकार के साथ, दो बार समय अदल-बदल करने के बाद तय हो चुका था। मैंने निर्णय किया कि जाकर कहीं आठ दस दिन आराम कर लू। स्विट्ज़रलैण्ड के राजदूत श्री वेलोडी और उनके परिवार के साथ हमारा घनिष्ठ परिचय है। मैंने उन्हे लिखा और सीधा स्विट्जरलैण्ड चला गया। बर्न पहुचने के पहले जेनिवा के पास एक गाव में, जिसका नाम आवूई है, एक किसान परिवार में दो दिन रहा। इंग्लैण्ड में किसान जीवन के साथ थोडासा परिचय हुआ था। पर यहा तो उस वातावरण में दो दिन रहकर काफी समझने का मौका मिला। यह एक गाव है किन्तु इन किसानो को शहर की सभी सुविधायें उपलब्ध है। उनके जीवन का स्तर किसी भी हालत में शहरी-जीवनस्तर से नीचा नही है। कई बातो में, जैसे हम लोग यहा भारत में भी देखते है, उन्हे अधिक सुविधायें रहती है, खानेपीने की चीजें बिल्कुल ताजी और सस्ती। पर एक बात देखकर वर्तमान समाज व्यवस्था के ऊपर विश्वास और भी कम हो गया। किसान के लडके वहां भी

किसान बने रहने के लिये तैयार नही है। यदि परीस्थितिवश या कुछ बुद्धि की कमी के कारण किसी को रहना भी पडा तो वह सामाजिक जीवन में सर्वमान्य स्तर पर पहुंच सकेगा, इसकी उसे आशा ही नही रहती। यहां तक कि कोई पढीलिखी लडकी उससे विवाह करने के लिये शायद ही तैयार होगी।

बर्फ पडनी शुरू हो गयी थी। थोडी थोडी पड रही थी। खूब बर्फ-ढके देश को देखने की इच्छा थी। पहली रात इधर तो बर्फ नही पडी, लेकिन कुछ दूर के पहाडो पर देखा कि वे बर्फ से ढके हैं। मेरे आतिथेय ने कहा कि यदि मै उन पहाडियो तक जाना चाहता हूँ तो स्विटजरलैण्ड की सरहद पार कर फ्रान्स में जाना होगा। सरहद पार करने का भी एक नशा हो जाता है। मुझे लगा कि जरूर आज फिर एक बार फ्रान्स की सरहद पार करके वापिस आया जाय। हम सब उन बर्फीली पहाडियो पर घूमने गये। वहा देखा अनेक परिवार अपने बच्चों को लेकर बर्फ में खेलने आये हैं। बर्फ का जीवन कठिन होता है। असके बावजूद भी उन्होने उसे कम कठिन बनाने के लिये बर्फ को अपना खेल का साथी बना लिया है।

बर्न में बिल्कुल अपने घर में रहने के जैसे दस दिन रहा। उसके बाद फिर एकबार ज्युरिख दो दिन के लिये अेब्रनाथर परिवार के साथ। रार्बट के माता-पिता ने दोनो बार मुझपर स्नेह की वर्षा की।

सोचीलियी रहते समय दानिलो के साथी श्री अडुवार्डो से घनिष्ठ मित्रता का सम्बन्ध महसूस किया ही था। उन्होने आग्रह के साथ लिखा कि मै उनके घर होता हुआ इटली जाऊँ। वे स्विटजरलैण्ड के दक्षिण में आस्कोना में रहते हैं। छः माह दानिलो के केन्द्र में और बाकी छः माह यूरोप के देशों में समाजसेवा के कार्यों का अध्ययन करते हैं। पिछले दिनों उन्होंने डेढ दो महीना स्पेन की परीस्थिति का अध्ययन किया था। दानिलो छः सप्ताह रूस भ्रमण करके आये थे और सिमली जाने के रास्ते में अडुवार्डो के साथ उनकी मुलाकात हो गयी थी। स्पेन के अनुभव और दानिलो के रूस के अनुभव जानने की उत्सुकता थी, इसलिये स्विटजरलैण्ड से इटली जाते समय आस्कोना का रास्ता लिया। एक दिन श्री अडुवार्डो और उनके परिवार के साथ रहा। आस्कोना में कुछ व्यक्तियो न मिला और वहा का प्राकृतिक सौन्दर्य आकण्ठ पान किया।

आस्कोना से मिलानो आते समय स्विटजरलैण्ड की बर्फीली चोटी सेन्ट गोथार्ड का दर्शन किया और बर्फ से ढकी धरती के ऊपर से दर्जनो सुरगो में से गुजरते हुए मिलानो पहुचा। मौसम बिल्कुल बदल चुका था। इटली में जाते समय ऐसा लगता था कि मानो किसी ट्रापिकल आबोहवा में ही हू। पहले तीन-चार महीने सोचता था कि न जाने क्यों यूरोप के लोग अपनी आबोहवा को मेघा से और कोहरे से भरी आबोहवा मानते हैं। कई बार मित्रो से मजाक करता था कि भारत वापिस जाने के बाद सबसे कहूगा कि यूरोप भी धूप का ही देश है। मेरा भाग्य कुछ अच्छा था, जहा-जहां उन महीनो में गया था मुझे धूप ही मिली थी। पर अब पता चला किसे कहते हैं यूरोप को आबोहवा। दोनो तीनों दिन मिलानो कोहरे से ढका रहा। वैसे मुझे वहां दो तीन चीजें ही देखनो थी और उनमें भी खास तौर पर लियोनार्डो का भित्तिचित्र

'लास्ट सपर' और माइकल एजेंलो की कुछ मूर्तिया। यहा भी वही बात। सैकडो बार अच्छी फोटो आदि इन कृतियो की देखी थी, किन्तु जो प्रत्यक्ष देखा वह कुछ अलग ही दुनिया की चीज है।

मीलानो से फ्लारेन्स। वृद्ध महिला मारिया कौबर्ती ने कमरा दिखाया और एक लम्बे से पुराने लाल चोगे की तरफ इशारा करते हुए कहा "कपडे बदल कर इसे पहन लेना। जब मेरा लडका यहा रहता है वह इसे पहनता है।" पाच दिन इनके मातृत्व की छाया में बडे मीठे कटे। और फिर शहर भी फ्लॉरेन्स। कला जगत् की स्वप्न नगरी। इसका जिक्र यहा करते नही बनेगा। मारीया काबेर्ती क्वेकर हैं और इटली में शाति कार्य के प्रति बडी सवेदनाशील और सहायक। इसलिये तरह-तरह के लोगो से मिल पाया। एक बैठक साहित्यकारो की हो रही थी न जाने क्यो उन्होने मुझसे हमारे इस कार्य के बारे में कुछ कहने के लिये कहा। मै जानबूझकर पन्द्रह मिनट ही बोला। मुझे कुछ ऐसा लगा कि क्यो मैने उस दिन कुछ कहने का स्वीकार किया ! क्योकि इन लोगो को जो इस सुख दुःख की दुनिया को छोडकर सात आसमानो के पार उडान ले रहे थे, पकडकर इस दुःखमय धरती के ऊपर पटकने जैसी बात हो गई। चलो, अच्छा ही हुआ इन सब मित्रो ने कहा कि वे मेरे इस छोटे समापण से बडे खुश हुए। क्योकि मैने जो बात की वह इस तरह के श्रोताओ के सामने आम तौर पर कोई नही कहता और क्योकि मै न इन श्रोताओ से परिचित था और न इस साहित्य क्लब के रग से, मैंने यह कह डाली। अगर मै वही का व्यक्ति होता तो मैं भी शायद ही कह पाता। वैसे तो मैने कुछ भी नही कहा, केवल इतना कहा कि दुनिया में बहुत एसे लोग हैं जिन्हें दो वक्त का खाना भी नही मिलता और विनोबाजी इसी प्रकार की समस्याओ को प्रेम से हल करना चाहते हैं।

मिलानो से रोम। वहा जो परीचय थे, शातिनिकेतन के मेरे एक परम मित्र द्वारा दिये गये थे। चार पाच दिन उन्ही की सहायता से रोम दर्शन हुआ। वह भी एक कमाल का शहर है। दो हजार वर्षों का इतिहास। कला के श्रेष्ठतम नमूने। सस्कृति का एक अपना ही स्वरूप। रोम से असीसी और पर्जिया देखते हुए वेनीसिया गया। जो असर असीसी ने मुझपर किया उसका वर्णन करना मेरे लिये शायद ही कभी सभव हो। सन्त फ्रांचेस्को की सन्निधि की अनुभूति वहा के एक-एक पत्थर और पत्ते में होती थी। गिरजे के मोजेक आदि की कला, उसकी भव्यता तो मेरे लिये एक आदर्श थी ही, किन्तु असीसी की गलियो म पायचारी करने का सुख भी अपूर्व था।

वेनीसिया पहुचने के पहले कुछ घण्टो के लिये रावेन्ना, वहा के रोमन मोजक देखने के लिये रुक गया था। वेनीसिया अपने ढग का ससार में एक ही नगर है। कला की दृष्टि से श्रेष्ठ। ८० प्रतिशत से अधिक यातायात किस्तियो में होती है। सडके यानी नहरे। किन्तु टूरिस्टो का है यह शहर। जो बढिया काफी का प्याला साठ लिरे में रोम में मिलता है वह तो शायद बडे महगे होटल या बार में मिले। साधारण बार में उसकी कीमत सौ सवा सौ से भी अधिक।

इसके बाद बारह दिन युगोस्लाविया। अच्छे खासे ठडे बारह दिन और उनमें से अधिकतर बर्फीले। युगोस्लाविया की सरकार

ने बड़े आदर के साथ जिस-जिस तरह के शिक्षा केन्द्र मैं देखना चाहता था, दिखाये। वहां अंग्रेजी बोलने वाले लोग पूर्वी जर्मनी के मुकाबले अधिक मिले, इसलिये सामान्य तौर पर बातचीत भी अधिक कर सका। वहा के शिक्षा-अनुभवो के बारे में भी अलग से लिखना चाहता हू। आखिर उनका प्रसिद्ध कोआपरेटिव योगदेन्सी देखते हुए उन्नीस तारीख को एथेन्स पहुंचा।

कितने लोग एथेन्स देखने के लिये तरसते रहते है। क्यो यह वहा जाकर ही पता चलता है। दुर्भाग्यवश मेरा जहाज, बैरूथ जानेवाला बीस को निकलना था। मुझे एक ही दिन एथेन्स में मिला। छीन-झपटकर लेने को भी क्या लेना कहना? इसी तरह जो एथेन्स छीन झपट-कर देख लिया उसे भी क्या एथेन्स देखना कहेंगे।

भूमध्य सागर का वह भाग खूब क्रुद्ध था। चार दिन की यात्रा काफी हिलने-डुलनेवाली रही। यहा भी मेरा भाग्य अच्छा ही रहा। जहाज के अधिकतर मुसाफिर उल्टी करते-करते बैरूथ पहुचे। मै डैक पर की डोरोमीटरी में था। रात को सोते-सोते कभी इधर से उल्टी करने की आवाज और कभी उधर से उल्टी करने की आवाज। तिसपर भी मै मस्त रहा। पता नही भाग्य ने काम किया या उन गोलिओ ने जो मैंने सफरी के शुरू होते ही ले ली थी।

बैरूथ में चौबीस को पहुचा और पहुच कर सम्मेलन की तैयारी में जो कुछ सामान्य-सी सहायता हो सकती थी, करने का प्रयत्न किया। सत्ताईस दिसम्बर की शाम से विश्व शांति सेना सम्मेलन शुरू हुआ। उसका विस्तृत अहवाल पिछले माह के अंक में अलग से पेश किया ही है। दो तारीख को भाई सिद्धराज और मैं हवाई जहाज से काहिरा आगये। मुझे तीन तारीख को स्वदेश आने के लिये पार्ट सईद से जहाज पकडना था और भाई सिद्धराज को अफ्रिका के कुछ देशों की यात्रा। वे अगले दिन मुझे पोर्ट सईद जहाज तक छोडने के लिये मेरे साथ आये। सिद्धराज भाई के साथ एक पूरे दिन पोर्ट सईद जैसे शहर में आवारागर्दी करने का यह सुख मिलेगा, कभी सोचा भी नही था याद रहेगा हमेशा यह आनद।

'एशिया' बहुत आराम का जहाज है। हम बिल्कुल शात समुद्र को पार करते हुए १३ तारीख को बम्बई पहुच गये।

सात महोनो के विदेश भ्रमण में बहुत कुछ सीखने को मिला। बहुत स्नेह मिला और बहुत सहायता। भारत के प्रति इतनी श्रद्धा देखकर कभी मन भर जाता था, कभी अपने ऊपर गर्व और कभी होता था सकोच। किन्तु आम तौर पर यही सोचता रहा, "क्या हम उस श्रद्धा के सच्चे पात्र है, यह सिद्ध कर पायेंगे?" जब विनय महायता करता था तब मन कहता, 'यह श्रद्धा न भारत के प्रति है न भारत वासियों के प्रति वह तो उस महान् आत्मा के प्रति है जिसने इस आशाहीन युग में दुनिया को दिखाया कि मनुष्य प्रेम के आधार पर अपना जीवन सुखपूर्वक बिता सकता है।"

आप सबको सप्रेम जयजगत्

सेवाग्राम आपका
३० जनवरी १९६२ देवीभाई

टिप्पणियाँ

विज्ञान की शिक्षा

श्री जे. बी. एस. हालडेन ने 'विज्ञान की शिक्षा' के बारे में एक विद्वत्तापूर्ण लेख दैनिक पत्रिका 'टाइम्स आफ इंडिया' (१५ फरवरी १९६२) में प्रकाशित किया है। नई तालीम के पाठकों को भी उसमें विचारणीय बाते मिलेगी। भारत सरकार ने विज्ञान की पढाई के बारे में एक समिति कायम की है। इस लेख का उद्देश्य, इसी समिति के भावी कार्य को सामने रखते हुए, विज्ञान शिक्षा के सिद्धान्तों और पद्धति पर नया प्रकाश डालना है। वे लिखते है :

"छात्र चार मुख्य कारणों से विज्ञान सीखें। ये चार उद्देश्य ये होंगे : पहला–सांस्कृतिक, दूसरा–विज्ञान का जीवन में अमल, तीसरा–पढाना और चौथा–शोध का कार्य। मेरे ख्याल में जो विज्ञान से अनभिज्ञ है उनको संस्कारी नही कहा जा सकता। हर भारतीय व्यक्ति यह जानता है कि महीनों का नाम उन नक्षत्रो के नाम से रखा गया है जिन नक्षत्रो में पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा का योग होता है। जैसे ज्येष्ठ कार्तिक आदि। यह तरीका योरोप के नाम रखने के तरीके से कही अधिक वैज्ञानिक है। यूरोप में महीनो के कुछ नाम देवताओ के नाम पर तो कुछ राजाओं के नाम पर पडे। कुछ संख्या के आधार पर पडे। कुछ ग्रहो के नाम पर पडे। इंडिया स्टैटिस्टीकल इन्स्टिट्यूट में पढाते समय मुझे विदित हुआ कि कुछ छात्र कार्तिक तो जानते थे लेकिन ज्येष्ठ, उत्तरा और फाल्गुनी आदि उनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' थे। इससे मुझे आश्चर्य और खेद हुआ। हरेक भारतीय बच्चे को इन नक्षत्रों की पहचान सीख लेनी चाहिये। ताकि वे आगे चल कर ये समझ सकते हैं कि जो महीना आज ग्रीष्म काल में पडता है वह दो हजार साल पहले क्यों दूसरी ऋतु में पडता था।

ऋषि पाणिनी विशेषज्ञ नहीं थे, लेकिन उन्होंने शब्दों और वनस्पतियों, दोनों का खूबी के साथ वर्गिकरण किया है। शब्दों के वर्गिकरण का अध्ययन तो होता है लेकिन मेरी राय में वनस्पति के वर्गिकरण के अध्ययन से हम पाणिनी का ज्यादा अध्ययन कर सकते हैं।

अगर हर बच्चे के लिए विज्ञान की पढाई जरूरी हो तो हमारी समिति का यह बहुत महत्त्वपूर्ण काम होगा कि यह विज्ञान शिक्षा का काम साधनों के बिना कैसे किया जा सकता है इसका निर्णय करे। यह अवश्य संभव है। अगर बच्चों को नक्षत्रों, वनस्पतियो, कीडे मकौडों तथा जानवरो से अच्छी तरह परिचित किया जाय तो उनको उस जगत के प्रति प्रेम और आदर-भाव सहज उत्पन्न होगा जिसमें उन्होने जन्म लिया है। स्कूल के शिक्षणकाल में आरोग्य शास्त्र का थोडा भी ज्ञान मिला हो तो मातायें अपने बच्चों को भली भांती सभाल सकती हैं, और उनको कई खतरों से बचा सकती हैं। भौतिक शास्त्र का थोडा सा ज्ञान भी हो तो कुशल कारीगर को अपनी मशीन को समझने की दृष्टि आ जायेगी।

विज्ञान के शिक्षकों की तैयारी के लिए कुछ मुख्य बातो पर ध्यान देना जरूरी है। शिक्षक को जितना वह सिखायेगा उससे कहीं अधिक जानकारी होनी चाहिये ताकी वह बच्चों के सवालों का उचित जवाब दे सके, खास तौर पर उन प्रश्नों का जो प्रत्यक्ष कार्य के दौरान में उठते हैं। शिक्षक को अपने विषय का सम्बन्ध दूसरे विज्ञानो के साथ क्या और कैसा है यह जान लेना चाहिये। उदाहरण के लिये-शिक्षकों को यह

जानकारी होनी चाहिये कि भारत में कौनसे कौनसे अनाज हजारों साल से पैदा किये जाते हैं; मकई तथा आलू कब से भारत में आये और कहां से आये ? विज्ञान में प्रगति होती रहती है, इसलिये विज्ञान के शिक्षकों के लिये हर पांच दस सालों के बाद प्रशिक्षण (रिफ्रेशर कोर्स) का इन्तजाम होना जरूरी है। हमें विज्ञान के शिक्षण को अपने देश की परम्परागत संस्कृति के आधार पर नये सिरे से खड़ा करना होगा। पाश्चात्य देशों का हू-ब-हू अनुकरण करने में विशेष लाभ नहीं हो सकेगा। विज्ञान की शिक्षा को सार्वजनिक बनाने की दृष्टि से इजराइल तथा रशिया में सफल प्रयोग किये गये हैं। जिनसे ये समिति फायदा उठा सकती है। मेरा डर है शायद ऐसा न हो, और ये सारा कार्य ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के द्वारा हो जाय जिन्होने छोटे बच्चो को कभी नहीं पढाया। लेकिन आज जो यह समिति निर्णय लेगी उसपर भारत वर्ष की १९८१ की मालो-हालत तथा संस्कृति निर्भर रहेगी।"

ये शब्द हालेडन जैसे वैज्ञानिक के हैं, यह ख्याल रहे रा. शंकरन

अंग्रेजी के बारे में भ्रम

'तीसरी योजना में शिक्षा' विषय पर आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से भाषण करते हुए योजना आयोग के सदस्य, श्री श्रीमन्नारायण ने कहा कि कुछ शिक्षाविदो का यह विचार गलत है कि प्राइमरी स्कूलों से ही अंग्रेजी की शिक्षा शुरू करने को बढावा देने से देश की एकता बढ़ेगी। उन्होंने कहा कि देश की परम्परा और आवश्यकता के अनुसार बनाई गई सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली से ही देश का भला हो सकता है।

श्री श्रीमन्नारायण ने कहा कि कुछ शिक्षाविद् यह सोचते हैं कि बच्चों को आरंभ से ही अंग्रेजी पढाने से देश की एकता दृढ होगी। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि कुछ राज्य सरकारों ने प्राइमरी स्कूलों में तीसरी कक्षा से ही अंग्रेजी पढाना शुरू करने का निश्चय किया है।

उन्होंने कहा कि मेरी समझ में यह कार्रवाई गलत है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजी एक समृद्ध भाषा है और बहुत से लोग उसे समझते हैं। उन्होंने कहा कि हमें अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हमारी शिक्षा प्रणाली में अन्य विदेशी भाषाओं को भी स्थान दिया जाना चाहिये, लेकिन अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं को आवश्यकता से अधिक बढावा नहीं देना चाहिए। श्री श्रीमन्नारायण ने कहा कि सर जान सार्जेंट ने भी हाल में यह विचार प्रकट किया है कि छठी श्रेणी से पहले स्कूलों में अंग्रेजी में पढाना ठीक नहीं होगा। यदि इन कक्षाओं में अंग्रेजी का अध्यापन वांछित हो, तो भी इसके लिए देश में पर्याप्त प्रशिक्षित अध्यापक नहीं है। उन्होंने आशा प्रकट की कि राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में अपने निर्णय पर फिर विचार करेंगी।

उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा प्रणाली सही मायने में भारतीय होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपने बच्चों को राष्ट्रीय संकीर्णता सिखाएं। विद्यार्थियों को दूसरे देशों की अच्छी बातें सीखनी चाहिएं, लेकिन इसके साथ उन्हें ऐसा वातावरण भी मिलना चाहिए कि उन्हें इस देश का नागरिक होने का गर्व अनुभव हो और वे देश की समृद्धि और उन्नति के लिए भरपूर काम कर सकें।

पुस्तक परिचय

विश्व साक्षरता की ओर (टुवर्ड-वर्ल्ड लिटेरेसी)
लेखक : फ्रांक सी. लौबाक और रॉबर्ट एस. लौबाक
प्रकाशक : सिरेक्यूज़ युनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ–३३५
कीमत–पौने पाच डॉलर (लगमग २० रुपये)

मानवता के हर संभव 'अभावों' ने करुणा और सेवा और शोध के उपक्रम की एक परम्परा सदा से प्रवाहित रखी है। 'साक्षरता का अभाव' भी उनमें से एक रहा। इस अभाव ने भी अन्यान्य देशों के अनेक तपस्वी और तेजस्वी 'सहृदय लोगों में' करुणा और सेवा का प्रादुर्भाव किया। डाक्टर लॉबक इस बिरादरी के भीष्म पितामह कहे जाते हैं। उन्होंने करीब ९० देशों में उपक्रम किये। वे मिशनरी हैं, पूरे अर्थ में। उन्होंने देश-देश में इस अभाव का अध्ययन किया, इसके प्रति चेतना जगाई, करुणा जगाई, पद्धतियां बनाई और प्रौढ-साक्षरता के आन्दोलन खडे किये हैं।

यह पुस्तिका उनके इन सभी उपक्रमों का संग्रह है। प्रेरणा दायक भी है और काम करने के तरीके भी सिखाती है।

–शंकरन्

प्रौढ़ और युवक शिक्षापर पुस्तिका, खंड २
(२ मैनुअल ऑन एडल्ट एण्ड यूथ एजूकेशन) पृष्ठ–११३
प्रकाशक : यूनैस्को
कीमत–छः शिलिंग (लगमग साढेचार रुपये)

समूचे विश्व के छोटे बडे सभी देशों के, सभी तरह के, शैक्षणिक प्रयत्नों का मार्गदर्शन यूनैस्को का उद्देश्य है, कार्यक्रम है। समय-समय पर, वह किसी अगविशेष के सम्बन्ध में अब तक की सचित अनुभूतियों का विवेचन और निष्कर्ष प्रस्तुत करता आया है। पिछली दफा अुसने 'फिलमस्ट्रिप' की शैक्षणिक उपादेयता पर अेक महत्वपूर्ण 'मैनुअल' प्रस्तुत किया था। इस बार, निरक्षर समाज को साक्षर करने के जो प्रयत्न हुये हैं, जो अनुभव आये हैं, जो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और जिन एहतियातों को बरतना प्राय: अनिवार्य है, उसका यह 'मैनुअल' हमारे सामने है।

नई तालीम की दृष्टि है कि निरक्षरता भी एक प्रतिफल है, जीवन के प्रति नैराश्य आ जाने का। कभी-कभी साक्षरता मुहिम ने भी समूचे जीवन के प्रति नयी दृष्टि और नयी चेतना पैदा की है, पर वह प्राय: 'अपवाद' रूप ही रहा। नियम रूप तो यही सत्य दीखता है कि पिछडे हुए समाज में पहले मक्खी, मच्छर, भूख, चौथडे दूर होने की एक आशा पैदा हो। उसकी सही शुरूआत हो। नया जीवन आ गया, ऐसा लोगों को लगे और तब लोग नयी बात जानने के लिये प्रेरित हों, उद्यत हो; देश दुनिया की चर्चा चलने लगे, उसकी भूख बढे, रेडिओ, फिल्म, सत्सग, परिसंवाद जैसे ज्ञान के विभिन्न माध्यम समाज में चल निकले। इसी में से 'कभी' अक्षर माध्यम की भूख भी उस समाज को लगे और उसकी पूर्ति करने के लिये, वे हर कीमत देने को उद्यत हो जायें; तभी प्रौढ साक्षरता की सही शुरूआत होगी।

जो अनुभव और जो निष्कर्ष आज इस मैनुअल में दिये गये हैं, वे बिना जोते हुए खेत में बीज बोने या बिना भूख लगे इन्सान को भोजन कराने की स्थिति पर आधारित है। कल यदि उचित तैयारी के बीच साक्षरता का काम चलेगा, तो एकदम नये अनुभव हमारे सामने आयेंगे; ऐसी हमारी दृष्टि है।

–शालिग्राम पथिक

(पृष्ठ २७८ का शेषांश)
धीरेन्द्रभाई और "ग्राम भारती" के कार्यकर्ता १२ मार्च के सुबह नमनपट्टी पहुंच कर किसानों को फसल कटनी में सहयोग देंगे और शाम को वहां सर्वोदय विचार का प्रचार करेंगे। इसी प्रकार प्रत्येक ग्राम में कटनी तथा प्रचार का कार्यक्रम रहेगा। स्वावलम्बन की दृष्टि से प्रत्येक ग्राम से अन्नसंग्रह भी किया जायगा।

× × ×

विनोबाजी की असम यात्रा

विनोबाजी १ फरवरी से नल्बाथान (ढेमाजी) मौजा में पदयात्रा कर रहे हैं। वे आजकल ग्रामदानी गांवों में निर्माण कार्य पर विशेष बल दे रहे हैं। इसके लिए उन्होंने आठ केन्द्र बनाये हैं और फिलहाल मौजा ढेमाजी की तीन पंचायतों के ३१ गांवों में रचनात्मक कार्यकर्ता जुटे हैं। ढेमाजी मौजे में १०५ ग्रामदान हुए हैं। इन गांवों में सर्वे और भूमि के पुनर्वितरण का कार्य सम्पन्न हो रहा है। विनोबाजी मौजा ढेमाजी के भिन्न भिन्न पंचायतों में जाकर निर्माण कार्य संगठित करने की दृष्टि से २,३ माह और असम में रहेंगे। उनके ये आठ केन्द्र जिला लखीमपुर के छह मौजे में बने हैं।

एक वर्ष में चार विशेषांक

'नई तालीम' का पिछले वर्ष का प्रकाशन कुछ विशेष महत्वपूर्ण रहा। एक वर्ष में पत्रिका के चार विशेषांक निकले। पहला था 'नई तालीम की समस्यायें'। नई तालीम के सामने जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न आज खडे हैं उनकी विषद् रूप में चर्चा इस अंक में की गई थी। दूसरा विशेषांक उत्तर बुनियादी शिक्षा के प्रश्न को लेकर निकाला गया था। उच्च माध्यमिक शिक्षा का सवाल आज की शिक्षा समस्याओं का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। उच्च माध्यमिक शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिए, इस अंक में इस पर विशेष ध्यान दिया गया था। तीसरा "अहिंसा और शांति विशेषांक" था। अहिंसा और शांति का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है? उसके सम्बन्ध में क्या साहित्य उपलब्ध है? इस अंक का मुख्य आकर्षण था इस विषय की महत्त्वपूर्ण पुस्तक सूचि। चौथा था 'गुरुदेव रवींद्रनाथ को श्रद्धांजलि'। इस युग के सृष्टाओं में से उच्चतम श्रेणि के थे गुरुदेव। उन्होंने शिक्षा का जो कार्य किया वह आनेवाले युग के लिये हमेशा मार्गदर्शन करता रहेगा। इस अंक में गुरुदेव के अन्य पहलुओं के साथ साथ उनके शिक्षा विषयक कार्य पर खास साहित्य प्रकाशित किया गया। इसमें उनके शिक्षा विषयक साहित्य की संपूर्ण सूचि भी दी गई थी जो अपने में अनुपम ही रही।

वर्ष भर के अजिल्द और सजिल्द सेट उपलब्ध हैं, और कीमत अजिल्द की चार रुपये, सजिल्द की ६ रु. है। डाक खर्च अलग।

(पृष्ट २६९ का शेषांश)

दीर्घ समय के संघर्ष के लिये तैयार करे। समग्र पद्धति का स्वीकार करने के कारण किसी एक बात में कुछ समय के लिये अपयश नजर आयेगा, तो किसी दूसरी में यश नजर आयेगा और कुल मिलाकर प्रगति ही होगी। इस से वैफल्य और निराशा नही निर्माण होगी।

श्री हौसर दम्पति ने अपरिमित परिश्रम उठाकर यह विषय समझाया। विचार करने के लिये प्रेरित किया व हर ५।१० मिनिट के बाद विनोद निर्माण कर के तात्विक विषय के कारण निर्माण होनेवाला मन पर का तनाव महसूस नहीं होने दिया।

गाधीजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा, बुद्धियुक्त अन्त करण से किया हुआ अहिंसा का स्वीकार, भूदान आन्दोलन आगे बढे, इसकी लगन और यदि यह असफल हुआ तो दुनिया का बच ने-वाली दूसरी शक्ति नही है, एसी चिन्ता, आज की दुनिया में सबसे बडे अहिंसक कार्यकर्ताओ के समूह के सामने मै खडा हू, ऐसी हर क्षण महसूस होनेवाली अनुभूति, भावना और अध्यात्म की जगह विवेक और तर्क से आलोकित वैज्ञानिक दृष्टि–हौसर दम्पती को इन सब बातो ने गोष्ठी को स्फूर्ति और प्रकाश प्रदान किया।

(पृष्ठ २८० का शेषांश)

१ छुट्टी के दिनो में पूरा हो जाने लायक छोटा और सुनिश्चित अभ्यास क्रम तैयार करके रात और दिन की पाठशालायें चलाना।

२ हरिजनो के मुहल्ले में जाकर वहा सफाई करना।

३ बच्चो को सैर के लिए ले जाना, उन्हे अपने गाव के पास के दृश्य बताना, प्रकृति का निरीक्षण करना सिखाना, आम तौर पर अपने आसपास के प्रदेश में दिलचस्पी लेना सिखाना और ऐसा करते करते उन्हें इतिहास और भूगोल का सामान्य ज्ञान देना।

४ उन्हें रामायण और महाभारत की सादी कहानिया पढकर सुनाना।

५ उन्हें सरल भजन सिखाना।

६. बच्चो के शरीर पर मैल चढा हुआ दीख पडे, तो उसे अच्छी तरह साफ कर देना और बडा तथा बच्चो, दानो को सफाई की सरल शिक्षा देना।

७ कुछ चुने हुए हिस्सो के हरिजनों की स्थिति की ब्योरेवार रिपोर्ट तैयार करना।

८ बीमारा को दवादारू पहुचाना।

क्या क्या किया जा सकता है, इसका यह तो सिर्फ एक नमूना है। यह सूची मैंने लिख डाली है। मुझे इसमें शक नहीं कि समझदार विद्यार्थी इसमें और भी बहुतसी बाते जोड लेगा।

"नई तालीम" पत्रिका की जानकारी

फार्म ४, रुल ८.

प्रकाशन का स्थान — सेवाग्राम
प्रकाशन काल — मासिक
मुद्रक का नाम — देवी प्रसाद
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता– अ भा सर्व सेवा सघ, सेवाग्राम (वर्धा)
प्रकाशक — देवी प्रसाद
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता– अ भा [illegible] सेवा सघ, सेवाग्राम (वर्धा)
सपादक — देवी प्रसाद और मनमोहन
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता– अ भा सर्व सेवा सघ, सेवाग्राम (वर्धा)
पत्र के मालिक– अ भा सर्व सेवा सघ,
सेव ग्राम (वर्धा)

मैं, देवी प्रसाद, यह विश्वास दिलाता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

देवी प्रसाद
प्रकाशक

१ मार्च १९६२

रजिस्टर्ड संख्या N 106

सत्याग्रह लोकशिक्षा और लोक-जागृति का सबसे बड़ा साधन है। सत्याग्रह का दूसरा अर्थ आत्मशुद्धि है। राजवर्ग के सामने हम सिर्फ आत्मशुद्धि की बात ही कर सकते हैं। उस पर इसका असर पड़ने में थोड़ा समय लगेगा। गरीब वर्ग तो हमेशा रहनुमाई की खोज में ही रहता है; उसे अपने दुःखों का ज्ञान है, पर उन्हें दूर करने वाले उपाय का नहीं। इसलिये जो भी उन्हें उपाय बतानेवाला मिल जाता है, उसी का उपाय वे आजमाते हैं। ऐसी हालत में अगर कोई सच्चे सेवक उन्हें मिले जाते हैं, तो वे उन्हें छोड़ते नहीं और उनका उपाय स्वीकार करते हैं। इसलिये एक दृष्टि से गरीब वर्ग जिज्ञासु कहा जायेगा। स्वराज्य भी उसी के मारफत मिल सकता है। वह अपनी शक्ति को पहचाने और पहचानते हुअे भी मर्यादा में रहकर ही उसका उपयोग करे इतना हो जाय, तो मेरी कल्पना का स्वराज्य आया समझिये। जब जनता ऐसी शक्ति पालेगी, तब वह विदेशी या देशी सरकार दोनों का सफलता से मुकाबला कर सकेगी।

—महात्मा गांधी

हरिजन सेवक मे (३०-१०-४९)

अखिल भारत सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा) की ओर से श्री देवी प्रसाद द्वारा सम्पादित व प्रकाशित और नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित।

नई तालीम

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

वर्ष १० : अंक १०

सम्पादक
देवीप्रसाद

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

अप्रैल १९६२

वर्ष १० : अंक १०

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी डाक से मंगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अंक १० ★ अप्रैल १९६२

रस्किन और साक्षरता

✓ रस्किन ने बहुत लिखा है। परन्तु उसमें से इस बार तो मैं कुछ ही विचार यहां देना चाहता हूं। रस्किन कहते हैं, बिलकुल अक्षरज्ञान न होने के बजाय थोड़ा भी अगर हो तो वह ज्यादा अच्छा है, ऐसा जो माना जाता है उसमें गहरी भूल है। रस्किन का यह स्पष्ट मत है कि जो शिक्षा सच्ची है, जो आत्मा की पहचान करनेवाली है वही वास्तव में शिक्षा है और वही हमें प्राप्त करनी चाहिये। इसके बाद वे कहते हैं कि दुनिया में हर मनुष्य को तीन चीजों की और तीन गुणों की जरूरत रहती है। जो मनुष्य इन्हें प्राप्त करके इनका विकास नहीं कर सकता, वह जीवन का मंत्र, जीने की सच्ची कुंजी ही नहीं जानता। इसलिए ये तीन चीजें और तीन गुण शिक्षा के आधार होने चाहिये। हर एक मनुष्य को फिर वह बालक हो या बालिका, बचपन से यह जानना ही चाहिये कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहा जाय, उन्हें किस तरह साफ रखा जाय और उनसे क्या फायदा होता है। रस्किन के बताये हुए तीन गुण हैं–गुणज्ञता गुणों को पहचानना, आशा और प्रेम। जिन मनुष्यों में सत्य वगैरा के लिए आदर नहीं है, जो किसी अच्छी वस्तु को पहचान नहीं सकते, वे अपने घमंड के शिकार हैं और आत्मानन्द का, आत्मा को पहचान लेने पर मिलनेवाले आनन्द का उपभोग नहीं कर सकते। इसी तरह जिन लोगों में आशावाद नहीं है, यानी जो ईश्वर-न्याय के बारे में शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रसन्न रह ही नहीं सकता। और जिनमें प्रेम नहीं है, यानी अहिंसा नहीं है, जो सारे जीवों को अपने कुटुम्बी नहीं मान सकते, वे जीने का मंत्र कभी साध नहीं सकते।

गांधी

गांधीजी की मैंडम मॉण्टेसरी के साथ भेंट

महादेव भाई

मैंडम मॉण्टेसरी के साथ गाधीजी की भेंट एक आत्मा के साथ आत्मा का समिलन था। मैंडम मॉण्टेसरी पर गाधीजी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि उन्होने लिखा, "गाधीजी मुझे तो मनुष्य की अपेक्षा आत्मारूप अधिक प्रतीत होते है। वर्षो से मैं उनका विचार कर रही थी। मैने अपनी आत्मा से उन्हे समझने का प्रयत्न किया है। उनकी विनम्रता, उनकी मधुरता ऐसी है, मानो समस्त ससार में कठोरता नाम की कोई वस्तु है ही नही। उन्होने तीक्ष्ण सूर्यकिरण की तरह अपने विचारो को सपूर्ण रूप से व्यक्त किया, मानो बीच में कोई मर्यादा या बाधा है ही नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं जिन शिक्षको को तैयार कर रही हूँ, यह मानवीय व्यक्ति उन्हे बहुत सहायता पहुँचा सकेगे। शिक्षको को खुले हृदय के और उदार होना चाहिए, उन्हे अपनी आत्मा का परिवर्तन करना चाहिए, जिससे कि वे बालिग पुरुषो के कठोर और मनुष्य जीवन को कुचल डालनेवाले विघ्नो से पूर्ण ससार स बाहर निकल आ सके। शिक्षको के साथ इनकी यह मुलाकात बालको का आध्यात्मिक रक्षण करने में हमारी सहायक हो।" हमें बैठने के लिए गद्दी तकिये दिये थे और आर्यलिग्टन के गरीब किन्तु देवबालको की तरह स्वच्छ और मधुर बालको ने हिंदुस्तानी तरीके से गाधीजी को नमस्कार किया। तालबद्ध हलन चलन, ध्यान और इच्छा शक्ति के अनेक प्रयोग, बजाने के बाजे और अत में मौन साधन के महत्वपूर्ण प्रयोग कर दिखाये। उपस्थित सब लोगो पर इसका गहरा असर हुआ। अपने बालको से घिरी मैंडम मॉण्टेसरी में मुझे बालको के लिए मुक्त ससार के दर्शन हुए। ईश्वर की सृष्टि में अकेले बालक ही अधिकतर उसके अनुरूप होते है। मैंडम मॉण्टेसरी की शिक्षणविषयक महत्वाकाक्षा पूरी-पूरी सफल न हो तो भी उन्होने माता पिताओ का ध्यान बालको में जो पूजने योग्य है, उसकी ओर आकर्षित करके मानव जाति की असाधारण सेवा की है। उन्होंने मधुर सगीतमय इटालिय भाषा में गाधीजी का स्वागत किया और उनके मत्री ने अग्रेजी में उसका अनुवाद किया। यह अनुवाद भी पूर्ण रूप से हर्षोत्पादक था।

"मैं अपने विद्यार्थियो और यहाँ एकत्र मित्रो को सबोधित कर कहती हूँ कि मुझे आपसे एक अत्यन्त महत्व की बात कहनी है। गांधीजी की आत्मा, जिस महान आत्मा का हमें इतना अनुभव है, उनके शरीर में मूर्तरूप से आज हमारे सामने यहाँ मौजूद है। जिस वाणी के सुनने का सौभाग्य अभी हमें मिलनेवाला है, वह वाणी आज ससार में सर्वत्र गूज रही है।

वह प्रेम से बोलते हैं, और केवल वाणी से ही उसे व्यक्त नहीं करते, प्रत्युत उसमें अपना समस्त जीवन भर देते हैं। यह ऐसी बात है, जो कभी कभी ही हो सकती है और इसलिए जब कभी यह होती है तब प्रत्येक मनुष्य उसे सुनता है।

"श्रद्धेय महानुभाव! मुझे इस बात का गर्व है कि जिस वाणी में आज यहां आपका स्वागत हो रहा है, वह लेटिन जातियों में से एक की है—पश्चिम के धार्मिक विचारों के उद्गम स्थान रोम, भव्य रोम की है। मैं चाहती हूँ कि यदि आज पूर्व के सम्मान में पश्चिम के समस्त विचारों और जीवन को मैं मूर्तरूप से यहाँ व्यक्त कर सकी होती तो कितना अच्छा होता। मैं आपके सामने अपने विद्यार्थियों को पेश करती हूं। यहाँ उपस्थित केवल मेरे विद्यार्थी ही नहीं हैं, वरन् उनमें मेरे मित्र, मित्रों के मित्र और उनके सगे संबंधी भी हैं। किंतु मेरे विद्यार्थियों में अनेकानेक राष्ट्रों के लोग हैं। यहां एकत्र हुए लोगों में उदार हृदय अंग्रेज शिक्षक हैं और अनेक भारतीय विद्यार्थी हैं। इटालियन, डच, जर्मन, डेन्स, चेकोस्लोवेकियन, स्वीड्स, आस्ट्रीयन, हंगेरियन, अमेरिकन और आस्ट्रेलियन विद्यार्थी हैं और न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा तथा आयरलैंड से आये विद्यार्थी भी हैं। बालकों के प्रति प्रेम के ही कारण वे सब यहां आये हैं।

"हे महानुभाव! संसार की सभ्यता और बालकों के विचार की शृंखला से ही हम एक दूसरे से आपस में जुडे हुए हैं और इसी कारण हम सब आज आपके समक्ष आये हैं। क्योंकि हम बालकों को जीवित रहना सिखाते हैं, वह आध्यात्मिक जीवन कि केवल जिसके आधार पर ही संसार की शांति स्थापित हो सकती है। और यही कारण है कि हम सब यहां जीवन की कला के आचार्य और हमारे सब के *विद्यार्थियों और उनके मित्रों के* गुरु की वाणी सुनने के लिए एकत्र हुए हैं। आज का दिन हमारे जीवन में चिरस्मरणीय होगा। ये २४ छोटे अंग्रेज बालक, जिन्होंने स्वयं तैयारी करके आपके सामने काम दिखाया, भविष्य में जो नया बालक होनेवाला है, उसके जीते जागते चिन्ह हैं। हम सब आपके शब्द की प्रतिक्षा कर रहे हैं।"

गांधीजी के हृद्तंत्री सभी तारों को हिला देने में इसका बडा असर हुआ और इस हृत्कंपन में से इस महान् अवसर के योग्य संगीत निकला, जो संसार के सब भागों के निवासी माता पिता और बालकों के लिए एक संदेश भी था और मुक्तिपत्र भी। मैं उसे यहां पूरा पूरा देता हूँ।

माता पिता की जिम्मेदारी

"मैडम! आपने मुझे अपने शब्द भार से दबा दिया है। मुझे अत्यंत नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करना ही चाहिए कि आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि कितना ही कम क्यों न हो, किन्तु मैं अपने जीवन के प्रत्येक अंग में प्रेम प्रकट करने का प्रयत्न करता हूं, अपने स्रष्टा का, जो मेरी दृष्टि में सत्य रूप है, साक्षात्कार करने के लिए अधीर हूं, और अपने जीवन के आरंभ में ही मैंने यह शोध की कि यदि मुझे सत्य का साक्षात्कार करना हो, तो मुझे अपने जीवन तक को खतरे में डालकर प्रेम धर्म का पालन करना चाहिए; और ईश्वर ने मुझे बालक दिये हैं, इससे मैं यह शोध भी कर सका कि प्रेम धर्म तो बालक ही सब से अधिक समझ सकते हैं और उनके द्वारा

यह अधिक अच्छी तरह सीखा जा सकता है। यदि उनके बेचारे माता पिता अज्ञान न होते तो बालक सम्पूर्ण निर्दोष रहते। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि जन्म से ही बालक बुरा नहीं होता। यह जानी बूझी बात है कि बालक के जन्म के पहले और उसके बाद उसके विकास में यदि माता पिता अच्छी तरह आचरण करेंगे, तो स्वभाव से ही बालक सत्य और प्रेम का पालन करेंगे, और अपने जीवन के आरंभ काल में ही, जबसे मुझे यह बात मालूम हुई तभी से मैंने उनमें धीरे-धीरे किन्तु स्पष्ट हेरफेर करना शुरू कर दिया।

"मेरा जीवन कितने और कैसे कैसे तूफानों में होकर गुजरा है मैं यहां उसकी चर्चा नही करना चाहता। किन्तु मैं सचमुच पूरी-पूरी नम्रता से इस बात का साक्षी हो सकता हूँ कि जितने अश में मैंने विचार, वाणी और कार्य में प्रेम प्रकट किया, उतने ही अशो में मैंने 'न समझी जा सकने जैसी' शान्ति अनुभव की है। मुझमें यह ईर्ष्या योग्य शान्ति देखकर मेरे मित्र उसे समझ न सके और उन्होने मुझसे इस अमूल्य धन का कारण जानने के लिए प्रश्न किये है। इस सबध में उन्हे केवल इससे अधिक कुछ नही बता सका कि यदि मित्रो को मुझमें इतनी शाति दिखाई देती है, उसका कारण अपने जीवन के सबसे महान् नियम का पालन करने का मेरा प्रयत्न है।

"जब सन् १९१५ में भारत पहुचा, तब सबसे पहले मुझे आपके कार्यों का पता चला। अमरेली में मैंने मॉण्टेसरी-प्रणाली पर चलने-वाली एक छोटी पाठशाला देखी। उसके पहले मै आपका नाम सुन चुका था। मुझे यह जानने में जरा भी कठिनाई न हुई कि यह पाठशाला आपकी शिक्षण पद्धति के सिर्फ ढाचे का ही अनुसरण करती थी, तत्व का नही। और यद्यपि वहां थोडा बहुत प्रामाणिक प्रयत्न किया भी जाता था, किंतु साथ ही मैंने यह भी देखा कि वहां अधिकांश में दिखावट ही अधिक थी।

शिक्षक का स्वभाव

"इसके बाद तो मैं ऐसी अनेक पाठ-शालाओं के सम्पर्क में आया और जितने अधिक सपर्क में आया उतना ही अधिक यह समझने लगा कि बालको को यदि प्रकृति के, पशुओं के योग्य नियमों द्वारा नही प्रत्युत मनुष्य के गौरव रूप नियमो द्वारा शिक्षा दी जाय तो उसका आधार भव्य और सुन्दर है। बालकों को जिस प्रकार शिक्षा दी जाती थी, उससे मुझे स्वभावतः ही ऐसा प्रतीत हुआ कि यद्यपि उन्हे अच्छी तरह शिक्षा नही दी जाती थी, फिर भी उसकी पद्धति तो इन मूल नियमो के अनुसार ही निर्धारित की गई थी। इसके बाद तो मुझे आपके अनेक शिष्यो से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनमें से एक ने तो इटली की यात्रा करके स्वय आपका आशीर्वाद भी प्राप्त किया था। मैं यहां इन बालको और आप सबसे मिलने की आशा रखता था और इन बालको को देखकर मुझे अत्यत आनद हुआ है। इन बालको के सबध में मैंने कुछ जानने का प्रयत्न किया है। यहा मैंने जो कुछ देखा है, उसकी एक झलक बर्मिंघम् में भी दिखाई दी थी। वहा एक पाठशाला है। इस शाला में और उसमें भेद है। किंतु वहा भी मानवता को प्रकाश में लाने का प्रयत्न होता दिखाई देता है। यहा भी वही देखता हू कि छुटपन से ही बालको को मौन का गुण समझाया जाता है। और अपने शिक्षक के सकेत मात्र से, सुई गिरे तो उस तक की आवाज सुनाई दे जाय

इतनी शाति से किस तरह एक के पीछे एक बालक आया, वह देख कर मुझे अनिर्वचनीय आनंद होता है। तालबद्ध हलन चलन के प्रयोग देख कर मुझे बडा आनन्द हुआ, और जब मैं इन बालको के प्रयोगो को देख रहा था, मेरा हृदय भारत के गावो के अधभूखे बालको के प्रति दौड गया। मैंने अपने दिल में कहा, 'यह पाठ मैं उन्हे सिखाऊ, जिस रीति से इन्हे शिक्षा दी जाती है उस रीति से मैं उन्हे शिक्षा दे सकू, क्या यह सभव होगा?' भारत के गरीब से गरीब बालको में हम एक प्रयोग कर रहे हैं। यह कहा तक सफल होगा, मैं नही जानता। भारत के रहने वाले बालको को सच्ची और शक्तिशाली शिक्षा देने का प्रश्न हमारे सामने है और हमारे पास कोई साधन नही है।

शिक्षक के रूप बालक

"हमें तो शिक्षको की स्वेच्छापूर्वक दी गई मदद पर आधार रखना पडता है। और जब मैं शिक्षको को ढूढता हू, तो बहुत थोडे मिलते हैं–खासकर जो बालकों के मानस को समझें, उनमें जो विशेषता हो उसका अभ्यास करे और उन्हे फिर उनके आत्मसमान के भरोसे मानो छोड देते हो, इस प्रकार उन्हे अपने ही शक्तिसाधनो पर निर्भर बना देंवे और उनमें जो उत्तम शक्ति हो उसे प्रकट करे। सैकडो, हजारो बालको के अनुभव पर से मैं कहता हू, और आप विश्वास करे कि बालकों में हमारे से भी अधिक सम्मान का ख्याल होता है। यदि हम नम्र बने तो जीवन का सबसे बड़ा पाठ बडे विद्वानो के पास से नही, परतु बालको से सीखेंगे। ईसा ने जब कहा कि बालको के मुख से बुद्धि-पूर्ण बाते निकलती है, तो इसमें उन्होंने उच्चतम और भव्य सत्य को प्रकट किया था। मेरा उसमें सपूर्ण विश्वास है और मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि यदि बालको के पास हम नम्रतापूर्वक और निर्दोष होकर जायगे तो उनसे जरूर बुद्धिमानी की शिक्षा पायेंगे।

मुझे अब आपका और समय नही लेना चाहिए। अभी जिस प्रश्न का विचार मेरे मन में है वह जिन करोडो बालको के बारे में मैंने आपसे जिक्र किया है, उनमें उनके उत्तम गुणो को प्रकट करने का प्रश्न है। परतु मैंने एक पाठ सीखा है। मनुष्य के लिए जो बात असभव है वह ईश्वर के लिए तो बच्चो का खेलमात्र है, और उसकी सृष्टि के प्रत्येक अणु के भाग्यविधाता परमेश्वर में यदि हमारी श्रद्धा हो तो प्रत्येक बात सभव हो सकती है। इसी अतिम आशा के कारण मैं अपना जीवन बिता रहा हू, और उसकी इच्छा के अधीन होने का प्रयत्न करता हू। इसलिए मैं फिर यह कहता हू कि जिस प्रकार आप बालको के प्रेम से अपनी अनेक सस्थाओ के द्वारा बालको को श्रेष्ठ बनाने के लिए शिक्षा देने का प्रयत्न करती है उसी प्रकार मैं भी यह आशा करता हू कि धनवान और साधन सपन्न लोगो को ही नही परतु गरीबो के बालको को भी इस प्रकार की शिक्षा देना सभव होगा। आपने जो कहा सो बिलकुल सच है कि यदि हमें ससार में सच्ची शाति स्थापित करनी है, युद्ध के साथ सच्चा युद्ध करना है, तो हमें उसका बालको से ही आरभ करना होगा। यदि वे स्वाभाविक और निर्दोष रूप से वृद्धि पावे तो हमें न लडना होगा, न फजूल प्रस्ताव करने होंगे, परतु जाने अनजाने ससार को जिस शाति और प्रेम की भूख है वह प्रेम और शाति दुनिया के कोने कोने में जबतक फैल न जाय तबतक हम प्रेम-से-प्रेम और शाति-से-शाति प्राप्त करते जायगे।"

'इगलैण्ड में गाधीजी' से

आकाश दर्शन

गांधीजी

[सच्चे शिक्षक के लिये ज्ञान विज्ञान, कार्य, नैतिकता और आध्यात्म, ये बातें एक दूसरे में कितनी एकरूप हो जाती हैं, उसका यह लेख एक श्रेष्ठ नमूना है। शिक्षक समवाय करना चाहते हैं तो आम तौर पर वे उसे कितना नकली तरीको से घसीटते है यह हमने काफी देखा हैं। किन्तु जिसका जीवन ही समन्वय-प्रधान है उसके लिए समवाय कितनी असलियत लिए होता है यही समवाय पद्धति का रहस्य है। शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्य करनेवालो को जरा इस आर गहराई से सोचना चाहिए। —देवीप्रसाद]

सत्य के पुजारी के रस का कोई अन्त ही नही है। सत्य-नारायण के दर्शन करने के लिए वह अपने को कभी बूढा नही मानता। जो मनुष्य अपना हर काम सत्यरूपी ईश्वर के लिये ही करता है, जो हर जगह सत्य को ही देखता है, उसके मार्ग में बुढापा कभी रुकावट बनता ही नही। सत्यार्थी–सत्य का पुजारी–अपने ध्येय की खोज के लिये सदा अजर और अमर ही रहता है।

ऐसी सुदर स्थिति तो मैं बरसो से भोग रहा हू। जिस ज्ञान को पाकर मैं सत्यदेव के अधिक पास जा सकता हू ऐसा मुझे लगा, उसे पाने के प्रयत्न में मेरा बुढापा कभी बाधक नही बना। ऐसा ताजा उदाहरण मेरे जीवन में आकाश दर्शन का है। आकाश का सामान्य ज्ञान पाने की इच्छा हृदय में तो बहुत बार पैदा हुई थी। लेकिन मैंने मान लिया था कि हाथ में लिया हुआ काम मुझे इसमें गहरा नही उतरने देगा। मेरा ऐसा मानना भले ही वास्तव में गलत रहा हो, लेकिन जब तक मेरे मनने इस गलती को नही समझ लिया तब तक तो मेरी इस मान्यता ने मुझे आकाश का ज्ञान प्राप्त करने से रोका ही। सन् १९२२ की जेल में भाई शकरलाल बैंकर को बहुत कर के मैंने ही आकाश दर्शन की प्रेरणा दी थी। इस विषय की पुस्तके जेल में मगाई गई थी। भाई शकरलालने खुद को संतोष हो इतना परिचय आकाश का कर लिया था। लेकिन मुझे इसके लिये समय नही मिला।

सन् १९३०–३१ में मुझे काकासाहब का सत्सग जेल में मिला। उन्हे तो आकाश का अच्छा ज्ञान है। लेकिन मै वह ज्ञान उनसे नही ले सका! इसका कारण यह है कि उस समय आकाश का ज्ञान प्राप्त करने की सच्ची इच्छा ही मुझ में पैदा नही हुई थी। १९३१ की जेल के अतिम महीनो में एकाएक यह उत्साह मुझ में पैदा हुआ। बाहरी दृष्टि से जहा सहज रूप में ईश्वर मौजूद है उस आकाश का निरीक्षण मैं क्यो न करूं? पशु की आखो की तरह हमारी आखें सिर्फ देखने का काम करे, लेकिन जिस विशाल दृश्य को वे देखें वह हमारे ज्ञान-ततुओ तक न पहुचे, यह कितने दुःख की बात है? ईश्वर की महान् लीला को निरखने का यह मौका हाथ से कैसे जाने दिया जा सकता है? इस तरह आकाश की पहचान करने की जो प्यास मन में पैदा हुई उसे अब मै बुझा रहा हू। और इस प्रयत्न में इस हद तक आगे बढ गया हू कि मेरे मन में उठनेवाली तरगो में

आश्रमवासियो को साझेदार बनाये बिना अब मुझ से रहा ही नही जा सकता ।

हमें बचपन से ही यह सिखाया जाता है कि हमारे शरीर पृथ्वी (मिट्टी), पानी, आकाश, तेज और वायु नाम के पच महाभूतो के बने हुए हैं । इन सब के बारे में हमें थोडा ज्ञान तो होना ही चाहिये । फिर भी इन पाच तत्वो का–पाच महाभूतो का–बहुत ही कम ज्ञान हमें होता है । अभी तो हमें आकाश के विषय में ही विचार करना है ।

आकाश का अर्थ है अवकाश–खाली जगह । हमारे शरीर में अवकाश न हो तो हम एक क्षण के लिए भी जीवित नही रह सकते । जो बात शरीर के बारे में सच है, वही जगत के बारे में भी सच है । पृथ्वी अनत, अपार आकाश से घिरी हुई है । हम चारो तरफ जो कुछ आसमानी रग का देखते हैं वह सब आकाश है । पृथ्वी के छोर हैं–वह अनत नही है । पृथ्वी एक ठोस गोला है । उसकी धुरी ७९०० मील लबी है । लेकिन आकाश पोला है । उसकी धुरी है ऐसा माने, तो उस धुरी का कोई अत ही नही है । इस अनत अवकाश में, कोई ओर छोर न रखनेवाली इस खाली जगह में, हमारी पृथ्वी एक रजकण के समान है और उस रजकण के ऊपर हम मनुष्य तो ऐसे तुच्छ रजकण है जिन की कोई बिसात ही नही है । इस तरह शरीर के रूप में हम शून्य–सिफर –जैसे हैं, यह कहना जरा भी अधिक या कम नही होगा । हमारे शरीर की तुलना में चीटी का शरीर जितना तुच्छ लगता है, उससे हजारो गुण तुच्छ पृथ्वी की तुलना में हमारा शरीर है । ऐसे शरीर का मोह क्यो किया जाय ? और वह यदि नष्ट हो तो उसका शोक क्यो मनाया जाय ?

मनुष्य का शरीर इस तरह तुच्छ है, फिर भी उसकी भारी कीमत है, क्योकि वह आत्मा का, और समझ ले तो भगवान का–सत्य-नारायण का निवासस्थान है ।

यह विचार अगर हमारे हृदय में बस जाय, तो हम शरीर को विकारो का घर कभी नही बनायेंगे । लेकिन अगर आकाश के साथ हम एकरूप हो जाय और उसकी महिमा को समझ कर अपनी अत्यधिक तुच्छता को समझ जाय, तो हमारा सारा घमड उतर जाय । आकाश में दिखाई पडनेवाले असख्य प्रकाशवान् ग्रह, नक्षत्र और तारागण न हो, तो हमारी हस्ती भी इस दुनिया में न रह जाय । खगोल-शास्त्रियोने इस बारे में बहुत खोज की है । फिर भी आकाश के बारे में हमारा ज्ञान नही जैसा है । जितना ज्ञान है वह साफ साफ हमें बताता है कि आकाश में सूर्यदेव एक दिन के लिए भी अगर अपनी सजग तपस्या बन्द कर दें–एक दिन के लिए भी तपना बन्द कर दें–तो हमारा नाश हो जाय । इसी तरह चन्द्रमा अगर अपनी शीतल किरणे खीच ले, तो भी हम खतम हो जाय । और अनुमान लगाकर हम कह सकते हैं कि रातको आकाश में हमें जो असख्य तारागण दिखाई देते है, उन सब का भी इस जगत को टिकाय रखने में स्थान है । इस प्रकार हमारा इस विश्व के सारे जीवो के साथ, सारे दृश्यो के साथ गहरा सम्बन्ध है । और एक दूसरे के सहारे हम टिके हुए हैं । इसलिए आकाश में विचरनेवाले जिन प्रकाश-मय तारागणो के सहारे हम टिके हुए हैं, उनका थोडा बहुत परिचय हमें करना ही चाहिये ।

आकाश का परिचय करने का एक खास कारण भी है । हम में यह कहावत चलती है

'दूरके ढोल सुहावने', इस कहावत में बडा सत्य भरा है। जो सूर्य दूर होने के कारण हमारी रक्षा करता है उसी सूर्य के पास जाकर अगर हम बैठें, तो उसी क्षण जलकर राख हो जाय। यही बात आकाश में बसनेवाले दूसरे दिव्यगुणो के बारे में भी सच है। हमारे पास की अनेक चीजो के गुण-दोष हम जानने हैं, इसलिए कभी कभी हम उनसे ऊब जाते है, उनके दोपो के स्पर्श से हम में भी वे दोप आ जाते हैं। लेकिन आकाश में रहनेवाले सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र वगैरा देवगणो के केवल हम गुण ही जानते है। उन्हे देखने में हम कभी थकते ही नही, उनका परिचय हमें कभी नुकसान पहुचा ही नही सकता, और इन देवो का ध्यान धरते हुए अपनी कल्पना-शक्ति को हम नीति का पोषण करनेवाले विचारो की मदद से जितनी दूर तक ले जाना चाहें ले जा सकते हैं।

यह बात बिना किसी शका के कही जा सकती है कि आकाश के और हमारे बीच जितनी रुकावटें हम रखते हैं, उतना ही नुकसान हम अपने शरीर, मन और आत्माको पहुचाते है। अगर हम कुदरती तरीके से जीवन बितायें तो चौबीसो घट आकाश के नीचे रह सकते हैं। ऐसा करना सभव न हो तो जितन अधिक समय तक हम आकाश के नीचे रह सके उतने समय तक ही रहे। आकाश दर्शन यानी तारागणो का दर्शन तो रात में ही हो सकता है। और उनका अच्छे से अच्छा दर्शन लेट कर ही किया जा सकता है। इसलिए जो मनुष्य इस दर्शन का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहता है, उसे तो सीधे आकाश के नीचे ही सोना चाहिये। आसपास यदि ऊचे मकान या पेड हो, तो वे इस दर्शन में रुकावट डालते हैं।

बालको को और बडो को भी नाटक और उनके भीतर दिखाये जानेवाले दृश्य बहुत पसन्द आते हैं। लेकिन जिस नाटक की योजना कुदरत ने हमारे लिए आकाश में की है, उसकी बराबरी मनुष्य का रचा हुआ एक भी नाटक नही कर सकता। इसके सिवा नाटक-घर में हमारी आखें बिगडती है, फेफडो में गदी हवा जाती है और हमारा चाल चलन बिगडने की भी बहुत सभावना रहती है। इसके खिलाफ, कुदरत के नाटक को देख ने में तो लाभ ही लाभ है। आकाशको देखने से आखो को शाति मिलती है, आकाश का दर्शन करने के लिए बाहर खुले में रहना अनिवार्य है, इससे हमारे फेफडो को शुद्ध हवा मिलती है। और आकाश का दर्शन करने से किसी का चाल चलन बिगडा हो, ऐसा आज तक कभी सुना नही गया। ज्यो ज्यो हम ईश्वर के इस चमत्कार का अधिक ध्यान करते हैं, त्यो-त्यो हमारी आत्मा का अधिक विकास ही होता है। जिसे रोज गदे विचार और गदे सपने रात में आते हो, वह बाहर खुले में सोकर आकाश दर्शन में लीन होने का प्रयत्न कर के देख। उसे तुरन्त निर्दोप निद्राका अनुभव होगा। जब हम आकाश के इस महादर्शन में लीन हो जाते है तब हमें ऐसा सुनाई पडता है, मानो आकाश के ये सब दिव्यगण ईश्वर की मूक स्तुति कर रहे हैं। जिसके पास आखें हो वह आकाश में होनेवाला यह नित नया नाच देखे। जिसके पास कान हो वह इन असख्य गधर्वो का मूक गान सुने।

अब हम आकाश की थोडी पहचान करे, अथवा मैंने आकाश का जो बहुत ही थोडा ज्ञान प्राप्त किया है उसमें मैं सब साथियो को साझेदार बनाऊ। सच तो यह है कि पृथ्वी,

सूर्य, चन्द्र वगैरे का थोडा सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही आकाश का दर्शन किया जाय तो ठीक होगा। हो सकता है कि मैं यहां जो कुछ लिखनेवाला हूं वह सब काकासाहब कालेलकर के परिचय में आये हुए आश्रम के बालक जानते हों। ऐसा हो तो अच्छा ही माना जायगा। मैं तो आश्रम के छोटे-बडे, नये-पुराने सभी लोगों के लिए यह लिख रहा हूं। इसमें जिसे रस आयेगा उसके लिए तो यह बिलकुल आसान हो जायगा।

प्रार्थना के तुरन्त बाद आकाश दर्शन करना अच्छा है। इसके लिए बीस मिनट से अधिक समय एकसाथ देने की जरूरत नही है। समझदार आदमी तो इस दर्शन को प्रार्थना का एक हिस्सा ही मानेगा। घर से बाहर सोनेवाले अकेले आदमी जितने समय तक आकाश का ध्यान करना चाहें, कर सकते है। कुछ ही समय में इस ध्यान में लीन होकर वे सो जायगे। रात में कभी नीद खुल जाय तो फिर थोडा दर्शन कर ले। आकाश हर पल घूमता दिखाई देता है, इसलिए पल पल पर उसका दृश्य बदलता ही रहता है।

आठ बजे आकाश की ओर देखने से पश्चिम में एक भव्य, सुन्दर आकृति दिखाई पडेगी।
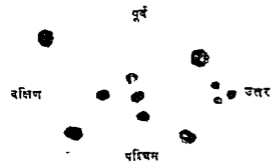
यह आकृति पश्चिम में रहेगी। मैं पूर्व में सिर रख कर सामने देखता हूं। इस तरह जो देखेगा वह इस आकृति को कभी भूल ही नहीं सकेगा। आजकल शुक्ल पक्ष चल रहा है, इसलिए यह तारा मंडल और दूसरे तारागण थोडे फीके दिखाई देते है। फिर भी यह तारा-मंडल इतना तेज है कि मेरे जैसे सीखनेवाले को इसे खोजना बहुत आसान पडता है। इस मंडल के बारे में हमारे देश में और यूरोप में क्या मान्यता थी, यह आगे लिखूंगा। इस समय तो इतना ही कहूंगा कि इस तारा मंडल के स्थान का वर्णन वेद में पढ कर लोकमान्य तिलक महाराज वेदों के समय की खोज कर सके थे। आश्रम में पुस्तकों का जो सग्रह है उसमें स्व. दीक्षित की लिखी एक पुस्तक है। उसमें आकाश के नक्षत्रों, तारागणों वगैरे के बारे में बहुत जानकारी दी गयी है। मेरा काम सिर्फ इस बारे में आश्रमवासियों की दिलचस्पी पैदा करा देना है। बाद में तो आश्रमवासियों से मुझे ही अधिक जानने को मिलेगा। मेरे लिए आकाश के ये नक्षत्र ईश्वर के साथ सम्पर्क साधने के साधन बन गये है। आश्रमवासियों के लिए भी ऐसा ही हो।

पिछले सप्ताह मैंने जिस तारामंडल का चित्र दिया था, उसके बारे में अनेक कल्पनायें की गई है। इस मडल के जितने चित्र तैयार किये गये है, उनमें से एक भी संपूर्ण नही है। चित्रो में जितने तारे बताये गये है उनसे कही ज्यादा तारे इस मंडल में है। इसलिए सबसे अच्छा यह होगा कि हर आदमी अपना अपना चित्र बनाये और खाली आंखों से जितने तारे देखे उन्ही का निशान चित्र में लगाये। ऐसा करने से तारों को पहचानने की शक्ति एकदम

बढ जायगी और नक्शो में जो चित्र दिये जाते हैं उनके बजाय खुदका बनाया हुआ चित्र हर-एक के लिए उत्तम होगा। क्योकि अलग अलग स्थानो से तारा मडल को देखने पर दृश्य में थोडा फर्क तो पडेगा ही। हर आदमी एक निश्चित किये हुए स्थान से और निश्चित किये हुए समय पर ही तारो का निरीक्षण करे तो ठीक होगा। यह सुझाव नकशा बनाने के बारे में और आकाश दर्शन शुरू करनेवाले के लिए है। एक बार अच्छी तरह नक्षत्रो को पहचान लेने पर कोई कठिनाई नही पडती। हम चाहे जहा रहे तो भी अपने इन जगमगाते मित्रो या दिव्य गणो को हम तुरन्त पहचान लेगे।

मद्रास के अग्रेजी दैनिक 'हिन्दू' का एक साप्ताहिक सस्करण निकलता है। बम्बई के 'टाइम्स' का भी निकलता है। उन दोनो में हर महीने दिखाई देनेवाले ऐसे मडलो का एक नक्शा छपता है। 'हिन्दू' में हर महीने के पहले सप्ताह में और 'टाइम्स' में दूसरे सप्ताह में वह छपता है। 'कुमार' मासिक का सौवा अक प्रकाशित होनेवाला है। उसके लिये भाई हिरालाल शाह ने इस विषय पर लेख भेजे हैं। नक्षत्रो के विषय में उनका अध्ययन गहरा मालूम होता है। ये लेख जिन्हें पढने की इछा हो वे पढ ले। मै तो उन लेखों के प्रकाशित होने के बाद इस विषय में ज्यादा नहीं लिखूगा। मै किस तरह आकाश-दर्शन कर रहा हूँ, इस बारे में थोडी अधिक स्पष्टता यहा करूगा। इससे आगे जाऊगा तो सप्ताह में दूसरी बाते लिखनी रह जायगी। मौका आने पर या किसीके पूछने पर कुछ लिखू यह दूसरी बात है।

जिस नक्षत्र का चित्र मैने दिया था उसका नाम हमारे देश में मृग या मृगशीर्ष है। इसी परसे महीने का नाम मार्गशीर्ष—अगहन—पडा है। हमारे महीनो के नाम नक्षत्रो के आधार पर पडे हैं। मृग नक्षत्र को पश्चिम में 'ओरायन' कहते हैं। वह पारधी माना गया है। उसके पूर्व में दो सीधी लकीरो में जो बहुत तेज तारे है वे पारधी के कुत्ते हैं, ऐसी कल्पना की गई है। पश्चिम में बडा कुत्ता है और उत्तर में छोटा है। पूर्व की ओर तथा दक्षिण में पारधी के चौथे कोण के तारे के नीचे जो नक्षत्र दिखाई देता है, उसको खरगोश माना गया है। कुत्ते उसकी ओर दौडते हैं। बीच में जो तीन तारे है वे पारधी के कमर-पट्टे के तीन हीरे हैं।

इस नक्षत्र की ऐसी आकृतिया भी बनाई गई है बडे कुत्ते को हमारे यहा व्याध (शिकारी) कहते हैं और बीच के तीन तारे हरिणका पेट है। और उसके दक्षिणमें जो तारे हैं वे व्याध के छोडे हुए बाणको बताते हैं। उत्तर की ओर चौकोन के बाहर जो तीन तारे हैं, वे हरिण का सिर हैं। यह सारी कल्पना मनोरजक हो सकती है। इस कल्पना के जन्म के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु उसमें से बहुत ही थोडा हिस्सा मैने पढा है।

लेकिन आकाश में ऐसी आकृति बिलकुल है ही नहीं। ये तारे हमें जितने नजदीक दिखाई पडते है उतने नजदीक भी वे नही हैं। ये तारे असल में तारे नही हैं; परन्तु हमारे सूर्य से भी ज्यादा बड सूर्य हैं। पृथ्वी से करोडो मील दूर होने के कारण आकाश में वे छोटे छोटे बिन्दुओ की तरह जगमगाते दिखाई देते हैं। इन सूर्यों के बारे में हमें बहुत ही कम ज्ञान

है। लेकिन अपढ-से-अपढ आदमी के लिए भी ये तारागण मित्रका काम करते हैं। एक पल के लिए भी आदमी इन तारों को देखे और मन में सकल्प कर ले, तो वह तुरन्त अपने सारे दु ख भूल जायगा और ईश्वर की महिमा के गीत गाने लगेगा। वह समझ जायगा कि ये तारागण ईश्वर के दूत हैं, और सारी रात हमारी चौकी करते हैं और हमें ढाढ़स बंधाते है। यह तो सत्य हुआ। तारे सूर्य हैं और हम से बहुत दूर है–ये सब बातें बुद्धि के प्रयोग हैं। हमें ईश्वर की ओर ले जाने में उनका जो उपयोग है, वह हमारे लिए पूरा सत्य है। विज्ञान की दृष्टि से पानी को हम अनेक तरह से पहचानते हैं, लेकिन उस ज्ञान का शायद कोई उपयोग नही करते। लेकिन पानी पीने की चीज है, शरीर साफ रखने की चीज है, यह ज्ञान और पानी का यह उपयोग हमारे लिए बहुत काम की चीज है और उसका यही उपयोग हमारे लिए सत्य है। भले ही वास्तव में पानी कोई दूसरा ही पदार्थ क्यो न हो और उसका इससे भी अधिक उपयोग क्यों न हो। यही बात तारो को भी लागू होती है। तारों के अनेक उपयोग हैं। मैंने तो तारों का जो मुख्य गुण मुझे लगा उसी पर यहा विचार किया है और उसके अनुसार यहा उनका उपयोग बताया है। ऐसा ही कुछ पुराने समय से चलता आया मालूम होता है। समय पाकर अनेक प्रकार के दूसरे वर्णन इसमें मिल गये है और अनेक तरह की कहानिया पैदा हो गई है। वह सब आकाश दर्शन का रस बढ़ाने के लिए हम जरूर पढें। लेकिन मैंने नक्षत्रों और तारो का जो मूल उपयोग बताया है उसे हम न भूले।

मृग नक्षत्र के उत्तर में दूसरे दो तारा मंडल हैं। उनकी पहचान भी हम कर लें।
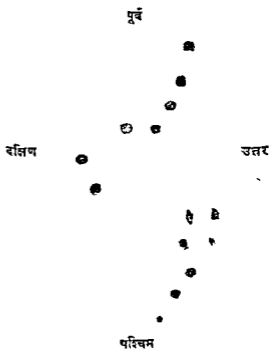
इसमें बडा सप्तर्षि–मडल है। और छोटा मंडल ध्रुवमत्स्य कहलाता है। दोनों मंडलो के लिए सात सात तारे दिये गये हैं, लेकिन सप्तर्षि मंडल में दूसरे अनेक तारे हैं। वे 'टाइम्स' और 'हिन्दू' में बताये गये हैं। ध्रुवमत्स्य में दूसरे तारे नही दिखाई देंगे। इस शुक्ल पक्ष में तो शायद तीन ही दिखाई देंगे। दो चौकोन के और एक अंतिम सिरेका, जिसका नाम ध्रुव है। यह एक ही तारा ऐसा है जो लगभग अचल रहता है; और पहले तो इससे समुद्र की यात्रा में मल्लाहों को दिशा पहचानने में बडी मदद मिलती थी। ये दोनों मंडल ध्रुव के चारों ओर प्रदक्षिणा ही करते मालूम होते हैं। आजकल उनकी गति देखने में

(शेष, पृष्ठ ३११ पर)

बुनियादी तालीम विश्व शांति और विश्व भ्रातृत्व की सिद्धि की कला

प्यारेलाल नैयर

अहिंसक और शोषणहीन समाज व्यवस्था की रचना के साधन के रूप में गांधीजी ने हमें अपनी वह शिक्षा पद्धति दी, जो बुनियादी अथवा वर्धा शिक्षा प्रणाली के नाम से मशहूर है। उसका तरीका यह है कि किसी समाजोपयोगी दस्तकारी के शिक्षण और अभ्यास के द्वारा बच्चे की केवल बौद्धिक शक्ति का ही नहीं, बल्कि शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का भी विकास किया जाय। इसकी जड में अहिंसा का सिद्धान्त है। यह प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि 'विचारशील हाथ' (थिंकिंग हैण्ड) की बुद्धिपूर्वक सचालित प्रवृत्ति के जरिये बालक की बुद्धि और समूचे व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। अब पश्चिम में भी यह अनुभव किया जा रहा है कि सफल राष्ट्र निर्माताओं और लोकतंत्र के निर्माताओं की पीढी 'भ्रम' के वातावरण मे पैदा नही की जा सकती। यानी अगर स्कूल, व्यक्ति और समाज के जीवन की समस्याओं से बहुत दूर 'तीन लोक से मथुरा न्यारी' जैसी जगह हो, तो वहा राष्ट्र और लोकतंत्र के निर्माता पैदा नहीं हो सकते। बुनियादी तालीम की वर्धा पद्धति बच्चों को सिखाती है कि वे अपनी ही कोशिशों से अपने परिवार और समाज की समस्याएं अहिंसक और लोकतांत्रिक ढंग पर हल करें। सामाजिक तनाव, धार्मिक सहिष्णुता, स्वशासन, खुराक, उसकी खेती और उसे तैयार करने की प्रक्रियायें, कपडा बनाना और कूडा करकट को ठिकाने लगाना वगैरा समस्याओं को अहिंसक और लोकतांत्रिक ढग से और समझपूर्वक निबटाना सीखकर यानी अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति से संबंधित सारा आवश्यक ज्ञान हासिल करके वे केवल जीवन की सारी शिक्षा ही नहीं प्राप्त करते, परन्तु ऐसी शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। जिसके साथ यह आश्वासन भी जुडा होता है कि इस प्रकार हासिल किये हुए ज्ञान का सही तौर पर उपयोग किया जायगा।

इस प्रकार बुनियादी तालीम केवल एक नयी शिक्षा प्रणाली ही नहीं है, बल्कि एक विशेष आदर्श विश्वशाति और विश्व भ्रातृत्व की सिद्धि की कला भी है। और इसलिए उस पर हमें अत्यत गंभीर विचार करना चाहिये।

नई तालीम की तारक शक्ति कुण्ठित क्यों ?

काशीनाथ त्रिवेदी

लोक-जीवन में समय-समय पर अनेक प्रवाह आते और जाते रहते है। कभी शुभ प्रवाहो का दौर चलता है और कभी अशुभ प्रवाह जोर पकडते है। शुभ प्रवाह लोक-जीवन के लिए तारक होते है। अशुभ प्रवाह लोक-जीवन को गलत दिशा में ले जाते है और उसकी ऊर्ध्वमुखी शक्ति को कुण्ठित कर देते है। मानव-समाज के आदिकाल से आज तक ससार में शुभ अशुभ प्रवाहो का यह चक्र लगातार चलता रहा है। यह आवश्यकता नही कि दोनो प्रवाह अलग-अलग समय में अलग-अलग रीति से चले। प्राय सुख-दु ख, हानि-लाभ, जीवन मरण और यश-अपयश की तरह ये प्रवाह भी व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया के जीवन में एक साथ, एक ही समय में, अपना काम करते पाए जाते है। जब शुभ भावनाओं का प्रवाह जोर पकडता है, तो समाज में व्यापक मागल्य की और सुख शाति तथा समृद्धि की स्थिति बनती है। जब अशुभ प्रवाह बलवान होते है, तो दिशा बदल जाती है। व्यक्ति, समाज तथा देश ऊपर उठने के बदले नीचे गिरने की रुचि-वृत्तिवाला बनता है और फिर उसी में रम जाता है। मानव-जीवन के अग-प्रत्यग में हमें इस सत्य के दर्शन सदा ही होते रहने हैं—आज भी हो रहे हैं।

अपने देश में आज अन्य क्षेत्रो की तरह शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसे शुभ-अशुभ प्रवाहो का दर्शन हमें निरन्तर होता रहता है। हमने यह माना था कि स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद जब शिक्षा-दीक्षा के सारे सूत्र हमारे हाथ में आएगे, तो सहज ही हम अपने देश की शिक्षा के प्रवाह को सही दिशा में मोड सकेंगे। देश के सभी सत् प्रवृत्त और सदाकाक्षी लोगो की यही अपेक्षा थी। आज भी वे इसी अपेक्षा से अपनी शक्ति-भर शिक्षा के प्रवाह को शुभ-दिशा में लेजाने का प्रयत्न कर रहे है। किन्तु जिस प्राचीन और बद्धमूल प्रवाह के विपरीत उन्हें चलना पड रहा है, उसके कारण शुभ प्रवाह को पूरे वेग से गतिमान करना उनके लिए बहुत ही कठिन हो रहा है। स्वतत्रता के बाद भी लोक-मानस पर पराधीनता के समय की रीति-नीति और शिक्षा-दीक्षा का जो प्रभाव हुआ है, उसके कारण नए और शुभ प्रवाह के लिए लोक-मानस में वह सद्भाव नही बन पाया है, जिसके सहारे वह शुभ और श्रेयस्कर प्रवाह को अपने जीवन में स्थान दे सके और उसके साथ तद्रूप-तदाकार हो सके। यही कारण है कि लगभग पच्चीस वर्षों का लम्बा समय बीत जाने पर भी आज देश में नई तालीम के विचार के लिये वह अनुकूलता नही बन पाई है, जो

समाज में उसकी प्राणप्रतिष्ठा के लिए नितान्त आवश्यक है। प्रतिष्ठा आज भी पुरानी, परम्परागत और दासता-मूलक शिक्षा की ही बनी हुई है। जब तक देश का लोक-मानस पुरानी शिक्षा की प्रतिष्ठा को विचार-पूर्वक विसर्जित नही करता, तब तक लोक-जीवन में नई तालीम के लिये वह व्यापक प्रतिष्ठा सुलभ नही होगी, जो उसे अपना काम प्रभावशाली और परिणामकारी ढग से करने में समर्थ बना सके। प्रश्न केवल थोड़े हेर-फेर का नही है, प्रश्न आमूल परिवर्तन का, समग्र क्रांति का है। पुरानी पटरी पर नई चीज को चलाने में उसका सारा तेज और प्रभाव कुण्ठित हो जाता है। नई तालीम के क्षेत्र में हमारे यहा आज यही हो रहा है। इसी कारण हम अपने देश में नई तालीम को जीवन-पद्धति का अप्रतिहत और अबाधित विकास करने में असमर्थ हो रहे है। वैसे देखा जाय तो नई तालीम का सारा विचार एक स्वतत्र और सूक्ष्म विचार है। वह किसी क्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में नही जनमा है। उसका जन्म तो लोक-जीवन के गहरे चिन्तन में से और एक स्वतन्त्र जीवन-दर्शन में से हुआ है। इसलिए वह किसी पद्धति या प्रवाह की काट के लिये नही है।

पराधीनता की स्थिति में देश के लोक-जीवन में आचार-विचार और व्यवहार आदि की जो मर्यादाएं खडी हुई और जीवन की अनेक शुभ शक्तियों का जो ह्रास हुआ, उसके परिणाम-स्वरूप मानव-समाज सहज भाव से ऊर्ध्वाभिमुख रहने की अपनी शक्ति और गति खो बैठा और पतनोन्मुखता की ओर उसका रुझान बढ गया। दीनता, दासता, विवशता, पराधीनता, परमुखापेक्षिता और अज्ञान आदि का कुछ ऐसा प्रहार उस पर पीढियों तक पडता रहा कि वह अपने मूल स्वरूप को ही भूल गया और आज वे अपने पतित स्वरूप को ही अपना सहज स्वरूप मानने लग गया। बुद्धि, भावना, सस्कार, आचार-विचार, रीति-नीति आदि की जडता ने मानव-मन को दासता के उस भीषण काल में इस बुरी तरह जकड लिया कि उनसे पिण्ड छुडाना आज के इस स्वातंत्र्य-काल में भी उसके लिए अत्यन्त कठिन हो गया है। लोक-जीवन की यह व्यापक जडता और गतानुगतिकता ही आज नई तालीम के मार्ग की सबसे बडी बाधा बन बैठी है। जब तक इस जडता पर समाज स्वयं कडे-से-कडे प्रहार करने को खडा न होगा, तब तक नई तालीम के लिए लोक-मानस में नव-चेतन और आत्मभाव जाग ही नही सकेगा। तपस्वी लोक सेवकों के सामूहिक और संगठित पुरुषार्थ के बिना लोक-मानस को इस जडता पर विजय पाना सभव न होगा। अखण्ड जागृति, अविरल निष्ठा, कठिन साधना और अविरत प्रयत्न के सहारे ही लोक-मानस को सही दिशा में मोडने का काम किया जा सकता है।

एक द्रष्ट के रूप में जब गांधीजी ने देश के सामने नई तालीम का जीवन दर्शन रखा, तो उनके मन में नाना प्रकार की दासताओं से जकडे हुए लोक-जीवन और लोक-मानस का ऐसा ही एक करुण चित्र था। मनुष्य की स्वतंत्रता के साथ उसके आचार-विचार की जडता और दासता का कोई मेल गांधीजी के मन में बैठता नही था। अगर देश स्वतंत्रता चाहता है, तो उसे उसका समग्र आकलन और समग्र स्वीकार करना ही होगा, ऐसी उनकी श्रद्धा

थी। स्वतंत्रता का उपासक तन-मन की किसी भी दासता से बंधा रहे, यह उन्हें जरा भी मंजूर नही था। इसीलिए उन्होंने देश के सामने नई तालीम के रूप मे स्वतत्रता, स्वावलम्बन, स्वयंस्फूर्ति, सहकारिता और सामूहिकता के क्रांतिकारी विचार रखे थे। वे समूचे समाज का विकास और उदय चाहते थे। उनकी रुचि और आस्था अंशोदय में नही, सर्वोदय में थी। परिपूर्णता, समग्रता, उनका एक जीवन-लक्ष्य वन गई थी। नई तालीम के द्वारा वे स्वतंत्र भारत के लोक-जावन में इस परिपूर्णता को ही प्रतिष्ठित करना चाहते थे। स्वतंत्र भारत का शिक्षित व्यक्ति जीवन की किसी भी दिशा में अपूर्ण और अपग न रहे, उसके जीवन के प्रत्येक अंग का समग्र विकास हो और वह अपने मन:प्राण से शुद्ध-बुद्ध बनकर जीवन को अधिक-से-अधिक पूर्ण और पुष्ट बनाने वाला बने, यही उनकी आकांक्षा थी। इसीलिए उन्होंने नई तालीम के कार्यक्रम में स्वच्छता, स्वावलंबन, शरीरश्रम, लोक-सेवा और सहकारिता–जैसे तत्वों को अग्र स्थान दिया था। नई तालीम के माध्यम से वे देश के लोक-जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति की एक ऐसी प्रबल त्रिवेणी प्रवाहित करना चाहते थे, जिससे लोक-मानस की सारी कुण्ठता समाप्त हो जाए और जीवन व्यापक रूप से नई चेतना से भर जाएं।

पिछले २४-२५ वर्षों में देश के शासकीय और अशासकीय क्षेत्रों में नई तालीम का जो काम हुआ है, उसने अभी लोक-मानस को इस तरह प्रभावित और प्रेरित नही किया है कि जिससे वह अपनी युगों पुरानी जडता और दासता को खखेरकर फेंक सके और नई चेतना के रस में डूबे रहें। यह जानते और मानते हुए भी कि नई तालीम के गर्भ में मानवता के लिए आशीर्वाद और वरदान की प्रचंड शक्तियां पडी हुई है, आज सारे देश में उसके लिए बडा अनमनापन है। उत्कटभाव से इस विचार को जीवन में सिद्ध करके दिखाने की तत्परता और चिंता क्वचित् ही कहीं दिखाई पडती है। लोगों ने उसे प्रयोग और साधना के क्षेत्र से हटाकर जाब्ते की चीज बना दिया है। जाब्ते में जो सहज पडता है, उसने आज नई तालीम के काम को भी ग्रस लिया है। उसके विकास में जाब्ता एक बहुत बडी बाधा है। अगर कोई सोचे कि निरे जाब्ते के भरोसे वह नई तालीम को उसके शुद्ध रुप में सिद्ध कर सकेगा, तो इसमें उसे बडा धोखा होगा और निराशा ही पल्ले पडेगी। जाब्ता एक चीज है, नई तालीम उससे बिलकुल भिन्न दूसरी चीज है। नई तालीम का स्वभाव तो नित्य नूतन रहने का है। जिस तरह सूर्य नित्य उगता है और फिर भी नित्य नया ही बना रहता है, उसके निकट किसी प्रकार का बासीपन नही टिकता, उसी तरह नई तालीम भी नित्य-नूतन रहना चाहती है। इसीमें उसकी तारक शक्ति भी निहित है। जो नित्य–नूतत नहीं है, उसमें कोई तारक शक्ति भी नही होती।

अपनी पराधीनता के काल में हम भारतवासियों को अनेक मारक शक्तियों के बीच में घिरकर जीना पडा। आज स्वतत्रता के काल में भी वे ही शक्तियां काम करती चली आ रही हैं, इसे हम अपने देश का दुर्भाग्य मानते हे। दैव की बडी विचित्र लोला है। जिस देश ने स्वतंत्रता के लिए कडी-से-कडी

तपस्या की, वही देश आज अपने स्वातन्त्र्यकाल में तारक शक्तियो की एकनिष्ठ उपासना करने के बदले मारक शक्तियो के आराधन में रत है, यह देख कर मन व्यथा से भर जाता जाता है। पता नही, देश के भाग्य में व्यथा का यह काल कितना लम्बा रहेगा ?

हमारी यह दृढ मान्यता है कि सत्य विचार अन्त तक सत्य ही बना रहता है और समय की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का उस पर कोई प्रभाव नही पडता। हमें लगता है कि नई तालीम का विचार भी ऐसा ही एक सत्य विचार है और सत्य की भाति ही वह मानव-जीवन के लिए तारक भी है। मानव मन और जीवन की अनेक छोटी-बडी दुर्बलताओ पर विजय पाने के लिए जिस साधना की आवश्यकता रहती है, नई तालीम के माध्यम से हम उसके लिए बडी अनुकूलता कर देते है। जिस प्रकार भव सागर से तरने के लिये भक्ति नाव का काम करती है, उसी प्रकार मानव-मन को उसकी अनेक विध कुण्ठाओ से मुकाबला करने के लिये नई तालीम एक वरदान का काम करती है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि नई तालीम की इस महान् और अद्भुत शक्ति को हम अभी तक पहचान नही पाए और उसकी सही परख करने के बजाय उसके नाम से ही भडकने लगे। जब तक अज्ञान, अन्ध विश्वास, स्वार्थ, प्रमाद, आलस्य, जडता और अनास्था से उत्पन्न यह भडक लोक-मानस से दूर नही की जाती है, तब तक इस देश में नई तालीम का भविष्य आज की तरह ही सन्देहास्पद बना रहेगा और हम अपने लोक-जीवन में उसकी सही प्रतिष्ठा नही करा पायेंगे।

हर साल इस देश में नई तालीम के विकास के लिए बडे पैमाने पर सप्ताह मनाने की रीत पिछले कुछ सालो से शुरु हुई है। किन्तु इन सप्ताहो को भी हमने जाब्ते की जकड में इस तरह बाध दिया है कि बहुत चाहने और यत्न करने पर भी हम इनके द्वारा लोक-मानस में नई तालीम की प्राण प्रतिष्ठा नही करा पा रहे है। हर शुद्ध विचार की अपनी एक प्रतिभा होती है, किन्तु जब उसे किसी विधर्मी अशुद्धता से जोड दिया जाता है, तो उसकी असल प्रतिभा पर एक आवरण-सा पड जाता है और फलतः लोग उसके सही स्वरूप को देख समझ नही पाते। हमारे देश में आज नई तालीम के साथ कुछ ऐसा ही व्यवहार हो रहा है। इस असगति के कारण ही नई तालीम के नाम पर देश में जो श्रम, शक्ति, बुद्धि और सपत्ति आज खर्च हो रही है, उसका कोई सुफल हमें इधर कही देखने को मिल ही नही रहा है। नई तालीम की तारक शक्ति पर पडे इस आवरण को हटाने का प्रचण्ड पुरुषार्थ आज की तात्कालिक आवश्यकता है। भगवान् से हम यही चाहते और मनाते है कि अपने दिल-दिमाग पर पडे इस आवरण को उतार फेंकने की शक्ति वह हममें से हर एक को दे !

विज्ञान की शिक्षा में अध्यात्म दर्शन

हालडेन के विचार

गत कुछ वर्षों से आचार्य विनोबाजी आधुनिक जगत् में विज्ञान और अध्यात्म की आवश्यकता के बारे में बार बार कहते आये हैं। उनका कहना है कि "धर्म और राजनीति जायगी, विज्ञान और अध्यात्म रहेगा।" कटक के विज्ञान परिषद् (सायन्स कांग्रेस) को सबोधित करके प्रधान मन्त्री श्री नेहरु ने इस बात का जिक्र किया और कहा कि उनकी समझ में इसका आशय विज्ञान के प्रति एक नैतिक वृत्ति है। "यह कैसे सध सकता है, मै नही जानता" इस कथन के साथ उन्होने समस्या को वैज्ञानिको के सामने पेश किया।

इस विषय पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. बी. एस. हालडेन ने "टाइम्स आफ इण्डिया" में एक लेख के द्वारा अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं, "मै यह कहने का साहस करता हू कि कम से कम कुछ हद तक तो मै पडितजी के सवाल का जवाब जानता हू। नैतिकता का मुख्य लक्षण मै यह मानता हू कि एक नीतिनिष्ठ पुरुष निर्णय लेता है और उसको कार्यान्वित करता है तो वह उसमें अपने या दूसरा के स्वार्थों का ख्याल नही करता। वह न्यायनिष्ठ है—यानें किसी विवाद में अपने पक्ष को वह ज्यादा महत्व नही देता, इतना ही नही, बल्कि वह धीर भी है, उसके लिये अपने जीवन की कीमत दूसरो के जीवन से ज्यादा नही है। बुद्धने कहा था कि, "मानव का प्रेम और करुणा असीम है।" ईसु ने कहा, "तुम अपने पडोसी पर अपने जैसा ही प्रेम करो।" शकराचार्य ने सिखाया कि अपने और दूसरो के बीच का भेद माया है। इन महान् आत्माओ का मै पूरा पूरा अनुसरण तो नही कर पाता हू। अगर मै अपने पडोसी पर अपने जितना ही प्रेम नही कर पाता हू तो कभी कभी अपने ऊपर उतना ही द्वेष करता हू जितना पडोसी पर। अगर मै अपने और दूसरो के बीच के भेद को पूरी तरह माया के तौर पर नही देख पाता हू तो भी मै समझता हू कि वह किन्ही अहैतुक घटनाओ पर ही आधारित है—जैसे जीवाणुओ का पृथक्करण, जो कि अन्यथा भी हो सकता था।

अध्यात्म

"अध्यात्म शब्द से प्रधान मन्त्री का तात्पर्य क्या है, यह मै ठीक ठीक नही जानता। मै मानता हू कि वह इन्द्रियार्थों के उपभोग या सपत्ति के सचय से अलग दूसरे विषयों में ज्यादा रुचि रखना होगा। सभी धर्मों में मानव के स्वभाव तथा इस ब्रह्माण्ड में उसके स्थान के बारे में कुछ विवरण दिये गये हैं, लेकिन प्रधान मत्री के जैसे ही मुझे भी इनमें कई सारे असत्य दीखते हैं। मगर वैज्ञानिक माने जाने-वाले कई विवरणो में भी बहुत सारे सत्यो को

छोड दिया गया है जो कि उतनी ही गलत धारणायें पैदा करनेवाली बात है।

यह मेरा अनुपम भाग्य रहा कि तीन साल की आयु से ही मेरे पिताजी मुझे विज्ञान सिखाने लगे थे। वे एक शरीर-शास्त्रज्ञ थे, जिनका काम मानवशरीर के प्रवर्त्तन का अध्ययन था, वे एक अच्छे आदमी भी थे जो अपनी जान को खतरे में डाल कर दूसरो की जान और स्वास्थ्य की रक्षा करते थे। मुझे याद नही पडता कि उन्होने नैतिकता के वारे में मुझे कभी वाचिक उपदेश दिया हो। उन्होने अपने ही जीवन के उदाहरण से मुझे शिक्षा दी और बहुत छोटी उम्र में ही मेरी अपनी या दूसरो की भी सफलता या आनन्द को छोडकर अन्य विषयो में भी मेरी रुचि पैदा कर दी।"

विज्ञान की शिक्षा और उसके प्रयोजन के बारे में हालडेन आगे लिखते हैं

"मेरे विचार में विज्ञान की शिक्षा मानव के अस्थिपजर के अध्ययन से शुरू करना अच्छा होगा। नैतिक दृष्टि से इसमें दो लाभ हैं। पहला यह कि मानवशरीर की यह जानकारी विद्यार्थी को घायलो और बीमारो की सहायता और प्राथमिक उपचार करने में मदद करती है। वह मृत व्यक्ति, जिसकी अस्थियो का हम अध्ययन करते हैं, जिन्दो का उपकार कर रहा है, और इस अध्ययन से बच्चा मृत्यु को एक स्वाभाविक चीज के तौर पर लेना और मृतो के प्रति कृतज्ञता महसूस करना सीखता है। हर बच्चा अपने को और अपने परिवार को कुछ विशेष प्राणियो के रूप में देखने की गलती करता है और उसके लिये यह बडी अच्छी बात है कि वह जल्दी ही समझ ले कि सभी आदमियो की दो ऊर्वस्थियां और गर्दन के पीछे सात अस्थियां होती हैं, तथा इनमें और अन्य कई सारी बातो में वे कुत्तो बिल्लियो और गायो के समान हैं, उगलियो और दातो की सख्या में फरक है और जानवरो की एक पूछ होती है, जो हम में नही है।

एक यंत्र :

'एक बच्चे से अपने आपको एक मानवप्राणी के तौर पर समझने और उसके अनुसार व्यवहार करने के लिये कहने से शायद ही कुछ फायदा होगा। लेकिन उसकी शिक्षा की व्यवस्था ऐसी की जा सकती है जिससे कि यह वृत्ति उसे स्वाभाविक ही हो। मुझे जहा तक याद है सात साल की उम्र में मैं अपने आपके बारे में एक यत्र के तौर पर सोचता था। यह कोई बडी मिथ्या धारणा नही है। अगर बच्चा अपने शरीर की तुलना एक मोटरकार की इजिन या हाथघडी के साथ करता है तो जितनी जटिलता की कल्पना उसकी बुद्धि के लिये साध्य है उतना हो गया। और यह विश्वास कि वह खुद एक यत्र है, उसे यत्रो के साथ मृदुता का व्यवहार करा सकता है। मेरी समझ में कोई धार्मिक व्यक्ति भी इस दृष्टिकोण के प्रति गभीर आपत्ति नही कर सकता। अगर बच्चा अपने शरीर को एक यत्र समझता है तो वह यह तो जान गया कि उसने खुद उसकी सृष्टि नही की, न ही उसके मा बाप ने की। इसलिये सभवत उसके सृष्टिकर्ता कोई अतिमानव प्राणी होना चाहिये। 'मैं ईश्वर का बनाया हुआ एक यत्र हू। इसलिये मुझे ऐसा काम करना चाहिये जैसा मेरे सृष्टिकर्ता चाहते थे" बच्चे का यह सोचना कोई धर्मविरोधी बात नही होगी।"

इस सबध में श्री हालडेन एक बडी दिलचस्प कहानी बताते हैं। बेंजमीन फ्राकलीन का नाम आधुनिक अमेरिका के निर्माताओं में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने ही कब्र पर लगाने के लिये यह वाक्य लिख रखा था।

'मुद्रक फ्रान्किलन का शरीर (एक फटी पुरानी पुस्तक के जैसे जिसके पन्ने फाडे और निकाले गये हो) यहा पडा है, कीडो का आहार बन कर। लेकिन यह काम बेकार नही जायगा, क्योंकि वह फिर एक दफे आयगा--एक नये और ज्यादा सुन्दर सस्करण में, लेखक द्वारा परिवर्तित और सशोधित।"

हालडेन कहते हैं, "मैं स्वय फ्रान्कलीन के इन विश्वासो में साझीदार तो नही हो सकता। लेकिन मैं इनका और जो ऐसा विश्वास रखते हैं, उनका आदर करता हू। फ्रान्कलीन मृत्यु से या ईश्वर से डरता नही था, जैसे वह ब्रिटिश सेना से और विद्युत्प्रवाहो से नही डरता था"

वे आगे लिखते हैं "करीब इसी समय मेरे पिताजी ने मुझे दो और बाते सिखायी--नक्शा देख कर जगह पहचानना और खगोलशास्त्र के प्रारभिक पाठ। वे मुझे ऑक्स्फर्ड के नजदीक कही एक दूर देहात में ले जाते, फिर एक बडा नक्शा खोल कर मुझे उसमें हम जहा पर है वह स्थान दिखाते और कहते कि उसके सहारे मैं सब से आसान रास्ते से घर जाऊ। मैंने करीब करीब वाक्य पढना सीखने के साथ ही नक्शा देखना भी सीख लिया था। इसी प्रकार उन्होंने मुझे दिखाया कि कैसे ज्यो ज्यो चन्द्र सूर्य से दूर जाता हो तो उसके अधिक अधिक भाग पर प्रकाश पडता है। और कुछ तारो का भी पहचान करा दिया। मुझे विशेष याद है कि उन्होंने दिन की रोशनी में मुझे शुक्र को दिखाया था और सन् १९०१ में एक दफे जब कि मैं आठ साल का था रात को एक तारा दिखाने के लिये मुझे उठाया था।

"इस शिक्षा के फलस्वरूप मैं अपने शरीर को, अपने जन्मस्थान के आसपास के भूभाग को तथा नक्षत्र पूर्ण आकाश को समानभाव से देखने और उनके प्रति एक ही प्रकार की भावना रखने का आदी हो गया। मैं प्रकृति में अकेलापन नही महसूस करता हू। (मैं मानता हू कि पडितजी को भी अकेलापन नही महसूस होता होगा।) कुछ लोग इस मनोवृत्ति को धार्मिकता कहेंगे तो और कोई आध्यात्मिकता बतायेंगे, मैं तो उसको भौतिकता कहता हू।

मेरे पिताजी ने एक दफे स्वस्थ, आरोग्यवान स्त्री पुरुषो और बच्चो के रक्त में "हीमोग्लोबिन" की मात्रा का सकलन करने के लिये व्यापक परीक्षण किया था। इसके लिये उन्होंने मेरे शरीर से भी रक्त लिया तो उससे विज्ञान के प्रति मेरी नैतिक वृत्ति को और भी बढावा मिला। इसके कुछ समय बाद उन्होंने कई सारे परीक्षणो के लिये मेरा उपयोग किया, मेरे श्वास का रासायनिक विश्लेषण किया और लोहे की खनी के एक अति उष्ण भाग में मैं कब तक बेहोश होने से बच सकता हू, इसका निरीक्षण किया, और इस प्रकार के और भी। उन्होंने इन कामो से मुझे कोई नैतिकता का पाठ सिखाने का प्रयत्न तो नही किया। लेकिन मैं जानता था कि वे क्यों यह सब कर रहे हैं। उस समय इग्लैण्ड

की टिन की खनियो में काम करनेवालो के बीच 'हुकवर्म' की बीमारी बुरी तरह से फैली थी, जिससे उनमें से कइयो का स्वास्थ्य खराब हो गया और कुछ का तो जीवनाश ही हो गया। पिताजी इस बीमारी का शोध कर रहे थे, वे रोगियो के रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा की जाच कर रहे थे यह जानने के लिये कि इन कृमियो ने उसकी कितनी हानि कर दी है। इसके लिये उन्हे स्वस्थ आदमियो के रक्त में भी हीमोग्लोबिन की मात्रा का पता चलाना आवश्यक था।"

आगे चल कर हिन्दुस्तान में विज्ञान की शिक्षा के बारे में हालडेन कुछ बहुत ही विचारयोग्य सुझाव देते हैं

"ऐसे पिताजी मिलना मेरा बडा भाग्य था, ज्यादातर बच्चे तो अनुसन्धान के काम में इतना सीधा भाग नही ले सकते हैं। फिर भी हर एक भारतीय बालक बाहर से उपकरण मगाने में एक पैसा भी खर्च किये बिना ही इस प्रकार के काम में भाग ले सकता है। अगर साल में दो दफ स्कूल के हर एक बच्चे की ऊचाई का माप लेकर ग्राफ में उसको अकित करे तो बच्चे अनायास ही ग्राफ और माप के बारे में बहुत कुछ सीख जायेंगे। लेकिन मेरे विचार म ज्यादा महत्व की बात यह है कि उससे बच्चे अपन बारे में वस्तुनिष्ठ रूप से सोचना सीखेंगे। और अगर कई सौ ग्रामीण शालाओ से भी इस तरह के व्यवस्थित विवरण कुछ सालो तक उपलब्ध होते हैं तो हम यह जान सकेंगे कि अब भारत के बच्चे पहले से जल्दी बढते हैं कि नही, जैसे कि पोषण में समुचित वृद्धि से होना चाहिये। कुछ पाठक कह सकते हैं कि अगर बच्चे हमेशा अपने शरीर के बारे में ही सोचना शुरू कर देंगे तो उससे उनके मन में कुछ विकृति आ सकती है। हा, अगर आप सभावित बीमारियो के सबन्ध में ही अपने शरीर के बारे में सोचते हैं तो यह ज्यादा अच्छा होगा कि आप सोचे ही न। मे चाहता हू कि बच्चे अपने बारे में वैसे ही सोचे जैसे वे तारो, नदियो और पेडो के बारे में सोचते हैं।

"मुझे लगता है कि हम विज्ञान की शिक्षा को गलत ढग से शुरू कर देते हैं। बच्चो को विभिन्न वस्तुओ के बारे में ऐसे सोचने की शिक्षा दी जाती है जैसे कि वे बाकी सब वस्तुओ से अलग है और उनपर कई शक्तिया काम कर रही है, इत्यादि। यह सही है कि इस दृष्टिकोण के कारण कुछ सरल यन्त्रो के निर्माण में मदद मिली है। लेकिन एक टेली-विजन सेट को समझने में उससे कोई फायदा नही होता है, न ही एक घास के पत्त को समझने में। अगर यह विश्व सचमुच पृथक् पृथक् कणो का समुच्चय होता, जिसपर दूसरे कणो की शक्तिया काम करती रहती हैं तो उसमें नैतिकता या आध्यात्मिकता का स्थान ही नही रहेगा। असल में छोटे से छोटे कण भी इस प्रकार से काम नही करते हैं। वे एसे ही नियमो से चलते हैं जो समूहो पर लागू होते हैं न कि पृथक् पृथक् कणो पर। कुछ तो एस एन बोस और आइन्स्टाइन द्वारा प्रथम आविष्कृत नियमो का अनुसरण करते हैं जब कि दूसरे कुछ फर्मी तथा दिराक के निर्णीत नियमो के अनुसार चलते हैं। लेकिन यह विश्व विद्यालयो में भौतिक विज्ञान की शिक्षा के आखिरी एक दो साल म ही विद्यार्थियो को सिखाया जाता है। यह एसा ही है जैसे कि

दस साल तक बच्चों को मानव स्वभाव के बारे में सिखाया गया और उसके बाद ही बताया कि वे परिवारों और समाजों के सदस्य हैं।

मेरा दृढ विश्वास है कि अगर हम अपनी विज्ञान की शिक्षा को ठीक मार्ग पर ले जाते हैं तो पाश्चात्य देशों से और चीन से भी बहुत जल्दी आगे बढेंगे। लेकिन यह तब तक असंभव है जब तक कि हमारा अध्यापन आज के पाठ्यक्रमों के बन्धनों में जकडा हुआ है और हमारा अनुसन्धान के काम में इतनी सारी बाधाएँ उपस्थित होती हैं। यहां मैंने सिर्फ विज्ञान की शिक्षा को नैतिकता की ओर ले जाने के लिये कुछ सुझाव दिये हैं। मैं मानता हूं कि इनको स्वीकार करने से भारतीय विज्ञान ज्यादा सक्षम एवं नैतिक बनेगा।

(पृष्ठ ३०१ का शेषांश)

लेकिन अमूल्य होने पर भी इन मंडलों के ये उपयोग और ये नाम मुझे मूल उपयोग के सामने बहुत मामूली जैसे लगते हैं। वह उपयोग है : जैसा आकाश स्वच्छ है वैसे ही हम भी स्वच्छ बनें। जैसे तारे तेजस्वी हैं वैसे ही हम भी तेजस्वी बनें। वे जिस तरह ईश्वर का मूक स्तवन करते मालूम होते हैं उसी तरह हम भी ईश्वर का स्तवन करें। वे जिस तरह एक पल के लिए भी अपना मार्ग नहीं छोडते, उसी तरह हम भी अपना कर्तव्य न छोडें।

* 'आश्रम-जीवन' (नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद) से

बडा आनंद आता, सारी रात उनका स्थान बदला करता है। उनकी गतिको बतानेवाला नकशा तैयार किया जाय, तो उनके मार्ग का एक खासा वर्तुल-गोल घेरा-बन जायगा। इनमें से बडे मडल को पश्चिम में बडा रीछ और छोटे मडल को छोटा रीछ कहते हैं। एक पुस्तक में मैंने इनके सुन्दर चित्र भी देखे हैं। इसके सिवा, बडे रीछ को वहां हल की उपमा भी दी जाती है। सप्तर्षि मंडल तो रात में घडी की गरज पूरी करता है। थोडी आदत पड जाने के बाद सप्तर्षि की गति से समय जरूर जाना जा सकता है।

पूर्वी जर्मनी में शिक्षा व्यवस्था

देवी प्रसाद

हालाकि मेरे यूरोप के प्रवास का मुख्य उद्देश्य वहा की शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना था तो भी कुछ देशो की शिक्षा पद्धतियो को ध्यान से देखकर समझने की इच्छा थी। विशेष तौर से पूर्वी यूरोप के देशो की शिक्षा के बारे में जानना चाहता था। सौभाग्य से पूर्वी जर्मनी की सरकार की तरफ से मुझे इसके लिये निमत्रण भी मिला, और मैंने लगभग दस दिन, जितना भी हो सकता था, अपना पूरा समय इस काम के लिये लगाया। वहा की सरकार ने भी मुझे उस तरह की अनेक सस्थाओ और केन्द्रो को देखने का अवसर दिया, जिन्हें मैं देखना चाहता था।

साधारण प्राइमरी स्कूल, किन्डर गार्टन, बालवाडिया, माध्यमिक पाठशालायें, टैक्निकल स्कूल, फेक्टरिओ के साथ जुडे हुओ स्कूल, शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र और शारीरिक विवशताओवाले बच्चो को शिक्षण देनेवाले स्कूल–जैसे बहरे और गूगे या अन्धे बच्चो के–देखने पर खास ध्यान दिया।

कम्युनिस्ट देशो में बच्चो की तालीम का एक दूसरा माध्यम भी बडा महत्वपूर्ण होता है। हर शहर या क्षत्र में वे बच्चो के क्लब की जैसी सस्थायें निर्माण करते हैं। इन्हे पायोनियर पैलेस कहते हैं। उनको मैं हमेशा ही बडा उपयोगी मानता आया हू। ऐसा एक पायोनियर पैलेस बर्लिन में देखा।

जानबूझकर उच्च शिक्षा यानी विश्वविद्यालय की शिक्षा को नही देखा, क्योकि इतने कम समय में अपने अध्ययन को व्यापक बनाना सभव नही था। शिक्षको के प्रशिक्षण के कार्य को छोडकर बाकी सारा ध्यान विश्वविद्यालय के स्तर से नीचे की शिक्षा को देखने में ही लगाना चाहता था। यह मैंने अपने आतिथेय को लिख दिया था। जब वहा पहुचा तो देश के कुछ अलग-अलग स्थानो में जाकर ये सब केद्र देखने का कार्यक्रम बनाया और उन्होने मेरे इस कार्यक्रम का पूरा इन्तजाम करने के लिये वहा की शिक्षा में शोध करने वाली प्रमुख सथा, जो बर्लिन में है, उसपर भार सौंपा।

सबसे महत्वपूर्ण बात जो मुझे पूर्वी जर्मनी की शिक्षा व्यवस्था को देखकर महसूस हुई, वह यह थी कि वे इस चीज के ऊपर बहुत जोर दे रहे हैं कि राष्ट्र के हर बालक बालिका को शिक्षा मिले। साथ साथ यह भी एक बडी बात है कि वहां हर व्यक्ति ऊचे-से-ऊची तालीम को पाने के लिए इच्छा रख सकता है, वहा तक जाने के लिये उसके सामने कोई भी दरवाजा बन्द नही किया गया है। यानी हर व्यक्ति तालीम की किसी भी सीढी तक पहुचने की कोशिश कर सकता है। फैक्टरिया के मजदूर विश्वविद्यालयो के अग के रूप में आयोजित शिक्षाक्रमो में भाग ले सकते हैं और पहले हाई-स्कूल का शिक्षाक्रम पूरा करने के बाद एक से

तीन साल की अवधि में युनिवर्सिटी की शिक्षा प्राप्त कर सकते है। जिस-जिस फैक्टरी में गया, मैंने देखा कि वहा के अनेक मजदूर इस प्रकार के शिक्षाक्रमो में हिस्सा ले रहे है।

ऐसे बालक बालिकायें, जिनको शारीरिक अवशताओ के कारण साधारण पाठशालाओ में शिक्षा लेना सभव नही हो सकता, उनके लिये पर्याप्त मात्रा में स्कूल खुले है। अन्धे और बहरे बालको के स्कूल में जाकर उनका काम देखने पर पता चलता है कि उन्होने इस ओर कितनी अच्छी प्रगति की है। जो-जो सुविधायें सामान्य स्कूलो में होती है, वे सब इनके लिये भी उपलब्ध है। ऐसे यत्र जिनसे बहरे, गूगे बालको को शिक्षा में मदद मिल सकती है और अन्य तरह-तरह के शैक्षणिक साधन-सामग्रियाँ उन्होने निर्माण की है। पहले गूगे, बहरे बालको के लिये आठ वर्ष के स्कूल होते थे। किन्तु अब इस प्रकार के बच्चो की शिक्षा बालवाडी की अवस्था से ही शुरू करने की गुजाइश हो गयी है। अनुभव यह है कि अगर ऐसे बच्चो के ऊपर प्रारभ से ही ध्यान दिया जाय तो उनका विकास अधिक और अधिक सरलता से होता है। चाहे विकास अधिक हो या न हो, वे बच्चे जो आम तौर पर परिवार और समाज में दयनीय बन जाते है, वे इन शालाओ में आकर कितने खुश और स्वस्थ हो जाते है, यह देखकर बहुत आनन्द होता है। आठ कक्षा का स्कूल पास करने के बाद ये लडके लडकिया अपनी शक्ति के अनुसार कार्यों में लग जाते है। हा, उनका कहना यह था कि बहरे बालको को बौद्धिक विकास में कठिनाई होती है। ऐसे शारीरिक कमिओवाले व्यक्तियो के बारे में एक सामाजिक प्रश्न भी रहता है। गूगे, बहरे, लडके, लडकियो के विवाह में आम तौर पर कठिनाई होती है। अन्य बातो में भी उनके बारे में जो वृत्ति लोगो की होती है उसके कारण इनमें हीनता का भाव आ जाता है। इस प्रश्न के बारे में इनके शिक्षको से काफी चर्चा हुई। उनका कहना था कि क्योकि इनके स्कूल सह-शिक्षणवाले होते है, इनमें आपस में कई बार विवाह हो जाता है। और क्योकि शिक्षण के बाद बोलचाल व साधारण ज्ञान में ये सर्व सामान्य की तरह ही होते है, आम लोगो के साथ काम में लगने के बाद इनका यह हीनता का भाव भी मिट-सा जाता है। हाथ के काम में ये लोग काफी अच्छे सिद्ध होते है।

बच्चे जब ऐसी बिमारी से बीमार पडते है जो लम्बे अर्से तक चल सकती है, आम तौर पर उस अवधि में स्कूल से गैरहाजिर रहने के कारण अपनी शिक्षा में पिछड जाते है। कभी-कभी तो उन्हे दो-दो तीन तीन साल भी अस्पताल में रहना पडता है। ऐसी परिस्थिति में क्या हो? उनके लिये बडे-बडे अस्पतालो के साथ ऐसे शिक्षण के केन्द्रो की व्यवस्था की जा रही है जो बालक को उसकी खाट पर लेटे-लेटे भी शिक्षा देते है। इस वाक्य को लिखते मुझे ज्योहान्स्करटाड का अस्पताल याद आ रहा है। यह ओर्थोपीडिओलॉजी का अस्पताल है। इसमें २५० बच्चे है और १५ शिक्षक व १२ सहायक शिक्षक नर्स। छ हफ्ते से दो साल तक बच्चे वहा रहते है। रोज दो घटे तक उनकी क्लास तीन-तीन चार-चार की टोलियो में होती है। और यदि आवश्यक हो तो अकेले बालक को भी अलग से पढाया जाता है। एक छोटी सी बच्ची को देखा था—उल्टा लेट-

कर उसे अपना एक पैर ऊपर रखना पडता था। शायद उस बेचारी बच्ची को आठ, दस महीने वैसा ही रहना पड़े। एक शिक्षिका उसे विज्ञान का पाठ पढा रही थी। इसी तरह एक कमरे में चार-पाच नन्हें-नन्हें शिशुओ का मनोरंजन एक शिक्षक-नर्स कहानी सुनाकर कर रही थी। बच्चो के ऊपर इतना ध्यान देते हुए देख कर किसका दिल नही भर जायगा।

दो, तीन वर्ष पहले तक पूर्वी जर्मनी के प्रारम्भिक स्कूल आठ वर्ष तक के होते थे। अुसके बाद चार वर्ष वाले हाइस्कूल, जिसके बाद विश्वविद्यालय की शिक्षा की तैयारी की अवस्था होती है। किन्तु अब अुन्होने सब पाठशालाओ को दस वर्ष के जनरल पॉलिटेक्निकल हाइस्कूलो में बदलना शुरू किया है। इन स्कूलों में शिक्षाक्रम इस प्रकार रहता है कि जिससे इस अवधि को पूरा करने के बाद लडके लडकिया ज्ञान-विज्ञान और टेक्निकल ट्रेनिंग इतनी पा ले कि विशेष धन्धो वाले स्कूलो और विश्वविद्यालयो में जा सके।

स्कूलो में विज्ञान के अूपर बहुत जोर दिया जाता है। बौद्धिक और शारीरिक कार्य में जो भेद माना जाता है अुसे मिटाने के लिये वे प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिये स्कूल के प्रारंभ वर्ष से ही समाज के आर्थिक और उत्पादक पहलुओ से परिचय कराना प्रारभ करते है। उत्पादन की तकनीक का परिचय और अभ्यास स्कूल के बालको को हफ्ते में आधा दिन फैक्टरीओ में जाकर काम कराने से दिया जाता है। फैक्टरी के साथ एक विभाग होता है जहा बालक धातुकार्य यन्त्रशास्त्र आदि सीखते है। ग्रामीण क्षेत्र में स्कूल के बालको को फार्म के साथ जोडा जाता है।

जो कार्य ये बालक फैक्टरी में जाकर करते हैं उसका आर्थिक माप कुछ नही किया जाता। लेकिन उसके शैक्षणिक और सामाजिक तत्वों के ऊपर बहुत जोर दिया जाता है। जहा तक आर्थिक प्रश्न का सवाल है उसको भी हम अपनी दृष्टि से देख सकते हैं। मैं बर्लिन में एक शाला की सातवी कक्षा को फैक्टरी में काम करते हुए देखने गया था। बालक लोहे का काम कर रहे थे। पूछने पर पता चला कि जो चीज वे बना रहे हैं वह इस तरह की है कि उससे औजारो को नियमित ढग से इस्तेमाल करने की शिक्षा और बारीकी से नाप-जोक करने का अभ्यास होगा; साथ-साथ साल के अन्त तक हर बालक विज्ञान की प्रयोग शाला में उपयोग होने वाले एक-दो साधनो का निर्माण कर लेगा। उसका आर्थिक महत्व भी काफी है। जब उसी दिन उनकी पाठशाला में गया तो देखा कि उसी कक्षा ने पिछले वर्ष जो वस्तुअें बनायी थी उनका उपयोग प्रयोग शाला में हो रहा है। इसलिये वे अपनी दस वर्षीय पाठ शालाओ को पॉलिटेक्निक शिक्षा का नाम देते हैं। उस शिक्षा की हमारे देश की पॉलिटेक्निक स्कूलों की शिक्षा से मिलान नही करना चाहिये, क्योकि वहां साधारण शिक्षा का स्वरूप ही पूरा पूरा पॉलिटेक्निकल शिक्षा में बदला जा रहा है। स्कूलो में खास तौर पर एक वर्क शॉप होती ही है जो छठी कक्षा तक के बालको के लिए खास तौर पर होती है। स्कूल में विज्ञान की प्रयोग शालाओ पर बहुत जोर दिया जाता है।

दस वर्षवाले नये स्कूल के दो भाग होते है। पहला चार वर्षीय जूनिअर और दूसरा छः वर्षीय सीनिअर। इन स्कूलों में जर्मन भाषा

और साहित्य, रशियन भाषा, गणित, भौतिक विज्ञान, खगोल शास्त्र, रासायनिक शास्त्र, जीवशास्त्र, भूगोल, दस्तकारी, कशिदे का काम और टैक्निकल ड्राइंग आदि विषय पढाये जाते हैं। पहले छः वर्षों में वर्क शॉप में एक घटा प्रति सप्ताह; बाद में आधा दिन प्रति सप्ताह फैक्टरी या फार्म में दिया जाता है। निम्नलिखित विषय भी इन दस वर्षों की अवधि में आ जाते हैं। इतिहास, नागरिक शास्त्र, ड्राइंग, संगीत, और खेल-कूद। स्कूलो में जिमनेस्टिक में खूब रुचि देखी जाती है। हर स्कूल में 'जिमनेस्टिक के लिए बहुत अच्छा बडा हॉल होता ही है।

स्कूलों, फैक्टरिओ आदि सब में कुछ "फन्डामेन्टल" विषयों का पढाना अनिवार्य है। इसमें मार्क्स वाद, लेनिन वाद आदि आते हैं।

दस वर्षीय-स्कूल की शिक्षा के बाद वोकेशनल, टैक्निकल सस्थाओं या विश्वविद्यालय की शिक्षा आती है। तरह-तरह के सैकडो धन्धो में ट्रेनिंग देने के लिए अलग से और फैक्टरिओ के साथ स्कूलों की व्यवस्था है। दो वर्ष का शिक्षाक्रम पूरा करने के बाद उन्हे वर्कर्स डिप्लोमा दिया जाता है, और यदि वे चाहे तो तीन वर्षों के शिक्षाक्रम को पूरा करके 'मेच्योरिटि' परीक्षा में बैठ सकते हैं। लेकिन दो वर्ष वाले शिक्षाक्रम के बाद फैक्टरी में काम मिल सकता है और काम के साथ-साथ सायंकालीन शालाओ या वर्कर्स कॉलेजों में उच्च शिक्षा को तैयारी भी कर सकते हैं।

शहर के और गाव के स्कूलो में बहुत अन्तर दिखायी दिया। अुसका कारण आर्थिक ही है। पूर्वी जर्मनी पश्चिम जर्मनी से बहुत ही पीछडा हुआ और गरीब है। जर्मनी के इस भाग की यह स्थिति शायद सदियों पूरानी होगी। वहां के गाव और हमारे गाव को देखकर अेक दूसरे की याद आ जाती है। सडकें आदि भी ग्रामीण इलाकों में अभी तक अुतनी विकसित नहीं हुई जितनी शहरों में या शहरो के पास। इस क्षेत्र का औद्योगिक विकास भी बहुत कम हुआ है। अधिकतर स्थानों में खेती ही मुख्य प्रवृत्ति है और इसलिअे शालाओ को भी खेती के छोटे-बडे फार्मो के विकास के साथ-साथ ही अुठना होता है। टैक्निकल शिक्षा के लिअे जो समय दिया जाता है वह फार्म में, अुस इलाके के ट्रेक्टर-स्टेशन में और पशु-पालन के केन्द्रों में दिया जाता है।

वार्निट्ज़ के ग्रामीण सघन क्षेत्र के स्कूलों को देखने का मौका मिला। अेक केन्द्रीय स्कूल है और अुसके साथ चार चार दर्जेवाले स्कूल, जो ७ किलो मीटर के दायरे के अन्दर हैं, जुडे हुअे हैं। चौथी कक्षा पास करने के बाद बच्चे इस केन्द्रीय स्कूल में आते हैं। चार कक्षावाले हर स्कूल में छोटी सी वर्कशॉप है। इस क्षेत्र का ट्रेक्टर स्टेशन बडी कक्षाओं की पॉलिटेक्निकल शिक्षा के लिअे केन्द्र बनाया गया है। आठ दर्जे तक के बच्चे इन सब गावों में से इस केन्द्रिय स्कूल में आते हैं। स्कूल की अपनी बस है जो अेक चक्कर में ७५ बच्चों को ले आती है। नौवी और दसवी कक्षा के लिअे बालक आस-पास के १६ गांव से आयें हैं। अुनके लिये अेक छात्रालय भी है। स्कूल की प्रयोग शाला अुतनी विकसित नहीं है जितनी शहर के सामान्य स्कूल की भी हो। लेकिन बताया गया कि अुनका आदर्श यह है कि शहर और गाव के स्कूलो में कोई मौली भेद नही होना चाहिये।

आडिओविज़ुवल साधनों में अच्छा विकास हुआ है। अिसकी केन्द्रीय सस्था को देखा। बालवाडी से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में अुपयोग में आनेवाले इस प्रकार के साधनों की शोध और परीक्षण का काम इस

संस्था में होता है। मुझे इनकी अेक वार्षिक प्रदर्शनी देखने का भी मौका मिला। लगभग सभी पढाये जानेवाले टेक्निकल विषय के लिये आडियोविजुवल साधनों की भरमार थी। और वे भी अच्छे और वैज्ञानिक। संस्था के द्वारा समय-समय पर एक सूची, जिसमें सब साधनों का जिक्र होता है, तैयार होती है। साथ-साथ शिक्षा विभाग की तरफ से अमुक-अमुक स्तर के स्कूलों में कौन-कौन से और कितने साधन कम से कम होने चाहिये उसकी सूची भी बनती है। हर जिले में एक या अधिक ऐसा केंद्र होता है जहां से ये साधन स्कूलों को मिल सके। यदि स्कूलों को उनमें से कुछ चाहिये तो उधार या स्थायी तौर पर साधन मिल जाते है। केंन्द्रिय संस्था विशेष मौकों पर–जैसे उत्सव त्योहार–इस्तेमाल करने योग्य नये-नये साधन बनाने की भी खोज करती रहती है। इस विषय पर एक पत्रिका हर पखवाडे में प्रकाशित होती है और प्रत्येक शालाको उसकी तीन तीन प्रतियां भेज दी जाती है।

शिक्षको की ट्रेनिंग ही शिक्षा के गुणात्मक स्तर का आधार होती है। यह बात वे लोग खूब महसूस करते हैं। और उसके लिये तैयारी भी गहराई से होती है। शिक्षक प्रशिक्षण के काम को देखने के लिये पॉट्सडॅम, पेडागॉगीकल विश्वविद्यालय देखने गया। इसमें लगभग २२५० व्यक्ति शिक्षक की ट्रेनिंग पाते हैं। यह विश्वविद्यालय इस प्रकार की ट्रेनिंग पत्र-व्यवहार द्वारा भी देता है, जिसमें ३५०० व्यक्ति ट्रेनिंग पाते हैं। इस विश्व विद्यालय में मुख्य तौर पर चार फैकल्टियां है: (१) वर्कर्स ऐन्ड पेरेन्टस् (२) गणित और विज्ञान (३) इतिहास और दर्शन (४) बुनियादी विषय। पाठयक्रम चार से पांच वर्ष तक का होता है। पहले वर्ष में बुनियादी विषयों की जानकारी और स्कूल व फैक्टरी में बच्चों का निरीक्षण और दो तीन सप्ताह किसी पायोनियर पैलेस में जाकर कार्य। दूसरे वर्ष में प्रति सप्ताह एक दिन प्रैक्टिसिंग स्कूल में मनोविज्ञान के विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में कार्य। चर्चायें व लेक्चर और डायग्नास्टिक टेस्ट आदि। तीसरे वर्ष में पढाने के अभ्यास और उसके लिये आवश्यक तैयारी में अधिक समय दिया जाता है। साल के अन्त में कुछ हफ्ते पूरा समय प्रैक्टिस टीचिंग में देते हैं। इस विश्वविद्यालय के इर्द गिर्द के सैंतीस स्कूल प्रैक्टिस स्कूल के तौर पर मान्य हैं।

इसी विश्वविद्यालय में शिक्षापद्धति पर शोध का कार्य होता है। रसायन शास्त्र के विभाग में कैमेस्ट्री पढाने के तरीकों की प्रयोग शाला देखी। यह शोध और पढाने की पद्धति के लिये है। बडे हॉल में शिक्षक पढाने का काम करते हैं और साथ-साथ प्रयोग करने की पद्धति का भी अभ्यास करते है। उसमें एक ऐसी खिडकी है कि यदि इस कमरे से खिडकी के कांच को देखा जाय तो वह एक काला आयना जैसा दिखता है, उस तरफ का कुछ नही दिखता। खिडकी के उधरवाले कमरे से इस हॉल की सब चीजो को बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है। यह छोटासा कमरा मुख्य प्रयोग शाला है। पढाते समय शिक्षक और विद्यार्थी क्या क्या बोलते हैं उसका टेप रेकार्ड बन जाता है। इधर बैठा हुआ शोध करनेवाला व्यक्ति पूरे समय का सूक्ष्म तौर पर रेकार्ड रखता है। उस रेकार्ड के आधार पर शिक्षकों की गल्तियां इत्यादि सुधारने में बडी सहायता मिलती है। इस कमरे का शोध के कार्य में बडा महत्व है। हर विभाग में इस प्रकार की प्रयोग शाला रहती है।

शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य कितना टेक्निकल है इसका एक धुंधला सा ही चित्र पहले

मेरे मन में था। किन्तु वह काम कितना टेक्निकल और कठिन है यह इस विश्वविद्यालय के कार्य की हलकी सी झाकी पाने के बाद ध्यान में आया। शिक्षको को कुछ मनोविज्ञान पर भाषण दिये, जीवन-दर्शन पर कुछ भावना प्रधान उपदेश दिये और दो चार दस्तकारिया सिखा दी तो शिक्षको की ट्रेनिंग हो गयी, ऐसा जो एक भाव हम लोगो के मन में बैठा हुआ है उसमें और इस प्रकार के वैज्ञानिक कार्य में कितना फर्क है, यह जान पाया।

शिक्षा और उत्पादक कार्य के सम्बन्ध के बारे में वहा पर लोग बडे सचेत है। किन्तु समवाय पद्धति की बडी टीका करते है। दरअसल मुझे ऐसा लगा कि वे शिक्षा के बारे में कुछ कन्जरवेटिव है और जो आधुनिक प्रयोग बिलकुल नये ढग के शिक्षण शास्त्र पर अन्य देशो में हो रहे है, उन्हें अपनाने के बारे में वे कुछ सनातनी-से दिखते है। हा, एक बात एसी बताई गयी जिससे मुझ बहुत आनद मिला। अगले दो वर्षो के अन्दर पूर्वी जर्मनी में हर शिक्षक किसी-न-किसी धधे वाला (वोकेशन) होगा, टीचर्स ट्रेनिंग का कोर्स कोई तभी पार कर सकेगा जब उसने किसी धधे में पूरी-पूरी ट्रनिग ले ली हो। इससे मुझे आनद इसलिये मिला कि मेरी एक मान्यता को इस विचार से पुष्टि मिलती है। ऐसे समाज में जहा बौद्धिक कार्य और उत्पादक कार्य में कोई भेद नही रखना हो तो शिक्षक वही अच्छा होगा जो किसी न किसी काम में दक्ष हो। साथ साथ सिखाने पढाने की कला में भी इसी प्रकार के व्यक्ति को अधिक सफलता मिलती है। नये समाज के निर्माण में यह निर्णय बडा महत्वपूर्ण है।

स्कूल में शिक्षा तो होती है, लेकिन उसका पाठ्यक्रम बिल्कुल नपातुला, बधा हुआ होता है। अलबत्ता, स्कूलो में ड्राइग और सगीत की शिक्षा का भी इन्तजाम है। बच्चो के थियेटर और नाच गाने के कार्यक्रमो का भी इन्तजाम होता है। लेकिन इन सब विषयो और इनके अलावा अनेक दूसरी ऐसी प्रवृत्तियो का इन्तजाम जिन्हें करने में बच्चो को आनद मिलता है और साथ साथ ज्ञान विज्ञान सहज और स्वतत्र रूप से प्राप्त हो जाता है, पायोनिअर पैलेस के द्वारा होता है। बच्चे सध्या समय अपने पायोनिअर पैलेस में जाते है और अपनी अपनी रुचि के अनुसार जुट जाते है। इन पायोनिअर पैलेस पर लाखो लाखो रुपया खर्च होता है। साधन सामग्री का इन्तजाम प्रचुर परिणाम में और व्यवस्थापको, शिक्षको और सहायको की व्यवस्था पूरी पूरी होती है। सैकडो बच्चे एक साथ दर्जनो प्रवृत्तियो में लग जाते है। पायोनियर पैलेसो में रेडिओ इजिनिअरिंग, मोटर ड्राईविंग, मॉडल बनाना, चित्रकला, मूर्तिकला, पाटॅरी, बढई काम, लोहार काम, इत्यादि की वर्कशाप, रसायनशास्त्र और जीवशास्त्र की प्रयोगशालाएँ तथा नृत्य, नाटय, सगीत बागवानी, स्टाम्प सग्रह करना, आदि प्रवृत्तियो की व्यवस्था भी होती है। बच्चे उनमें जा कर अपनी अपनी रुचि के अनुसार काम करते है। बर्लिन के एक पायोनिअर पैलेस में काफी समय रहकर बच्चो के काम को देखा। इसमें रेडिओवाले विभाग में उस विशाल इमारत की छत पर बच्चो का अपना रेडिओ स्टेशन भी था। बच्चो को मोटर ड्राइविंग के सारे सिद्धान्त खेल-खेल में ही पता चल जाय इसके लिये बहुत अच्छे मॉडल आटोमोबाईल वर्क शाप में थे।

पूर्वी जर्मनी की शिक्षा–योजना में आनद और पढाई–लिखाई दोना अलग-अलग हो जाती है। इसलिए इसमे कुछ कमी है, ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन इसमें शक

नहीं कि इन पायोनिअर पैलेसों में आकर स्कूल की पढ़ाई-लिखाई के द्वारा निर्मित तनाव तो खतम हो ही जाता है, साथ-साथ बच्चों को खूब मजा भी आता है। वे सुन्दर-सुन्दर चीजें खेल खेल में बना लेना सीख लेते हैं और स्कूल पढ़ाई में आने वाले सिद्धान्तों की जानकारी भी सहज रूप से उन्हें मिल जाती है। मुझे बताया गया कि स्कूल का और पायोनिअर पैलेस का घनिष्ठ सम्बन्ध रखा जाता है।

स्कूलों के इन्तजाम में पालकों का भी हाथ होता है। हर स्कूल की एक पालक कौन्सिल होती है। इसमें एक कक्षा से कम-से कम एक सदस्य बालकों के पालकों में से चुना जाता है। ये चुनाव स्कूल के अध्यक्ष के द्वारा आयोजित किये जाते हैं। इस कौन्सिल में उस क्षेत्र के औद्योगिक संस्थानों के प्रतिनिधि, प्राइमरी स्कूल का पायोनिअर लीडर और डेमोक्रेटीक लीग ऑफ विमेन के प्रतिनिधि भी होते हैं।

मैंने जो कुछ भी वहा देखा इसी दृष्टि से देखा कि चिन्तन और कार्य दोनों में मुझे कुछ नया मिले। मुझे हर्ष इस बात का है कि मैंने जो कुछ देखा उससे प्रेरणा ही ली। सैद्धान्तिक और जीवन दर्शन की दृष्टिसे कुछ मत भेद हो सकते है, और वे काफी गहरे भी हो सकते है, तो भी जो लगन और वैज्ञानिक दृष्टि मुझे वहा देखने को मिली वह बहुत सराहनीय है। हम यदि सीखनवाले हो तो टेक्निकल बातें तो सीखेंग ही, लेकिन उससे अधिक महत्व उनकी इस बातपर देंगे कि वहा राष्ट्र के हर व्यक्ति को शिक्षा मिले इसका सच्ची भावना के साथ काम हो रहा है। मैं कभी कभी जान बूझकर पूछ लिया करता था कि अमुक शिक्षाक्रम पूरा करने के बाद विद्यार्थी को डिग्री मिलगी। वे डिग्री की भाषा को समझते ही नहीं। और समझे भी क्यों! उन्हें शिक्षा का इन्तजाम डिग्रिया बाटने के लिये नही करना होता है। उन्हे तो राष्ट्र की समृद्धि कैसे हो और हर व्यक्ति उस समृद्धि को पाने के लिये अपना हिस्सा कैसे बटा सकता है, इसकी तैयारी करने के लिये शिक्षा व्यवस्था करनी है। स्कूल की शिक्षा के बाद हरेक काम में लग जाता है। डिप्लोमा लेकर नौकरी की तलाश नहीं करनी पडती। स्कूल अलग से कोई चीज नहीं है, सारे राष्ट्र के विकास में स्कूल की नजर है। हा, यह कह सकते है कि सारा काम साचे के ढलाई की तरह हो रहा है। बात काफी हद तक ठीक भी है। लेकिन जहा कुछ लोगो के बच्चे चार-चार सौ रुपये माह खर्च करते हैं और लाखो करोड़ो बच्चों के लिये आठ वर्ष की शिक्षा भी मुनहस्सर नही होती, जहा शिक्षा व्यक्ति को समाज सेवा के लिये न तो मानसिक ढग से और न कुशलता की दृष्टि से तैयार करती हो, उसके मुकाबले में साधारण व्यक्ति जब वहा की शिक्षा को देखेगा तो उसे बिना बधाई दिये रह नही सकता। हा, कुछ अधिक सोचने वाला शायद यह कहे, "काश उसमें अधिक व्यापक दृष्टि होती।"

पूर्वी जर्मनी के मित्रो ने जिस आदर के साथ मुझे रखा और शिक्षा क केंद्र और अन्य कई चीजें दिखाई, उसके लिए मैं उनका हार्दिक आभार मानता हूँ। उनके शिक्षा मत्रालय और भारतीय प्रतिनिधो को भी हार्दिक धन्यवाद।

शान्ति समाचार

अमेरिका और ब्रिटन के परमाणु बम परीक्षण फिर से शुरू करने के निश्चय के खिलाफ फरवरी में जनमत का अभूतपूर्व प्रदर्शन हुआ। वाशिंटन में अमेरिका के प्रेसिडेन्ट के निवास-स्थान के सामने प्रदर्शन में २,५०० लोगोंने भाग लिया था। इसके लिये कई विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी दूर-दूर से यात्रा करके आये। कैलिफॉर्निया के बरकली युनिवर्सिटी से एक सौ विद्यार्थी इसी के लिये विमान मार्ग से आये थे। प्रदर्शनकारियो में अधिक्तर विश्व-विद्यालयों के विद्यार्थी ही थे। प्रेक्षकों की एक बडी भीड इकट्टी हुई थी। वैज्ञानिक मामलों में प्रसिडेन्ट के विशेष सहायक डॉ. जेरोम वेसनर ने प्रदर्शनार्थियों के प्रतिनिधियों से मिलकर बातचीत की। एक प्रतिनिधिदल सोवियत दूतावास में भी गया।

कहा जाता है कि सरकार के किसी निर्णय के खिलाफ इतना विराट् प्रदर्शन अमेरिका में कम ही होता है।

मैत्री आश्रम की स्थापना

भारत की पूर्वोत्तर सीमा के कुछ ही मील के अन्दर नागा क्षेत्र की रमणीय पर्वतमाला की तलहटी में गत ता. ५ मार्च को विनोबा ने एक नये आश्रम की स्थापना की। पिछले साल इसी दिन, अर्थात् ५ मार्च को विनोबाने भूदान पदयात्रा के सिलसिले में असम में प्रवेश किया था। उसके ठीक एक वर्ष बाद नार्थ लखीमपुर के कस्बे से सटे हुए कल्याण केन्द्र में नये आश्रम का उद्‌घाटन करते हुए विनोबा ने बतलाया कि "इस आश्रम का ध्येय, नियम, उपनियम और कार्यक्रम सब कुछ एक ही शब्द के अन्तर्गत आ जाता है 'मैत्री'। आश्रम का नाम भी मैत्री आश्रम रखा गया है।

उत्तरी रोडेशिया में सत्याग्रह यात्रा

पिछले अंक में यह खबर दी गई थी कि उत्तरी रोडेशिया की अहिंसक लडाई में सहायता देने के लिये विश्वशान्ति सेना जुट पडी है। पदयात्रा टंगानिका के शहर दार-ए-सलाम से शुरू होगी और उत्तरी रोडेशिया में प्रवेश-कानून भंग करके प्रवेश करेगी। इस यात्रा के लिये कई देशों के शान्तिसैनिक दार-ए-सलाम पहुँच रहे हैं– इनमें अमेरिका, इंग्लैण्ड, नॉरवे, जर्मनी, इटली, फ्रांस और भारत के सैनिक हैं।

विश्वशान्ति सेना ने इस कार्य के लिए आर्थिक सहायता की भी मांग की है। नई तालीम के पाठकों से भी निवेदन है कि वे जितना हो सके उसके लिये मदद दें। जो सहायता देना चाहते हैं वे "नई तालीम", वास्ते विश्वशान्ति सेना, सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर भेज सकते हैं।

× × ×

टिप्पणियाँ

निःशस्त्रीकरण और शिक्षा का कितना गहरा रिश्ता है !

जेनीवा में अठ्ठारह राष्ट्रो का नि शस्त्रीकरण सम्मेलन हो रहा है । ये राष्ट्र इस निर्णय पर आना चाहते है कि दुनिया में नि शस्त्रीकरण हो । लेकिन बडे-बडे राष्ट्रो के आपसी डर, शका और तनाव के कारण बात सधते-सधते भी रह ही जाती है और वे दर्जनो ऐसी बैठको के बाद भी जहा के तहा रह जाते है ! उनके बीच के आपसी भेद मिटने के बदले अजेय और अभेद्य पर्वतो की तरह बन जाते है ।

लेकिन दूसरी तरफ उन्ही राष्ट्रो के बडे-बडे विशेषज्ञ उससे बिलकुल दूसरे ढग की बात हमारे सामने रखते है । इसी जेनीवा सम्मेलन के समय ही यूनो की एक दस राष्ट्रो की मडली ने अपनी रिपोर्ट पेश की है। उन्होने खास तौर पर इस भय का खडन किया है कि नि शस्त्रीकरण से आर्थिक कठिनाइया विराट रूप धारण कर लेगी । इस विषय पर बडी सूक्ष्म दृष्टि से अनेक राष्ट्रो की परिस्थिति का अध्ययन करने के बाद मडली ने यह रिपोर्ट तैयार की । हम यहा पाठको का ध्यान रिपोर्ट के उस भाग पर खेंचना चाहते है जहा कहा गया है, 'नि शस्त्र दुनिया में सरकारे शिक्षा, स्वास्थ्य, मानव कल्याण, सामाजिक सुरक्षा और सास्कृतिक विकास को अधिक महत्त्व दे सकेगी ।" इस रिपोर्ट की इससे भी बड़ी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है : "मनोवैज्ञानिक नैतिक और भौतिक दोषो से परिपूर्ण अनिवार्य सैनिक सेवा टल जायगी और नि.शस्त्रीकरण की प्रक्रिया से ही राष्ट्रो और मानववंशों के बीच के तनाव सहज ही खतम हो जायगे । व्यक्तिगत और राष्ट्रीय निराशाओं को राष्ट्रीयतावाद और जातीयतावाद पर आधारित घृणा की तरफ मोडने की वृत्ति बहुत हद तक कम हो जायगी ।"

हमारे जैसे राष्ट्रो को इसमें से बहुत कुछ सीख लेना चाहिए । मिलिटरी ट्रेनिंग के कारण व्यक्तियो और राष्ट्रो की क्षति होती है यह आज केवल "गाधीवादियो का तकियाकलाम" कह कर टाल देने से काम नही चलेगा । उसे यूनो जैसा राष्ट्र सगठन भी कह रहा है । बात केवल इतनी है कि क्या हम भेडचाल वाले बनना चाहते हैं या इस सिद्धान्त के प्रवर्तक के सच्चे अनुयायी कहलाने की आकाक्षा रखते है । इस रिपोर्ट के बाद हम राष्ट्र के हर शिक्षाशास्त्री, हर सरकारी व्यक्ति, और हर नागरिक से अपेक्षा करते हैं कि वह मिलिटरी ट्रेनिंग की ओर अग्रसर होनेवाले सभी सुझावो, कार्यक्रमों आदि का विरोध करे और उन्हे त्याग दें । नेशनल-इन्टीग्रेशन की बात करने वाले भी जरा इधर झुके और नेशनल इन्टीग्रेशन के लिए छिछले-छिछले सुझावो के बदले बुनियादी बातो की तरफ ध्यान दें ।

पुस्तक परिचय

वल्ड सर्वे ऑफ अेजूकेशन III सैकण्डूी अेजूकेशन; यूनेस्को प्रकाशन; पृष्ठ-१४८२; कीमत ७ पा० १७ शि० (लगभग ११० रुपये)

स्टडी अब्राड,

यूनेस्को प्रकाशन; पृष्ठ-७२२;-कीमत १५ शि० (लगभग १२ रुपये)

शिक्षा में शोध करने वाली संस्थाओं, सार्वजनिक और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए यह एक अत्यंन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है ! माध्यमिक शिक्षा का जो कार्य यूनेस्को के सदस्य देशों में हो रहा है उसके बारे में विस्तृत जानकारी इस ग्रन्थ में संग्रह की गई है। साथ-साथ उन देशों में माध्यमिक शिक्षा के विकास और संगठन का भी अच्छा-खासा मसाला दिया गया है। इसमें कोई शक नहीं कि यह विशाल ग्रंथ बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

इसी प्रकार का ग्रंथ, "स्टडी अब्राड" है। उच्चशिक्षा के लिए अनेक देश वजीफे और फैलोशिप देते हैं। इसके लिए कई देश आपस में मिली जुली व्यवस्था भी करते हैं। यह ग्रंथ उन विद्यार्थियों और शोध कार्यकर्ताओ के लिए उपयोगी होगा जो १९६२-६३ में विदेशो में जाकर अध्ययन करना चाहते हैं, क्योंकि किस-किस देश में किस-किस प्रकार की व्यवस्था है, कैसे वजीफे उपलब्ध है, इत्यादि जानकारी इसमें विस्तार से दी गई है। दे०

प्राप्ति स्वीकार

प्रकाशक : यूनेस्को, प्लेस द फोन्तेनोय,
पेरिस ७ इ, फ्रांस :

प्रकाशक : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद-१४

रजिस्टर्ड संख्या N 106

अन्तिम घड़ी तक अध्ययन

लोगों की आजकल यह आदत हो गई है कि पाच छः साल पढाई करना और फिर पढाई खतम। हमारा विचार यह नहीं है। मनुष्य जैसे मरने तक खाता है वैसे ही कुछ न कुछ पढाई बराबर होनी ही चाहिए। परमेश्वर ने केवल पाच छः साल का समय पढने के लिए नहीं दिया है, उन्होंने सारी जिन्दगी दी है। हर दिन मनुष्य को कुछ-न-कुछ नया ज्ञान हासिल करना चाहिये। शाम को सोने के पहले कुछ-न-कुछ ज्ञान की बातें प्राप्त करके तब सोना चाहिए। सुबह कुछ-न-कुछ पढ लेने के बाद काम में लग जाना चाहिये। कितना अच्छा होगा जब कि किसान शाम को अखबार पढेगा और कुछ श्रवण करेगा।

–विनोबा

अखिल भारत सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा) की ओर से श्री देवी प्रसाद द्वारा सम्पादित व प्रकाशित और नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

मई-जून १९६२

वर्ष १० • अंक ११-१२

सम्पादक
देवीप्रसाद

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

मई–जून १९६२

वर्ष १० : अंक ११–१२

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. डाक से मगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों मे लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष १० अक ११-१२ ★ मई-जून १९६२

विद्याभ्यास*

सत्याग्रह आश्रम का इतिहास लिखते लिखते शिक्षा के सम्बन्ध में जो विचार मेरे मन में खास तौर पर उठते रहते है, उनका सार आज में यहा दे रहा हू । आश्रम में कुछ लोगो को विद्याभ्यास की यानी किताबी शिक्षा की कमी मालूम होती है । मे भी इस कमी को समझ सकता हू । लेकिन शायद यह कमी तो आश्रम के साथ सदा जुडी ही रहेगी । इसके कारणों की मे इस समय चर्चा नहीं करूगा ।

यह कमी हमें इसलिए मालूम होती है कि हमने विद्याभ्यास का सच्चा अर्थ नहीं समझा है और उस अर्थ का विद्याभ्यास प्राप्त करने का तरीका नहीं जाना है । या हम ऐसा मानकर चल रहे है कि शिक्षा की मौजूदा पद्धति बिलकुल ठीक है । मेरी दृष्टि से आज की शिक्षा और उसे लेने और देने की पद्धति दोनों में बडा दोष है ।

सच्चा विद्याभ्यास वह है जिसकी मदद से हम अपनी आत्मा को, स्वय अपने को, ईश्वर को, और सत्य को पहचान सके । इस पहचान के लिए किसी को साहित्य के ज्ञान की जरूरत हो सकती है, किसी को भौतिक विज्ञान की जरूरत हो सकती है और किसी को कला की जरूरत हो सकती है । परन्तु हर प्रकार की विद्या का ध्येय आत्मदर्शन होना चाहिये । आश्रम में जो विद्याभ्यास चलता है उसका यही ध्येय है । उसको ध्यान में रखकर हम आश्रम में अनेक काम करते है । ये सब काम मेरे अर्थ में शुद्ध विद्याभ्यास है । आत्मदर्शन का हेतु न रखते हुए भी ये ही काम किये जा सकते है । परन्तु इस हेतु के बिना जब ये काम चलाये जाते है, तब वे जीवन निर्वाह का या दूसरी किसी बात का साधन भले बन जाय, लेकिन वे विद्याभ्यास नहीं है । विद्याभ्यास के समझदारी, कर्तव्य पालन की लगन और सेवा की भावना

जहां समझदारी होती है, वहां बुद्धि का विकास हुए बिना नहीं रहता। छोटे से छोटा काम करते समय हमारे मन में शुभ संकल्प होना चाहिए; उस काम को करते हुए उसका कारण और उसका शास्त्र समझने का हमारा प्रयत्न होना चाहिये। शास्त्र विज्ञान हर काम का होता है : खाना बनानेका, सफाईका, सुतारीका, कताईका। जो आदमी विद्यार्थी की दृष्टि से हर काम करता है, वह ऐसे काम का शास्त्र जानता है, अथवा रचता है।

इतनी बात प्रत्येक आश्रमवासी समझ ले तो वह देखेगा कि आश्रम एक महाशाला है, जिसमें एक निश्चित समय ही शिक्षा के लिए नहीं होता, बल्कि सारे समय शिक्षा का कार्य चलता रहता है। ऐसा हर आदमी, जो आत्मदर्शन सत्य के दर्शन की भावना से आश्रम में रहता है, शिक्षक भी है और विद्यार्थी भी है। जिस काम में वह कुशल है उसका वह शिक्षक है; जो काम उसे सीखना है उसका वह विद्यार्थी है। जिस बात का हमें पडोसी से अधिक ज्ञान हो वह अपने पडोसी को बिना किसी संकोच के हम सिखाते ही रहें, और जिस बात का ज्ञान हमारे पडोसी को अधिक हो वह बात हम बिना किसी संकोच के उससे सीख ले। इस तरह ज्ञान का लेना देना चलाते रहें तो हमें शिक्षकों की तंगी न रहे और शिक्षा सरल और स्वाभाविक बन जाय। ऊंची से ऊंची शिक्षा चरित्र की है। जैसे जैसे हम यमनियमो के पालन में आगे बढते जायगे, वैसे वैसे हमारी विद्या–सत्य का दर्शन करने की शक्ति बढती ही जायगी।

तब अक्षरज्ञान का, साहित्यिक शिक्षा का क्या होगा? यह सवाल अब रहता ही नहीं है। जो बात दूसरे कामों के लिए सच है, वही अक्षरज्ञान के लिए भी सच है। ऊपर मैंने ज्ञान के देन की जो योजना बनाई है, उससे एक भ्रम दूर हो जाता है वह भ्रम शाला के मकान और सिखानेवाले शिक्षक से सम्बन्ध रखता है। हमारे भीतर अक्षरज्ञान प्राप्त करने की इच्छा पैदा हो, तब हमें समझ लेना चाहिए कि यह ज्ञान हमें अपने ही प्रयत्न से प्राप्त करना है। इसके लिए आश्रम में गुंजाइश तो है ही। ऊपर लिखी अपनी बात अगर मैं सबको अच्छी तरह समझा सका होऊं तो अक्षरज्ञानकी समस्या हल हो जाती है। जिसके पास यह ज्ञान है वह दूसरों को समय समय पर देता जाय और दूसरे उसे लेते जाय।

—गांधीजी

यरवडा मंदिर (१० ७-'३२)

* 'आश्रमजीवन' से

पाठकों से निवेदन

चौबीस साल पहले बुनियादी शिक्षा का कार्य गांधीजी की प्रेरणा और मार्गदर्शन से शुरू हुआ। देश के बदलते हुए इतिहास में यह शिक्षण विचार अपनी शक्ति के अनुसार राष्ट्र के जीवन को जो देन दे सकता था देता रहा। इस विचार की कार्यरूप में जो परिणति हुई और उसके आधार पर देश में जो छोटे-बडे प्रयोग चले, उन्होने भी राष्ट्रीय जीवन पर और खास तौर पर तालीम के क्षेत्र में जो सम्भव व शक्य था वह प्रभाव डाला। स्वतन्त्रतासंग्राम के दौरान में जो उथलपुथल हमारे जीवन में घटी उन्हे झेलता हुआ, उन्हे प्रेरित करता हुआ और उनसे प्रेरित होता हुआ नई तालीम का आन्दोलन, कभी-कभी धीमे ही क्यो न हो, एक आलोकदायी दीप की तरह जलता रहा है। यहा तक कि जब उन्नीस सौ बयालिस के 'भारत छोडो' आदोलन में विदेशी सरकार का अन्याय और अत्याचार बेहद परिमाण में चल रहा था और राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पहलू के नेताओ व कार्यकर्ताओ को जेल में डाल दिया गया था, सेवाग्राम की बुनियादी शाला चलती रही थी और हर सोमवार का इस शाला के नन्हे नन्हे बालक निर्भय हो राष्ट्रीय पताका को एक यज्ञरूप फहराते रहे थे। इसके पीछे एकमात्र कारण यही था कि इसकी बुनियाद शिक्षा की थी, केवल भावनाओ की नहीं, और इसके वाहक बालक थे। वे अपने सारे कार्य को केवल 'विकास' का कार्य बनाये न रखें बल्कि उसे शिक्षा का कार्यक्रम ही समझें और नई तालीम के सिद्धान्तो पर उसकी सयोजना करे। सारे रचनात्मक कार्य को 'नई तालीम' की शृद्धि में बाधने की प्रक्रिया धीमे चली, किन्तु उसका महत्त्व दिन ब-दिन अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है। यहाँ तक कि देश के ऐसे सभी लोग जो विकास कार्य के बारे में सोचते है, मानने लगे हैं कि सच्चा विकास का कार्य वही होगा जो पूरा-पूरा शिक्षा की प्रक्रिया में ढला होगा।

नई तालीम के–नित्य नई तालीम के इस आन्दोलन की वार्ता शिक्षको, शिक्षाविभागो, समाज सेवको और आम जनता तक पहुँचाना आवश्यक था। कार्य स्वय में तो सबसे अच्छा मार्मदर्शन का साधन और प्रचार होता ही है किन्तु आज के फैलते हुए जगत् में इसके लिए विशेष प्रयत्न करना भी आवश्यक होता है। इसीलिए शिक्षा के पुनर्निर्माण के आन्दोलन की मुख पत्रिका 'नई तालीम' सन् १९३९ से ही निकलनी प्रारम्भ हुई। अनेक अडचनो और मर्यादाओ के कारण बीच में दो-तीन बार इसे बन्द करना पडा। सन् अडतालिस में इस दृष्टि से कि खादी और अन्य रचनात्मक कार्यों के साथ नई तालीम का समन्वय हो, अखिल भारत चर्खा सघ द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'खादी जगत' के साथ 'नई तालीम' को सम्मिलित कर लिया गया। बाद में चलकर 'खादी जगत' का प्रकाशन बन्द हुआ और सारे सर्वोदय आन्दोलन का एक मुखपत्र प्रकाशित होना शुरू हुआ–जिसका नाम 'सर्वोदय' था।

गांधीजी

देखरेख की जरूरत नहीं

यह शीर्षक सब को चौंकानेवाला है। ऐसा शीर्षक देकर मै यह नहीं सुझाना चाहता कि आज हम देखरेख के बिना अपना कामकाज चला सकते है। लेकिन यहां मै देखरेख कम करने के और अन्त में उसे बिलकुल खतम कर देने के उपाय जरूर सुझाना चाहता हू।

धार्मिक सस्था में देखरेख करने की जरूरत पडे, तो समझना चाहिये कि उसमें धर्म की उतनी कमी है। देखरेख के पीछे अविश्वास की भावना रहती है। और अविश्वास धर्म की आत्मा का घातक है। ईश्वर सब को देखता है। तब हम किस पर देखरेख करे? जिस आदमीने भोजन बनाने की या पाखाने साफ करने की जिम्मेदारी अपने सिर ली हो, वह खुद ही अपना काम अच्छी तरह क्यो न करे? वह अपना काम अच्छी तरह करेगा, ऐसा विश्वास हम क्यो न रखें? देखरेख के बिना जो आदमी लिया हुआ काम अच्छी तरह पूरा न करे, वह आश्रम छोड दे। उसका आश्रम छोडना सहन हो सकता है, लेकिन देखरेख तो सहन होनी ही नही चाहिये। हमारे रोज के काम का हिसाब ही हमारी देखरेख है।

यहा देखरेख का अर्थ हमें समझ लेना चाहिये। बालको की देखरेख जरूरी होती है। उसे काम करना नही आता, इसलिए सौंपा हुआ काम कैसे किया जाय यह उसे बताना जरूरी होता है। बडी उमरवालो में भी जिन्हे अमुक काम करते नही आता उनकी देखरेख रखना जरूरी होता है, ऐसी देखरेख की वे इच्छा भी रखते है। सच पूछा जाय तो यह देखरेख नही है, परतु शिक्षक की सहायता है। इस सहायता के बल पर नये सीखनेवाले लोग आगे बढते है।

लेकिन जो देखरेख चौकी के रूप में की जाती है, जिसे काम सौंपा गया है वह अपना काम अच्छी तरह करता है या नहीं, इसकी चौकी रखने को की जाती है, वह बुरी चीज है। बालकों की भी ऐसी चौकी ठीक नहीं है। इस दोष से बाहर निकलने का रास्ता हमें खोजना चाहिये।

इस खोज की पहली सीढी यह है: जिन-जिन कामो पर देखरेख रखी जाती है, उन्हें नोट कर लेना चाहिये। उनमें कौन कौन आदमी काम करते है, यह देख लेना चाहिये। उनके साथ काम के सम्बन्ध में बातचीत कर के उनकी साख पर उन्हें छोड देना चाहिये। सस्थापक को और दूसरे लोगो को इस बात का पूरा भान होना चाहिये कि ईश्वर सबसे बडा साक्षी है। बालको को भी आज से ही ईश्वर की हाजिरी का भान होना चाहिये। यह कोई वहम की, अधविश्वास की बात नही है: इसमें सदेह की भी गुजाइश नही है। हमें अपनी हस्ती का जितना विश्वास है, उतना ही विश्वास रखने को यह बात है।

मेरे इस सुझाव पर सब लोग विचार करे। और जिस हद तक इस पर अमल करना सभव हो उस हद तक अमल करना हमारा धर्म है।

२४-७-'३२, यरवडा मदिर

पाठकों से निवेदन

चौबीस साल पहले बुनियादी शिक्षा का कार्य गाधीजी की प्रेरणा और मार्गदर्शन से शुरू हुआ। देश के बदलते हुए इतिहास में यह शिक्षण विचार अपनी शक्ति के अनुसार राष्ट्र के जीवन को जो देन दे सकता था देता रहा। इस विचार की कार्यरूप में जो परिणति हुई और उसके आधार पर देश में जो छोटे-बडे प्रयोग चले, उन्होने भी राष्ट्रीय जीवन पर और खास तौर पर तालीम के क्षेत्र में जो सम्भव व शक्य था वह प्रभाव डाला। स्वतन्त्रतासग्राम के दौरान में जो उथलपुथल हमारे जीवन में घटी उन्हे झेलता हुआ, उन्हे प्रेरित करता हुआ और उनसे प्रेरित होता हुआ नई तालीम का आन्दोलन, कभी-कभी धीमे ही क्यो न हो, एक आलोकदायी दीप की तरह जलता रहा है। यहा तक कि जब उन्नीस सौ बयालिस के 'भारत छोडो' आदोलन में विदेशी सरकार का अन्याय और अत्याचार बेहद परिमाण में चल रहा था और राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पहलू के नेताओ व कार्यकर्ताओ को जेल में डाल दिया गया था, सेवाग्राम की बुनियादी शाला चलती रही थी और हर सोमवार को इस शाला के नन्हे नन्हे बालक निर्भय हो राष्ट्रीय पताका को एक यज्ञरूप फहराते रहे थे। इसके पीछे एकमात्र कारण यही था कि इसकी बुनियाद शिक्षा की थी, केवल भावनाओ की नही, और इसके वाहक बालक थे।

गाधीजी ने आखिर कहा हो कि उनकी इतनी देनो में से सबसे बडी और सबसे प्रिय देन 'नई तालीम' है। देश के सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओ से उन्होने कहा था कि वे अपने सारे कार्य को केवल 'विकास' का कार्य बनाये न रखें बल्कि उसे शिक्षा का कार्यक्रम ही समझें और नई तालीम के सिद्धान्तो पर उसकी सयोजना करे। सारे रचनात्मक कार्य को 'नई तालीम' की श्रृंखि में बाधने की प्रक्रिया धीमे चली, किन्तु उसका महत्त्व दिन-ब-दिन अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है। यहाँ तक कि देश के ऐसे सभी लोग जो विकास कार्य के बारे में सोचते है, मानने लगे है कि सच्चा विकास का कार्य वही होगा जो पूरा-पूरा शिक्षा की प्रक्रिया में ढला होगा।

नई तालीम के-नित्य नई तालीम के इस आन्दोलन की वार्ता शिक्षको, शिक्षाविभागो, समाज सेवको और आम जनता तक पहुँचाना आवश्यक था। कार्य स्वय में तो सबसे अच्छा मार्गदर्शन का साधन और प्रचार होता ही है किन्तु आज के फैलते हुए जगत् में इसके लिए विशेष प्रयत्न करना भी आवश्यक होता है। इसीलिए शिक्षा के पुनर्निर्माण के आन्दोलन की मुख पत्रिका 'नई तालीम' सन् १९३९ से ही निकलनी प्रारम्भ हुई। अनेक अडचनो और मर्यादाओ के कारण बीच में दो-तीन बार इसे बन्द करना पडा। सन् अडतालिस में इस दृष्टि से कि खादी और अन्य रचनात्मक कार्यों के साथ नई तालीम का समन्वय हो, अखिल भारत चर्खा सघ द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'खादी जगत' के साथ 'नई तालीम' को सम्मिलित कर लिया गया। बाद में चलकर 'खादी जगत' का प्रकाशन बन्द हुआ और सारे सर्वोदय आन्दोलन का एक मुखपत्र प्रकाशित होना शुरू हुआ—जिसका नाम 'सर्वोदय' था।

इधर नई तालीम का कार्य बढ रहा था। देश में नयी-नयी सस्थाओं का निर्माण हो रहा था। कई प्रान्तीय सरकारे बडे पैमाने पर बुनियादी शिक्षा की योजनायें बनाने लगी। प्रदेशों में 'बुनियादी शिक्षा बोर्ड' बनें। कुछ ही दिनो में फिर से 'नई तालीम' पत्रिका की आवश्यकता महसूस होने लगी। नये-नये प्रयोगो की बात शिक्षको और सस्थाओ तक पहुँचाना जरूरी हो गया। हिन्दुस्थानी तालीमी सघ के मार्गदर्शन में यह सारा कार्य हो रहा था—इसीलिये हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की ही जिम्मेदारी थी कि फिर से पत्रिका चालू करे।

जुलाई १९५२ से 'नई तालीम' नये सिरे से प्रारभ की गई। पत्रिका के सम्पादको और नई तालीम के कार्यकर्ताओ के परिश्रम के फल स्वरूप पत्रिका ने भारतीय शिक्षाजगत् में माननीय स्थान प्राप्त किया। नई तालीम के सिद्धातो और आदर्शों पर विनोबा भावे, काका कालेलकर, आर्यनायकम् धीरेन्द्र मजूमदार, आशा देवी आदि तज्ञो के लेख प्रकाशित होते रहे। ससार के भिन्न भिन्न शिक्षा प्रयोगो की जानकारी और विचारको के विचार 'नई तालीम' के पाठको को हमेशा मिलते रहे। बुनियादी तालीम के कार्य की जानकारी देने और अलग अलग सस्थाओ के प्रयोगो के अहवाल कार्यकर्ताओ के समक्ष रखने के लिये—विशेष तौरपर प्रत्यक्ष कार्य के मार्गदर्शन की दृष्टि से, नियमित लेख छपते रहे। खास खास शिक्षा साहित्य का परिचय शिक्षको और पाठको को हो, इसलिये 'पुस्तक परिचय" भी जितना हो सका दिया गया।

शिक्षा और शान्ति स्थापना का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है—यह बात आम तौर पर शिक्षा जगत् के सामने जितनी तीव्रता के साथ आनी चाहिये आती नही है। नई तालीम के सिद्धान्तो की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक विषय है। पाठको ने देखा होगा कि 'नई तालीम' इस विषय पर भी काफी प्रकाश डालती आई है। 'शान्ति समाचार' शीर्षक के नीचे अहिंसक शान्ति आन्दोलन से भी पाठको को परिचित कराते रहने का प्रयत्न कुछ वर्षों से किया गया है।

बीच-बीच में खास-खास विषयो पर विशेषाक निकाले गये। ध्यान देने योग्य विशेषाको में से दो विशेष उल्लेखनीय हैं—जनवरी १९६१ का शिक्षा, शान्ति और अहिंसा विशेषाक और मई-जून १९६१ का गुरुदेव रवीन्द्रनाथ शति पूर्ति विशेषाक।

ये सब बात यहा लिखने का उद्देश्य पिछले वर्षों के कार्य विवरण देना नही है। बल्कि हम केवल इतना कहना चाहते है कि जितना बना उतनी शक्ति से थोडा-बहुत कार्य इस पत्रिका ने किया। अब इस क्रम और आकार में छपने "नई तालीम" को दस वर्ष पूरे हो रहे हैं। *अब यह तय किया गया है कि पत्रिका* का प्रकाशन सेवाग्राम से फिलहाल बन्द किया जाय। भविष्य में इसका प्रकाशन कहाँ से होगा इसकी सूचना पाठको को शीघ्र ही दी जायगी।

पाठको, साथियो और गुरुजनो की सहायता और आशीर्वाद हमेशा मिलते रहे हैं। उसके लिए शब्दो में कृतज्ञता व्यक्त करना कठिन है। इस सहयोग और शुभेच्छाओ के बिना हम कुछ भी न कर पाते। भविष्य में पत्रिका जहा से भी प्रकाशित हो हमारी प्रर्थना और आशा है कि यह सहयोग हमेशा मिलता रहेगा।

देवी प्रसाद

पुनः छुट्टी

मित्रों,

लगभग एक वर्ष पहले मैंने आपसे ५–६ माह की छुट्टी की दरख्वास्त की थी। मैं शान्ति के कार्य के सिलसिले में विदेश हो आया। साथ-साथ कुछ देशो की शिक्षा प्रणाली का उतने कम समय में जितना हो सकता था, अध्ययन भी किया। इस प्रवास का विस्तृत अहवाल आप सबके सामने रखा ही है। शिक्षा के विषय में जो कुछ अनुभव हुए उन्हे भी लेखबद्ध किया है।

योरोप प्रवास के समय युद्धविरोधी अन्तर्राष्ट्रीय की तरफ से यह सुझाव मेरे सामने आया कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय के मत्री का काम सम्भालू। अन्तर्राष्ट्रीय का प्रधान कार्यालय लन्दन में है, यानी मुझे लन्दन जाकर रहना होगा। वहा के मित्रो का जब आग्रह हुआ तो मैंने यहां के साथियो के सामने बात रखी। लगभग सभी ने मुझे राय दी कि मैं इस कार्य को अवश्य सम्भालू। गुरुजनो ने भी अपनी अनुमति और आर्शीवाद दिया। मैं प्रारम्भ से ही अच्छी तरह समझता हू कि इस कार्य को लेना यानी एक भारी जिम्मेदारी सर पर उठाना है–ऐसी जिम्मेदारी जिसके लिये मुझ में श्रद्धा छोड कर दूसरी कोई योग्यता नहीं है। श्रद्धा भी कितनी गहरी है, यह तभी समझ सकूगा जब जिम्मेदारी आयेगी।

मेरी पिछले अठारह वर्षों के काम की पृष्ठभूमि नई तालीम की रही है। इस अवधि के प्रथम कई वर्षों तक मै नई तालीम में कला शिक्षा के विषय पर विशेष तौर पर कार्य करता रहा। पता नही कि अपनी इस बुनियाद का जागतिक शान्ति के कार्य में मुझे क्या सहायता मिलेगी। मेरी अपनी शिक्षा का–कला शिक्षा का, जो शान्तिनिकेतन में हुई, मै कितना उपयोग करने लायक हू, यह प्रश्न भी मन में है। उस समय अहिंसा जीवन का रास्ता बने, यह विचार मन में स्पष्ट नही था। हा, रवीन्द्रनाथ के दर्शनो से एकजगत और विश्वशान्ति का विचार मन में कुछ-कुछ आया जरूर था।

पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा और शान्ति के गहरे सम्बन्ध का आभास हो रहा था। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति और समाज के चरित्र का निर्माण होता है। आज की शिक्षा प्रणाली बेकार है, यह बात अधिकाधिक लोग महसूस करते जा रहे हैं। और शिक्षा का ढाचा सुधारने या बदल देने की बातचीत व प्रयत्न भी चल रहे है। दुनिया के अनेक देशो में यह चला है। कोई कहता है कि शिक्षा का 'कन्टेन्ट' बदलो, कोई कहता है पद्धति बदलो, कोई कहता है स्कूल को समाज के साथ मिला दो। इस तरह के प्रयत्नो से थोडी-थोडी सफलता मिलती भी है। पर असलियत यह है कि जब

तक शिक्षा की संयोजना विश्वशांति के उद्देश्य को लेकर नही बनेगी तब तक गाडी अटकी पडी रहेगी या एक चक्र में ही घूमती रहेगी। यानी थोडा कुछ अदल-बदल किया और फिर वही वापस।

राष्ट्रो, धर्मों, मतो और ऐसी सभी तरह की स्थितियों की दीवारो का खंडन करके विश्व-शान्ति को अपना उद्देश्य बना कर शिक्षा का कार्यक्रम जब तक नही बनेगा, शिक्षा अपना धर्म पालन नहीं कर सकेगी। शान्ति के कार्य की भी बात यही है। ऊपर से शान्ति स्थापना के कितने ही सच्चे प्रयास हों–जो हो भी रहे हैं, तो भी सच्ची शान्ति बन नही पा रही है। अब तक ऊपर के प्रयत्नो के साथ साथ शान्ति स्थापना के लिए जन सामान्य में उसकी बुनियादें नही डाली जायगी तबतक शान्ति की स्थिति की लगाम बडे-बडे शक्ति-शाली राष्ट्रों के नेताओ के हाथ में ही रहेगी। अर्थात् हर व्यक्ति को शान्ति की आवश्यकता महसूस हो और वह उसके लिए अपनी शक्ति के अनुसार कोशिश करे, ऐसा वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जाय। शान्ति स्थापना का कार्यक्रम लोक शिक्षण का कार्य बने।

इधर इस प्रकार के विचार बनते जा रहे हैं, उधर युद्ध विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय के मित्रों का आग्रहपूर्ण सुझाव और मित्रों की अनुमति व आर्शीवाद, सभी के आधार पर मैंने इस काम को लेना तय किया; इसलिए नही कि मैं उस काम के योग्य अपने को समझता हूं। पूज्य विनोबाजी के आर्शीवाद मिले हैं और उससे आत्मविश्वास भी बना है। "....जो काम आपको मिला है अच्छा है। हमारे देश का कोई भाई विश्वसेवा के लिए बाहर रहते हैं, उससे हमारे देश को भी लाभ ही है।

"लेकिन वह बहुत जिम्मेदारी का काम है। निरन्तर भगवान के हाथ में जीवन परीपूर्णतया सोपना होगा, तभी यह पार पडेगा। भगवान आपको ऐसी शक्ति दे।"

सर्व सेवा सघ ने भी अपनी अनुमति व्यक्त की है। इस सब से मेरी जिम्मेवारी बढती है। किन्तु इस स्नेह को लेकर जाऊगा, और उसी का भरोसा है। साथियो और गुरुजनों की सहायता और मार्गदर्शन मिलता रहेगा इस आशा के साथ सब को प्रेमपूर्ण प्रणाम।

देवीप्रसाद

सांध्य रवि ने कहा, मेरा काम लेगा कौन,
रह गया सुन कर जगत सारा निरुत्तर मौन।
एक माटी के दिये ने नम्रता के साथ,
कहा, जितना बन सकेगा नाथ।

रवीन्द्रनाथ

शिक्षण और रक्षण

मार्जरी साइक्स

मिलिटरी ट्रेनिंग ?

पन्द्रह साल से स्वतंत्र भारत विश्व परिषदों में शान्तिस्थापना के लिये अपनी शक्ति लगाता आया है। उसने यह बात भी साफ की है कि यह शान्ति सब के लिये स्वतन्त्रता और न्याय पर आधारित होनी चाहिये। फिर भी इन पन्द्रह सालो में ऐसा लगता है कि यह राष्ट्र धीरे-धीरे उस पुराने रोमन् सिद्धान्त को ज्यादा अपनाता जा रहा है कि 'अगर आप शान्ति चाहते हैं तो युद्ध की तैयारी कर लीजिये।' एन्. सी. सी. अब हमारे ज्यादातर स्कूलों और कालेजो में सुप्रतिष्ठित हो गयी है, वह लडकियो पर भी लागू हुई है। लोक-सहायक-सेना के दलो को मिलिटरी ट्रेनिंग दी जा रही है। देश के सभी युवको को 'अनिवार्य सामाजिक सेवा' में भरती करने की योजनायें बन रही हैं, जिसमें सैनिक शिक्षा भी शामिल है। अखबारों में नये सैनिक स्कूलो के विज्ञापन छापे जा रहे हैं जिनका काम लडकों को नौ साल से ही सैनिक जीवन के लिये तैयार करना होगा। और आखिर ऐसा दीखता है कि ये विद्यालय शिक्षामन्त्रालय के नहीं, प्रतिरक्षामन्त्रालय के सुपुर्द होंगे। यानी अब शायद हम उस अवस्था पर पहुच रहे हैं जब शिक्षण और रक्षण का योग होगा— लेकिन विनोबा के सुझाये हुए अर्थ में नहीं।

हम नई तालीम के शिक्षकों को इस सब के बारे में क्या कहना है? हमारा दावा है कि शिक्षा अहिंसा के लिये और अहिंसा के द्वारा होनी चाहिये; हमारा दावा है कि अहिंसा न्याय, स्वतन्त्रता और शान्ति की कुजी है। मिलिटरी ट्रेनिंग के ये कार्यक्रम हमारे सारे शिक्षा सिद्धान्तो और विचारों के लिये एक चुनौती हैं। इस परिस्थिति में हमारा कर्तव्य क्या है? इस चुनौती का सामना कैसे करे?

इन कुछ मुद्दो पर हमें विचार करना चाहिये—

१. परिस्थिति की हमें पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिये। सत्य के प्रति यह हमारा कर्तव्य है।

(क) एन्. सी. सी. और दूसरे ऐसे सगठनो के बारे में पूरे तथ्य हमें मालूम करने चाहियें— इनका नियन्त्रण कहा से होता है, इनमें व्यक्तियों के ऊपर कितना बलात्कार होता है, और अपने सदस्यो तथा उनके परिवारों के जीवन पर इनका क्या असर होता है?

(ख) दूसरे देशों में इस विषय में क्या-क्या अनुभव आये हैं, इसका जहा तक हो सके, अध्ययन करना चाहिये। क्या वास्तव में सैनिक तैयारी किसी देश को शान्ति की ओर ले गई है? अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रमो से देश के नवयुवकों के लिये लाभ क्या है और उनसे खतरे क्या हैं? कई विचारवान् लोग—जो शान्तिवादी भी नहीं है, और कुछ

सैनिक भी अनिवार्य सैनिक सेवा और मिलिटरी ट्रेनिंग का क्यों विरोध करते है ?

(ग) कहा जाता है कि भारत में एन्. सी. सी. का काम विद्यार्थियों में अनुशासन लाने में सहायक होता है तथा उसका यह पहलू युद्ध की तैयारी से भी ज्यादा महत्व का है। असल में एन्. सी. सी. किस प्रकार के अनुशासन की अपेक्षा करती है ? वह विद्यार्थी के पूरे जीवन में कारगर होता है या सिर्फ कवायद के समय ? क्या अनुशासन लाने का यह एकमात्र या सब से अच्छा तरीका है ? क्या वह स्वानुशासन में सहायक होता है ? स्वयं प्रेरित असैनिक संगठनो में पाये जानेवाले अनुशासन के साथ इसकी तुलना कैसी होती है ?

हर एक बुनियादी प्रशिक्षण केन्द्र के कार्यकर्तागण तथा विद्यार्थियो को इन प्रश्नो का गहरा अध्ययन करना चाहिये। खूब विचारपूर्वक आयोजित सभाओं व मंडलो में इन पर चर्चाएं और विचारविमर्श हो तो ज्यादा अच्छा होगा। इन प्रश्नो के बारे में अपना ही मन साफ करने तथा एक निर्णय पर पहुंचने से हमारा बहुत फायदा होगा, इन पर ऐकमत्य न हो, तो भी। ये प्रश्न आज सभी स्कूलो तथा सभी बच्चो के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है। बुनियादी विद्यालयो के शिक्षको को चाहिए कि वे बच्चों के मातापिताओ के साथ भी इन विषयो पर चर्चा करे, इनके बारे में उनका मत जागृत करे। राष्ट्रीय महत्व के इस प्रश्न के बारे में एक सुनिश्चित जनमत तैयार करने की दिशा में यह पहला कदम होगा।

२. हम सजग हों।

ऐसी छोटी-छोटी घटनाएं अकसर होती रहती है जो इस मिलिटरी ट्रेनिंग के कार्यक्रम के खतरों का दिग्दर्शन कराती है, जिनके बारे में हमें सतर्क रहना चाहिये; जो-कोई सही शिक्षा के बारे में चिन्तित हैं, उन्हें भी सावधान करना चाहिए। ये घटनाएं ऐसी मानसिक वृत्तियों का दर्शन कराती है कि जिनकी उपेक्षा अगर की जाय तो वे जनता के उस बौद्धिक एवं नैतिक स्तर को गिरा देंगी जिसके बगैर श्रेष्ठ राष्ट्रीय चरित्र और सच्ची स्वाधीनता का निर्माण नही हो सकता।

उदाहरणार्थ :–

(क) सेवा– मिलिटरी ट्रेनिंग की ये संस्थाएं नवयुवको में देशसेवा के आदर्शों को सुस्थापित करने का दावा करती हैं। लेकिन यह आज जानी हुई बात है—और इन महीनों में इसकी सच्चाई को साबित करनेवाली कई बाते मुझे मालूम हुई हैं—कि लडके को हाई-स्कूल से अच्छी श्रेणी में पास होने में तथा अच्छी नौकरी प्राप्त करने में एन्. सी. सी. सहायक होती है। इन तथाकथित सामाजिक सेवा शिविरों का आर्थिक भार सरकार उठा लेती है, बच्चो को इनमें भाग लेने के लिये व्यक्तिगत सुविधाओ का कोई त्याग नही करना पडता है। उलटा, ऐसी भी घटनाए हुई है कि शिक्षको ने विद्यार्थियों को चेतावनी दी है कि इनमें भाग नही लेने से उनके स्कूल रेकार्ड पर बुरा परिणाम होगा। जब परिस्थिति ऐसी है, और बच्चे तथा उनके मा-बाप व्यक्तिगत लाभ के प्रलोभन से एन्. सी. सी. का समर्थन करते है, तब उसमें 'सेवा' की बात करना कहां तक सच है ?

कुछ हफ्ते पहले रेल में सफर करते हुए मेरी मुलाकात कुछ एन्. सी. सी की लड़कियों से हुई जो गणतंत्र दिवस पर दिल्ली में होनेवाली परेड के लिये एक प्रतियोगिता परीक्षा में भाग लेने के लिये अपने शहर से राज्य की राजधानी में जा रहीं थी। मैंने सोचा था कि यह चुनाव सामाजिक सेवा, प्राथमिक उपचार या अन्य ऐसी कुशलताओं व सेवाओं के आधार पर होता होगा और मैंने उनसे पूछा कि वे अपने शहर से किस विषय की योग्यता के लिये चुनी गयी थी। उन्होने उत्तर दिया कि ड्रिल में चुस्ती के आधार पर ही उन्हें चुना था और उनकी प्रतीक्षा है कि राज्य के चुनाव में भी यही निर्णायक होगा। तब इसमें सेवा का क्या आदर्श है?

(ख) अनुशासन—एन्. सी. सी. के समर्थक "विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता" की समस्या का हल करने में इसकी उपयोगिता पर बहुत जोर देते हैं। अगर यह सचमुच उसका मूल उद्देश्य है तो स्वाभाविक ही ऐसा माना जायगा कि जिन विद्यार्थियों को अनुशासन की ज्यादा जरूरत है, उन्हें एन्. सी. सी. में पहले लिया जायगा। अभी तक आर्थिक कारणो से एक स्कूल के सब लड़कों को एन्. सी. सी. में लेना सभव नही हुआ है, इसलिये चुनाव का कोई सिद्धान्त स्वीकार करना जरूरी है। अभी तक यह सिद्धान्त सब से अच्छे विद्यार्थियों को लेने का रहा है—इसलिये कि उनका एन्. सी. सी. दल अच्छा नाम कमा सकें। अच्छे बुद्धिमान् गुणवान् लड़कों पर इसमें भरती होने के लिये कही कही बहुत ही दवाव डाला जाता है। ऐसे एक लड़के से मेरा व्यक्तिगत परिचय है। यह लड़का स्वयं अपनी विचारशक्ति से ही इस नतीजे पर पहुंचा था कि युद्ध एक गलत काम है और इसलिये उसने एन्. सी. सी. में भरती होने से इनकार किया। उसका यह भाग्य रहा कि इन विचारों में उसे अपने मातापिताओं का प्रबल समर्थन मिला, जो उस शहर के बहुत ही सम्मानित सज्जन थे। लेकिन दरअसल बात है कि लड़कों पर दबाव डाला जाता है, और दबाव उनपर अधिक डाला जाता है जिन्हें अनुशासन में विशेष ट्रेनिंग की जरूरत नही है। फिर इससे अनुशासनहीनता की समस्या कैसे सुलझेगी?

(ग) प्रचार—एन् सी. सी. ट्रेनिंग के कार्यक्रमों का निर्देशन सैनिक अधिकारियों द्वारा होता है; इसका मतलब है कि हमारे स्कूल 'सैनिक' विचारों के प्रचार का व्यापक क्षेत्र बन रहे हैं। लेकिन सही शिक्षा में यह जरूरी है कि बच्चे किसी विषय का एक ही पहलू नही, सभी पहलुओं को सुनें, समझें। और यह विषय बड़े ही नैतिक तथा सामाजिक महत्व का है। आजकल स्कूलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में गांधीजी और नेताजी सुभाष बोस के (मिलिटरी वर्दी और मेडलों से सुसज्जित) चित्र पास पास टंगे हुए मिलते हैं। दोनों ही अपनी निष्ठा और धीरता के लिए हमारी पूजा के पात्र हैं, फिर भी इन दोनों के आदर्श एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न हैं और यह सोचना कि दोनो को एक ही समय अपनायेंगे भ्रम है या निरी भावुकता है। मिलिटरी ट्रेनिंग के कार्यक्रमो द्वारा आज नेताजी का पक्ष—राष्ट्र के कल्याण के लिये सैनिक शक्ति पर निर्भर करना—हमारे नवयुवकों के सामने कारगर ढंग से पेश हो रहा है। लेकिन गांधीजी के विचारों को समझने का

मौका कहा आता है ? एन्. सी. सी. में भरती होने के पहले क्या हमारे बच्चो को शान्तिसेना के विचार सुनने, समझने, उस पर चर्चा करने के तुल्य अवसर प्राप्त होते हैं ? क्या उन्हें प्रसिद्ध विचारक सेनोर द मदररियागा के एक अन्तर्राष्ट्रीय नि शस्त्र शान्ति सेना के प्रस्ताव की बात सुनने को मिलती है ? या एक विश्व-शाति-सेना स्थापित करने के लिए आजकल जो प्रयत्न हो रहा है उसके बारे में उन्हे बताया जाता है। इन प्रश्नो का उत्तर होगा–नहीं बच्चो के सामने ऐसा कोई मौका उपस्थित नही होता है। इस अन्यत गभीर विषय पर जो जानकारी मिलती है, वह प्रचार के जरिये है, न कि शिक्षा द्वारा। कोई भी अच्छा शिक्षक केवल प्रचार की बाते सुन कर सन्तुष्ट नही रह सकता। विद्यालय विद्योपार्जन का स्थान होता है और इसलिये उसका कर्तव्य है कि अपने सब सदस्यो–बालको और शिक्षको–को किसी भी बात को समझ कर जिम्मेदारी के साथ निर्णय लेने का मौका दे। इसलिये भी यह जरूरी है कि शिक्षक इसके बारे में सब तथ्यों से अवगत हो। किसी भी प्रश्न के दोनो बाजुओ की पूरी पूरी जानकारी के बगैर ठीक निर्णय नही हो सकता।

(घ) कोरी भावुकता–मैंने पिछले पेराग्रॉफ में भी इस शब्द का उपयोग किया था। कोरी भावुकता का अर्थ है कि आदमी के विकारो और भावनाओ का ऐसे अनुचित रूप से मोडा जाना जिसमें सच्चाई भी नही होती और जो तर्कबुद्धि से भी सिद्ध नही किया जा सकता।

मिलिटरी ट्रेनिंग आदि के इन कार्यक्रमो से हमारे लिये आज एक खतरा उस असत्य भावुकता के वातावरण से है जिससे ये घिरे हुए है और जिसके आधार पर ये कार्यक्रम पोसे जाते हैं। वर्दी, तोरण, झण्डे आदि किशोरो को बडे ही आकर्षक लगते हैं; कौन बच्चा अच्छे कपडे आदि पहन कर सभा के सामने खडा होना नही चाहेगा ? शिबिर आदि में भाग लेना उनके पराक्रम की इच्छा को तृप्त करता है, बडी बडी सभाए और प्रदर्शन उत्तेजक तथा आनन्ददायक होते हैं। भारत भर से युवक जहा एकत्र होते है, साथ मिलकर गाते हैं, कवायत करते है, एकसाथ खाते, काम करते हैं वहा एक सच्ची एकता की भावना तो होगी ही। इतने में कोई दोष नही, सब अच्छा ही है। लेकिन जो बात अच्छी नहीं, दिखावटी और झूठी है, वह यह कहना है कि–(१) ये अच्छे अच्छे अनुभव मिलिटरी प्रोग्राम के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं जब कि असल में किसी भी युवक सगठन, शिबिर या सम्मेलन का यह एक सामान्य भाग होना चाहिये और (२) यह उत्साह और आनन्द इन कार्यक्रमो के मुख्य उद्देश है जब असलियत यह है कि उनका उद्देश्य उनमें भाग लेनेवालो के मानस को मारने की क्रिया के लिये तैयार करना है। अगर हमें मिलिटरी ट्रेनिंग चाहिये ही तो हममें कम-से-कम उसका असल उद्देश्य सच्चाई के साथ समझने की हिम्मत होनी चाहिए।

प्रथम विश्वमहायुद्ध के समय मैं एक बच्ची ही थी। कुछ कुछ बाते समझने सोचने लगी थी। उस समय इग्लैण्ड के साधारण स्त्री पुरुषो का यह दृढ विश्वास था कि वह युद्ध न्याय्य और आवश्यक है, मैंने भी इसके बारे में कोई शका नही की। तभी भी रग-बिरगी तोरणो, झण्डो तथा आकर्षक गानो के द्वारा उसको ऊचा बताने के प्रयत्नो को मैंने शका की नजर से देखा था। तब मैं इतनी

छोटी थी कि अपने इन विचारों को ठीक तरह से खुद भी नहीं समझ पाती थी, फिर भी मैंने समझ लिया था कि यह दिखावा है, असलियत नही। मेरी एक उतनी दयालु और प्रिय शिक्षिका सिर्फ एक जर्मन होने के अपराध के लिए गुण्डों के हाथों जान के खतरे में पड गयी थी। मैं जानती थी कि सेना में मेरे पिताजी को ठण्ड, गन्दगी और भी कई कठिनाइयां झेलनी पड रही थी। और वह अपने पुराने जर्मन विद्यार्थियों के बारे में चिन्तित थे जो कि दूसरे पक्ष से लड रहे थे। संक्षेप में मैं युद्ध की असलियत जानती थी कि उसमें निरर्थक क्रूरताएं, कष्ट और दुःख है और मानव के स्वाभाविक भ्रातृभाव का सर्वथा त्याग है। मैं इस बात के लिए कृतज्ञ हूं कि मेरे माता पिता ने इन सत्यों को छिपा कर मुझे धोखे में रखने का प्रयत्न नही किया। लेकिन हमारे एन्. सी. सी. के समर्थक जिस सैनिक जीवन के लिये हमारे बच्चो को तैयार कर रहे हे उसके असल उद्देश्य के बारे में वे मौन रखते हैं।

हमारे स्वतंत्र लोकतंत्र के लिये खतरा

हमारी सरकार "राष्ट्रीय एकता" के बारे में चिन्तित है और चिन्ता करने का कारण भी है। हमारे अच्छे-से-अच्छे नेता इस समस्या पर विचार कर रहे हैं। मैसूर में आजकल में (मार्च १९६२) एक परिषद हुई जिसमें कहा गया कि सच्ची एकता के लिये विश्वविद्यालयों को चाहिए के वे विद्यार्थियों में "स्वतंत्र अन्वेषणबुद्धि" को बढ़ावा दें। सभी नई तालीम शिक्षक इस बात पर अवश्य ही सहमत होंगे कि सत्य की साधना में विद्या को नियोजित करने के लिये यह एक प्रथम आवश्यकता है। वे यह भी महसूस करेंगे कि अगर विश्वविद्यालयों को कार्यक्षम रूप से यह काम करना हो तो सारी शिक्षाव्यवस्था ही "स्वतंत्र अन्वेषण बुद्धि" से अनुप्राणित होनी चाहिये। इस संदर्भ में हमारे स्कूलों में सैनिक अनुशासन लागू करने के बारे में भी सोचना चाहिये। सैनिक अनुशासन की असलियत का प्रसिद्ध अंग्रेज कवि टेनिसन ने इन पदों में वर्णन किया था और मैं मानती हूं कि उसका इससे अच्छा वर्णन कही भी नही हुआ है—

> जवाब देना उनका काम नही है,
> सोचना भी उनका काम नही है,
> उनका काम है केवल करना और मरना, यही।

हमें अब इस प्रश्न का सामना करना है। क्या हमारे राष्ट्र को इस बिना सोचे समझे हुकुम का पालन करने की भावना को अपनाना है? या जैसे मैसूर की परिषद् में सुझाया—स्वतंत्र अन्वेषणबुद्धि की आवश्यकता है?

हम विकेन्द्रीकरण और पंचायतराज की बातें कर रहे हैं। अगर हम अपनी स्थानिक संस्थाओं में सच्चा लोकतंत्र चाहते हैं तो हमें चाहिए कि अपने युवकों को बातों को जानने सोचने, समझे, चुनाव करने तथा अपनी ही जिम्मेदारी पर निर्णय लेने का शिक्षण दें। हम छोटी-छोटी बातो की भी सरकारी तंत्र पर छोडने और अपने ऊपर के अधिकारी का मुह ताकने की प्रचलित प्रथा की निन्दा करते रहते हैं। लेकिन उसी समय—इस वैपरीत्य को बिना समझे—हम अपने सारे युवकों को, राष्ट्र की समूची भावी पीढी को, सैनिक जीवन के अति-केन्द्रित अनुशासन व्यवस्था को सौंप देने का

विचार मान्य कर रहे हैं। बल का प्रयोग विचार-बुद्धि पर आधारित चर्चा और सहमति के लोकतांत्रिक आदर्शों के एकदम उलटा है। हम अपने को एकलोकतांत्रिक राष्ट्र मानते हैं, फिर भी हम वह करने जा रहे हैं जो हमारे चारों तरफ के मिलिटरी राष्ट्रों में नही होता है–याने अपने युवको को मिलिटरी परपरा में पालना और यह समझाना कि अखिरी तर्क बल का प्रयोग है।

एक अमेरिकन क्वेकर मित्र ब्रिस्टल ने आजकल एक पुस्तिका प्रकाशित की है जिसका नाम है "स्वतंत्रता के लिये डटे रहो।" उन्होंने यह अमेरिकन जनता को सबोधित करके लिखी है जो कि अपनी लोकतानिक परम्पराओं के बारे में बडा अभिमान रखती है। यह एक चेतावनी के रूप में है कि मिलिटरिजम् और लोकतत्र एक साथ चल नहीं सकते। उसमें लेखक कहता है–"हमें अपनी आन्तरिक स्वतत्रता का दाम बाह्य शत्रुओ से रक्षा के लिये भी सैनिक शक्ति का परित्याग करने से चुकाना होगा।" अगर यह अमेरिका के बारे में सही है तो भारत के बारे में भी उतनी ही सही है। भारत की स्वतत्रता की रक्षा करनी है और वह रक्षा उन्ही मार्गों से की जा सकती है जिनसे स्वतत्रता प्राप्त हुई, जिनका गांधीजी ने प्रयोग किया था। वे हैं सत्य और अहिंसा के मार्ग—एक उच्च नैतिक स्तर और विश्व की बुद्धि और मानस के प्रति एक सतत प्रार्थना। अपने ध्येय के लिये कष्ट सहन करने की तैयारी, उसी समय दूसरे मानवप्राणी को चोट नही पहुंचाने का निश्चय। मिलिटरी ट्रेनिंग एक ऐसा कार्यक्रम है जो भारत की सब से मूल्यवान् आधुनिक तथा प्राचीन परंपरा से हमें वञ्चित करता है। कई लोग उसका विरोध तर्कबुद्धि से करते हैं क्योंकि वह मूर्खतापूर्ण है या उससे काम नही होगा या उसमें बरबादी है। लेकिन हमें उसका विरोध इसलिये करना है क्योंकि वह गलत है क्योंकि मानवजीवन के सच्चे उद्देश्य के बारे में जो कुछ हमने सीखा है उन सब का वह निषेध करता है।

कह रहा है इस किनारे से नदी का वह किनारा
उस किनारे पर जमा है, जगतभर का हर्ष सारा।
वह किनारा किन्तु लबी सांस लेकर कह रहा है
हायरे हर एक सुख उसपार ही क्यो बह रहा है।
(कणिका से) —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्राथमिक शाला का पुस्तकालय*

प्राथमिक शाला में पुस्तकालय का स्थान व महत्व अपेक्षाकृत कम अर्से से ही पहचाना गया है; फिर भी सीखने की प्रक्रिया में उसकी कार्यक्षमता इतने अनिषेध्य रूप से प्रकट हुई है कि अब वह किसी भी अच्छे आधुनिक विद्यालय का एक आवश्यक अग बन गया है। प्रारभ से ही प्राथमिक शालाओ का कार्य कुछ बुनियादी विषयो का अध्यापन माना गया था जिसमें पढना एक मुख्य विषय है। पढने की कुशलता का विकास आज भी विशेष महत्व का रहा है, लेकिन उस कुशलता को बढाने की पद्धतियो में परिवर्तन हुआ है।

पहले की प्राथमिक शालाए पाठचपुस्तको पर निर्भर थी। रट रट कर कुछ सीखना अध्यापन का आखिरी मकसद समझा जाता था। आज के शिक्षाशास्त्री इस तथ्य से अवगत है कि 'सीखना' कई साधनो व उपकरणो के उपयोग से ज्यादा समृद्ध तथा व्यापक बनता है। इस नयी पद्धति में पुस्तकालय ज्यादा-ज्यादा महत्व रखता है क्योकि वह सभी क्षेत्रो में ज्ञानार्जन को ज्यादा समृद्ध और रुचिकर बनाता है, इतना ही नही, बल्कि जहा भी कठिनाइया होती है उन्हे सुलझाने के उपाय भी वह प्रस्तुत करता है। पुस्तक-पुस्तिकाए, चित्र, नक्शे, फिल्म, फिल्मस्ट्रिप्स, रेकार्डस् आदि का उसका भण्डार प्रत्येक शिक्षक व प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक सोने की निधि बन जाता है। वह बच्चा जो कई विषयो के बारे में अच्छी पुस्तको से घेरा हुआ है, उसका दिमाग वर्गकमरे के दैनिक क्रम के बाहर भी उडान लेता है और उसका सीखना सब से अच्छे तरीके का होता है क्योंकि वह स्वयप्रेरित है।

पढने की कुशलता प्राप्त करने और पढने की प्रवृत्तियो के बीच प्राणवान् सबन्ध है। प्रारभ में पढाने का कार्यक्रम मुख्यतः पढने की पद्धतियों की शिक्षा होगा, लेकिन उसी समय विद्यार्थी की रुचि और समझ बढाने की ओर ध्यान रहना आवश्यक है। इसलिये यह जरूरी है कि बच्चे को पढने की सामग्रिया उपलब्ध हो। यह तभी सब से अच्छी तरह से होता है जब कि प्राथमिक शाला के पास कई विषयो पर और कई स्तरो की पुस्तको से सुसज्जित पुस्तकालय हो। जब बच्चे की पढने की क्षमता आगे बढती है तो उसकी जिज्ञासा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये, जिससे कि वह अपने प्रश्नो के समाधान पुस्तको से प्राप्त करने की ओर ज्यादा से ज्यादा प्रवृत्त हो। अगर एक समृद्ध संग्रह से वह किताबें ले सकता है तो साहित्य के साथ परिचय से भी उसे आनन्द तथा तृप्ति का अनुभव होगा। बहुत किताबें पढने से ही उसे साहित्य के रसास्वादन की क्षमता और सुरुचि

प्राप्त हो सकती है। कई किताबों से परिचय पाने, समझने और चुनने, पढने और ग्रहण करने तथा अपने ज्ञानक्षेत्र को बढाने का मौका बच्चे को एक अच्छे पुस्तकसंग्रह से मिलता है।

पुस्तकालय रेफेरेन्स का और कई विषयो पर जानकारी प्राप्त करने का भी स्थान होता है। पुस्तकालयाध्यक्ष और शिक्षक या वह शिक्षक जो पुस्तकालय का भी काम करता है, विद्यार्थियो को इस प्रकार की स्वतंत्र पढाई के लिये आवश्यक कुशलताए प्राप्त करने में मदद करता है। स्वतत्र काम करने में बच्चे की अपनी जो तृप्ति और आनन्द है उसका अत्यधिक महत्व है।

अलग अलग वर्गकमरों में अलग अलग पुस्तकसग्रह होने के बदले इनको एकत्रित कर के एक केंद्रीय पुस्तकालय बनाना ज्यादा अच्छा होता है। क्योंकि तब वर्गकमरा और पुस्तकालय के बीच लगातार आदान प्रदान चलता रहता है, पुस्तकालय ज्यादा समृद्ध बनता है और प्रत्येक विद्यार्थी को ज्यादा पुस्तके पढने का मौका मिलता है। एक केंद्रीय पुस्तकालय बनाने में आर्थिक दृष्टि से शायद खर्च कम नही होगा, लेकिन उससे अधिक लाभ जरूर होगा, इस अर्थ में कि हर एक शिक्षक के पास अपने विद्यार्थियो की सहायता के लिये तब अधिक सामग्री उपलब्ध होती है। एक ही किताब की कई सारी प्रतियां खरीदने की जरूरत कम होती है, इससे बचे हुए पैसे से और किताबें खरीदी जा सकती है, जिससे पढने की सामग्री में पुष्टि और विविधता होती है। इससे भी ज्यादा महत्व की बात है कि विद्यार्थियो में सामाजिक पृष्ठभूमि का विकास होता है, आवश्यक जानकारी कहा से और कैसे प्राप्त करना यह वे सीखते हैं। वे अध्ययन की नई पद्धतियां सीखते है, अपने प्रश्नो के समाधान खुद ढूढ निकालना सीखते हैं और कई सारी पुस्तको के विषयवस्तु से परिचय प्राप्त करते हैं। वर्गों के अलग अलग पुस्तकसग्रहों से ये लाभ इतने नही मिल सकते हैं क्योंकि उनकी व्याप्ति और विविधता इतनी नही होती। उसमें किताबें एक शिक्षक के उपयोग की दृष्टि से चुनी हुई होती हैं। और उनमें एक अच्छे पुस्तकालय के नियम, वर्गीकरण की पद्धतिया, इत्यादि दाखिल करना सभव भी नही होता है। एक अच्छे पुस्तकालय से विद्यार्थी को पुस्तको का ठीक ठीक उपयोग करने की शिक्षा भी मिलनी चाहिये।

एक प्राथमिक शाला के पुस्तकालय की सफलता में शिक्षक का बडा हाथ है और विद्यार्थियो के शैक्षणिक विकास के कार्य में शिक्षक की सफलता में पुस्तकालय का महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकालय के लिये आवश्यक सामग्री के चुनाव में शिक्षक को सक्रिय भाग लेना चाहिये। विद्यार्थियो द्वारा पुस्तको के उपयोग के बारे में वह योजना बनाता है और उसे कार्यान्वित करता है। वह बच्चो के दैनिक जीवन में पुस्तको का एक सजीव स्थान बना देता है।

आधुनिक प्राथमिक शाला में पुस्तकालय के ये कार्य और उद्देश्य हैं :

शाला के हर एक बच्चे के पास–साधारण, विशेष बुद्धिमान, मन्द, सकोचशील, समस्यात्मक, हर प्रकार के बच्चे के पास––पहुचना और उसकी सेवा करना।

सभी विषयो पर कई प्रकार की और शाला के अन्तर्गत सभी स्तरो के लिये उपयुक्त सामग्री उपस्थित करना।

हर एक बच्चे को स्वतंत्र रूप से पढने और पढने में रुचि पैदा करने के लिये उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करना। पुस्तकों में छिपी पड़ी ज्ञान भडार की अपार निधि को ढूंढ निकालने के आनन्द का अनुभव प्रत्येक बच्चे को मिले, इसका मार्गदर्शन करना। बच्चे को पुस्तकों और पुस्तकालयों के उपयोग के बारे में आवश्यक जानकारी देना जिससे कि वे रेफ़रेन्स और अनुसन्धान की सामग्रियों का भी फायदा उठाना सीखें।

सामाजिक संपत्ति का उपयोग करने और उसमें हिस्सा लेने से जिम्मेदारी के बोध का विकास, दूसरों के हक को समझना और उसका आदर करना और लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का पालन करना।

शिक्षकों को अपने कार्य में मदद पहुंचाने वाली और उनके विषयज्ञान को बढानेवाली सामग्री उपस्थित करना।

बडे बडे पुस्तकालयों का उपयोग करना सीखने के लिये पहले कदम के तौर पर काम करना।

-स्कूल के पुस्तकालय का विद्यालय परिवार में वही स्थान है जो बडे पुस्तकालय का समाज में है। उसकी सेवायें पुस्तकालय के मकान की चहारदीवारी में सीमित नहीं हैं, बल्कि वर्ग कमरे में भी महसूस की जाती है। हर एक शिक्षक को शिक्षा के कार्यक्रम की योजना बनाने और पढाये गये विषयों का पुनरावर्तन व पुष्टि करने में वह मदद करता है। हर एक बच्चे के पास वह व्यक्ति के नाते पहुंचता है, जिसकी अपनी अभिरुचियां और आवश्यकताएं हैं तथा उनकी पूर्ति करने में मदद करता है, उसके ज्ञानक्षेत्र को उत्तरोत्तर विशाल बनाता है। पुस्तकालयाध्यक्ष वर्गकमरे में भी जाता है, नई पुस्तको का परिचय देता है, उनमें से कहानिया बताता है, और पुस्तकों का ठीक ठीक उपयोग करना सिखाता है। पुस्तकालय में भी वह हमेशा बच्चो की मदद के लिये तैयार रहता है। क्यो कि काम योजनाबद्ध होता है, हर एक बच्चे पर उसका प्रभाव होता है। यह कार्यक्रम ऐसा नहीं होता कि जिसको मिला, मिला; जिसको नही मिला, नहीं मिला; वह क्रियात्मक और प्रगतिशील होता है। वह शाला के हर एक विद्यार्थी के शैक्षणिक कार्यक्रम का एक प्राणवान हिस्सा है, व्यवस्थापकों शिक्षकों पालको तथा बच्चो का सयुक्त प्रयास है।

*यूनेस्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'स्कूल लाइब्रेरी' से

"प्राचीन काल की तरह भारत को फिर भी प्राच्य और पाश्चात्य का ऐसा सन्धिस्थल बनाना है जहां हर संस्कृति अपना व्यक्तित्व कायम रखते हुये दूसरे की सर्वश्रेष्ठ बातें अपनालें।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शिक्षण और लोक शिक्षण अभिन्न

शालिग्राम पथिक

आज से २५ वर्ष पहले १९३७-३८ में, इसी सेगाव का 'सबसे पहला' बेसिक स्कूल मेरे ही जुम्मे पडा था, मैंने ही गढा था। पर आज लोग मुझे जानते मानते हैं (तरह तरह के कामो नामो से) प्रौढ शिक्षा, प्रौढ-साक्षरता और उससे भी अधिक, इन दिनो 'गोबर की गैस।'

इन कामो में और इन नामो में 'भेद' दीखता है, लोगो को। मुझे कभी कोई भेद दीखा नहीं। मैंने तो नई तालीम की शक्ल निकालने और उसे सभव बनाने के वास्ते ही, यह सब पापड बेले हैं। बेलने पड़े हैं। वरना, कौन मूर्ख होगा जो शिक्षा-शास्त्री बनने के बजाय गोबर की गैस और मल गैस का भगी बनता?

मेरी तो यह भी निष्ठा है कि सन्, ३० में स्वराज्य का जो काम पकडा था, उसी का पहला माध्यम जेल था, वह पकडा। आज उसका माध्यम 'नई तालीम' होगी, सो २५ वर्षों से उसका पल्ला पकड रक्खा है। स्वराज जनम तो गया है, पर वह निरा अबोध अविकसित पराश्रित—जहा देखो वहा टट्टी कर देनेवाला, जो देखो उसे मुह में कर लेनेवाला—मास का लोथडा मात्र है। जल जाकर, वह मिला। 'गोबर गैस' इसे सयाना बनायेगी ऐसा मान कर, गोबर गैस में पडना पडा।

गाव का स्कूल जब मैंने चलाया, तो बाहर से आए हजारो दर्शको और अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाविज्ञो ने स्कूल की और स्कूल चलानेवाले की भरपूर सराहनाए की। पर बच्चो के मा बापो की (और पूरे समाज की) राय दूसरी ही रही। जो उन्होने जबान से नही, हाथ से कही, जैसा उनका रिवाज है।

(१) हमने बच्चो को पढाया, खेल खिलाया, गाना सिखाया, मा बाप चुप रहे। खुश रहे। ज्यूही हमने 'गोबर माटी कपास' में बच्चों का हाथ लगवाया; माताए आईं, लाल आखें दिखाईं, और हाथ पकड बच्चे को उठा ले गईं। मानो कह रही थी "अरे मूर्ख! इस गोबर माटी कपास की जलालत तो हम बहुत भोग चुके हैं। भोग ही रहे हैं। हमारे ये लाडले किसी तरह इस जलालत से बचे; इसी तरह की चाह से, तुम्हारे यहा भेजा था, घर के काम काज का नुकसान करके, तुम्हें क्या हमारी भावनाओ और स्थिति और आवश्यकताओं का तनिक भी आभास नहीं?"

२ इसी बीच आचार्य कृपलानीजी की रुचि नई तालीम में बढी। उन्होने बापू से या आशादी से माग लिया 'मुझे' अपने गाधी आश्रम मेरठ में नई तालीम खडी करने के

लिए। हमने इन जनम भर के तपे हुए खादीमय गाधी आश्रम के बुजुर्गों के बच्चो का स्कूल खडा किया। हर कोशिश की इन बडे लोगो और बडे आचार विचार सस्कार के लोगो के बच्चो की तालीम उसी ढग की होवे नई तालीम की आत्मा को कायम रखते हुए। डास, ड्रामा, पढाई पर 'वाह वाह' रही और माटी, पानी, कपास पर 'हाय हाय'। सेगाव की अपढ गरीब माताओ की भावनाओ में और इन मा बापो की भावनाओं में हमें अन्तर मिला नही। यू १० वर्ष लगातार, खाक छानते हुवे; जब बराबर भी और बार बार भी यही एक अनुभव मिला कि तालीम कैसी हो, यह फैसला मां बाप समाज से कराये बगैर नई तालीम चलेगी नहीं। चलनी नहीं चाहिए। बद कर दी जाय थोडे दिनों के वास्ते। (जमीन की जुताई करने के वास्ते) वरना वह महज एक नाटक होगी जैसा जाकिर साहेब को आखिर कहना पडा पंचमढी सम्मेलन में।

हम ठहरे अघोरी आदमी। धुन के पक्के हमने जन-शिक्षा-सस्था बनाई और लग गये उसी धुन में। हर तालीम के लिए उद्योग और जीवन माध्यम होना ही चाहिए। सो हमने-'अग्रगामी विकास योजना' इटावा का पल्ला पकडा। खेती, बीज, स्वास्थ्य, पशु इसकी उन्नति होती है, तो इसी माध्यम से हमारी 'जन शिक्षा' हमने शुरू की। 'गाव की बात' मासिक पत्र बनाया। यही बाते सिखाने पढाने वाली 'परम हस' मीत पत्र चलाया। 'प्रौढ-साक्षरता' पद्धति बनाई, पर अपने से सतोप हमें हुआ नही।

एक तो इस सब में मा नही आई थी, जो हमेशा हाथ पकड कर मेरे ध्यान को उठा ले गई थी। क्या करे? 'जहा चाह वहा राह।' हमने सुना अम्बर वर्ग में स्त्रिया होती हैं। ३ महीने का वर्ग होता है। आठ घटा रोज हम उसी में कूद गए। अम्बर बनाया, चलाया, 'अम्बर द्वारा ज्ञान चर्चा' १०० पाठ बनाए, प्रयोग किए, पैसा फूका, सबसे बातें की,..पर अतिम राह अब भी दूर ही रही। इन सारी कोशिशो के बीच, हमें बराबर यह लगा कि कोई सही मूलोद्योग हमारे हाथ नही पडा है। नई तालीम माने नया जीवन, नया समाज, नई राजव्यवस्था, नए उद्योग या उद्योगो की एक दम नई अवस्था। और साथ ही ज्ञान को भी स्वाश्रयी बनानेवाली नई ज्ञान व्यवस्था थी।

> हमारा अन्तर बोला था .
> जगमगा जाएगा जग सारा
> जब जग जाएगे, गाव गाव।
> जब, जग सा सब विज्ञान ज्ञान
> गावो में खेत कुदाली में।
> पाकर प्रवेश गोपाल बनें।
> गोकुल बन जावें ठांव ठाव ।।
> तब, जग जाएगे, गाव गाव ।।
> जगामगा पाएगा बनजारा ।।

श्री धीरेन्द्र भाई की मिसाल 'क्राति देवी का वाहन है नई तालीम' यह तो हमारे समझ में आई, पर (१)—नई तालीम पहले बडो से शुरू होवे' और (२)—उन बडो के वास्ते भी 'कोई क्रातिकारी' मूलोद्योग 'नई और क्रातिकारी उद्योग व्यवस्था' हमारे हाथ आएगी तभी वे हमारी सुनेगे, सुनना चाहेंगे; सीखेंगे। वरना नही।... ऐसी दो बुनियादी बाते भी, इस बुनियादी

तालीम के सम्बन्ध में, हमारा मन करोच रही थी।

हमने इस देश के बडे से बडे खादी भडार में भी स्कूल चला के देखा था। हमने इस देश के सबसे बडे ग्रामोन्नति प्रयोग (इटावा) से मेल बैठाकर भी 'जन शिक्षा' की थी। तजुरवा हमारा यह रहा कि खेती उन्नति के इन आज के तरीको से, इन आज के नए कृषि उन्नति औजारो स, आज की इस गाय (डयूअलपरपज) से, इन आज के धुआ रहित मगन चूल्हो से, इन अम्बर जैसे ग्रामोद्योगो से, और पढाई के आज के तरीका से—न क्रान्ति होनेवाली है, न नया जीवन, न नया समाज। जाने-अनजाने हमें कथा याद आई—शिवरात्री थी, एक वार मा शक्ति के एक प्रश्न से असन्तुष्ट होकर महादेव ने अकेले ही रहन का तय कर लिया। सोचे थे, अकेले रह पाएगे। पर नही। वे भूत हो गए। तब बेचारे, हम जैसे छोटे मोटे सडे गले देवताओं को शिव शक्ति के मिलन की व्यवस्था करनी पडी थी।

१ हर हजार आबादी वाले देश के हर गाव में हजार अश्व बिना खर्च के स्वाथयी मिल सकती है। गावा के खरपतवार सूखे पते मूगफलो के छिलको जैसी वनस्पति और मलमूत्र और गोबर तथा मुख्यत ढोरो के मास से । यह है हमारी खोज। वह 'चिरागे अलाउद्दीन' जो प्रकृति और पुरुष का योग करायगी। नई सृष्टि बनाएगी। .

२ समय भी बराबर इसी ओर आ रहा है। बडे बमो के बजाय, एटम बम ज्यादा कारगर साबित हुवे। युद्ध की सभावना ही समाप्त हुई। 'स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज' का जोर जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी जैसी विश्व व्यापी बडी व्यापारिक कम्पनी ने ५ किलोवाट और १० किलोवाट बिजली बनानेवाले यत्र बनाना शुरू किया। २५ होर्स पावर के ट्रैक्टर—'पचायती राज्य' प्राइवेट सेक्टर और पब्लिक सेक्टर के मुकाबले 'पचायत सेक्टर' बोला—ज्ञान के मामले में भी 'पाधा पद्धति' चलेगी नही, ऐसा मानकर, खुद इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका ने ज्ञान को छोटी छोटी फिल्मो में, फिल्मस्ट्रिपो में ढालना शुरू किया है। ये जेब मे डाले जाने योग्य 'ट्रान्जिस्टर सेट'—सब उसी दिशा के द्योतक है। ..

३ हमी ने अक्तूबर ६० में एक गीत गढा, 'खादी की माडे' दिसम्बर सन ६० में, विनोबा ने हा को कि यह गैस की शक्ति गाव में होती है तो चर्खा कर्घा उससे चले, आपत्ति नही। आज खादी कमीशन ने तय किया है, 'स्थानीय शक्ति में आपत्ति नही होगी'।

४ इस मूलोद्योग को माध्यम करके हमने 'जन शिक्षा' टटोली तो हमारी खुशी का पारावार नही। इसी सेवाग्राम के पास के गावो में, स्कूली बच्चो ने ऐलान किया। गाव गाव मनमानी बिजली बनानेवाले पथिकजी आए हैं। स्कूल में सभा होगी। तो कोई सभा रात १२ से पहले उठी नहीं। मनमाने सवाल। एक से एक बारीक। जानने की भूख (शौक) हर कीमत हर शर्त पर।

५ यही बात 'कठपुतली से' बच्चो ने पेश की। सारा गाव मस्त। 'प्रेशरकुकर' का नमूना दिखाया गया, स्त्रियो में। तो उन्होने जवर उतारकर ढेर कर दिए—हमें यह चाहिए ही। बालमगल की कुछ फिल्में दिखाई। बेहद दिलचस्पी, खूब चर्चा, खूब सवाल, कौन कहता है कि ये मूर्ख है? अपढ है?

(शेषांश पृष्ठ ३४४ पर)

प्रेमनारायण रूसिया

पाठशाला का समय

एक विचारणीय प्रयोग

सन् १९६२ से भारत वर्ष से ६ से ११ वर्ष तक की आयु के समस्त बच्चो को नि शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो रही है। इसके लिये एक बडे पैमाने पर देश भर में अध्यापको के प्रशिक्षण, भवन तथा साज सज्जा और अर्थ तथा अधिकारियो की व्यवस्था की जा रही है। इस प्रकार अनिवार्य योजना को सफल बनाने हेतु सरकार अपनी पूर्ण शक्ति से सलग्न है। देश भर में नई नई पाठशालायें खोली जा रही है। शहरो और कस्बो में विद्यार्थियो की सख्या इतनी तेजी से बढ रही है कि प्रति वर्ष नये विद्यालय खोलने के बाद भी उनकी आवश्यकता की पूर्ति ही नही होती। देहलो आदि बड़े शहरो में तो तम्बुओ में पाठशालायें लगाने पर भी समस्त बच्चो के अध्यापन की व्यवस्था में सरकार अपने आपको असमर्थ पाती है। किन्तु ग्रामो की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वहा अधिकाश पाठशालायें ऐसी है जहा विद्यार्थियो की सख्या बहुत ही कम है। कुछ पाठशालाओ में तो एक अध्यापक केवल पाच या छ बच्चो को ही पढाता देखा गया है। तथा कही पर पाच अध्यापको वाली समस्त साधन सम्पन्न प्राथमिक शाला में केवल ५०, ६० विद्यार्थी ही शिक्षा प्राप्त कर रहे है। देश के ७५ प्रतिशत बच्चे ग्रामो में निवास करते है और वही शिक्षा में इस प्रकार सबसे अधिक अपव्यय हो रहा है। इस समस्या पर महाविद्यालय कुण्डेश्वर में हमने कुछ प्रयोग किये है; यहा उन समस्त प्रयोगो का विवरण देना विषयान्तर न होकर लाभ दायक ही सिद्ध होगा।

राजकीय बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय कुण्डेश्वर, टीकमगढ (म प्र) में प्रशिक्षण प्रसार एव शाला सुधार की योजनान्तरगत पाठशालाओ में विद्यार्थिओ की सख्या में अभिवृद्धि करने हेतु निकटवर्ती ग्रामो और ग्रामपाठशालाओ का सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि पाठशाला में आने योग्य आयु के बच्चो की सख्या से पाठशाला के रजिस्टर में अकित बच्चो की सख्या बहुत ही कम है तथा रजिस्टर में अकित बच्चो की सख्या और वास्तव में प्रतिदिन पाठशाला आने वाले बच्चो की सख्या में तो कोई अनुपात ही नही है। यहा उदाहरण के लिये तीन ग्राम पाठशालाओ का विवरण किया जा रहा है —

क्रमांक	नाम पाठशाला	ग्राम	६ से ११ वर्ष की आयु के कुल बच्चे	पाठशाला में अकित बच्चों की सख्या	पाठशाला में एक माह की उपस्थिती का अनुपात
१	प्राथमिक पाठशाला	शिवपुरी	१९४	६३	१८
२.	प्राथमिक पाठशाला	गणेशगज	९७	४२	९
३	प्राथमिक पाठशाला	पहाडी	२१५	९४	१३

पाठशाला में अंकित छात्रों की अनुपस्थिति के कारणो का पता लगाने हेतु वहा अध्यापको, अभिभावको, सबद्ध नागरिको व बालको से बाते की, जिसके फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि निम्नाकित कठिनाइयो के कारण बच्चे नियमित रूप से पाठशाला में उपस्थिति नही हो सकते हैं।

१. कुछ बच्चे प्रतिदिन अपने घरवालों को खेतो पर दोपहर के समय खाना देने जाते हैं।

२. कुछ बच्चे दोपहर को प्रतिदिन अपने पशुओ का पानी पिलाने हेतु जलाशयो पर ले जाते हैं।

३ कुछ ग्रामो में पशुओ को एक साथ चराने के लिये ग्राम वासियो ने एक निश्चित योजना बना रक्खी है, अत प्रत्येक घर से एक व्यक्ति पशुओं को अपने निश्चित दिन पर जगल में चराने ले जाता है। जब जिस व्यक्ति की बारी आती है तब वह अपने बच्चो को पशुओ के साथ जगल में भेज देते है। अत उस दिन बच्चे स्कूल न आकर प्रात से सायकाल तक पशुओ के साथ जगल में रहते हैं। प्रतिदिन पाठशाला के दो चार बच्चे पाठशाला न आकर जगल में पशुओ के साथ चले जाया करते है।

४. जब मा-बाप खेत पर जाते हैं, या मजदूरी करने जाते हैं तो घर के छोटे बच्चो की देखभाल का उत्तरदायित्व घर के बडे बच्चो पर आ जाता है। अत वे पाठशाला जान में असमर्थ रह जाते है।

५. कुछ बच्चे जगल से प्रतिदिन लकडी, कण्डा तथा घास लेने जाते है तथा उनको बेच कर ही अपनी उदर पूर्ति करते है।

६. कुछ बच्चे नौकरी करते है अतः प्रात से सायतक मालिक का काम करते रहते है।

उक्त कारणो पर गहराई से विचार करने और ग्राम वासियो की दिन चर्या का निकट से अध्ययन करने पर एक बात पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाती है कि ग्राम वासियो के कार्य तथा उनकी दिन चर्या इस प्रकार की है कि उससे हमारी पाठशालाओ का सममेल नही खाता है। भारतवर्ष में सामान्यत. पाठशालायें प्रातः १०–३० से साय ४ तक खुलती है, इस अवधि में गाव के बच्चे किसी-न-किसी ऐसे कार्य में व्यस्त रहते हैं जिससे उन्हे मुक्ति मिल ही नही सकती है. अत पाठशाला में आना उनके लिये पूर्ण असम्भव है। अगर उपरोक्त कारणो का विश्लेषण किया जाय तो दो विचारणीय परिणाम निकलते है।

१ कुछ बच्चे प्रातः पशुदोहन आदि कार्यों के पश्चात् तीन घन्टे के लिये अवकाश पा जाते है। तथा दोपहर को पुन गृह कार्य में उनके सहयोग की आवश्यकता होती है जिस में वे अपने स्वजनो को खेत पर भोजन देने जाते है। इस मध्यान्ह के कार्य मे उनको दो घन्टे लगते है, इसके पश्चात् उन्हे पुन तीन घन्टे का अवकाश मिल जाता है। तथा शाम को पुन गृहकार्यों में उनकी आवश्यकता होती है।

२. नौकरी करनवाले बच्चे शाम को दीपक जल जाने के पश्चात् छुट्टी पा जाते हैं, अत उनको रात्रि में आठ से ग्यारह बजे तक पूर्ण स्वतत्रता रहती है।

उक्त दोनो निष्कर्षों के आधार पर पाठशाला के समय में परिवर्तन करने हेतु ३ प्रकार के समय विभाग चक्र बनाये और उनपर अलग पाठशालाओ में निम्न ३ प्रयोग किये।

प्रयोग न १–प्राथमिक पाठशाला शिवपुरी में अध्यापक का समय प्रात. ८-३० से ११ बजे

तक तथा मध्यन्तर के पश्चात्, मध्याह्न २ बजे से साम ४ बजे तक रखा ।

प्रयोग न २–प्राथमिक पाठशाला गणेशगज का कार्य रात्रि में ६ बजे से १० तक रखा क्योंकि इस गाव में ८० प्रतिशत बच्चे नौकरी या गृह कार्यों में लगे हैं ।

प्रयोग न ३–प्राथमिक पाठशाला पहाडो के समय में कोई परिवर्तन नहीं किया । पाठशाला का कार्य काल प्रात: १०'३० से साय ४ बजे तक रखा । इसमें योग्य कर्मठ अध्यापक भेजे व अनेक क्रिया कलापो का सचालन किया तथा जनता के सहयोग से पाठशाला भवन का निर्माण कराया । इस प्रकार इस ग्राम पाठशाला को भली भाति साधन सम्पन्न किया गया ।

महाविद्यालय द्वारा उक्त तीनो प्रयोगो को यथाविधि चार माह तक कार्यान्वित किया, जिनके परिणाम अलग अलग नीचे दिये जाते हैं ।

प्रयोग न० – १ के परिणाम ।

१. पाठशाला में कुल ११२ छात्रो के नाम अंकित हुये और उनकी उपस्थिति का औसत ९३ प्रतिशत रहा ।

२. प्रात और साय पाठशाला आनेवाले बच्चे प्रसन्न, ताज और स्फूर्ति स भरे हुय दिखाई देते थे ।

३ गाव वालो के दैनिक कामो में कोई रुकावट नही आई, वरन बच्चे अपने प्रति दिन के कामो को करने के साथ-साथ अवकाश के समय में पाठशाला आकर ज्ञानार्जन करत रहे ।

४ ज्यो-ज्यो पाठशाला का यह नया विभाग चक्र ग्राम वासियो की समझ में आता गया त्यो-त्यो छात्र सख्या में अभिवृद्धि होती गई ।

५ दोपहर के विश्राम के कारण अध्यापको में सदैव उत्साह और ताजगी बनी रही जिनके कारण काम अधिक हुआ ।

प्रयोग न० २–का परिणाम ।

१ पाठशाला में कुल ७५ छात्रो के नाम अंकित हुये और उनकी उपस्थिति का औसत ६७ प्रतिशत रहा ।

२ बच्चा के साथ प्रौढ भी पाठशाला आने लगे ।

३ इस योजना से गाव वालो में बहुत उत्साह आया जिसके कारण उन्होने भवन निर्माण हेतु पत्थर आदि सामान एकत्रित कर दिया ।

४ गाव वालो ने रोशनी की व्यवस्था स्वय की । लगभग सभी बच्चा ने पाठन सामग्री खरीदी ।

प्रयोग न ३ के परिणाम ।

१ पाठशाला में अंकित छात्रो की सख्या ११० तक पहुची तथा उपस्थिति का औसत ६२ प्रतिशत रहा ।

२ गाव वाले अपनी निर्धनता तीन कारण बच्चो को गृह कार्य से मुक्त कर पाठशाला भेजने में अपनी असमर्थता प्रकट करते रहे ।

३ पाठशाला आनेवाले बच्चे दो तीन घटे के पश्चात् सुस्त हो जाते थे ।

४ विभिन्न क्रिया कलापो, सुयोग्य अध्यापका तथा अन्य समस्त सम्भव प्रचार के साधनो क होते हुय भी छात्र सख्या में वृद्धि नही हुई ।

५ अधिकाश उन्ही लोगो के बच्चे पाठशाला में आये जो साधन सम्पन्न तथा धनी

थे । और जिनके बच्चे को घर पर कोई कार्य न नही रहता था ।

रचनात्मक क्षेत्र में काम करने वाला भारतवर्ष का प्रत्येक शिक्षा शास्त्री और अधिकारी इस बात का अनुभव कर रहा है कि समुचित व्यवस्था के साथ अनिवार्य शिक्षा लागू कर देने के बाद भी ६ वर्ष से ११ वर्ष तक की आयु के समस्त बच्चे शायद ही पाठशाला में आ सके । कुछ राज्यों में अनिवार्य शिक्षा के अन्तरगत इस आयु के बच्चो को पाठशाला लेने के लिये अन्य प्रयत्नों के साथ साथ कानून का सहारा भी लिया गया । वहा शहरी तथा कस्बों में तो सफलता मिली किन्तु ग्रामों के समस्त बच्चे तो क्या तीन चौथाई तक की पाठशाला तक न ला सके ।

अनेक ग्राम के पाठशालाओं के सर्वेक्षण और उक्त प्रयोगों से मेरा विश्वास दृढ होता जा रहा है कि पाठशालाओ के खुलने का प्रातः १०.३० से सायं ४ बजे तक का समय केवल शहरों और कस्बों के निवासियो के लिये अनुकूल है, लेकिन ग्रामीण जनता के लिये पूर्णरूपेण यह समय प्रतिकूल है ।

अतः पाठशालाओं के दैनिक कार्यक्रम के इस समय में ग्रामोंकी आवश्यकता एवं ग्रामवासियों की दिनचर्या को देखकर परिवर्तन करना आवश्यक तथा अनिवार्य प्रतीत होता है । हमने इसी दिशामें प्रयत्न किये है । अगर हमारे प्रयोग शिक्षा जगत् को लाभ पहुँचा सके तो हम अपना प्रयास सफल मानेंगे ।

(पृष्ठ ३४० का शेषांश)

६. हमारा भरोसा हो गया है कि तालीम और नई तालीम का मूल (मूलोद्योग मूल मत्र) हमारे आपके हाथ पड गया है । खोज पूरी हुई और केवल २५ वर्ष के भीतर-भीतर गाधी जैसे महान क्रान्तिकारी की सबसे बडी और जडमूल क्रान्ति की राह निकल रही है, यह कम अचरज की बात नही है ?

७. गांधीजी की शर्त पूरी करने के साथ साथ हमें गुरुदेव की शर्त पूरी करनी भी अनिवार्य मिली । आनंद रहित ज्ञान को कोई पसद करता नही; करेगा नही, आज हमारी यह २५ वी वर्षगाठ होगी नई तालीम में जनम लिए कि हम कहे पूरे पूरे अभय को आगे करके और विनम्रता पूरी पीछे लिए हुवे कि .

(क) "हताश और निराश होने का कोई प्रश्न नहीं । नई तालीम चलेगी और जरूर चलेगी । पूरी पूरी शान से ।

(ख) जवाहरलालजी की आसाम कांग्रेस में रखी शर्त भी पूरी होगी । उसे नई तालीम को इतना आकर्षक आप क्यों नहीं बनाते कि बडे-से-बडे भी अपने बच्चे भेजें ।"

(ग) उसकी शुरुआत होगी मा बापो की तालीम से । बल्कि आज की प्रचलित भाषा में बोलू तो : 'पच प्रशिक्षण से' । वह नही तो कुछ नही ।

आश्रम की राष्ट्रीय शाला*

काका कालेलकर

स्वयं गांधीजी की प्रेरणा से मैंने सत्याग्रहाश्रम साबरमती के बारेमें एक लेखमाला शुरू की। वह अभी पूरी नहीं हुई है। तो भी जितने लेख अब तक 'मगल प्रभात' में आ चुके, उनकी एक किताब तैयार करने का साथियों को सूझा। मैंने अपनी सम्मति दी।

उस किताब को देखकर आश्रम के साथी और पू० गांधीजी के आखरी दिनों के रहस्य-मन्त्री श्री प्यारेलालजी ने कहा कि आश्रम का एक महत्व का अंग आश्रम की शाला अथवा विद्यामन्दिर था और उसका भार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे श्री काकासाहेब के ऊपर ही रहा। उसके बारे में इस 'आश्रम-संहिता मे' कुछ भी नहीं है यह बात अखरती है और आश्चर्यकारक है।

मेरा विचार कभी-न-कभी आश्रम की शिक्षाप्रवृत्ति के बारे में लिखने का था ही। लेकिन श्री प्यारेलालजी के ऊपर के वचन सुनकर निश्चय हुआ कि अभी से गांधीजी के शिक्षाप्रयोग के बारे में कुछ लिखूं। श्री प्यारेलालजी की बात सही है। गांधीजी ने शाला के विकास का भार मेरे ही सिर पर रखा था। और मुझे उसमें अपने बारे में भी थोडा कुछ लिखना होगा।

गांधीजीने मेरे बारे में दक्षिण आफ्रिका में ही श्री भाई कोतवाल के मुख से थोडा कुछ सुना था। बडौदे के मेरे साथी श्री राजगम् अथवा श्री हरिहरशर्मा अण्णा के द्वारा भी थोडा कुछ सुना था। गांधीजी का प्रत्यक्ष दर्शन मुझे १९१५ में शान्तिनिकेतन में हुआ। वहां पर उन्होंने मेरे एक छोटे से प्रयोग का निरीक्षण किया था। हमारी चर्चा तो बहुत हुई थी और शान्तिनिकेतन में जो कुछ परिवर्तन करने का गांधीजी ने सुझाया था उसका अमल करने का भार भी गांधीजी ने (मेरी अनिच्छा होते हुए भी) मेरे ही सिर पर डाला था।

राष्ट्रीय शिक्षा की धुन मेरे सिर पर कैसी सवार है इसका ख्याल तो गांधीजी को था ही। इसलिए जब उन्हें अपने अहमदाबाद आश्रम के कार्यवश उत्तर भारत जाना पडा तब उन्होंने मुझे उस समय के लिए आश्रम में बुलाया। बाद में जब आश्रम में स्वतन्त्र रूप से राष्ट्रीय शिक्षा का प्रयोग करने का निश्चय हुआ तब गांधीजी ने सरदार वॅ. केशवराव देशपांडे को लिखकर मेरी सेवा उनसे मांग ली। श्री केशवराव और गांधीजी विलायत में विद्यार्थी-काल में कुछ दिन साथ पकाकर खाते थे। इसलिए उन दोनों की दोस्ती थी। केशवरावजी ने प्रसन्नतापूर्वक मुझे गांधीजी के सुपुर्द कर दिया और इस तरह मैं कायम के लिए गांधीजी का बन गया। यह है गांधीजी के और मेरे सम्बन्ध की पूर्वभूमिका।

दक्षिण अफ्रिका में फिनीक्स आश्रम में घर के और इतर बच्चों को पढाने का अनुभव गांधीजी को था ही। वहां के उग्र सत्याग्रह के

दिनों में जिन लोगों ने कारागृहवास पसन्द किया उनके कुटुम्बियों को आश्रय देने का और उनके बालबच्चों को पढाने का प्रबन्ध गाधीजी को करना पडा था। कर्मवीर गाधीजी का स्वभाव अथवा रिवाज ही था कि जो कर्तव्य परिस्थितिवश सामने आ जाय उसीका सर्वांगीण चिन्तन कर के कुछ अमली काम शुरू करना! राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में भी इसी तरह उन्होंने सोच रखा था।

अिसलिये जब दक्षिण आफ्रिका की अपनी प्रवृत्ति समेटकर वे विलायत गये तब उन्होने अपने आश्रमवासियो को—सचालक, अध्यापक और विद्यार्थियो को भारत में भेजा और वहां की प्रधान शिक्षा—सस्थाओ में रखा। प्रथम गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन में और बाद में महात्मा मुन्शीरामजी के कागडी गुरु कुल में।

सन् १९१५ के अन्त में जब अुन्होने अहमदाबाद में स्थायी रूप से रहने का तय किया तब आश्रम में रहनेवाले बच्चो की पढाई का कोंअी सन्तोषकर और स्थायी प्रबन्ध करना अुन्होंने जरूरी माना। अपने स्वभाव के अनुसार गाधीजीने आचार्य आनन्दशकर ध्रुवकी सलाह ली। स्वर्गस्थ विज्ञान शास्त्री गज्जर के अेक शिष्य को आचार्य बनाया, दूसरे दो तीन कार्यकर्ताओ को लेकर शाला का प्रारम्भ किया और इसी सिलसिले में बडोदे से मुझे भी बुलाया और आश्रम की राष्ट्रीय गुजराती शाला की नीव डाली गई। गाधीजीने सोचा कि बच्चो की शिक्षा के लिये जिन शिक्षको को बुलायेंगे वे रहेंगे तो सबके साथ आश्रम में ही। लेकिन आश्रम के रहन-सहन के नियमो से वे रहेंगे। और शाला की प्रवृत्ति आश्रम के कारण होते हुए भी और उसका सारा खर्च आश्रम की ओर से चलते हुए भी शाला की प्रवृत्ति स्वतन्त्र मानी जाय। शालाके सचालन के बारे में गांधीजीने यहां तक स्पष्टता कर दी कि उनके अपने विचार भी हम शिक्षकों के लिए बंधनकर्ता नही गिने जायं। "अगर मैं शाला का एक शिक्षक होता तो शिक्षक-मडल में बैठकर अपने विचारों के स्वीकार के लिये बाकी के शिक्षको से लड लेता। और उनकी सम्मति पानेपर उन्ही का अमल करता। लेकिन मुझें तो देश के दूसरे-दूसरे काम करने हैं। इसलिये मैं अपने विचार आपके सामने रखकर सन्तोप मानता हूं। जो बात आपको जंचे उसका अमल कीजिये। जो न जचे उसे छोड दीजिये। मेरे पास धीरज है।"

ऐसा कहकर गाधीजीने आश्रम की शाला हम लोगो के हाथ में सौंप दी। हम लोग गाधीजी के विचार समझने को, अपनाने को और आजमाने को उत्सुक थे ही। इसलिये हमारा काम अच्छी तरह से चला। आश्रम-जीवन हम लोगो को इतना भाया कि उसके साथ घुलमिल जाते किसी को कठिनाई महसूस नही हुई। हम स्वतन्त्र रूप से और स्वेच्छा से आश्रमवासी बनते गये। और आश्रमोचित वायुमण्डल में पढाई का काम करते गये। हमारा नियम था कि रोज शाम को आधा घण्टा बैठकर शिक्षा का आदर्श, शिक्षण-पद्धति अपने अनुभव, विद्यार्थियो का स्वभाव, उद्योग, वाचन, समाचार आदि सब बातो की हम चर्चा करे। इस सिलसिले के कारण हम सब शिक्षक एक दूसरे के बहुत नजदीक आये और सारी शाला में वायुमण्डल का एक राग बना रहा।

*'मगल प्रभात' से साभार

आणविक परीक्षणों से विरोध व्यक्त करने के लिये नाव द्वारा परीक्षण क्षेत्र में प्रवेश

अमेरिका में कमिटी फार नान वायेलेन्ट एक्शन (सी. एन. वी. ए.— अहिंसक कार्य के लिये बनी समिति) ने अप्रैल ११ ता. को ऐलान किया कि वे आणविक अस्त्रों के परीक्षण फिर से शुरू करने के निश्चय के प्रति अपना विरोध व्यक्त करने के लिये क्रिसमस द्वीप के आसपास इस परीक्षण क्षेत्र में एक छोटा जहाज ले जाने का प्रयत्न करेंगे।

इसके लिये एक विशेष जहाज करीब ३०, ३५ फिट लंबा अमेरिका के पश्चिमी तट पर बनाया जा रहा है। अपेक्षा यह है कि १ ली जून तक वह बन कर तैयार हो जायगा।

कमेटी की योजना है कि जहाज जून २० ता. तक परीक्षण क्षेत्र में प्रवेश करे जब कि अमेरिका के इस दफे के परीक्षणो की शृंखला का करीब मध्य होगा। क्रिसमस द्वीप सान फान्सिस्को से ३,००० मील दक्षिण पश्चिम में तथा हवाई द्वीपसमूह के १,००० मील दक्षिण में है।

इन आणविक परीक्षणों में केवल अमेरिका ही अपराधी नहीं है। सोवियत यूनियन का भी इसमें तुल्य दोष है—सोवियत रूसने ऐलान भी किया है कि अमेरिका के परीक्षणों के बाद वे और एक परीक्षणमाला शुरू करेंगे। इस निश्चय के प्रति भी अपना विरोध व्यक्त करने के लिये सी. एन. वी. ए. कोई उचित कदम उठायेगी।

इस शान्तिवादी संघ ने ही पिछले साल सानफान्सिस्को से मास्को तक की पदयात्रा का आयोजन किया था। उनका कहना है कि अभी की इस प्रतिषेध यात्रा का उद्देश्य 'आणविक अस्त्रों के परीक्षण का अनैतिक रूप जनता के सामने प्रत्यक्ष करने के लिये बम के नीचे कुछ आदमियो का जाना" है।

जब ये परीक्षण क्षेत्र में पहुचेंगे तो अमेरिकन सरकार के सामने ये तीन विकल्प होंगे—१. परीक्षण बन्द करना, या उन्हें तब तक स्थगित रखना जब तक कि खाने पीने की सामग्रियों के खतम होने से इस छोटी शान्तिनौका को वापस जाना पड़े; २. अन्तर्राष्ट्रीय नियमो के विरोध में नाविकों को गिरफतार करना, ३. नाविकों के मरने या बुरी तरह घायल होने की निश्चित जानकारी के साथ परीक्षण करना।

इसके पहले १९५८ में 'गोल्डन रूल' और "फिनिक्स्" नाम के दो जहाजो ने इस तरह की यात्राए की थी, 'गोल्डन रूल' ने जब प्रशान्त महासागर के एनिवटोक परीक्षण क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न किया था, तो दुनिया की दिलचस्पी उस पर केन्द्रित हुई थी। उसके नाविक 'हवाई' में गिरफतार किये गये, लेकिन 'फिनिक्स' ने यात्रा चालू रखी। उसमें अर्ल रेनोल्डस्, उनका परिवार तथा एक जापानी नाविक थे। परीक्षण क्षेत्र के अन्दर अमेरिकन पहरियों ने उसको रोका और रेनोल्ड गिरफतार किया गया। उनको छः महीने के कारावास की सजा सुनाई गई। परन्तु अपील करने पर यह रद किया गया।

'गोल्डन रूल' के कप्तान एल्बर्ट बिगलोव इस दफे की यात्रा में नाविक उपदेशक का काम करेंगे। जहाज की तैयारी, सामग्रियो के—

संभार तथा नाविकों के प्रशिक्षण का वे निर्देशन करेंगे।

यात्रा में चार या पांच व्यक्ति रहेंगे, उनका चुनाव करना अभी बाकी है, उसके लिये सी. एन. वि. ए. के प्रधान कार्यालय में लिखित प्रार्थना पत्र देने होंगे। आवश्यक योग्यताएं हैं--अपने इस सिद्धान्त के लिये मौत या गंभीर चोट सहन करने की तैयारी और अहिंसक अनुशासन का पालन। इग्लैण्ड से भी यात्रा में शामिल होने के लिये प्रार्थना पत्र आये हैं, इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय दल बनाने का विचार चल रहा है।

सब बातें खुली खुली बताने की और परिपूर्ण सत्यपालन की अपनी नीति के अनुसार सि. एन. वि. ए. ने कहा है कि वे यात्रा के हर कदम के बारे में अधिकृतो को सूचना देते रहेंगे। समिति के अध्यक्ष ए. जे. मस्ते और मन्त्री ब्रेडफोर्ड लिटिल ने यात्रा के उद्देशों का विवरण देते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति को पत्र लिख दिया है।

अहिंसक कार्य समिति इस प्रतिपेध यात्रा के द्वारा सभी राष्ट्रों को आणविक अस्त्रों का परीक्षण बन्द करने के लिये आह्वान करती है। वह सरकारों से मांग करती है कि वे सैनिक तैयारिया खतम कर दें, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये नागरिकों को अहिंसक पद्धतियों में प्रशिक्षण दें; दूसरे राष्ट्र क्या करते है या नहीं करते हैं इसकी चिन्ता किये बगैर स्वयं शस्त्रसज्जा छोड दें, परिपूर्ण निःशस्त्रीकरण के लिये आवश्यक कदम उठायें-और उससे किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था मे ज्यादा उथल-पुथल न हो, इस दृष्टि से अर्थव्यवस्था में जरूरी परिवर्तन करें, तथा कम विकसित देशों को उदारपूर्ण सहायता पहुंचायें।

समिति का मत है कि बहुत सारे लोगों के सहयोग के बिना आधुनिक युद्ध की तैय्यारियां असंभव हैं। इसलिये युद्ध को रोकने के लिये वे सामान्य जनता से यह निवेदन करती है-सेना में भर्ती होने तथा सेना से या शस्त्रनिर्माण से संबधित कामों में हिस्सा लेने से इनकार करना, मिलिटरी प्रोग्राम के लिये सहायक करों को देने से इनकार करना एवं दूसरे भी सभी प्रकार की सैनिक प्रवृत्तियों से असहयोग करना। वह नागरिकों से प्रार्थना करती है कि वे युद्ध के विरोध में प्रतिपेध और प्रदर्शन करे।

विश्व शान्ति सेना का आफ्रिका-प्रोजेक्ट

अफ्रिका में उत्तरी रोडेशिया के स्वतंत्रता संग्राम तथा वहां उत्पन्न तनावपूर्ण परिस्थिति में कोई सक्रिय कदम उठाने-और वहा की जनता को, जो श्री कुआण्डा के नेतृत्व में अपनी स्वतन्त्रता के लिए अहिंसक संग्राम में लगी है, सहायता पहुचाने के विश्वशान्ति सेना के निश्चय के बारे में पिछले शान्तिसमाचार में लिखा गया था। वहा के नेता इन दिनों एक प्रत्यक्ष सत्याग्रह समर और उससे अनुबंधित जनता के कष्टो के बिना अपना मूल ध्येय-स्वतन्त्रता-प्राप्त करने के हर मार्ग खोजने में लगे है, संयुक्त राष्ट्र के उपनिवेश समिति के सामने अपना पक्ष पेश करने के लिये श्री कुआण्डा १६ अप्रैल को न्यूयार्क गये थे। २७ अप्रैल को वहां हानेवाले 'चुनाव' का बहिष्कार करन का भी उन्होंने तय किया था। यह 'चुनाव' ऐसा था जिसमें चार सौ लोगो में केवल एक को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था। इन सब कारणो से विश्वशाति सेना ने फिलहाल वहां कोई सक्रिय कदम उठाने का विचार कुछ स्थगित रखा था।

फिर भी माइकेल स्काट और बिल सदरलैन्ड दारे सलाम में वहा के स्थानीय नेताओ के साथ मिलकर काम कर रहे है। उनकी मान्यता है कि ऐसे किसी भी स्वतत्रता-सग्राम का नेतृत्व वहा के स्थानीय लोगों को ही करना है, बाहर से सहायता कब लेनी है, इसका निर्णय भी उन्ही को करना है। अहिंसक सविनय आज्ञाभग के तरीको में वे विश्वास रखते है और इसलिये उन्होने एडिस अबाबा में हुए सम्मेलन में इस कार्य के लिये अपना समय और सेवाए अर्पित करने की इच्छा व्यक्त की।

सभव है वहा जल्दी ही प्रत्यक्ष सत्याग्रह सग्राम की आवश्यकता उपस्थित हो जाय, उसके लिये स्वयसेवको के प्रशिक्षण का काम चल रहा है। दूसरे देशो से भी जो शान्ति-सैनिक आफ्रिका के स्वतत्रता सग्राम में मदद पहुचाना चाहते है, उनके लिये वे ये तीन सुझाव देते है–

१ जरुरत पडने पर जो वहा प्रत्यक्ष काम के लिये जा सकते है, वैसे स्वयसेवको को भरती करना।

२. रोडेशिया के उत्तरी प्रान्त के जो गाव "सुरक्षा पुलीस" द्वारा नष्ट किये गये, उनके पुनर्निर्माण और जनता के पुनरावास का काम भी इस सारे आन्दोलन का एक हिस्सा है। इसके लिये डाक्टरो, नर्सों तथा गृहनिर्माण के तज्ञो की जरूरत है। एसे विशेषज्ञ जो उन परिस्थितियो में काम करने के लिये तैयार है, उनकी वहा माग है।

३ विभिन्न देशों से स्वयसेवको को वहा पहुचाने तथा एक लबे आन्दोलन के लिये मुख्य केन्द्र बनाने के लिये पैसे की जरूरत है। इसके लिये निधि इकट्ठा करना।

अफ्रिका की जनता का उपनिवेशवाद के खिलाफ यह सघर्ष आज केवल वहा के लोगो का नही, बल्कि विश्व के सभी स्वतत्रताप्रेमियो का कार्य बना है। आशा है सभी देशो से उन्हे भरपूर सहायता पहुचेगी।

अन्तर्राष्टीय पद-यात्रा

अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र, विश्वनीडम् के दो नवयुवक मित्र–ई० पी० मेनन और सतीश कुमार शीघ्र ही एक लम्बी पदयात्रा के लिए निकलने वाले है। उनको यह विश्वास हो गया है "चाहे बाहर कितना भी अन्धकार हो, उनके हृदय-दीप को वह कदाचित् भी बुझा नही सकेगा। दिल्ली से पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, सिरीया, इस्राइल, तुर्की, रूस, पोलैण्ड, जर्मनी, फ्रास, इगलैण्ड होते हुए वे अमेरीका में वाशिंग्टन जाकर अपनी यात्रा पूरी करगे।

उनकी मान्यता है–समय आया है कि सामान्य मनुष्य अपने भाग्य की डोर अपने हाथो लेले। सरकारो और केन्द्रित राज्य व्यवस्था से शान्ति निर्मित नही होगी। उसके लिये बागडोर सामान्य लोगो को पकडनी होगी। जबतक सारी दुनिया का एक परिवार नही बनता तब तक मानवता के अस्तित्व को खतरा हो रहेगा।

वे हरेक से माग करगे कि सारे राष्ट्र युद्ध के—आणविक और साधारण सभी तरह के हथियारो को नष्ट कर दें। शस्त्रोपर होनेवाले खर्च को मानवता की भलाई में लगाया जाय और 'एक जगत्' के आदर्श पर जागतिक सरकार बने।

इन नवयुवक साथियो के इस ऊँचे विचारो के लिये और उनके इन विचार को फैलाने के

(शेषाश पृष्ठ ३५७ पर)

शिक्षा में स्वतंत्रता सबसे महत्वपूर्ण और तकाजे का प्रश्न

देवी प्रसाद

जैसे-जैसे सरकार यह महसूस करती जा रही है कि राष्ट्र के हर बालक की शिक्षा की जिम्मेवारी उसकी है और जिस गति से वह इस प्रश्न पर अमल कर रही है, उसी गति से 'शिक्षा में स्वतत्रता' का प्रश्न गहरा और तकाजे का बनता जा रहा है। जब तक स्कूल देश के शहरो में ही थे तबतक यह प्रश्न कभी सूझता ही नही था। जिसे शिक्षा का कार्य करना होता था या उसमें कोई खास प्रयोग करने होते थे तो कही भी बैठकर वह किया जा सकता था। सद्भावना से कोई बच्चो को "पढाने लिखाने" बैठना चाहता था तो लोग उसका स्वागत करते थे। वह क्या पढायेगा और कितना पढायेगा, यह बात खडी ही नही होती थी। स्वामी श्रद्धानन्द और रवीन्द्रनाथ जैसो की तो बात ही क्या, सामान्य लोग भी ऊचे दर्जे का काम कर डालते थे। न था पाठ्यक्रम और न था सर्टीफिकेट का चक्कर।

किन्तु आज हरेक का आदर्श हुआ है नौकरी और नौकरी के लिए 'उपयुक्त योग्यता।' एक दुष्चक्र बन गया है। इधर नौकरी और उसके लिए क्वालिफिकेशन और उधर उनके लिए साचे में ढली पढाई। जितना वह साचा सार्वभौम होता जाता है उतना ही आम जनता उसकी ओर देखती है; और जनता जितना उसकी ओर देखती है उतनी ही सरकार कहती है कि उसका फर्ज ही है कि वह जनता की आकाक्षाओ की पूर्ति करने का प्रयत्न करे।

धीरे धीरे देश का कोना-कोना स्कूलवाला हो जायगा। सरकार की योजना ही है कि तीसरी योजना के अन्त तक ११ वर्ष तक का हर बालक स्कूल में जाने लगेगा। सरकार यह सहूलियत कर दे कि जो गाव अमुक-अमुक शर्तों को पूरा कर देगा उसे शाला शीघ्र मिल जायगी, यह स्वाभाविक ही है। सरकार को ऐसे तरीको से गावो को प्रेरित करना ही चाहिए। पर होता यह है कि वही ढलाई किया हुआ स्कूल आ जाता है, वही मकान, वही किताब और वही परीक्षा—वही इन्सपैक्टर! जनता को यह देखने की जरूरत नही कि शिक्षा कैसी होती है--स्कूल आया तो बस है। एक तरफ उन्नति और दूसरी तरफ अवनति। स्वेच्छा द्वारा सेवा की कमी होती जा रही है। जितनी स्वप्रेरित सेवासस्थायें उस समय बनती थी, अब उतनी नही बनती और जो बनती भी है वे अधिकतर पूरा पूरा सरकारी ढग के ढांचे-वाला काम करनेवाली बनती है। सेवा का

सारा भार सरकार के कधो पर पडता जा रहा है ।

यह परिस्थिति किसी भी देश के लिए खतरनाक होगी । कहने का तात्पर्य यह नही कि सरकार अपना यह काम करना छोड दे। उसे तो शिक्षा के प्रसार का कार्य करना ही है। प्रश्न केवल यह है कि ऐसा वातावरण किस प्रकार बनाया जाय कि समाज में स्वयस्फूर्त सेवाकार्य और उसमें नये-नये प्रयोगो को करने की प्रेरणा मिले !

क्या शिक्षा का कार्य सारे देश के स्कूल किसी एक ढग से, एक ही प्रकार के पाठयक्रम को मानने से हो जाता है ? क्या वह हर क्षण विकसित होने वाली चीज नही है ? अगर है तो फिर वह कैसे विकसित होती रहे, यह देखना होगा । आज सरकार जिस प्रकार कडाई के साथ अपने निश्चित किए हुए साचे पर ही हर स्कूल को चलते हुए देखना चाहती है और समाज में स्वतत्र शिक्षा के प्रयोगो का निर्माण होने नही देती, इस स्थिति को बदलना चाहिए । यदि शिक्षा में विकास होगा तो वह ऐसे व्यक्तियो और सस्थाओ द्वारा ही होगा जो नई-नई उडान लेने का साहस कर सकती हैं, जो प्रयोग कर सकती हैं । सरकार का फर्ज है कि वह ऐसी परिस्थिति पैदा करे कि शिक्षा क्षेत्र में प्रयोग करने की वृत्ति का निर्माण हो और उसे प्रोत्साहन मिले । बिना इसके शिक्षा का स्तर उठेगा नही—गिरता ही जायगा ।

जो लोग प्रयोग करना चाहें उनको छूट हो कि वे अपने ढग से स्कूल चलायें, पाठयक्रम आदि बनायें । हा, जहा तक शिक्षा के स्टेण्डर्ड का प्रश्न है वह अगली अवस्था की शिक्षा के केन्द्रो में प्रवेश के लिए समीक्षाओ का सिलसिला तैयार करने से हल होगा । उदाहरणार्थ यदि एक बुनियादी शाला प्रयोग करना चाहती हो तो वह चाहे जैसा कार्य करे—लेकिन यदि उसके बालक आठ वर्ष के शिक्षाक्रम को पूरा करने के बाद माध्यमिक शाला में जाना चाहते हो तो उसे उसके लिए प्रवेश-परीक्षा में बैठाया जाय । उसी प्रकार माध्यमिक और उच्च माध्यमिक अवस्थाओ की भी बात है—प्रयोग करने के लिए अमुक शाला यदि अपनी स्वतत्रता चाहती है तो उसे वह प्राप्त हो तो शिक्षाक्रम पूरा करने के बाद विश्वविद्यालय में भर्ती के लिए उन्हे प्रवेश परीक्षा में बैठाया जाय । दरअसल किसी उच्च माध्यमिक पाठशाला से उत्तीर्ण होने के बाद यह न मान लिया जाय कि विद्यार्थी विश्वविद्यालय के योग्य हो गया—हर विद्यार्थी को इस प्रवेश-परीक्षा में से गुजरना ही चाहिए—चाहे वह सामान्य शाला से आया हो, चाहे स्वतत्र शाला से ।

यानी सरकार को पायलेटिंग कार्य के लिए स्वतत्रता देनी चाहिए । सरकार के स्कूल सभी काफी हद तक ढलाई वाले ही होगे—उनमें सबमें स्वतत्रता हो—इस बात को हम यहा नही कह रहे है । जो स्कूल इस प्रकार की छूट चाहें उन्हे पूरी पूरी मान्यता के साथ वह छूट होनी चाहिए । इसके लिए जो कदम उठाने होगे उनमें से मुख्य हैं

(अ) वह स्कूल सामान्य 'इन्स्पेक्शन' से बिलकुल मुक्त हो । चाहे तो प्रदेश उनकी सहायता के लिए उन्ही स्कूलो में से चुनकर और अलग गैर सरकारी स्तर पर एक मडल का निर्माण करे जो सहायता के लिए हो, न कि इन्स्पेक्शन के लिए ।

(आ) स्कूल को अपनी दिनचर्या को तय करने के शतप्रतिशत छूट हो। कोई निश्चित पाठ्यक्रम या कार्यक्रम उसपर कदापि न लादा जाय।

(इ) स्कूल की आखिरी परीक्षा भी स्कूल का अपना ही कार्य हो। बाहरी परीक्षाओं का प्रयोग शालाओं में बिलकुल भी नही हो सकता।

(ई) कहने की आवश्यकता नहीं कि सामान्य शालाओं और स्वतंत्र शालाओं से निकले विद्यार्थियों में बिलकुल भी भेद न किया जाय।

इस सिलसिले में हम नई तालीम जगत् के सामने भी एक निवेदन रखना चाहते हैं। हम भी आम तौर पर एक पाठ्यक्रम की बात करते हैं। उधर स्वतंत्रता की बात करें और इधर हम "सारे प्रदेश और राष्ट्र" के लिए एक पाठ्यक्रम हो इसके बारे में बैठें करें-यह कहां तक उचित है। नई तालीम के कार्यकर्ताओं को-खास तौर पर उन्हें जो एक 'निश्चित पाठ्यक्रम' की बात करते हैं, हम यह कहना चाहते हैं कि नई तालीम की शक्ति ही उसी में है कि निश्चित पाठ्यक्रम नहीं बना। नई तालीम जीवित थी तो इस प्रकार का सांचेवाला पाठ्यक्रम अभी तक भी नहीं बनता-अगर यह बन गया तो समझना कि नई तालीम मर गई। जरा अहिंसा और शिक्षा की हवा में बैठ कर हम उस चीनी कहावत के उपर चिन्तन करें-'लेट हण्ड्रेड फ्लावर्स ब्लासम (सौ फूलों को खिलने दो)।

बडा भवन है। किशोर लडके लडकियां गम्भीर चेहरे लेकर अपने डेस्कों पर बैठे हैं। उनके बीच १०-१० फिट का फासला है। क्यों? कहीं वे एक दूसरे की नकल न करलें। लम्बे चेहरे बनाये शिक्षक और शिक्षिकायें पहरा दे रहे हैं। पुलिस से भी अधिक ये 'गुरुजी' लोग उन भावी नागरिकों के मनों को छोटा बनाने में सहायता करते हैं। न शिक्षक को विद्यार्थी के ऊपर विश्वास है और न विद्यार्थियों विद्यार्थियों के बीच। यह सांचे वाली शिक्षा हमें उस उद्देश्य से दूर लेती जा रही है जिसमें शिक्षा आपसी विश्वास की जनक हो, यह कहा गया है। क्या प्रयोग करने वाले स्कूल भी इस परीक्षा पद्धति के गुलाम बन सकते हैं।

यदि शिक्षक और शिक्षा विभाग के बीच आपसी विश्वास को कायम करना है, यदि शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आपसी विश्वास की स्थापना करनी है, यदि समाज में विश्वास का वातावरण कायम करना है तो शिक्षा की स्वतंत्रता पर गहराई से सोच कर अमल करना होगा। यही विश्वास है जो व्यक्ति और समाज में अहिंसा की वृत्ति का निर्माण करता है।

इस स्वतंत्रता के लिए सरकार को हर तरह से कदम उठाना चाहिए। यदि सरकार यह नहीं मानती है तो कहना पडेगा कि अन्य प्रश्नों को हम गौण मानें और इसके पीछे लगें। क्योंकि यही मूल प्रश्न है। शिक्षा में यह स्वतंत्रता नहीं होगी तो हम ऐसे नागरिक नहीं बना सकेंगे जो स्वतंत्रतापूर्वक चिन्तन करके निर्णय लेने की शक्ति रखते हों। ऐसी हालत में गणतंत्र का भविष्य क्या हो सकता है। हमने देखा है कि देश जितना अधिक डिक्टेटरशिप वाला होगा उतनी ही कम आशा उस देश में शिक्षा के स्वतंत्र प्रयोग करने के लिए होगी। ऐसे देशों में शिक्षा विभाग कहता है, "पाठ्यक्रम हमारे विधान का अंग है और किसी व्यक्ति को इसमें जरा सा भी हेर फेर करने की

(शेषांश पृष्ठ ३५७ पर)

यूगोस्लाविया में शिक्षा की व्यवस्था

देवी प्रसाद

यूगोस्लाविया अन्य कम्यूनिस्ट देशो से अलग है, साथ-साथ वह अपने आपको पूरा मार्क्सवादी भी मानता है और अपने ढग से साम्यवादी समाज के निर्माण में लगा है। पिछले वर्षों में हमारे कुछ साथी इस देश में गये थे और वहा के सामाजिक जीवन की कई बातो से प्रभावित भी होकर आये थे। उनकी एक विशेषता यह है कि वे विकेन्द्रीकरण के प्रयास में सच्चाई के साथ लगे है। उनके कई को-आपरेटिव देखने योग्य है। उत्तर पश्चिम का कुछ इलाका अगर छोड दिया जाय—खास तौर पर लुबलाना और जाग्रेब का क्षेत्र, तो बाकी अधिकतर हिस्सा भारत की तरह ही ग्रामीण दीखता है। यूगोस्लाविया की सस्कृति भी प्राचीन है—उसकी लोक परम्परायें बडी समृद्ध।

पिछले योरोप के प्रवास के समय वहा जा सकू और उनकी परिस्थिति में शिक्षा व्यवस्था क्या की गई है, यह देख आऊ यह सोचा था। उनके भारत में स्थित दूतावास ने यह मौका दिया और उनका देश देखने का निमत्रण मुझे मिला। इस मौके के लिए और जो बडे आदर के साथ जितना मुझसे समय था उतना दिखाया, मै उनका बडा कृतज्ञ हूं। शिक्षा मत्रालय के सचिव श्री दियतलिच बडे सज्जन है। उन्होने पूरे १२ दिन के मेरे भ्रमण के बारे में बडी रुचि ली। वहा की शिक्षा प्रणाली के बारे में जो देखा उसका थोडा सा वर्णन सक्षेप में देने की कोशिश करता हू।

प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा का ढाचा सामान्य ढग का ही है। ७ से १५ वर्ष की उम्र के लिये—आठ वर्ष के प्राथमिक स्कूल है। इस अवस्था की शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त है। यदि प्राथमिक शाला में कोई बालक नही आता है तो उसके पालक को पहली बार ७०० रुपये के करीब जुरमाना देना होगा। यदि किसी शिक्षक या हेडमास्टर की अपनी जिम्मेदारी के अवहेलना के कारण बालक शाला में नही आता है तो उसे जुरमाना देना होगा। यह कसूर दोबारा होने पर ३० दिन तक की जेल भी हो सकती है। योग्य विद्यार्थियो और मजदूरो के बालको को तीनो स्तर तक की शिक्षा के लिए आर्थिक सहूलियतो की बडी गुजाइश है। सारी पाठशालायें सरकारी है। शिक्षा धार्मिक सस्थानो—गिरजो से बिल्कुल मुक्त रहे इस बात पर बडा ध्यान दिया जाता है। यदि गैरसरकारी शाला कोई खोलना चाहे तो अदालत की इजाजत लेनी होगी। दरअसल वहा प्राइवेट शाला एक भी नही है।

एक मुख्य बात यह है कि जो विकेन्द्रीकरण यूगोस्लाविया के जीवन के अन्य क्षेत्रो में

लागू हो चुका था–वह अब शाला के बारे में भी लागू हो रहा है। शाला का संगठन विकेन्द्रित ढंग से होता है। यदि म्युनिसिपैलेटी, फेक्ट्री, या कोआपरेटिव को महसूस हो कि वहा स्कूल की आवश्यकता है तो वे ऐसा कर सकते हैं। स्कूल की व्यवस्था भी स्कूल कमेटियो के द्वारा होती है। जितना घनिष्ठ सम्बन्ध शाला और समाज का बनेगा उतना ही समाज को उससे फायदा होगा। इसलिए समाज स्कूल के बारे में बडा ध्यान देती है। स्कूल भी समाज की समस्याओ को समझने का और उसमें हिस्सा बटाने का प्रयास करता है। उसका आर्थिक भार भी पूरा पूरा उसी समाज पर है।

जो समाज औद्योगीकरण में विकसित होगा और जिसकी आर्थिक अवस्था अच्छी होगी–वह स्कूल को अच्छी सहायता देती है। इस सिलसिले में विकेन्द्रीकरण इतना है कि शिक्षको की तनख्वाह भी स्कूल कमेटि ही तय करेगी। शिक्षक का वेतन, उसकी योग्यता, अनुभव, तथा उसके कार्य की विशेष कठिनाइयो को ध्यान में रखकर, जिम्मेदारी, शिक्षा के विषय में रुचि और समाजिक सम्बन्धों में हिस्सा लेने की मात्रा पर निर्भर होता है। इसलिए प्रमाण पत्रो का पहले जो महत्व समझा जाता था, अब वह नही रहा। पुराने जो वेतन के ग्रेड थे वे उन्हाने हाल ही में खत्म कर दिये। स्कूल वोर्ड सालभर का बजट बनाता है और वह म्यूनिसिपैलेटी में चर्चा होकर तय किया जाता है। आखिरी निर्णय उस म्युनिसिपैलेटि की आर्थिक परिस्थिति पर निर्भर होता है।

स्कूल बोर्ड दो वर्ष के लिये चुना जाता है। उसमें कुछ सदस्य म्युनिसिपैल प्यूपिल कमेटि के द्वारा नामजद होते हैं और कुछ स्कूल टीचर्स की काउन्सिल द्वारा। उसके कुछ सदस्य आसपास की समाज में से चुने जाते हैं। हेडमास्टर भी सदस्य होता है और स्कूल के विद्यार्थियो में से कुछ चुने हुए भी। इस कमेटी का अध्यक्ष हेडमास्टर या उस स्कूल का कोई शिक्षक नही हो सकता।

बेलग्रेड के गोर्कीस्कूल में १२०० विद्यार्थी थे और ५० शिक्षक। पहली चार कक्षाओ के कक्षा शिक्षक और ५–८ कक्षाओ में विषय के शिक्षक। शिक्षको के बीच आपसी अध्ययन और कार्य चलाने की दृष्टिसे विषय के आधार पर 'सबजेक्ट कौंसिल' बनी है। उदाहरणार्थ गणित के लिए उन्ही शिक्षको में से एक गाइड (मार्गदर्शक) होता है और इन कौंसिलों की बैठके नियमित होती रहती हैं। स्कूल के सब विषय के मार्गदर्शको को मिला कर एक 'प्रोफेशनल कौंसिल" बनती है, जो स्कूल के शैक्षणिक स्तर पर विशेष ध्यान देती है।

इस शाला की कमेटि (स्कूल कौंसिल) में हेडमास्टर, अन्य दो शिक्षक, उस क्षेत्र के पाच व्यक्ति और सामाजिक सेवा के क्षेत्र में काम करनेवाले सात व्यक्ति सदस्य हैं। कौंसिल की साल में दस बैठके होती हैं।

इसी प्रकार विद्यार्थियो की भी कमेटि होती है जो हफ्ते में एक बार मिलती है और जिसका कार्य अधिकतर स्कूल के बाहर की प्रवृत्तियो के बारे में सोचना होता है।

जहा तक काम और शिक्षा का समन्वय है, वे मानते हैं कि समाज का वातावरण ही एसा होना चाहिए कि जिससे काम के प्रति लोगो को रुचि हो। हा, हफ्ते में दो वर्ग फेक्टरी में टेक्नोलॉजी के आम सिद्धान्तों

से परिचय पाने के लिए होते हैं । वह भी ५-६ और ७ वी कक्षाओं में । पहली चार कक्षाओं में बालक स्कूल की वर्क शॉप में ही औजारों का उपयोग करना सीखते हैं । आठवीं कक्षा में १०-१० दिन की दो अवधियों में बालकों को फेक्टरी में रोज ६ घण्टे काम करना पडता है ।

इस गोर्की स्कूल में इन्होंने एक सुन्दर प्रयोग किया है । पहली कक्षा का हर बालक एक पौधा फूल का लगाता है और उसकी देख-भाल करता है । दूसरी कक्षा का दो और तीसरी का तीन । चौथी कक्षा से बालक पेड़ लगाते हैं । उनकी योजना है कि स्कूल की ओर से उसके आसपास के क्षेत्र में आठ साल के अन्दर ६००० पेड़ लगाये जाय । अभी से यह क्षेत्र हरा भरा हो गया है ।

यहां के शिक्षा के अधिकारियों का मत है कि स्कूल में शरीर श्रम की प्रतिष्ठा बढाने की बात इतनी महत्व की नही है । असल में समाज का आर्थिक ढांचा ऐसा बनाया जाय कि स्कूल से निकलते ही विद्यार्थियों को कार्य में लगाया जाय और उस कार्य को इतना आकर्षक-आर्थिक पहलू खास तौर पर-बनाया जाय कि नवयुवक उसमें स्वेच्छा से आय । समवाय पद्धति के प्रति उन्हे कोई आकर्षण नही है । विषय ज्ञान पर बहुत जोर है और विज्ञान की तालीम पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

बालकों की स्कूल के बाहर की प्रवृत्तियों में भी पायोनिअर पॅलेस जैसे क्लब और विज्ञान की प्रवृत्तियों की भर मार रहती है ।

देश का अधिकतर हिस्सा ग्रामीण है । इसलिए एक शिक्षकवाली शालाओं की बडी आवश्यकता होती है । ऐसे एक स्कूल में देखा कि एक शिक्षक है और वह चार कक्षाओं को सम्भालता है । उसका कुछ काम शिफ्ट अलग करने से हल होता है । किन्तु वह परिस्थिति कठिन होती है, यह उस शिक्षक को भी महसूस होता था । इसलिए शिक्षा विभाग ऐसी शालाओं में चुने हुए अच्छे शिक्षक भेजता है और उन्हे विशेष आर्थिक सुहूलियत भी देता है !

इस प्रकार मैंने १२ दिनो में काफी स्कूल, बालवाडिया, शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र और लोक शिक्षा के केन्द्र देखे । हर व्यक्ति में अपनी ज्ञान बढा लेने की तीव्र भूख दिखाई दी । मजदूर रात को ३-४ घण्टे विशेष वर्गो में आकर सामान्य कोर्स करते है । इन कक्षाओं में हमेशा देखा कि विद्यार्थी भरे रहते हैं । कुछ लोग स्कूल का सामान्य पाठ्क्रम पूरा करते है तो कुछ विशेष बने पाठ्यक्रमो में जाते है । इसका बडा सुन्दर अनुभव वहां की वर्कर्स युनिवर्सिटी में हुआ । यह युनिवर्सिटी साल में हजारों मजदूरों की शिक्षा का इन्तजाम तरह-तरह से करती है । फॅक्टरियो में प्रौढ वर्ग चलाना, परीक्षायें लेना और साथ साथ उनमें विचार गोष्ठियां मार्क्सिज्म, सोशियलिज्म आदि पर आयोजित करना होता है । सबसे बडी बात यही देखी कि युनिवर्सिटी की तालीम वहां कुछ चुने हुए लोगों के लिए ही सीमित बनकर नही बैठी है । वह मजदूरों के दरवाजे पर पहुंची है । यह जरूरी नहीं कि युनिवर्सिटी को की शिक्षा के लिए स्कूल की अमुक अमुक पढाई पूरी होनी चाहिए । कोई भी मजदूर जिसने किसी स्कूल का दरवाजा भी नही देखा हो, यदि तैयारी करके युनिवर्सिटी की प्राइवेट परीक्षा में बैठता है और उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे युनिवर्सिटी में प्रवेश मिल जाता है ।

(शेषांश पृष्ठ ३५७ पर)

टिप्पणियां

गुजरात शिक्षा मंत्री के नाम एक पत्र

माननीय बहन श्री इन्दुमती सेठ,

एक ऐसा वक्त भी था जब लोग गांधीजी की बातों को पागलपन का विशेषण देते थे। उनके जीवन में अनेक ऐसे प्रसग आये जिनमें वे बिलकुल अकेले पड गये। उनके सारे साथी एक तरफ और वे एक तरफ। तो भी, हमें मालूम है कि उनके आत्मबल, त्याग और सूझबूझ के कारण साथियों को उनकी तरफ झुकना पडा। जिस चीज को वे मानते थे कि अहिंसा और सत्य की दृष्टि से ठीक है, उस पर 'एकला चलो रे' के स्वर के गुजन के साथ वे चलते रहे। आज आपकी भी वही अवस्था है। आपने और आपकी सरकार ने उस सत्यसागर का किनारा स्पर्श किया है जिसमें रवीन्द्रनाथ और गांधी जैसी गगाए जाकर मिली। मातृभाषा का अपमान अपनी मा के अपमान से भी अधिक गम्भीर होता है। साथ-साथ विदेशी भाषाओं को सीखने की तैयारी के लिए भी मातृभाषा (या स्थानिक भाषा) की बुनियाद शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बरसों से शिक्षाविदों और मार्गदर्शकों ने ये बातें हमें बताई हैं। आपने उन बातों पर अमल करने का निर्णय लिया और आप उन पर अमल करने भी लगे। भारत के लिए जिधर एक तरफ लज्जा की बात यह है कि अधिकतर प्रदेश अभी तक भी मानसिक गुलामी का त्याग नहीं कर पाये हैं, उधर दूसरी तरफ गर्व की बात है कि कम से कम गांधी के जन्म स्थल ने तो सत्य का पालन किया है।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि जब कि सारे राष्ट्र को आपसे सबक लेना चाहिए था, गुजरात के कई लोगों ने भी आपके इस श्रेष्ठ निश्चय की बडी समालोचना करनी शुरू कर दी है। यहां तक कि उसके लिए आन्दोलन तक की बात चल पडी है। राष्ट्र के चरित्र के ऊपर यह एक बडा धब्बा-जैसा लगा है।

यह पत्र हम आपका अभिनन्दन करने के लिए लिख रहे हैं और आपसे तहेदिल से यह निवेदन करना चाहते हैं कि आप और आपकी सरकार इस श्रेष्ठ कदम से पिछे न हटें। गांधीजी ने दुनिया का भला करने का भार अपने ऊपर नहीं उठाया था। वे तो अपने को ही दिन प्रति दिन तपाते गये–शुद्ध करते गये और वे इतने तपे कि उससे राष्ट्र क्या, सारा संसार ही आशाओं के स्वप्न देखने लगा। यदि वे अपने आदर्शों को छोड कर "जनता की आवाज" (क्या वह सचमुच जनता की आवाज होती है?) के पीछे दौडते तो वे गांधीजी न होते। आप और आपकी सरकार डटी रहेगी यही एक मात्र आशा बाकी रही है, नहीं तो इस मामले में देश गिरेगा। यह गुजरात सरकार का प्रेस्टीज इशू बिलकुल भी नहीं है– यह तो मा को मा के स्थान पर बैठाने और विज्ञान को शुद्ध दृष्टि से बरतने की बात है। यदि आपकी सरकार को इस पर पद-त्याग भी करना पडे तो करे—पर गलत कार्य कदापि न करे।

हमारी आप को हजार हजार बधाई।

—नई तालीम परिवार

(गुजरात सरकार ने तय किया है कि अंग्रेजी की शिक्षा आठवीं कक्षा से पहले प्रारम्भ न की जाय। यह निर्णय शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से बिलकुल ठीक है और दुनिया के स्वाभिमान वाले राष्ट्र इसे पूरा पूरा मानते हैं। इधर दूसरे प्रदेशों में उलटी गगा बही है–अंग्रेजी की शिक्षा ३–४ से ही प्रारम्भ हो। दुर्भाग्यवश यह उलटी गगा अब गुजरात में अपना प्रकोप दिखाने लगी है। यहां तक कि जो राजनैतिक पार्टियां सैद्धान्तिक दृष्टि से भी गुजरात सरकार की नीति से सहमत हैं, कहती हैं कि व्यावहारिक तो यही है कि अंग्रेजी ४ थी से शुरू हो। गुजरात

सरकार को इस परिस्थिति का सामना करना पड रहा है। हम आशा करते हैं कि जनता के नेता कहलाये जानेवाले वे लोग जो गुजरात सरकार का इस बात में विरोध कर रहे हैं ठीक रास्ते पर शीघ्र ही आजायंगे और दूसरे प्रदेशों से भी यही कहेंगे कि वे भी गुजरात से सबक सीखें। अपने घर के दीप से दूसरे के घरों को प्रकाशित करें न कि उसे बुझा कर अपने घर में भी अन्धेरा छा दें।)

(पृष्ठ ३४९ का शेषांश)

लिये इस कठिन पदयात्रा की योजना बनाने के लिये हम उन्हें बधाई देते हैं। नई तालीम परिवार का आशीर्वाद उन्हें अवश्य मिलेगा ही। इनकी सफलता के लिये शुभ कामनायें !

विश्वशांति सेना का क्षेत्रीय विभाग

पिछले दिनों दो बैठकें-एक सर्व सेवा संघ काशी और दूसरी गांधी निधि दिल्ली में, हो गई। उनमें तय हुआ है कि विश्व शांति सेना की एशियाई शाखा बनाया जाय। श्री. जयप्रकाश नारायण उसके अध्यक्ष होंगे और उनकी कार्यकारिणी में १०–१२ तक सदस्य होंगे–जो एशिया के भिन्न भिन्न देशों से भी होंगे। आफ्रिका प्रोजेक्ट में मदद करने के लिये यह शाखा कार्यशील है। उसने उत्तरी रोडेशिया के आन्दोलन में शांति सैनिक भेजने का भी तय किया है।

(पृष्ठ ३५२ का शेषांश)

इजाजत नही है।" यह उत्तर जब मिलता है जब आप पूछते हैं कि कोई शिक्षक अन्य कुछ प्रयोग करने के लिए इच्छुक हो तो क्या उसके लिए गुंजाइश है? अर्थात् जितना अमल गणतंत्र के सिद्धान्तों पर देश में होगा उतना ही शिक्षा में प्रयोगों के लिए प्रोत्साहन की व्यवस्था होगी। कोई डेमोक्रेसी कितने पानी में है यह उसकी शिक्षा व्यवस्था में स्वतंत्रता की गुंजाइश के ऊपर तय होगा।

नई तालीम जगत् के सामने यह बडा प्रश्न है और इसको उठा लेने में ही नई तालीम का भविष्य है। इसके लिए अगर आन्दोलन और संघर्ष भी करना पडे तो उसके लिए हमारी तैयारी होनी चाहिए। केवल कुछ केन्द्रों का निर्माण कर देने से नई तालीम नही होगी।

(पृष्ठ ३५५ का शेषांश)

यही कारण है कि वहां शिक्षा का प्रसार इतनी तेजी से बढ रहा है।

कहते हैं कि युगोस्लाविया की शिक्षा व्यवस्था दूसरे महायुद्ध के पहले बडी पिछडी हुई थी। जो विकास उन्होंने किया वह दूसरे युद्ध के बाद हुआ।

युगोस्लाविया की लोक कला को देखकर बडा आनन्द मिला। उनका लोक नृत्य, लोक संगीत और दस्तकारी का काम बहुत ऊंचे स्तर का है। गावों की स्त्रिया अभी भी पारम्परिक ढंग के कपडे पहनी दिखाई देती हैं। उनकी पोशाकें बडी कलात्मक हैं। लोग सीधे हैं। भारत के प्रति उनमें बडी श्रद्धा है। नेहरू कहते ही उनका चेहरा खिल जाता है।

देवी भाई का पता लंदन में

निम्नप्रकार रहेगा :

Devi Prasad

Secretary–

War Resisters' International,

Lansbury House,

88 Park Avenue,

Enfield, Middlesex,

ENGLAND

पठनीय पत्रिकाएं

भूदान यज्ञ (हिन्दी साप्ताहिक),
भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक
सम्पादक–सिद्धराज ढड्ढा,
पता : अखिल भारत सर्व सेवा संघ,
राजघाट, काशी।
वार्षिक शुल्क–छः रुपये

भूमिक्रान्ति
(सुरुचिपूर्ण सचित्र साप्ताहिक सर्वोदयपत्र)
सम्पादक–देवेन्द्रकुमार गुप्त
पता :–गांधी भवन, यशवंत रोड
इन्दौर, म० प्र०।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

साम्ययोग (मराठी साप्ताहिक)
सम्पादक–गो. न. काले
पता : साम्ययोग कार्यालय,
सेवाग्राम [वर्धा]।
वार्षिक शुल्क–चार रुपया

ग्रामराज
सपादक–गोकुलभाई भट्ट
पता : किशोर निवास,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

सर्वोदय (अंग्रेजी मासिक)
सपादक–एन् रामस्वामी
सर्वोदय प्रचुरालय, तंजावूर

खादी पत्रिका (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–ध्वजाप्रसाद साहु,
जवाहरलाल जैन
पता :–राजस्थान खादी संघ,
पो० खादी बाग (जयपुर) राजस्थान
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

सर्वोदय सन्देश (हिन्दी मासिक),
सम्पादक–[illegible] सिंह,
पता –सर्वोदय साहित्य चौक बाजार,
मुंगेर, बिहार।
वार्षिक शुल्क–एक रुपया

गांधी मार्ग (हिन्दी त्रैमासिक),
सम्पादक–श्रीमन्नारायण
पता :–गांधी निधी,
राजघाट, नई दिल्ली।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

मंगल प्रभात (हिन्दी पाक्षिक),
सम्पादक–काका कालेलकर
पता : हिन्दुस्तानी साहित्य सभा,
राजघाट, नई दिल्ली।
वार्षिक शुल्क–तीन रुपये

भूदान (अंग्रेजी साप्ताहिक)
सपादक–सिद्धराज ढड्ढा
अ. भा. सर्व सेवा संघ, राजघाट, काशी।